मार्क्सवादी दर्शन

वि. अफनास्येव

•

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
अहमदाबाद नयी दिल्ली बम्बई

सूची

विषय-प्रवेश

अध्याय १. विज्ञान के रूप में दर्शन

अध्याय २. मार्क्सवाद से पहले के दर्शन में भौतिकवाद और भाववाद का संघर्ष

अध्याय ३. मार्क्सवादी दर्शन का विकास

भाग १

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

अध्याय ४. पदार्थ और उसके अस्तित्व के रूप

भाग २

ऐतिहासिक भौतिकवाद

अध्याय १७. राज्य

अध्याय १८. सामाजिक क्रान्ति

अध्याय १९. सामाजिक चेतना और समाज के विकास मे उसकी भूमिका

विषय प्रवेश

अध्याय १-३

विज्ञान के रूप में दर्शन

मार्क्सवाद से पहले के दर्शन में भौतिकवाद
और भाववाद का संघर्ष

मार्क्सवादी दर्शन का विकास

अध्याय १

विज्ञान के रूप में दर्शन

अन्य विज्ञानों की भांति दर्शन का भी अपना एक विषय-वस्तु होता है जिसका वह अध्ययन करता है। उसकी चर्चा करने से पहले हम उन समस्याओं की विवेचना करेंगे जिनका सभी दर्शन, और साथ ही मार्क्सवादी दर्शन भी, समाधान करते हैं। मुख्य समस्या है दर्शन का मौलिक प्रश्न।

१. दर्शन का मौलिक प्रश्न

दर्शन प्राचीनतम विज्ञानों में से है। इतिहासान्तर मे नाना प्रकार के दार्शनिक मतमतान्तर प्रकट हुए, और इनके प्रणेता नाना प्रकार के सामाजिक वर्ग और समूह थे। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार की परिस्थितियों के अन्तर्गत तथा नाना देशों में ये मतमतान्तर प्रकट हुए। दार्शनिक मतमतान्तरों के इस आलजाल मे से अपना रास्ता किस तरह निकाला जाय? हम विभिन्न मतों का वैज्ञानिक मूल्य किस तरह मालूम करें और किस तरह ऐतिहासिक चिन्तन के इतिहास में प्रत्येक मत का स्थान निर्धारित करें? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमे सर्वप्रथम यह देखना होगा कि कोई दार्शनिक मत अथवा कोई दार्शनिक दर्शन के मौलिक प्रश्न को किस भांति से विवेचना करता है।

अपने चारों ओर की दुनिया पर सावधानी से दृष्टिपात करने पर हम देखेंगे कि सभी वस्तुएं अथवा व्यापार पदार्थ मूलक (भौतिक) अथवा भावना मूलक अथवा आत्मिक हैं। भौतिक वस्तुओं एवं व्यापारों के अन्तर्गत वह सब कुछ आता है जिसका वस्तुगत अस्तित्व है, अर्थात जो मनुष्य की चेतना से बाहर और उससे स्वतंत्र अस्तित्वमान है (पृथ्वी की वस्तुएं और प्रक्रियाएं, ब्रह्माण्ड के अगणित पिण्ड, आदि)। दूसरी ओर, वह सब कुछ जिसका मानव की चेतना मे अस्तित्व है, जो उसके मानसिक कार्यकलाप के क्षेत्र मे आता है (विचार और संवेदनाएं, आवेग, आदि), भावना मूलक एवं आत्मिक क्षेत्र से सम्बद्ध है।

भौतिक और आत्मिक का अन्तस्सम्बंध क्या है? क्या आत्मिक अथवा भावना मूलक भौतिक से जनित होता है? या, यह कि भौतिक आत्मिक से जनित होता है? इस अन्तस्सम्बंध का स्वरूप हो, विचार और

अध्याय १

विज्ञान के रूप में दर्शन

अन्य विज्ञानों की भांति दर्शन का भी अपना एक विषय-वस्तु होता है जिसका वह अध्ययन करता है। उसकी चर्चा करने से पहले हम उन समस्याओं की विवेचना करेंगे जिनका सभी दर्शन, और साथ ही मार्क्सवादी दर्शन भी, समाधान करते हैं। मुख्य समस्या है दर्शन का मौलिक प्रश्न।

१. दर्शन का मौलिक प्रश्न

दर्शन प्राचीनतम विज्ञानों मे से है। इतिहासान्तर मे नाना प्रकार के दार्शनिक मतमतान्तर प्रकट हुए, और इनके प्रणेता नाना प्रकार के सामाजिक वर्ग और समूह थे। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार की परिस्थितियो के अन्तर्गत तथा नाना देशों मे ये मतमतान्तर प्रकट हुए। दार्शनिक मतमतान्तरो के इस आलजाल में से अपना रास्ता किस तरह निकाला जाय ? हम विभिन्न मतो का वैज्ञानिक मूल्य किस तरह मालूम करें और किस तरह ऐतिहासिक चिन्तन के इतिहास मे प्रत्येक मत का स्थान निर्धारित करें ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि कोई दार्शनिक मत अथवा कोई दार्शनिक दर्शन के मौलिक प्रश्न की किस भांति से विवेचना करता है।

अपने चारो ओर की दुनिया पर सावधानी से दृष्टिपात करने पर हम देखेंगे कि सभी वस्तुए अथवा व्यापार पदार्थ मूलक (भौतिक) अथवा भावना मूलक अथवा आत्मिक हैं। भौतिक वस्तुओ एव व्यापारों के अन्तर्गत वह सब कुछ आता है जिसका वस्तुगत अस्तित्व है, अर्थात जो मनुष्य की चेतना से बाहर और उससे स्वतंत्र अस्तित्वमान है (पृथ्वी की वस्तुएं और प्रक्रियाएं, ब्रह्माण्ड के अगणित पिण्ड, आदि)। दूसरी ओर, वह सब कुछ जिसका मानव की चेतना में अस्तित्व है, जो उसके मानसिक कार्यकलाप के क्षेत्र मे आता है (विचार और संवेदनाए, आवेग, आदि), भावना मूलक एव आत्मिक क्षेत्र से सम्बद्ध है।

भौतिक और आत्मिक का अन्तरसम्बंध क्या है ? क्या आत्मिक अथवा भावना मूलक भौतिक से जनित होता है ? या, यह कि भौतिक आत्मिक से जनित होता है ? इस अन्तरसम्बंध का स्वरूप ही, विचार और

अध्याय १

विज्ञान के रूप में दर्शन

अन्य विज्ञानों की भांति दर्शन का भी अपना एक विषय-वस्तु होता है जिसका वह अध्ययन करता है। उसकी चर्चा करने से पहले हम उन समस्याओं की विवेचना करेंगे जिनका सभी दर्शन, और साथ ही मार्क्सवादी दर्शन भी, समाधान करते हैं। मुख्य समस्या है दर्शन का मौलिक प्रश्न।

१. दर्शन का मौलिक प्रश्न

दर्शन प्राचीनतम विज्ञानों मे से है। इतिहासान्तर मे नाना प्रकार के दार्शनिक मतमतान्तर प्रकट हुए, और इनके प्रणेता नाना प्रकार के सामाजिक वर्ग और समूह थे। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार की परिस्थितियो के अन्तर्गत तथा नाना देशों मे ये मतमतान्तर प्रकट हुए। दार्शनिक मतमतान्तरों के इस आलजाल मे से अपना रास्ता किस तरह निकाला जाय? हम विभिन्न मतों का वैज्ञानिक मूल्य किस तरह मालूम करें और किस तरह ऐतिहासिक चिन्तन के इतिहास मे प्रत्येक मत का स्थान निर्धारित करें? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमे सर्वप्रथम यह देखना होगा कि कोई दार्शनिक मत अथवा कोई दार्शनिक दर्शन के मौलिक प्रश्न को किस भांति से विवेचना करता है।

अपने चारो ओर की दुनिया पर सावधानी से दृष्टिपात करने पर हम देखेंगे कि सभी वस्तुए अथवा व्यापार पदार्थ मूलक (भौतिक) अथवा भावना मूलक अथवा आत्मिक हैं। भौतिक वस्तुओं एव व्यापारों के अन्तर्गत वह सब कुछ आता है जिसका वस्तुगत अस्तित्व है, अर्थात जो मनुष्य की चेतना से बाहर और उससे स्वतंत्र अस्तित्वमान है (पृथ्वी की वस्तुएं और प्रक्रियाए, ब्रह्माण्ड के अगणित पिण्ड, आदि)। दूसरी ओर, वह सब कुछ जिसका मानव की चेतना में अस्तित्व है, जो उसके मानसिक कार्यकलाप के क्षेत्र मे आता है (विचार और संवेदनाए, आवेग, आदि), भावना मूलक एव आत्मिक क्षेत्र से सम्बद्ध है।

[illegible] क और आत्मिक का अन्तरसम्बंध क्या है? क्या आत्मिक [illegible] मूलक भौतिक से जनित होता है? या, यह कि भौतिक [illegible] होता है? [illegible] य का स्वरूप ही, विचार और

सत्ता' के यानी आत्मिक और भौतिक के, अन्तरसम्बंध का स्वरूप ही दर्शन का मौलिक प्रश्न है।

विचार और सत्ता के अन्तरसम्बंध का प्रश्न 'दर्शन का मूल प्रश्न' इसलिए है क्योंकि इस प्रश्न के समाधान पर ही दर्शन की अन्य सभी समस्याओं के —यथा विश्व की एकता, उसके विकास को अधिशासित करने वाले नियमों का स्वरूप, ज्ञान का सार और संसार का ज्ञान प्राप्त करने के उपाय आदि, के—समाधान निर्भर करते हैं। चूंकि भौतिक और आत्मिक से परे संसार में अन्य कुछ नहीं है, इसलिए कोई दार्शनिक पद्धति स्थापित करना, यानी संसार का समग्र रूप में एक चित्र खींचना, दर्शन के मूल प्रश्न को हल करने की चेष्टा किये बिना असंभव है।

इस प्रश्न के दो पक्ष हैं। पहला है, इस समस्या का हल निकालना कि प्राथमिक क्या है, पदार्थ अथवा चेतना ? पदार्थ से चेतना का उदय हुआ, या चेतना से पदार्थ का ? दूसरा पक्ष इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करता है कि क्या संसार ज्ञेय है, अर्थात क्या मानव की बुद्धि प्रकृति के रहस्यों को भेदने और उसके विकास को अधिशासित करनेवाले नियमों का उद्घाटन करने की क्षमता रखती है ?

दर्शन के इस मौलिक प्रश्न का गहराई से मनन करने पर यह देख पाना कठिन नहीं है कि केवल दो ही रुख, जो एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं, संभव हैं—एक तो यह कि पदार्थ को प्राथमिक माना जाय और दूसरा यह कि चेतना को प्राथमिक माना जाय। यही कारण है कि युगों पहले ही दर्शन में दो मौलिक प्रवृत्तियां प्रकट हुईं—एक भौतिकवाद (पदार्थवाद) की और दूसरी भावनावाद की।

जिन दार्शनिकों का मत है कि पदार्थ आद्य है, और चेतना गौण और वह पदार्थ से व्युत्पादित है, वे भौतिकवादी हैं। उनके मतानुसार पदार्थ चिरन्तन है, उसका कभी किसी ने सृजन नहीं किया, अधिभौतिक शक्तियों का कोई अस्तित्व नहीं है, विश्व के क्षेत्र से बाहर किन्हीं शक्तियों का अस्तित्व नहीं है। जहां तक चेतना का सवाल है, वह पदार्थ के ऐतिहासिक विकास की उपज है, वह असमान्य रूप से जटिल भौतिक अंग—यानी मानव मस्तिष्क—का एक गुण है।

जिन दार्शनिकों का मत है कि "आत्मा" या चेतना आद्य है, वे भावनावादी हैं। उनके मतानुसार चेतना का अस्तित्व पदार्थ से पहले से है, और

---

१. सत्ता एक दार्शनिक परिकल्पना है जिससे तात्पर्य होता है प्रकृति, बाह्य विश्व या वास्तविकता।—अनु.

उसने ही पदार्थ को जन्म दिया है, वही हर अस्तित्वमान चीज की आद्य बुनियाद है। भावनावादी इस प्रश्न पर विभक्त हैं कि किस प्रकार की चेतना ससार का "सृजन" करती है। मनोवादी भावनावादियों का कहना है कि ससार का "सृजन" व्यक्ति की, कर्ता की चेतना से हुआ। लेकिन वस्तुगत भावनावादियों के कथनानुसार एक प्रकार की वस्तुगत चेतना ने (जिसका अस्तित्व मनुष्य से बाहर है) संसार का "सृजन" किया है। यद्यपि भिन्न-भिन्न दार्शनिक पद्धतियो में यह वस्तुगत चेतना "परम भावना", अथवा "विश्वेच्छा", अथवा ऐसी ही किसी अन्य धारणा के नाम से आती है, पर यह देखना कठिन नही कि उसके अन्दर भी दैव विद्यमान है।

दर्शन के मौलिक प्रश्न के दूसरे पक्ष के समाधान के सम्बध मे भी दार्शनिको का मत इसी तरह विभक्त है।

भौतिकवादी कहते है कि संसार ज्ञेय है। ससार के बारे मे मानव का ज्ञान प्रामाणिक है, मस्तिष्क मे वस्तुओ के आन्तरिक स्वरूप को भेदने की, उनके सार का सज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है।

वे भावनावादी जो संसार को ज्ञेय नहीं मानते, एग्नास्टिक[1] कहे जाते हैं। अन्य विचारवादी सोचते हैं कि ससार ज्ञेय है, परन्तु वास्तव में वे ज्ञान के सार को विकृत करते हैं। उनका तर्क है कि मनुष्य वस्तुगत ससार का सज्ञान नही प्राप्त करता है, बल्कि अपने ही विचारो अथवा आवेगो का बोध करता है (ये मनोवादी भावनावादी हैं), अथवा किसी रहस्यपूर्ण-भावना का, "विश्व आत्मा" का बोध करता है (ये वस्तुगत भावनावादी हैं)।

भौतिकवाद और भावनावाद किसकी सेवा करते हैं?

आज का भौतिकवाद एक प्रगतिशील, वैज्ञानिक विश्व दर्शन है। भौतिकवाद ससार का सही चित्र प्रस्तुत करता है, वह उसे यथार्थ रूप मे पेश करता है। वह विज्ञान एव मानव के व्यावहारिक कार्यकलाप का सच्चा सहयोगी है। इनके आधार पर भौतिकवाद स्वय उदित हुआ है तथा विकसित हो रहा है। भौतिकवाद धर्म का अविचल शत्रु है। उस संसार मे जिसमे गतिशील पदार्थ के अतिरिक्त और किसी चीज का अस्तित्व नही है, किसी दैव का स्थान नहीं हो सकता। यह भी कोरे संयोग की बात न थी कि चर्च ने सदा ही भौतिकवाद और उसके समर्थकों का दमन किया।

भौतिकवाद सामान्यतया समाज के ऐसे उन्नत वर्गों का विश्व दर्शन रहा है और है जिनकी दिलचस्पी मानव जाति की प्रगति मे, उसके आर्थिक और

---

१. यह यूनानी ए (नहीं) और ग्नोसिस (जानता) से बना है।

सांस्कृतिक विकास में रहती हैं। दास युग के समाज में भौतिकवाद का उपयोग समाज के जनवादी हिस्सों ने दास-स्वामियों के, कुलीनों के प्रतिक्रियावादी ऊपरी हिस्सों के विरुद्ध संघर्ष में किया था। पूंजीवाद के उदय के युग में भौतिकवाद ने सामन्ती प्रभुओं तथा चर्च के विरुद्ध लड़ाई में पूंजीवादियों के बौद्धिक हथियार का काम किया। आज के हमारे युग में भौतिकवाद साम्राज्यवादी-प्रतिक्रियावादी तत्वों के विरुद्ध संघर्ष में मानव जाति के प्रगतिशील अंग का प्रबल अस्त्र है।

भावनावाद विज्ञान के विपरीत है और धर्म के साथ जुड़ा हुआ है। धर्म की तरह वह भी संसार का विकृत चित्र प्रस्तुत करता है, उसे अवास्तविक अथवा माया घोषित करता है। लेनिन ने भावनावाद को पादरीवाद का मार्ग कहा था, उसे छद्म, परिष्कृत पादरीवाद बताया था। उनकी इस उक्ति को समझना कठिन नहीं है। संसार के दैवी सृष्टि होने की धार्मिक कपोल कल्पना को भावनावाद चतुरता से एक दार्शनिक जामा पहना कर खड़ा करता है। भावनावाद खास तौर से अधिक खतरनाक इसलिए हो जाता है कि वह विज्ञान का लबादा पहन कर सामने आने की कोशिश करता है और धर्म की भांति अंध-विश्वास तक ही अपने को सीमित न रखकर मानव की बुद्धि को अपना सम्बल बनाने का प्रयास करता है।

भावनावाद, सामान्यतया, प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों के खिलाफ संघर्ष में समाज की प्रतिगामी शक्तियों का उल्लू सीधा करता है। इस कारण से भी वह धर्म का सगोत्रीय बन जाता है। भावनावाद और धर्म सदा मेहनतकशों को शोषकों का आत्मिक दास बनाने के साधन रहे हैं। ये उनके शासन को उचित ठहराने तथा उसे बल प्रदान करने के साधन रहे हैं। आज भी विचारवाद तथा धर्म पूंजीवादी व्यवस्था के वफादार सन्तरी और समर्थक बने हुए हैं।

संसार के वस्तुगत अस्तित्व को अस्वीकार करते हुए और उसे चेतना अथवा दैवी इच्छा की उपज मानते हुए भावनावाद और धर्म पूंजीवाद के सभी सामाजिक अन्तर्विरोधों एवं उसकी बुराइयों को जनता का भ्रम कह कर समाप्त कर देते हैं। इन्हें वे जनता की *अपनी दुर्बलता बतलाते हैं*। इस प्रकार वे मेहनतकशों को पृथ्वी पर बेहतर जीवन का निर्माण करने के, सचमुच मानवीय जीवन का निर्माण करने के, प्रयास से विरत करते हैं।

भावनावाद और धर्म स्वरूप में बहुत निकट हैं, पर हमें इन दोनों को एक ही नहीं समझ लेना चाहिए। भावनावादी दार्शनिकों में ऐसे लोग थे जिन्होंने दार्शनिक चिन्तन के विकास में योगदान किया (इसकी चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे)। पर घुमा फिरा कर उन्होंने भी संसार का विकृत चित्र प्रस्तुत किया और उनकी *अन्तिम परिणति धर्म में हुई*।

विज्ञान और व्यावहारिक अनुभव की उपलब्धियों ने बहुत पहले ही भावनावाद की भ्रांति का पर्दाफाश कर दिया था। फिर भी भावनावादी विचारों का अभी तक प्रचार चल रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसा करना शोषकों के वर्ग-हित में है।

शोषक वर्ग भावनावाद का भौतिकवाद से लोहा लेने के लिए, मेहनतकशों को आत्मिक रूप से दास बनाने के लिए, एक साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसीलिए वे भावनावाद को पूर्ण समर्थन प्रदान करते हैं और जनता में उसका प्रचार करते हैं।

पर समाजवादी समाज में कोई शोषक नहीं हैं, इसलिए वहां ऐसे लोग नहीं हैं जिनको भावनावाद में दिलचस्पी हो। भावनावाद का वहां प्रचार नहीं किया जाता। समाजवाद में बोलबाला वैज्ञानिक, भौतिकवादी विश्व दर्शन का है।

इस प्रकार, हमने देखा कि दार्शनिक इस प्रश्न के आधार पर कि वे दर्शन के मौलिक प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं, भौतिकवादियों और भावनावादियों में बंटे हुए हैं। उनमें से हरेक संसार का चित्र प्रस्तुत करते समय जरूरी तौर पर ज्ञान-प्राप्ति की एक निश्चित विधि का प्रयोग करता है।

२. विधि की परिकल्पना। डायलेक्टिक्स और मेटाफिजिक्स

ज्ञान अर्जित करने की प्रक्रिया में तथा अपने व्यावहारिक कार्यकलाप में लोग अपने सामने निश्चित लक्ष्य रखकर चलते हैं। वे अपने लिए निश्चित कार्य निर्धारित कर लेते हैं। पर लक्ष्य निश्चित करना, कार्य निरूपित कर लेना, लक्ष्य को प्राप्त कर लेना या कार्य को सम्पन्न कर लेना नहीं है। यह बड़े महत्व की बात है कि लक्ष्य तक पहुंचने का सही मार्ग प्राप्त किया जाय, कार्य की पूर्ति की कुशल विधियां निरूपित की जायें। लक्ष्य की दिशा में प्रगति का मार्ग, निश्चित सिद्धान्तों और सैद्धान्तिक अध्ययन के तरीकों तथा व्यावहारिक कार्य-कलाप का योग ही विधि है।

बिना निश्चित विधि का उपयोग किये किसी वैज्ञानिक अथवा व्यावहारिक समस्या को हल कर पाना नामुमकिन है। उदाहरणार्थ, हम यदि किसी सामग्री की रासायनिक संरचना स्थिर करना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले रासायनिक विश्लेषण की विधि में पारंगत बनना होगा, अर्थात आवश्यक रासायनिक अभिकर्मकों द्वारा उस चीज की परीक्षा करना, उसका विघटन करना, उसके संघटकों के रासायनिक गुणों को निर्धारित करना, आदि क्रियायें सीखनी होंगी। यदि हमें धातु को गलाना हो, तो हमें गलाने की प्रविधि सीखनी पड़ती है, अर्थात् धातु उत्पादन की प्रक्रिया में जनता द्वारा निकाली जा चुकी व्यावहारिक विधियों को जानना पड़ता है।

इसी तरह दैहिक, जैविक और अन्य व्यापारों के अध्ययन के लिए निश्चित विधि आवश्यक है। इसीलिए सैद्धांतिक और व्यावहारिक कार्य की विधियां निकालने और इन विधियों में प्रवीणता प्राप्त करने पर लोग इतना समय और प्रयास लगाते हैं।

विधि अध्ययन के यों ही चुन लिये गये विभिन्न तरीकों का कोई ऐसा यांत्रिक योग नहीं है जिसका अध्ययन किये जा रहे व्यापार से कोई सम्बंध न हो। विधि स्वयं अधिकांशत: इन व्यापारों के स्वरूप और उनके अन्तर्निहित नियमों से निर्धारित होती है। अत: विज्ञान अथवा व्यावहारिक कार्यकलाप का प्रत्येक क्षेत्र अपनी विधियां स्वयं बना लेता है। उदाहरणार्थ, भौतिकी की विधियां रसायन की विधियों से भिन्न होती हैं, रसायन की विधियां जैविकी से भिन्न होती हैं, और ऐसे ही क्रम चलता रहता है।

वैज्ञानिक दर्शन ने विभिन्न विज्ञानों की उपलब्धियों और मानव जाति के व्यावहारिक कार्यकलाप का सामान्यीकरण किया, और इस प्रकार संज्ञान-प्राप्ति की एक अपनी ही विधि तैयार की। यह है **भौतिकवादी डायलैक्टिक्स।** यह विधि अलग-अलग विज्ञानों की विधि से इस बात में भिन्न है कि यह न सिर्फ यथार्थ के पृथक क्षेत्रों को समझने की कुंजी प्रदान करती है, बल्कि निरपवाद रूप से प्रकृति, समाज और चिन्तन के सभी क्षेत्रों को भी समझने की कुंजी प्रदान करती है। यह समग्र रूपेण संसार को समझने की भी कुंजी प्रदान करती है।

"**डायलैक्टिक्स**"[1] शब्द मूल यूनानी है। प्राचीन काल में **डायलैक्टिक्स** शास्त्रार्थ कला को कहते थे, उस कला को कहते थे जो विरोधी पक्षों के तर्कों में निहित अन्तर्विरोधों का उद्घाटन तथा उनका स्पष्टीकरण करके सत्य को निकालती थी। आज संज्ञान-प्राप्ति की एक विधि बन कर डायलैक्टिक्स सतत गतिमान् एवं विकासमान रूप में संसार का अनुसंधान करता है, अर्थात् उसे उस रूप में देखता है जिसमें वह सचमुच है। इस प्रकार वह एकमात्र वैज्ञानिक विधि है। विज्ञान की उपलब्धियों तथा मानव समाज के व्यावहारिक अनुभव के आधार पर डायलैक्टिक्स कहता है कि संसार अनन्त गति है। वह पुनरुज्जीवन है, पुराने के मरण और नवीन का जन्म लेना है। एंगेल्स ने लिखा है, "उसके (डायलैक्टिक्स दर्शन के) लिए परम कुछ भी नहीं है।...वह हर चीज के और हर चीज में निहित क्षणिक स्वरूप का उद्घाटन करता है। उसके सामने बनने और गुजरने की, निम्नतर से उच्चतर में अनन्त अवतरण की, अबाध प्रक्रिया

१. हिन्दी में इसके लिए द्वन्द्ववाद शब्द प्रयुक्त किया जा रहा है—अनु

के अलावा और कुछ टिक नहीं सकता।"[1] इसके अतिरिक्त डायलैक्टिक्स बताता है कि गति और विकास का स्रोत स्वयं वस्तुओं एवं व्यापारों के आन्तरिक विरोधों में निहित होता है।

डायलैक्टिक्स विकास की, प्राचीन के विरुद्ध नवीन के संघर्ष की, नवीन की अनिवार्य विजय की प्रक्रिया की व्याख्या करता है और पुराने पड़ चुके सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध, प्रतिगामी सामाजिक शक्तियों के विरुद्ध, संघर्ष में प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों की सेवा करता है। हमारे अपने युग में डायलैक्टिक्स मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी के हाथों में संसार का क्रांतिकारी ज्ञान-प्राप्त करने तथा उसका क्रांतिकारी कायापलट करने का अस्त्र है।[2]

मेटाफिजिक्स[3] द्वन्द्वात्मक (डायलैक्टिकल) भौतिकवाद की बिल्कुल उलटी विधि है।

चिन्तन की अधिभौतिकीय विधि की उत्पत्ति प्राकृतिक विज्ञान से हुई थी, पर १७वीं-१८वीं शताब्दी में वह दर्शन के क्षेत्र तक पहुंच गयी। उन दिनों की अधिभौतिकी विकास को, नवीन के उदय को, नहीं मानती थी, और गति को व्योम में पिण्डों का विस्थापन मात्र समझती थी।

एंगेल्स ने बताया है कि अधिभौतिकी के लिए वस्तुएं और उन्हें प्रतिबिम्बित करने वाली धारणाएं पृथक, अपरिवर्तनीय, प्रदत्त वस्तुएं हैं जिन्हें एक-एक करके एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप में अध्ययन करना चाहिए।[4] उदाहरणार्थ, *सुप्रसिद्ध स्वीडिश प्रकृति विज्ञानी चार्ल्स लाइनीयस (१७०७-१७७८) के मत* से वनस्पति प्रजातियों की संख्या उतनी "सृष्टि" के दिन से वही की वही बनी हुई है और ये प्रजातियां अपरिवर्तनीय है। इससे लाइनीयस ने निष्कर्ष निकाला कि प्रकृति विज्ञान का कार्य प्रकृति के उस क्रम का वर्णन कर देना मात्र है जिसे "सृष्टिकर्ता" ने संस्थापित किया था।

---

१. मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड २, मास्को, १९५८, पृ ३६३।

२. भौतिकवादी डायलैक्टिक्स का मूल सिद्धांत अध्याय ६-८ में वर्णित है।

३. मेटाफिजिक्स (यूनानी में मेटा टा फिजिका, अथवा फिजिक्स—भौतिकी—के बाद) अरस्तू के दार्शनिक ग्रंथ के उस अध्याय का शीर्षक है जिसमें व्यापारों का अभौतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है और जो भौतिकी सम्बंधी अध्याय के बाद आता है। बाद में मेटाफिजिक्स नाम ज्ञान की उस विधि को दिया गया जो डायलैक्टिक्स के ठीक विपरीत है।—सं.
हिन्दी में इसके लिए अधिभौतिकी शब्द प्रयुक्त किया जाता है—अनु

४. देखिये एंगेल्स की पुस्तक, ड्यूहरिंग मतखण्डन, मास्को, १९५९ पृ. ३४।

अधिभौतिकवादियों ने गति को यांत्रिक विस्थापन मात्र माना। फलस्वरूप उन्होंने प्रकृति में गुणात्मक परिवर्तनों को अमान्य किया, जो विद्यमान है उसमें ही बढ़ती या घटती मात्र को विकास समझा। उदाहरणार्थ, फ्रांसीसी दार्शनिक रोबिने (१७३५-१८२०) ने कहा कि वयस्क मनुष्य भ्रूण से भिन्न नहीं होता है और उसके सूक्ष्म आकार में परिपक्व शरीर के सभी अंग विद्यमान होते हैं। मनुष्य के विकास के बारे में उनकी समझ यह थी कि यह भ्रूणावस्था के अंगों का सामान्य विस्तारण या वृद्धि मात्र है। गुणात्मक परिवर्तनों को न मानना, विकास को महज परिमाणात्मक बढ़ती या घटती समझना, उसे विद्यमान की सामान्य पुनरावृति मानना जिसमे नवीन का जन्म जैसी कोई चीज नही होती। आन्तरिक विरोधों को विकास का स्रोत स्वीकार करने से इनकार करना—ये ही आज के अधिभौतिकवादियों की विशेषताएं हैं।

अधिभौतिकी विकास के प्रगतिशील स्वरूप को, पुरातन के विरुद्ध नूतन के संघर्ष और नूतन की अनिवार्य विजय को स्वीकार नहीं करती। इसीलिए वह प्रतिगामी शक्तियों का हितसाधन करती है और हर प्रगतिशील चीज के विरुद्ध संघर्ष मे उनके द्वारा इस्तेमाल की जाती है। उदाहरणार्थ, अधिभौतिकी का उपयोग संशोधनवादी करते हैं जो वर्ग संघर्ष, समाजवादी क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व को तिलांजलि देते हैं, शोषकों और शोषितों के मेल का उपदेश देते हैं और पूंजीवाद के समाजवाद में शांतिपूर्ण ढंग से "विकसित" हो जाने की धारणा की हिमायत करते हैं।

अधिभौतिकी कठमुल्लेपन के सैद्धान्तिक आधार का भी काम देती है। यह उन लोगों का मत भी बन जाती है जो विश्व में हो रहे गहरे परिवर्तनो को स्वीकार करने से इनकार करते हैं और आज की प्रमुख समस्याओ को निरंतर बदलती हुई अवस्थाओं का लेखा लिये बिना ही हल करना चाहते हैं।

डायलैक्टिक्स की सत्यता जीवन द्वारा प्रमाणित होती है। वह विज्ञान और व्यावहारिक अनुभव द्वारा प्रमाणित होती है। उसकी जीवन्तता समाज के समकालीन विकास द्वारा अकाट्य रूप में सिद्ध हो चुकी है। सोवियत संघ में समाजवाद की पूर्ण एवं अंतिम रूप से विजय और उसके द्वारा कम्युनिज्म के भरपूर निर्माण का आरम्भ; जनतंत्र, शांति और समाजवाद की शक्तियों की वृद्धि—यह सब मार्क्सवादी डायलैक्टिक्स की विजय को पक्के तौर पर प्रमाणित करते हैं।

अब हमने अपने विषय की पृष्ठभूमि पर सामान्य दृष्टि डाल ली है। अतएव अब हम मार्क्सवादी दर्शन की, यानी द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की विषयवस्तु का निरूपण कर सकते हैं।

३. मार्क्सवादी दर्शन की विषयवस्तु

मार्क्सवादी दर्शन की विषयवस्तु निरूपित करने का अर्थ है उन प्रश्नों का दायरा तय करना जिनका यह अध्ययन करता है और यह निश्चित करना कि अन्य विज्ञानों से यह किस प्रकार भिन्न है।

दर्शन के कई शताब्दियों के विकास के दौरान उसकी विषयवस्तु निरंतर बदलती रही है। पहले यह उस समय तक संचित सारे ज्ञान को समेटे हुए था। उसमें समग्र संसार का, उसकी पृथक वस्तुओं और व्यापारों—पृथ्वी, मनुष्य, पशु, धातुओं आदि—का ज्ञान सम्मिलित था। इसके बाद जैसे-जैसे उत्पादन विकसित हुआ और वैज्ञानिक ज्ञान जमा होता गया, एक-एक कर विज्ञान विशेष पृथक होने लगे। यथा खगोलिकी, भौतिकी, रसायन, भूगर्भशास्त्र, इतिहास, आदि। इस समय ऐसे दर्जनों विज्ञान हैं जो यथार्थ के नाना क्षेत्रों का अध्ययन करते हैं।

मार्क्सवादी दर्शन क्या अध्ययन करता है ?

मार्क्सवादी दर्शन की विषयवस्तु में मुख्य चीज है मौलिक दार्शनिक प्रश्न का, चेतना और सत्ता के अन्तस्सम्बंध का उत्तर ढूंढ़ना। जैसा कि हम पहले ही विदित कर चुके हैं, सभी दार्शनिक पद्धतियों के लिए इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करना अनिवार्य है। किन्तु इसका एकमात्र पूर्णतया वैज्ञानिक, सही और सुसंगत उत्तर मार्क्सवादी दर्शन ही प्रदान करता है।

मार्क्सवाद का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। यह भौतिकवादी इसलिए है कि दर्शन के मौलिक प्रश्न का समाधान करते हुए वह इस पूर्वमान्यता को आधार बनाकर चलता है कि पदार्थ और प्रकृति अथवा "सत्ता" प्राथमिक है और चेतना गौण है। यह संसार की भौतिकता और ज्ञेयता को स्वीकार करता है और संसार को उसके यथार्थ रूप में देखता है। मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्वात्मक इसलिए है कि यह भौतिक जगत का निरन्तर गतिशील, विकासमान और पुनरुज्जीवित रूप में अनुसंधान करता है।

दर्शन के मौलिक प्रश्न के सही समाधान के आधार पर अग्रसर होते हुए, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद भौतिक जगत के विकास को अधिशासित करने वाले सर्वसामान्य नियमों का उद्घाटन करता है। ये नियम भी मार्क्सवादी दर्शन के विषयवस्तु हैं।

अलग-अलग विज्ञान भी भौतिक जगत के विकास को अधिशासित करने वाले नियमों का अध्ययन करते हैं, पर प्रत्येक का सम्बंध यथार्थ के केवल एक निश्चित क्षेत्र से ही होता है। भौतिकी ऊष्मा, विद्युत चुम्बकत्व और अन्य भौतिक व्यापारों के साथ सम्बद्ध है। रसायन का सरोकार सामग्रियों के

रासायनिक परिवर्तन से है। जैविकी वनस्पतियों और पशुओं में चलती प्रक्रियाओं को लेती है। ऐसे ही और हैं। इन विज्ञानों के नियम यथार्थ के विशेष क्षेत्र में ही विकास का स्वरूप निरूपण करते हैं, वे अन्य क्षेत्रों की व्याख्या नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, यांत्रिकी के नियमों को ले लीजिए। वे केवल यांत्रिकीय गति का, अर्थात् अवकाश में पिण्डों के सामान्य विस्थापन का, सार उद्घाटित करते हैं। वे रासायनिक, जैविक अथवा अन्य प्रक्रियाओं की व्याख्या नहीं कर सकते। यांत्रिकी के नियम यद्यपि ऊपर गिनायी गयी सभी प्रक्रियाओं में कार्यरत रहते हैं, परन्तु वहां उनका कोई स्वतंत्र महत्व नहीं होता और वे अन्य नियमों के आगे, जो विशेष प्रक्रियाओं का स्वरूप निरूपण करते हैं (रासायनिक प्रक्रियाओं में रसायन के नियम, जैविक प्रक्रियाओं में जैविकी के नियम, आदि), गौण रहते हैं।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विशेष विज्ञानों से इस बात में सर्वथा भिन्न है कि वह उन सामान्य नियमों का अध्ययन करता है जो यथार्थ के सभी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। अतः सभी सजीव और निर्जीव वस्तुएं, सामाजिक जीवन के व्यापार और चेतना, विपरीतों की एकता एवं संघर्ष के नियम, परिमाणात्मक परिवर्तनों के गुणात्मक परिवर्तनों में सन्तरित होने के नियम, आदि के आधार पर विकसित होते हैं। इनकी तथा भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के अन्य नियमों की दूसरे अध्यायों में विशद विवेचना की जायगी।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ज्ञान की प्रक्रिया को अधिशासित करने वाले नियमों का भी अध्ययन करता है। ये नियम वस्तुगत संसार के नियमों के प्रतिबिम्ब होते हैं। मनुष्य को प्रकृति, समाज और चिन्तन के इन नियमों से लैस करके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद लोगों को केवल संसार का संज्ञान प्राप्त करने के ही नहीं, बल्कि उसका क्रान्तिकारी कायापलट करने के भी तरीके बताता है।

इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एक ऐसा विज्ञान है जो दर्शन के मौलिक प्रश्न के सही उत्तर के आधार पर भौतिक जगत् के विकास को अधिशासित करने वाले सामान्यतम, द्वन्द्वात्मक नियमों का उद्घाटन करता है तथा इस जगत का संज्ञान प्राप्त करने और उसका क्रान्तिकारी कायापलट करने के उपाय बताता है।

मार्क्स से पहले अनेक दार्शनिकों ने विकास के सामान्य नियमों को ढूंढने का, संसार का एक अखण्ड एवं सामंजस्यपूर्ण चित्र पेश करने का प्रयास किया था, और बहुतों ने इसमें कुछ सफलता भी प्राप्त की थी। पर वे संसार का सचमुच वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करने में असमर्थ सिद्ध हुए। कुछ के मार्ग में उनके भाववादी दृष्टिबिन्दु के कारण अड़चन पड़ गयी और कुछ को अधिभौतिक विधि की सीमारेखाओं ने सफल नहीं होने दिया। इसके अलावा—और यही मुख्य

वस्तु है—वे सबके सब क्रान्तिकारी संघर्ष से, मेहनतकश जनता के हितों से, बहुत दूर थे।

मार्क्स और एंगेल्स मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष में अपने सक्रिय योगदान, जनता की निस्वार्थ सेवा और विज्ञान तथा दर्शन की उपलब्धियों के अपने अगाध ज्ञान की बदौलत इन सामान्य नियमों का उद्घाटन कर सके, यथार्थ के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी तत्व का पता लगा सके।

इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि मार्क्स और एंगेल्स ने सामाजिक जीवन के विकास के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी स्वरूप का भी उद्घाटन किया। उन्होंने सामाजिक विकास के वैज्ञानिक सिद्धान्त, समाज का सज्ञान प्राप्त करने तथा उसका क्रान्तिकारी कायापलट करने की विधि, ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रणयन किया। समाज के विकास को अधिशासित करने वाले सर्वसामान्य नियमों के विज्ञान की हैसियत से ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवादी दर्शन का अभिन्न अंग है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम सामान्य और सार्वजनिक स्वरूप के हैं। वे सर्वत्र कार्यरत हैं—अजैव प्रकृति में, सजीव शरीरों में, मनुष्य और उसके चिन्तन में। मार्क्सवादी दर्शन के नियमों की सार्वत्रिकता बड़े ही महत्व की है। इन नियमों का उपयोग दुनिया के नाना प्रकार के व्यापारों को समझने में किया जा सकता है। इसीलिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अन्य विज्ञानों के विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, जो व्यावहारिक अनुभव और विशेष विज्ञानों से उद्भूत होता है और जो उनकी उपलब्धियों का सामान्यीकरण है, उनके विकास को आगे बढ़ाता है और उन्हें अनुसंधान की एक वैज्ञानिक विधि प्रदान करता है। लेकिन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विज्ञान विशेषों में पूर्ण गति प्राप्त करने तथा मानव के वैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुभव का अध्ययन करने को अनावश्यक नहीं बनाता। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का उदय और विकास विज्ञान एवं व्यवहार में मानव की उपलब्धियों के आधार पर हुआ और इन उपलब्धियों के ज्ञान के बिना उसके नियमों का समुचित उपयोग किया नहीं जा सकता।

मार्क्सवादी दर्शन और अन्य विज्ञान

कुछ समकालीन पूंजीवादी दार्शनिक (जिन्हें पोजिटिविस्ट अथवा प्रत्यक्षवादी कहा जाता है) कहते हैं कि विज्ञान के विकास के लिए दर्शन का, किसी वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण का, कोई महत्व नहीं है। वे विज्ञान और दर्शन के आपसी सम्बन्ध के स्वरूप को विकृत करते हैं। वे प्रत्यक्षवादी (अनुभूत) वैज्ञानिक ज्ञान की हिमायत करते हैं, दर्शन को विज्ञान से विलग कर देते हैं

और यह तर्क देते हैं कि आम तौर पर विज्ञान को किसी दर्शन की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं कि "विज्ञान तो अपना दर्शन आप है।"

दर्शन और विज्ञान का इतिहास यह प्रमाणित करके कि ये दोनों अभिन्न हैं, प्रत्यक्षवादी विचारों का खंडन करता है। रूसी लेखक और दार्शनिक अलेक्सान्द्र हर्ज़ेन ने दर्शन की उपमा एक विशाल वृक्ष के तने से दी थी और विज्ञान को उसका क्षेत्र अथवा उसकी शाखाएं कहा था। जिस प्रकार तने और शाखाओं के बिना वृक्ष नहीं होता, उसी तरह विज्ञान और दर्शन की भी एक-दूसरे के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। हर्ज़ेन ने कहा था—"शाखाओं को काट दीजिए तो वृक्ष एक निष्प्राण कुन्दा मात्र रह जायेगा, और तने को हटा दीजिए तो शाखाएं मुरझा जायेंगी।"[1]

जैसे-जैसे प्राकृतिक विज्ञान विकसित होता है, वैसे-वैसे दर्शन के साथ उसके सम्बंध अधिकाधिक घनिष्ठ होते जाते हैं और वे एक-दूसरे को ज्यादा प्रभावित करने लगते हैं। आज जब कि वैज्ञानिक पदार्थ के मौलिक कणों के स्वरूप, जीवन की उत्पत्ति, ब्रह्माण्डीय पिण्डों का विकास जैसी प्राकृतिक विज्ञान की सूक्ष्म और जटिल समस्याओं को हल कर रहे हैं, तो विज्ञान और दर्शन के ये सम्बंध खास तौर से ज्यादा घनिष्ठ बन गये हैं। महान वैज्ञानिक उपलब्धियों के हमारे युग में गहन दार्शनिक सामान्यीकरणों का किया जाना परम अनिवार्य है। प्राकृतिक विज्ञान की जबर्दस्त प्रगति और उसमें हो रहे गहन क्रान्तिकारी परिवर्तन दर्शन और विज्ञान की घनिष्ठतम एकता की अपेक्षा करते हैं। ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक को अवश्य ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी होना चाहिए।

अतएव, यह कोरे संयोग की बात नहीं है कि अधिकाधिक प्राकृतिक विज्ञानी मार्क्सवादी दर्शन के सचेत अनुयायी बन रहे हैं। यह उन्हें वस्तुगत जगत में सही दिशा-ज्ञान प्राप्त करने में, उसके भौतिक स्वरूप को निरन्तर देखने और अनुसंधान के उनके विशेष क्षेत्र में प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता का लेखा लेने में सहायता देता है।

४. मजदूर वर्ग का सैद्धान्तिक हथियार

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का उदय और विकास पूंजीवाद के विरुद्ध और समाजवाद तथा कम्युनिज्म के हेतु मजदूर वर्ग के संघर्ष में उसके वैज्ञानिक, विचारधारात्मक हथियार के रूप में हुआ। मार्क्सवादी दर्शन स्वाभाविक रूप से ही क्रान्तिकारी है। वह सामाजिक व्यवस्थाओं की अपरिवर्तनीयता और निजी सम्पत्ति की शाश्वतता को स्वीकार नहीं करता। वह बताता है कि

---

१. अ. हर्ज़ेन, संकलित दार्शनिक कृतियां, खंड १, मास्को, १९५६, पृ १०१।

पूंजीवाद का अन्त और नयी सामाजिक व्यवस्था की विजय अनिवार्य है। वह समाजवाद एवं कम्युनिज्म के निर्माण के मार्ग और साधनों का भी इंगित करता है।

आमूल सामाजिक परिवर्तन और पूंजीवाद से कम्युनिज्म में सन्तरण के हमारे युग में मार्क्सवादी दर्शन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना खास तौर से महत्व-पूर्ण है। वह मार्क्सवादी पार्टियों को हमारे युग की अति जटिल परिस्थितियों में दिशा-ज्ञान प्राप्त करने में मदद देता है, विद्यमान स्थिति का वैज्ञानिक विश्लेषण करने में, उसके मुताबिक सबसे महत्वपूर्ण कार्यों का चुनाव करने में और उन्हें पूरा करने के सबसे कारगर तरीके निकालने में सक्षम बनाता है।

मार्क्सवादी दर्शन संसार को समझने तथा उसका कायापलट करने का एक साधन है परन्तु उसका सृजनात्मक ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए और उन ठोस ऐतिहासिक अवस्थाओं का अवश्य लेखा लेना चाहिए जिनमें उसके नियम और सिद्धान्त कार्य करते हैं। मार्क्सवादी दर्शन को हृदयगम करने का अर्थ केवल यह नहीं है कि उसकी प्रस्थापनाओं और निष्कर्षों को रट लिया जाय, बल्कि आवश्यकता उसके सारतत्व को ग्रहण करने की है, अमल में उसका उपयोग करना सीखने की है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकलाप मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रान्तिकारी दर्शन को अमल में लाने का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। पार्टी ऐतिहासिक व्यवस्थाओं और वर्ग शक्तियों की सापेक्ष शक्तियों का संजीदगी से विश्लेषण करती है। वह वस्तुगत परिवर्तनों के अनुरूप रणनीति और कार्यनीति को बदलने की क्षमता रखती है। वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्तों का ठोस क्रान्तिकारी कार्यकलाप के साथ सजीव समन्वय स्थापित करती है। इस सबकी बदौलत सोवियत संघ में समाजवाद की युगान्तरकारी जीत हुई है और उसके विकास के एक नये दौर—कम्युनिज्म के भरपूर निर्माण के दौर का शुभारम्भ हुआ है।

अध्याय १

मार्क्सवाद से पहले के दर्शन में भौतिकवाद और भावनावाद का संघर्ष

मार्क्सवादी दर्शन का उद्‌भव विश्व के दार्शनिक चिन्तन के मूल स्रोतों से हुआ है। उसने अपने पूर्ववर्ती दर्शनों की सर्वोत्तम उपलब्धियों की विरासत हासिल की है, क्रान्तिकारी व्यवहार और नवीन वैज्ञानिक खोजों के आधार पर इन उपलब्धियों को, नीर-क्षीर विवेक करते हुए, आत्मसात किया है और इस प्रकार दार्शनिक चिन्तन को एक नये गुणात्मक सोपान पर पहुंचाया है। दर्शन का इतिहास बताता है कि वैज्ञानिक, द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण किस तरह भौतिकवाद और भावनावाद के, द्वन्द्ववाद और अधिभौतिकी के संघर्ष के दौर में उदित और विकसित हुआ।

१. दास समाज में भौतिकवाद और भावनावाद का संघर्ष

विश्व को समग्रतः बुद्धिग्राह्य बनाने की प्रथम चेष्टाओं के प्रतीक स्वरूप, न्यूनाधिक सम्पूर्ण दार्शनिक पद्धतियों के रूप में, भौतिकवाद और भावनावाद का उदय हमारे युग से शताब्दियों पूर्व चीन, भारत, मिस्र और बेबिलोन प्रभृति प्राच्य देशों के दास समाजों में हुआ। प्राचीन यूनान और रोम में वे चरम शिखर पर पहुंचे।

भौतिकवाद का उदय उत्पादन के विकास और विज्ञान की प्रारम्भिक सफलताओं के कारण हुआ। उसने ज्यों ही कुछ कदम आगे बढ़ाये थे कि उसकी भावनावाद के साथ निर्मम लड़ाई छिड़ गयी। दास समाज में भावनावाद के विरुद्ध भौतिकवाद का संघर्ष प्रतिगामी शक्तियों के खिलाफ प्रगतिशील तत्वों के संघर्ष को प्रतिबिम्बित करता था :

प्राचीन युग के भौतिकवादियों को भौतिक संसार के वस्तुगत अस्तित्व का पूर्ण विश्वास था और उन्होंने चेष्टा की कि ऐसे किसी आदि तत्व अथवा आदि पदार्थ का पता लगायें जो संसार की सारी विविध वस्तुओं का उद्‌गम स्रोत हो। वे प्रायः ठोस प्राकृतिक तत्वों—जल, वायु, अग्नि, आदि— को ही आदि तत्व मान लेते थे। उदाहरणार्थ, प्राचीन भारत के भौतिकवादी दार्शनिक चार्वाक ने (जिनका काल ईसापूर्व की चौथी से दूसरी शताब्दी में किसी

समय माना जाता है) कहा कि संसार की सभी वस्तुए चार तत्वो (पावक, समीर, जल और क्षिति) से बनी है। मानव सहित सभी जीवित प्राणी इन तत्वों से ही निर्मित है। चार्वाक नास्तिक थे और कहते थे कि संसार अपनी ही प्रकृति से, अपने ही आन्तरिक कारणो से, विकसित हो रहा है। सांख्य, न्याय, वैशेषिक तथा प्राचीन भारतीय दार्शनिक पथो और पद्धतियो मे भी भौतिकवादी प्रवृत्ति विद्यमान थी।

प्राचीन काल का भौतिकवाद प्राचीन यूनानी दार्शनिक डेमोक्रिटस (४६०-३७० ई पू) के परमाणुवादी सिद्धान्त मे अपने चरम शिखर पर पहुचा। डेमोक्रिटस ने यह दूरदर्शितापूर्ण परिकल्पना प्रस्तुत की थी कि ससार परमाणुओ एव शून्य का बना हुआ है। उनके मतानुसार परमाणु अदृश्य कण हैं जो शक्ल-सूरत मे भिन्न-भिन्न हैं और एक-दूसरे के साथ सयुक्त होकर वस्तुओ के सम्पूर्ण वैविध्य का निर्माण करते हैं किन्तु स्वय अपरिवर्तित रहते हैं। परमाणु अपरिवर्तनीय, शाश्वत, अखड और अभेद्य हैं।

डेमोक्रिटस दास-स्वामियो के पिछले भाग से आते थे और राजनीति मे जनतन्त्रवादी थे। वह दस्तकारियो, व्यापार और विज्ञान को विकसित करने के पक्ष में थे।

डेमोक्रिटस के बौद्धिक प्रतिपक्षी (४२७-३४७ ई पू) प्लेटो वस्तुगत भावनावादी थे। प्लेटो ने कहा कि समस्त दृश्य (वस्तुगत, भौतिक) जगत् असत्य है। उन्होंने उसके मुकाबले मे विचारो की दुनिया पेश की जिसे उन्होने "वास्तविक सत्ता" या परिवर्तन-रहित ससार माना। भावनाओ की इस मनगढन्त, काल्पनिक दुनिया के बारे मे यह माना गया कि वह दृश्य जगत से पहले आती है। प्लेटो ने कहा कि दृश्य जगत् विचारो के इस जगत की छाया अथवा अस्पष्ट प्रतिबिम्ब मात्र है। प्लेटो ने भौतिकवादियो और नास्तिकों के विरुद्ध खुलकर सघर्ष किया, उन्हे खतरनाक मुजरिम करार दिया और उनके लिए सज़ाए मौत की माग की।

प्लेटो यूनानी कुलीन वर्ग के थे, जो दास-समाज का ऊपरी तबका था। उनके सामाजिक-राजनीतिक विचार अत्यन्त प्रतिगामी थे। उनके विचार से उनका दास-स्वामी कुलीन प्रजातत्र, जिसके प्रशासक दार्शनिक राजा और सैनिक योद्धा थे, "आदर्श राज्य" था। दासो के प्रति उन्होने खुली तिरस्कार भावना प्रकट की थी।

डेमोक्रिटस और प्लेटो के अनुयायियो का सघर्ष प्राचीन यूनानी दर्शन मे भौतिकवाद और भावनावाद के संघर्ष को प्रतिबिम्बित करता था।

प्राचीन कालीन दार्शनिको का डायलैक्टिक्स (द्वन्द्ववाद) स्वत.स्फूर्त था। द्वन्द्ववादी विचारो को यूनानी दार्शनिक हेराक्लिटस (५४०-४८० ई. पू) ने

व्यापक रूप में विकसित किया। वही द्वन्द्ववादी चिन्तन के सर्वप्रथम रूप— निष्कपट भौतिकवादी द्वंद्ववाद—के प्रणेता थे। सब कुछ प्रवहमान है, परि-वर्तित होता है। हेराक्लिटस के शब्दों में उसी नदी में दो बार नहाना असंभव है। सामान्य रूप से चंचल एवं परिवर्तनशील तत्त्व अग्नि को वह संसार का प्रारम्भिक स्रोत, सक्रिय और शाश्वत रूप में प्राणवान सूत्र मानते थे। हेरा-क्लिटस ने कहा कि संसार का "निर्माण किसी देवता या मनुष्य ने नहीं किया, यह तो शाश्वत रूप में प्राणवान् अग्नि थी, है और रहेगी, जो नियमित रूप से जलती और नियमित रूप से बुझती रहती है।"

हेराक्लिटस की इस उक्ति के बारे में लेनिन ने कहा था कि "यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों की बहुत अच्छी विवेचना है।" यह द्वन्द्वात्मक भौतिक-वाद की मूल भावनाओं की प्रथम अभिव्यक्ति है, यद्यपि इसमें अतिसरलता बरती हुई है। ये मूल विचार हैं: संसार की भौतिक एकता, उसकी वस्तुगतता, और चेतना से उसका स्वतंत्र होना, पदार्थ और गति की एकता और पदार्थ की गति की नियमितता।

प्राचीन काल के दार्शनिकों ने वस्तुओं में विरोधी पक्षों की विद्यमानता और और वस्तुओं के विकास के आन्तरिक स्रोत के रूप में विपरीतों का संघर्ष आदि दूरदर्शी धारणाएं अभिव्यक्त की थीं। हेराक्लिटस ने कहा था कि "...सब कुछ संघर्ष से होकर तथा आवश्यकता के कारण चलता है।" उन्होंने बताया था कि जीवित और मृत, जाग्रत और सुषुप्त, किशोर और वृद्ध सभी मानव के भीतर हैं। उनके मतानुसार वस्तुएं ठंडी या गरम, सूखी या गीली हो सकती हैं और एक-दूसरे में निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। "ठंडा गरम बन जाता है, गरम ठंडा, गीला सूख जाता है, सूखा गीला हो जाता है।"

अरस्तू (३८४-३२२ ई. पू.) प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक थे। उन्होंने प्लेटो (अफलातून) के भाववाद की गहरी आलोचना की। उन्होंने भौतिक जगत् के वस्तुगत अस्तित्व पर जोर दिया और कहा कि प्रकृति अपने वस्तुगत अस्तित्व के लिए किन्हीं विचारों पर [illegible] नहीं करती। यह निरीक्षण करते हुए कि प्रकृति की सभी वस्[illegible] अरस्तू ने गति के प्रकारों [illegible] किया [illegible] बताये – उद्भव, विनाश [illegible] बताया कि प्रकृति स्वयं [illegible] सभी विज्ञानों को तीन [illegible]। दर्शन को उन्होंने [illegible] उसका लक्ष्य सभी विद्यमान [illegible] है। अरस्तू को

तर्कशास्त्र का, सही चिन्तन के नियमों और रूपों के विज्ञान का, संस्था
माना गया है जो सर्वथा उचित है।

अरस्तू ने पदार्थ को हर विद्यमान वस्तु का आद्य स्रोत माना, पर उन
दृष्टि में वह एक अकर्मण्य, जड़ तत्व था जिसके मुकाबले उन्होंने "रूप"
रखा जो उनके लिए एक जीवित, सक्रिय तत्व था। इसके अलावा उन्हं
"सभी रूपों के रूप", मूल अनुप्रेरक, विश्व के चरम हेतु को भी माना जि
दैव को देख पाना कठिन नहीं है। यह भावनावाद की दिशा में अरस्तू
विचलन प्रगट करता है।

मार्क्स और एंगेल्स अरस्तू के प्रशंसक थे। मिसाल के लिए, मार्क्स ने उ
यूनानी दर्शन का सिकन्दर महान् कहा था। पर साथ ही उनकी असंगति
और भावनावाद को गंभीर छूटें देने की उन्होंने आलोचना भी की थी।

प्राचीन काल के दार्शनिकों ने अरस्तू के बाद भौतिकवाद और द्वन्द्ववाद
विचारों को आगे बढ़ाने का काम जारी रखा। यूनानी दार्शनिक एपिक्यू
(३४१-२७० ई पू.) और रोमन दार्शनिक लुक्रेशियस (९९-५५ ई पू.)
युग के नामी भौतिकवादी हुए हैं। उन्होंने डेमोक्रिटस के परमाणुवादी सिद्धा
को और विकसित किया।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल के दार्शनिकों ने वैज्ञा
विश्व दृष्टिकोण के प्रथम बीज बोये थे। वे भौतिकवादी दर्शन के प्रारंभि
रूप—स्वतःस्फूर्त भौतिकवाद—के जनक थे जिसमें पदार्थ के प्रति एक निम्न
द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण निहित था। उनके दार्शनिक मत आम तौर पर असाधा
प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों के अटकल मात्र थे, जो संसार के प्रत्यक्ष ज्ञान
उपज थे। उनके विचार वैज्ञानिक तौर पर पर्याप्त रूप में प्रमाणित नहीं
थे, क्योंकि उस सुदूर युग में विज्ञान स्वयं ही अभी प्रथम डग ही भर रहा थ

अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न (संसार का भौतिक सारतत्व, प्रकृति में गति, आ
उठाकर प्राचीन दार्शनिकों ने दार्शनिक चिन्तन को प्रबल अनुप्रेरणा प्रदान
दार्शनिकों की कई पीढ़ियां अपने पूर्ववर्तियों द्वारा प्रस्तुत इन प्रश्नों को सुलझ
रहीं।

२. १७वीं-१८वीं शताब्दी का अधिभौतिकीय भौतिकवाद

दास व्यवस्था गहरे संकट में फंस गयी और अन्ततः उसका अन्त हुआ।
उसका स्थान भूदासों के श्रम पर आधारित सामन्ती समाज ने ग्रहण कि
इस युग में चर्च प्रभुत्वशील स्थिति में रहा और उसने राज्य, विज्ञान
शिक्षा पर जबर्दस्त प्रभाव डाला। दर्शन को ईश्वर-ज्ञान का चाकर बना दि
गया। प्राचीन काल के विद्वानों के भौतिकवाद को विस्मृत कर दिया गया।

शताब्दियों के लिए एक धार्मिक भावनावादी विश्व दृष्टिकोण का एकछत्र राज हो गया।

पर धर्म की सर्वशक्तिमत्ता के बावजूद दर्शन और प्राकृतिक विज्ञान धीरे-धीरे विकसित होते रहे। खास तौर पर चीन, भारत, अरब देशों और मध्य एशिया में यह क्रिया चलती रही।

१५वीं शताब्दी में अनेक पश्चिमी योरोपीय देशों में एक नई पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली उदित हुई और उसके साथ ही एक नया वर्ग, पूंजीपति वर्ग, अस्तित्व मे आया। जैसे-जैसे पूंजीपति वर्ग बढ़ता और समाज में अपनी स्थिति सुदृढ़ करता गया, वैसे-वैसे भौतिकवाद ने अधिकाधिक जोर पकड़ा। उसको पूंजीपति वर्ग ने चतुरतापूर्वक सामन्तवाद और चर्च के विरुद्ध संघर्ष मे अपना बौद्धिक अस्त्र बनाया।

पोलैंड के वैज्ञानिक निकोलस कोपर्निकस (१४७३-१५४३) ने भावनावाद और धर्म पर प्रबल प्रहार किया। टालेमी की भू-केन्द्रित व्यवस्था के स्थान पर, जो ईश्वर निर्मित पृथ्वी को ब्रह्माण्ड का केन्द्र बताती थी और यह कहती थी कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, कोपर्निकस ने "सूर्य-केन्द्रित" व्यवस्था प्रतिपादित की जिसके अनुसार सूर्य ब्रह्माण्ड का केन्द्र है और पृथ्वी सौरमण्डल का एक ग्रह मात्र है। बाद मे इटली के वैज्ञानिक गिओर्डिनो ब्रूनो, गैलिलियो और अन्यों की कृतियों ने कोपर्निकस के सिद्धान्त में एक मूलभूत संशोधन किया। उन्होंने बताया कि सूर्य केवल सौरमण्डल का केन्द्र है और सौरमण्डल स्वयं अवकाश में घूम रहा है।

१६वीं से १८वीं शताब्दियो के बीच पश्चिमी योरप में पूंजीवादी क्रान्तियों की एक लहर फैली। पूंजीवाद नेदरलैण्ड्स में १६वीं सदी के अन्त मे, ब्रिटेन में १७वीं सदी के अन्त में और फ्रांस में १८वीं सदी के अन्त में हावी हो गया। पूंजीवाद के उदय के साथ अर्थतन्त्र का तेजी से विकास हुआ जिससे और अधिक वैज्ञानिक ज्ञान अत्यावश्यक हो गया।

औद्योगिक उत्पादन संगठित करने के लिए कच्चे तथा अन्य मालों के गुणों का अध्ययन करना आवश्यक था। अधिक सफल कृषि के लिए वनस्पतियों और पशुओं की जानकारी की दरकार थी। व्यापार और जहाजरानी के विकास के लिए जहाज [illegible] स्थिति आदि बातों को बिलकुल सही-सही गणना कर सकने [illegible] पूंजीवादी उत्पादन की आवश्यकताओं ने [illegible] किया। इसके फलस्वरूप यांत्रिकी, [illegible] सटीक विज्ञान विकसित हुए।

[illegible] इसका कारण उत्पादन की तकनीकी [illegible] ने, पर्वतीय धाराओं को नियन्त्रित

सभ्८

करने आदि की आवश्यकता—थी। इसके अलावा यांत्रिक गति यो भी सरलतम चीज है और अनुसंधानकर्ता के लिए सबसे सहजगम्य है। प्राकृतिक वैज्ञानिकों ने अन्य सभी प्रकार की गतियों से पहले इसका अध्ययन किया।

प्राकृतिक विज्ञान उन दिनों पृथक वस्तुओं और व्यापारों का प्रयोगात्मक अध्ययन करना अपना मुख्य कार्य समझता था। विश्लेषणात्मक विधि का व्यापक उपयोग किया गया। वैज्ञानिकों ने अपने दिमाग में प्रकृति को पृथक भागों में बांटा, प्रत्येक भाग का वर्गीकरण किया, उसके गुणों और उसकी गति के नियमों का अध्ययन किया।

विश्लेषणात्मक विधि ने प्राकृतिक विज्ञान के विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा की। लेकिन उस पर एकतरफा ध्यान केन्द्रित होने के कारण कुछ दुष्प्रभाव प्रगट हुए। पृथक वस्तुओं पर प्रयोग करते हुए, उनका वर्गीकरण करते हुए, जटिल को सरलतर अंगों में विभाजित करते हुए यह लाजमी था कि वैज्ञानिक उन्हें उनके आम सन्दर्भ से काट कर अलग कर देते और उनकी आन्तरिक प्रक्रियाओं को नजरअन्दाज करते। अतः प्राकृतिक विज्ञान के विकास ने संसार को समझने की अधिभौतिक विधि के पांव जमाये। प्रकृति विज्ञान से चलकर यह विधि दर्शन में भी पहुंच गयी।

अधिभौतिक विधि सीमित और एकतरफा थी, पर १७वीं और १८वीं शताब्दी में उसकी प्रभुता इतिहास-निर्दिष्ट थी। जैसा कि एंगेल्स ने कहा, प्रक्रियाओं का अध्ययन आरम्भ करने से पहले वस्तुओं का अध्ययन करना आवश्यक था, पहले यह जान लेना जरूरी था कि प्रदत्त वस्तु है क्या, ताकि उसके अन्दर हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सके।

प्रकृति के प्रति अधिभौतिक रुख और यांत्रिकी के प्रथम विकास के कारण ही १७वीं १८वीं शताब्दी में भौतिकवाद का अधिभौतिक एवं यांत्रिकीय स्वरूप निर्मित हुआ।

नये युग के प्रथम भौतिकवादी अंगरेज दार्शनिक फ्रांसिस बेकन (१५६१-१६२६) थे। उन्होंने भाववाद और धर्म का जोरदार विरोध किया और मत व्यक्त किया कि दर्शन का तथा आम तौर पर विज्ञान का कार्य प्रकृति का सज्ञान प्राप्त करना और मनुष्य को उसकी प्रबल शक्तियों पर काबू पाने में मदद देना है। संसार की भौतिकता को मानते हुए बेकन ने कहा कि पदार्थ की गुणात्मक विविधता का कोई ओर-छोर नहीं है। बेकन ने पदार्थ को सभी इन्द्रधनुषी रंगों में रंग कर चमकाया और, जैसा कि मार्क्स ने कहा था, उसे अपने काव्यपूर्ण ऐन्द्रिय दमक के साथ मानव पर मुसकान बिखेरने को कहा।

बेकन ने प्रकृति का अध्ययन करने की अपने जमाने में व्यापक रूप से प्रयुक्त विधि की दार्शनिक व्याख्या की। उन्होंने कहा कि ज्ञान की प्राप्ति के

लिए प्रयोग करना, प्रेक्षण करना, तथ्यों का विश्लेषण करना चाहिए और तब अकेले तथ्यों और वस्तुओं से सामान्यीकरण की ओर, निष्कर्षों की ओर बढ़ना चाहिए। विशेष तथ्यों से सामान्यीकरण की ओर चिन्तन की प्रगति को आगमन (इन्डक्शन) कहते हैं। बेकन प्रायोगिक विज्ञान के ज्ञान की आगमनीय विधि के जनक हैं, और दार्शनिक चिन्तन के विकास में यह उनकी देन है। पर बेकन के लिए आगमन ही एकमात्र विधि थी। उन्होंने उसकी विपरीत विधि, निगमन (डिडक्शन) को, जो आम पूर्वस्थापनाओं के आधार पर विशेष तथ्यों के बारे में निष्कर्ष निकालती है, नजरअन्दाज कर दिया था।

इंग्लैण्ड के दर्शन में बेकन की भौतिकवादी परम्पराओं का थोमस हौब्स (१५८८-१६७६) और जान लाक (१६३२-१७०४) ने निर्वाह किया। हौब्स ने अधिभौतिकीय भौतिकवाद की एक पूरी पद्धति खड़ी की। उन्होंने प्रकृति के अन्दर सभी निकायों (जीव भी अपवाद नहीं थे) की तुलना मशीनों से की। उन्होंने कहा कि हृदय एक स्प्रिंग है, स्नायु तार हैं और जोड़ पहिये हैं, और ये सब शरीर को गति प्रदान करते हैं। हौब्स के दर्शन में राज्य तक को एक विराटकाय दानवीय मशीन के रूप में चित्रित किया गया। हौब्स ने अपनी पद्धति में दैव को कोई स्थान नहीं प्रदान किया। उन्होंने कहा कि दैव का प्रश्न विज्ञान का नहीं, बल्कि विश्वास का विषय है।

लाक ने दर्शन को इन्द्रियार्थवाद (सेंसुअलिज्म) को आधारभूमि प्रदान की। इन्द्रियार्थवाद संज्ञान-प्राप्ति का एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार मनुष्य का सारा ज्ञान बोधेन्द्रिक सूचनाओं से, संवेदनाओं से, उद्भूत होता है।

ब्रिटेन में पूंजीवादी क्रांति की विजय १७वीं सदी के उत्तरार्ध में हुई, पर विजयी पूंजीपतियों ने सामन्ती कुलीनों के साथ, जिनकी स्थिति ब्रिटिश समाज में अब भी मजबूत थी, समझौता कर लिया। यही वजह है कि १८वीं सदी के पूर्वार्ध में भौतिकवाद ने जार्ज बर्कले (१६८४-१७५३) और डेविड ह्यूम (१७११-१७७६) के मनोगत भाववाद के लिए रास्ता छोड़ दिया।

बर्कले भौतिकवाद के शत्रु थे। उन्होंने बाह्य जगत को मानव चेतना की उपज घोषित किया और सभी चीजों को संवेदनाओं का योग माना। वस्तुओं का अस्तित्व इसलिए है कि मनुष्य उन्हें इन्द्रियग्राह्य करता है—यानी उन्हें देखता, सुनता या स्पर्श करता है। अस्तित्व होने का अर्थ है इन्द्रियों द्वारा बोध किया जाना—यही उनके दर्शन की मूल स्थापना है।

बर्कले को पदार्थ की धारणा खास तौर से अरुचिकर थी। उन्होंने कहा कि "नास्तिकता और धर्म-हीनता की सारी भयावन योजनाएं" पदार्थ के सिद्धान्त की नींव पर खड़ी की गयी थीं, भौतिक पदार्थ हर युग के नास्तिकों

का दस्ट मिन रहा है। उन्होंने मांग की कि पदार्थ की धारणा पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए और भौतिकवाद के समर्थकों को कुचल देना चाहिए।

ह्यूम भी बर्कले की तरह भावनावादी थे। वह भी वस्तुगत जगत् को स्वीकार नहीं करते थे और कहते थे कि मनुष्य की संवेदनाएं ही एकमात्र वास्तविकता हैं।

दार्शनिक और गणितज्ञ रेनो देकार्त (१५९६-१६५०) फ्रांस में नवयुग के प्रथम दार्शनिक थे। देकार्त के दर्शन में हमें प्रकृति सम्बंधी उनके सिद्धान्त (भौतिकी) तथा अति-प्रकृति सम्बंधी उनके सिद्धान्त (अधिभौतिकी) में भेद करना चाहिए। भौतिकी में उन्होंने प्रकृति की भौतिकता, उसकी अपरिमितता और शाश्वतता सिद्ध की। उनके मतानुसार प्रकृति गतिमान है, पर यह गति यांत्रिकी के नियमों के अनुसार होती है। देकार्त ने अपने यांत्रिकीवादी सिद्धान्त को शरीर शास्त्र पर भी लागू किया।

देकार्त दर्शन के भौतिक प्रश्न के बारे में अपने दृष्टिबिन्दु में द्वैतवादी थे, क्योंकि उनका मत था कि संसार दो सिद्धान्तों पर आधारित है जिनमें दोनों एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं। एक है पदार्थ, दूसरा चेतना।

देकार्त शुद्ध बुद्धिवाद के प्रणेता थे। शुद्ध बुद्धिवाद ज्ञान के सिद्धान्त की वह प्रवृत्ति है जो बुद्धि को ज्ञान का स्रोत मानती है। उसका दुर्बल बिन्दु यह है कि उसमें बुद्धि इन्द्रियग्राह्य ज्ञान से, संवेदनाओं से विलग रहती है। १७वीं शताब्दी में यह एक प्रगतिशील प्रवृत्ति थी, क्योंकि उसने आस्था पर बुद्धि की विजय की घोषणा की थी, मानव की निस्सीम सृजन शक्ति में विश्वास व्यक्त किया था। अतएव धर्म और भावनावाद के प्राधान्य के उस ज़माने में यह अत्यन्त मूल्यवान था।

हालैंड में, जहां पूंजीवाद ने अन्य योरोपीय देशों की अपेक्षा पहले पांव जमाया था, बेनेडिक्ट स्पिनोज़ा (१६३२-१६७७) के भौतिकवादी दर्शन का १७वीं सदी में उदय हुआ। स्पिनोज़ा ने संसार की भौतिक एकता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। देकार्त के द्वैतवाद को पराभूत करते हुए स्पिनोज़ा ने घोषित किया कि एक ही सामग्री—प्रकृति—संसार की सभी वस्तुओं की बुनियाद है। यह सामग्री—जो मार्क्स से पहले के दर्शन में हर विद्यमान चीज़ का अपरिवर्तनशील आधार थी—काल में शाश्वत और देश में असीम है। चेतना का इस सामग्री से बाहर अस्तित्व नहीं है और आकाश (ईक्स्टेंशन) की भांति यह भी इस चीज़ का गुण है। स्पिनोज़ा ने कहा कि प्रकृति अपने ही नियमों के अनुसार विकसित होती है, वह अपना हेतु आप है और उसे किसी अतिप्राकृतिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है।

लिए प्रयोग करना, प्रेक्षण करना, तथ्यों का विश्लेषण करना चाहिए और तब अकेले तथ्यों और वस्तुओं से सामान्यीकरण की ओर, नियमों की ओर बढ़ना चाहिए। विशेष तथ्यों से सामान्यीकरण की ओर चिन्तन की प्रगति को आगमन (इन्डक्शन) कहते हैं। बेकन प्रायोगिक विज्ञान के ज्ञान की आगमनीय विधि के जनक हैं, और दार्शनिक चिन्तन के विकास में यह उनकी देन है। पर बेकन के लिए आगमन ही एकमात्र विधि थी। उन्होंने उसकी विपरीत विधि, निगमन (डिडक्शन) को, जो आम पूर्वस्थापनाओं के आधार पर विशेष तथ्यों के बारे में निष्कर्ष निकालती है, नजरअन्दाज कर दिया था।

इंग्लैंड के दर्शन में बेकन की भौतिकवादी परम्पराओं का पोषण हॉब्स (१५८८-१६७९) और जान लाक (१६३२-१७०४) ने किया। हॉब्स ने अधिभौतिकीय भौतिकवाद की एक पूरी पद्धति खड़ी की। उन्होंने प्रकृति के अन्दर सभी निकायों (जीव भी अपवाद नहीं थे) की तुलना मशीनों से की। उन्होंने कहा कि हृदय एक स्प्रिंग है, स्नायु तार हैं और जोड़ पहिये हैं, और वे सब शरीर को गति प्रदान करते हैं। हॉब्स के दर्शन में राज्य तक को एक विराटकाय दानवीय मशीन के रूप में चित्रित किया गया। हॉब्स ने अपनी पद्धति में ईश्वर को कोई स्थान नहीं प्रदान किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर का प्रश्न विज्ञान का नहीं, बल्कि विश्वास का विषय है।

लाक ने दर्शन को इन्द्रियार्थवाद (सेंसुअलिज़्म) की आधारभूमि प्रदान की। इन्द्रियार्थवाद ज्ञान-प्राप्ति का एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार मनुष्य का सारा ज्ञान बोधेन्द्रिक अनुभवों से, संवेदनाओं से, उत्पन्न होता है।

फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने संसार की सृष्टि, आत्मा का अमरत्व आदि जैसे धर्म के कठमुल्ला सिद्धान्तों की भी धज्जियां उड़ायी। धर्म को उन्होंने जनता की आत्मिक दासता का अस्त्र, अत्याचार और अज्ञान का गढ़ माना। उन्होंने बताया कि धर्म का स्रोत जनता की अज्ञानता और प्रकृति की अज्ञात शक्तियों का उसका भय है। शिक्षा और विज्ञान इस भय को मिटाने के साधन हैं। फ्रांसीसी भौतिकवादियों द्वारा प्रस्तुत धर्म की समीक्षा की लेनिन ने सराहना की।

फ्रांसीसी भौतिकवादियों के मत में द्वन्द्वात्मकता के तत्व भी थे। उदाहरणार्थ, दिदेरो ने जीवों का विकास, वनस्पतियों और पशुओं पर बाह्य वातावरण का प्रभाव आदि जैसी धारणाएं अभिव्यक्त कीं। पर कुल मिलाकर उनके विचार यांत्रिकीय, अधिभौतिकी भौतिकवाद की परिधि से बाहर नहीं निकले।

१८वीं सदी में रूस में भौतिकवाद

१८वीं सदी में रूस में एक वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण विकसित हुआ था। मिखाइल लोमोनोसोव (१७११-१७६५) और अलेक्सान्द्र रादिश्चेव (१७४९-१८०२) इस काल के सबसे अधिक विख्यात भौतिकवादी दार्शनिक थे।

लोमोनोसोव सभी विषयों में दखल रखने वाले प्रकाण्ड विद्वान और वैज्ञानिक थे। उन्होंने भौतिकी, रसायन, भूगर्भ विद्या तथा अन्य विज्ञानों में हुई असामान्य खोजों पर अपना दार्शनिक मत आधारित किया। उन्होंने पदार्थ-संधारण नियम की खोज की जिसने विश्व की भौतिक एकता की परिपुष्टि की। पदार्थ की गति को उन्होंने पृथ्वी की पपड़ी की भूगर्भीय बनावट के परिवर्तनों के सम्बंध में स्वसंग्रहीत सूचनाओं का दृष्टान्त देकर बताया। लोमोनोसोव एग्नास्टिसिज्म के विरुद्ध और अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के हिमायती थे। रूस में इस भौतिकवादी परम्परा को रादिश्चेव ने आगे बढ़ाया।

१७वीं-१८वीं सदियों में दर्शन के विकास ने एक नये प्रकार के भौतिकवाद को जन्म दिया जिसे हम अधिभौतिकीय भौतिकवाद कहेंगे। यह पूंजीपति वर्ग का विश्व दृष्टिकोण था जो उस समय एक प्रगतिशील वर्ग था। अतः उसने सामन्तवाद की प्रतिगामी विचारधारा—भाववाद और धर्म पर गहरा आघात किया। उसने प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियों का सहारा लिया जिससे उसे वैज्ञानिक आधार मिला। १७वीं-१८वीं सदियों का अधिभौतिकीय भौतिकवाद वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण के विकास में एक बड़ा पग था।

इस भौतिकवाद के सुनिश्चित महत्व का उल्लेख करने के बाद मार्क्स और एंगेल्स ने उसकी गम्भीर असंगतियों और सीमाओं का पर्दाफाश किया। वे थीं : १. उसका यांत्रिकीय स्वरूप, अर्थात प्रकृति की रासायनिक, कार्बनिक

स्पिनोज़ा १७वीं सदी के विख्यात नास्तिकतावादी हैं। उन्होंने धर्म की केवल आलोचना ही नही की, बल्कि वैज्ञानिक तौर पर उसकी भ्रान्तता सिद्ध करने तथा उसकी जड़ों और प्रतिगामी भूमिका को बेनकाब करने की भी कोशिश की। उनकी इस प्रस्थापना ने कि प्रकृति अपना हेतु आप है, प्रकृति से दैव की धारणा को निकाल बाहर किया और कार्यतः नास्तिकतावाद का दार्शनिक औचित्य सिद्ध कर दिया।

फ्रांस मे १८वीं सदी के अन्त में क्रांति की विजय हुई। यह योरप की सभी पूंजीवादी क्रांतियों मे सबसे उग्र क्रांति थी। उसने सामन्तवाद को नष्ट कर दिया और देश में पूंजी का एकछत्र शासन स्थापित किया। क्रांति से बहुत दिन पहले से ही क्रांतिकारी पूंजीपतियों का सामन्तवाद और उसके धार्मिक-भावनावादी विश्व दृष्टिकोण के साथ बौद्धिक संघर्ष चल रहा था। फ्रांस का १८वीं सदी का भौतिकवाद घोर राजनीतिक और बौद्धिक संघर्ष के बीच पनपा। उसके मुख्य प्रतिपादक जूलिएन लामेत्री (१७०९-१७५१), देनिस दिदेरो (१७१३-१७८४), क्लाद आद्रिएन हेल्वीशियस (१७१५-१७७१) और पाल हेनरी होलबाख (१७२३-१७८९) थे।

१८वीं सदी का फ्रांसीसी भौतिकवाद

फ्रांसीसी भौतिकवादी सामन्ती प्रतिक्रियावाद, धर्म और भावनावाद के कट्टर शत्रु थे। जीर्ण-शीर्ण सामन्ती समाज के विरुद्ध उन्होंने "शाश्वत और प्राकृतिक बुद्धि" के राज्य—पूंजीवादी समाज को अपना समर्थन प्रदान किया जो उनके मतानुसार आदर्श सामाजिक व्यवस्था थी।

दर्शन के इतिहास मे फ्रांसीसी भौतिकवादियों की बड़ी देन प्रकृति की उनकी पद्धति थी जो पदार्थ और गति की एकता के सिद्धान्त पर आधारित है। होलबाख ने लिखा—"विद्यमान हर वस्तु का यह विराट योग, जिसे हम ब्रह्माण्ड कहते हैं, हमें सर्वत्र केवल पदार्थ और गति प्रदान करता है।" फ्रांसीसी भौतिकवादियों के मतानुसार वे सब वस्तुएं पदार्थ हैं जो मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती हैं; और गति पदार्थ की हरकत है जिसे पदार्थ स्वयं उत्पन्न करता है, कोई खुदा नहीं। पदार्थ की गति उन प्राकृतिक नियमों के आधार पर चला करती है जिन्हें मनुष्य न तो खत्म कर सकता है, न बदल ही सकता है। फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने इन नियमों को अधिभौतिक रूप में समझा, उन्हें सरल और अपरिवर्तनीय माना।

फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने ज्ञान के सिद्धान्त को उच्च स्तर पर पहुंचा दिया। ज्ञान को उन्होंने मानव-मस्तिष्क में वस्तुगत रूप से विद्यमान वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्ब माना। वस्तुएं मनुष्य की संवेदक-इन्द्रियों पर आघात करते हुए संवेदनाएं उत्पन्न करती हैं जिनसे ज्ञान का उदय होता है।

फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने संसार की सृष्टि, आत्मा का अमरत्व आदि जैसे चर्च के कठमुल्ला सिद्धान्तों की भी धज्जियां उड़ायी। धर्म को उन्होंने जनता की आत्मिक दासता का अस्त्र, अत्याचार और अज्ञान का गढ़ माना। उन्होंने बताया कि *धर्म का स्रोत जनता की अज्ञानता और प्रकृति की अज्ञात शक्तियों का उसका भय है।* शिक्षा और विज्ञान इस भय को मिटाने के साधन हैं। फ्रांसीसी भौतिकवादियों द्वारा प्रस्तुत धर्म की समीक्षा की लेनिन ने सराहना की।

फ्रांसीसी भौतिकवादियों के मत में द्वन्द्वात्मकता के तत्व भी थे। उदाहरणार्थ, दिदेरो ने जीवों का विकास, वनस्पतियों और पशुओं पर बाह्य वातावरण का प्रभाव आदि जैसी धारणाएं अभिव्यक्त कीं। पर कुल मिलाकर उनके विचार यान्त्रिकीय, अधिभौतिकी भौतिकवाद की परिधि से बाहर नहीं निकले।

१८वीं सदी में रूस में भौतिकवाद

१८वीं सदी में रूस में एक वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण विकसित हुआ था। मिखाइल लोमोनोसोव (१७११-१७६५) और अलेक्सान्द्र रादिश्चेव (१७४९-१८०२) इस काल के सबसे अधिक विख्यात भौतिकवादी दार्शनिक थे।

लोमोनोसोव सभी विषयों में दखल रखने वाले प्रकाण्ड विद्वान और वैज्ञानिक थे। उन्होंने भौतिकी, रसायन, भूगर्भ विद्या तथा अन्य विज्ञानों में हुई असामान्य खोजों पर अपना दार्शनिक मत आधारित किया। उन्होंने पदार्थ-संधारण नियम की खोज की जिससे विश्व की भौतिक एकता की परिपुष्टि की। *पदार्थ की गति को उन्होंने पृथ्वी की पपड़ी की भूगर्भीय बनावट* के परिवर्तनों के सम्बन्ध में स्वसंग्रहीत सूचनाओं का दृष्टान्त देकर बताया। लोमोनोसोव एग्नास्टिसिज्म के विरुद्ध और अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के हिमायती थे। रूस में इस भौतिकवादी परम्परा को रादिश्चेव ने आगे बढ़ाया।

१७वीं-१८वीं सदियों में दर्शन के विकास ने एक नये प्रकार के भौतिकवाद को जन्म दिया जिसे हम अधिभौतिकीय भौतिकवाद कहेंगे। यह पूंजीपति वर्ग का विश्व दृष्टिकोण था जो उस समय एक प्रगतिशील वर्ग था। अतः उसने सामन्तवाद की प्रतिगामी विचारधारा—भाववाद और धर्म पर गहरा आघात किया। उसने प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियों का सहारा लिया जिससे उसे वैज्ञानिक आधार मिला। १७वीं-१८वीं सदियों का अधिभौतिकीय भौतिकवाद वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण के विकास में एक बड़ा पग था।

इस भौतिकवाद के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख करने के बाद मार्क्स और एंगेल्स ने उसकी गम्भीर कमजोरियों और सीमाओं का पर्दाफाश किया। ये थीं: १. उसका यान्त्रिकीय स्वरूप, अर्थात प्रकृति की सम्पूर्णता, सार्विक

तथा अन्य प्रक्रियाओं की यांत्रिकी के नियमों द्वारा व्याख्या करने की प्रवृत्ति; २. उसका अधिभौतिकीय स्वरूप, अर्थात् प्रकृति में विकास को न मानना; ३. सामाजिक जीवन के व्यापारों की उसकी भावनावादी व्याख्या। १७वीं-१८वीं सदियों के भौतिकवादियों ने समाज के विकास के भौतिक कारणों को नहीं देखा और उन्होंने इतिहास को भावनाओं का क्रमिक साकारीकरण समझा।

३. १८वीं और १९वीं सदियों के जर्मन दर्शन में भौतिकवाद और भावनावाद का संघर्ष

जर्मनी में १८वीं सदी में और १९वीं सदी के पूर्वार्ध में सामन्ती सम्बंधों का बोलबाला था। जर्मनी अनेक सामन्ती राज्यों में विभक्त था। उसका आर्थिक और राजनीतिक पिछड़ापन इसी चीज के कारण था। किन्तु पूंजीवाद वहां भी परिपक्व हो रहा था, पूंजीपति वर्ग धीरे-धीरे किन्तु स्थिर गति से विकसित हो रहा था। फ्रांसीसी पूंजीपति जहां उग्रवादी था, वहां जर्मन पूंजीपति वर्ग बुजदिल और निरुत्साही था। अपने आर्थिक और राजनीतिक पिछड़ेपन के कारण उसमें राजनीतिक सत्ता जीतने की क्षमता न थी और वह अधपके सुधारों से ही सन्तुष्ट हो जाता था। वह विद्यमान स्थिति को अपने हितों के अनुरूप थोड़ा-बहुत ढालने और उसमें हल्का-फुल्का सुधार लाने की कोशिश करता था। उसे अपनी दुर्बलता का बोध था और वह क्रान्ति से घबड़ाता था, फलतः वह सामन्तवाद और राजशाही से समझौते के लिए विवश था।

जर्मन पूंजीपति वर्ग का विरोधाभासयुक्त, द्वैध चरित्र १८वीं-१९वीं सदी के जर्मन दर्शन में प्रतिबिम्बित हुआ। यह आन्तरिक विरोधाभास उस काल के सर्वप्रमुख जर्मन दार्शनिकों—कांट, हेगेल और फायरबाख—की कृतियों में बिलकुल स्पष्ट है।

इमानुएल कांट (१७२४-१८०४) १८वीं सदी के प्रमुख जर्मन दार्शनिक थे। युवावस्था में उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान का गहरा अध्ययन किया था।

कांट का दर्शन

विश्व की उत्पत्ति के सम्बंध में कांट-लाप्लास की सुविख्यात परिकल्पना ने, जिसके अनुसार पृथ्वी तथा सौरमण्डल के अन्य ग्रहों की उत्पत्ति प्राकृतिक रूप से एक नीहारिका से हुई, दैविक शक्ति द्वारा सृजन होने की धार्मिक धारणा पर गंभीर प्रहार किया। यह सही है कि कांट ने ईश्वर का अस्तित्व मान कर अपनी परिकल्पना में धर्म को बहुत बड़ी छूट दी। पर उन्होंने प्राकृतिक शक्तियों को जब एक बार गतिमान कर दिया, तो ईश्वर का धंधा समाप्त हो गया।

बाद में कांट ने अपनी एक पूरी दार्शनिक पद्धति प्रस्तुत की जिसमें विरोधाभास और द्वैतता उभर कर आये। इस पद्धति ने विविध, प्रतिद्वन्द्वात्मक दार्शनिक

प्रवृत्तियों को संयुक्त किया और भौतिकवाद एवं भावनावाद में मेल कराने, दोनों में सामजस्य बैठाने की कोशिश की। एक ओर तो कांट भौतिकवादी की भाषा में बोले, उन्होंने कहा कि हमारे बाहर वस्तुओं का अस्तित्व है जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर क्रियाशील होकर संवेदनाएं उत्पन्न करती हैं। दूसरी ओर, कांट ने यह मत भी व्यक्त किया कि ये वस्तुएं (इन्हें उन्होंने "स्वयं-सत्व" की संज्ञा दी) अज्ञेय हैं, वे मानव की शुद्ध बुद्धि की पहुंच के बाहर हैं। उनका यह मत एक भावनावादी का मत था, एग्नास्टिक का मत था। कांट के कथनानुसार मस्तिष्क संज्ञान नहीं प्राप्त करता वरन संज्ञान के पात्र को निर्मित करता है।

कांट ने तार्किक प्रवर्गों की—अर्थात् चिन्तन की सामान्यतम धारणाओं, जैसे हेतु और प्रभाव, आवश्यकता और संयोग, संभावना और वास्तविकता की—अपनी एक पद्धति विकसित की। पर उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि ये धारणाएं वास्तविकता का प्रतिबिम्ब नहीं, बल्कि हमारी बुद्धि के प्रवर्ग मात्र हैं। कांट ने मान लिया कि इन धारणाओं के जरिए मनुष्य प्रकृति को निश्चित व्यवस्था तथा नियमितता प्रदान करता है।

कांट के दर्शन के द्वन्द्वात्मक तत्व उसका सुदृढ़ बिन्दु हैं। उन्होंने अन्तर्विरोधों के सम्बन्ध मे मूल्यवान विचार प्रस्तुत किये, गोकि उनके अनुसार अन्तर्विरोध भौतिक जगत में अन्तर्निहित न थे, बल्कि उनका अस्तित्व केवल मानव की बुद्धि में था। इसके अतिरिक्त, ये अन्तर्विरोध असाध्य हैं। उदाहरणार्थ, बुद्धि इस प्रश्न का समाधान नहीं प्रस्तुत कर सकती कि संसार परिमित है अथवा अपरिमित। कांट मान लेते हैं कि बुद्धि के ये असमाधेय अन्तर्विरोध वस्तुगत जगत को जान सकने की मनुष्य की असमर्थता के प्रमाण हैं। इस मामले में कांट वास्तविकता के तथ्यगत डायलेक्टिक्स को समझ नहीं सके। उनके दृष्टि-बिन्दु से तो बुद्धि यह निर्णय करने के भी अयोग्य है कि ईश्वर है या नहीं, आत्मा अमर है या नहीं। ये प्रश्न आस्था के क्षेत्र की चीजें हैं। अतः कांट विज्ञान को संकुचित करने और धर्म तथा आस्था को कायम रखने की स्थिति पर पहुंचे। और इस बात को उन्होंने छिपाया भी नहीं। उन्होंने कहा—"अतः मुझे ज्ञान की सीमा बांधनी होगी ताकि आस्था को स्थान प्राप्त हो।" कांट के दर्शन के इस पहलू की आलोचना करते हुए लेनिन ने कहा कि कांट का यह सूत्र कि "मनुष्य प्रकृति को नियम प्रदान करता है, न कि प्रकृति मनुष्य को नियम प्रदान करती है, प्रति-बुद्धिवाद (फिडेइज्म) का, पादरीवाद का सूत्र है।"

अन्तर्विरोधयुक्त एवं सीमित होते हुए भी कांट की पद्धति दार्शनिक चिन्तन की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। विश्व की उत्पत्ति के बारे में कांट के सिद्धान्त ने,

मानव की बुद्धि की संज्ञान-क्षमताओं का अन्वेषण करने की उनकी चेष्टा ने, तार्किक प्रवर्गों की उनकी पद्धति ने और खास तौर से उनके द्वन्द्वात्मक विचारों ने दर्शन के आगे के विकास पर ठोस प्रभाव डाला। साथ ही कांट का भाववाद और अज्ञेयतावाद वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण का विरोध करने के लिए प्रतिगामी दार्शनिकों द्वारा आज तक प्रयुक्त किये जाते हैं।

ग्योर्ग हेगेल (१७७०-१८३१) १९वीं सदी के प्रतिष्ठित जर्मन दार्शनिकों में सबसे असाधारण हैं। उन्होंने मनोगत भावनावाद तथा अज्ञेयतावाद के लिए कांट की आलोचना की, यद्यपि उनकी आलोचना का आधारबिन्दु वस्तुवादी भावनावाद था। हेगेल ने कहा कि संसार मनुष्य से बाहर स्थित किसी वस्तुगत चेतना द्वारा सृजन का फल है। इस वस्तुगत चेतना को उन्होंने "परम विचार," "विश्व आत्मा" की संज्ञा दी। हेगेल ने लिखा—"हर वास्तविक चीज जहां तक कि वह सत्य है, भावना है, और उसकी सत्यता केवल भावना से और भावना के प्रताप से ही है।"

हेगेल का भावनावादी डायलैक्टिक्स

हेगेल का तर्क है कि भावना पहले अपने आपमें विकसित होती है। उसके बाद अपने विकास की एक खास मंजिल में, वह प्रकृति में "साकार" होती है और ऐसा करते हुए वस्तुओं तथा व्यापारों को सारी बहुलता को प्राणवान करती है। इससे कुछ और बाद की मंजिल में पहुंच कर भावना मानव समाज को जन्म देती है जिसका इतिहास इस परम भावना की संज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया है। हेगेल ने मान लिया कि परम भावना की ज्ञान-प्रक्रिया उनकी दार्शनिक पद्धति में, जिसे वह दार्शनिक विकास का चरमबिन्दु समझते थे, परिपूर्ण हुई है।

हेगेल ने डायलैक्टिक्स के बुनियादी नियमों को निरूपित किया जो भावनाओं के, चिन्तन के विकास को अधिशासित करते हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि विकास बन्द परिवृत्त के अन्दर अग्रसर नहीं होता, बल्कि वह प्रगतिशील रूप में निम्नतर रूपों से उच्चतर रूपों की दिशा में आगे बढ़ता है और इस प्रक्रिया में परिमाणात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तनों में सन्तरित हो जाते हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि आन्तरिक अन्तर्विरोध विकास के स्रोत हैं। हेगेल ने डायलैक्टिक्स की मूल धारणाओं (प्रवर्गों) को भी निरूपित किया और सिद्ध किया कि वे एक-दूसरे से सम्बंधित और परस्पर परिवर्त्य हैं।

हेगेल का डायलैक्टिक्स दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा आगे कदम था। लेकिन उसमें कुछ गंभीर दोष थे और उसके सबसे बड़े दोषों का स्रोत उनके दर्शन का भावनावादी स्वरूप था। हेगेल के मतानुसार डायलैक्टिक्स के नियम भौतिक जगत की वस्तुओं और व्यापारों के विकास के लिए नहीं,

बल्कि केवल विचार के विकास के लिए, जो उनका रूप धारण कर लेता है, आधार का काम करते हैं।

विकास की प्रक्रिया को भी हेगेल ने सीमित अर्थ में समझा। प्रकृति का विकास काल में नहीं होता, बल्कि उसका केवल देश में विस्तार होता है। समाज का विकास उन्हें केवल अतीत में दिखाई दिया और अपने समय के प्रशाई राजतन्त्र को उन्होंने प्रगति का चरम बिन्दु माना। हेगेल ने यह मत भी व्यक्त किया कि समाज में अन्तर्विरोधों का समाधान संघर्ष द्वारा नहीं होता, बल्कि उनमें मेल हो जाया करता है। तत्कालीन प्रशाई राज्य उनकी दृष्टि में वर्ग हितों के पूर्ण सामञ्जस्य का साकार रूप था। इस तरह उन्होंने अपने दर्शन से अत्यन्त ही प्रतिगामी निष्कर्ष निकाले। उन्होंने युद्ध को उचित ठहराया और राष्ट्रोन्मादवादी भावनाओं की हिमायत की जिसका बाद में साम्राज्यवाद के प्रतिगामी विचारवेत्ताओं ने उपयोग किया।

मार्क्स और एंगेल्स ने हेगेल की भाववादी पद्धति के—अर्थात् उनके इस सिद्धान्त के कि प्रकृति तथा समाज "परम भावना" के अस्तित्व के रूप हैं—तथा उनकी द्वन्द्वात्मक विधि के गहरे अन्तर्विरोधों का पर्दाफाश किया। उनके भाववादी दर्शन और प्रतिगामी राजनीतिक मतों के लिए उन्होंने हेगेल की निन्दा की। साथ ही उन्होंने हेगेलवादी द्वन्द्ववाद को अत्यन्त मूल्यवान बताया। मार्क्स और एंगेल्स ने द्वन्द्ववादरूपी "दार्शनिक गूदा" हेगेल के दर्शन से लिया और उसका सारा भाववादी छिलका हटाकर उसका इस्तेमाल द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद का सृजन करने के लिए किया।

फायरबाख का भौतिकवाद

लुडविग फायरबाख (१८१४-१८७८) प्रतिष्ठित जर्मन दर्शन के अन्तिम नामी प्रतिनिधि थे जिन्होंने १९वीं सदी के आरम्भ में जर्मन में छाये हुए भाववाद के विरुद्ध अथक संघर्ष किया। फायरबाख ने भौतिकवाद को उस स्थान पर पुनः प्रतिष्ठित किया जिसका कि वह अधिकारी था और यह दर्शन को उनकी बहुत बड़ी देन थी।

भाववाद और धर्म को ठुकराते हुए फायरबाख ने यह मत प्रतिपादित किया कि दर्शन को अपने को विशुद्ध चिन्तन की चारदीवारी के अन्दर बन्द नहीं रखना चाहिए, उसका ध्येय तो प्रकृति और मानव का अध्ययन करना है। प्रकृति का अस्तित्व मनुष्य से बाहर है। वह "...प्रथम, आद्य वस्तुगत यथार्थ है।" मानव प्रकृति का अंग है, उसके विलम्बित विकास की उपज है और चेतना प्रकृति की पूर्ववर्ती नहीं होती, बल्कि उसे केवल प्रतिबिम्बित करती है। पदार्थ, प्रकृति ज्ञेय है, मानव उपलब्धि के अन्दर है और उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभूति होती है।

फायरबाख का दर्शन १७वीं और १८वीं शताब्दियों के भौतिकवाद की तरह यांत्रिकतापूर्ण नहीं है। प्रकृति में उन्होंने केवल यांत्रिकीय प्रक्रियाएं ही नहीं देखी, अपितु अनेक अन्य प्रक्रियाओं के दर्शन किये। उदाहरणार्थ, जीव उत्पत्ति की व्याख्या करने की कोशिश करते हुए उन्होंने मत व्यक्त किया कि रासायनिक रूपान्तरण इस प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

फायरबाख ने ज्ञान के भौतिकवादी सिद्धान्त को भी उच्चतर स्तर तक उठाया। इसमें उन्होंने इन्द्रियार्थवाद की परम्पराओं को अविचल होकर जारी रखा। उनका ख्याल था कि मनुष्य को प्रकृति के प्रथम अनुभव अपने ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होते हैं। यह इन्द्रिय-अनुभूति मस्तिष्क द्वारा सामान्यीकृत होती है जो धारणाओं का निर्माण और वस्तुओं का नामकरण करता है।

फायरबाख नास्तिक थे। फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने धर्म को अज्ञानता और भय की उपज बताया था। फायरबाख ने अपने को इस मत तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि धर्म की जड़ों को स्वयं मानव-जीवन के अन्दर ढूंढ़ने की कोशिश की और उन्हें मानव-कल्पना की आभ्यन्तरिक शक्ति में देखा। पर वह धर्म की वर्ग-जड़ों को अनावृत न कर सके। धर्म को ठुकराते हुए उन्होंने यह मांग की कि धर्म के स्थान पर ज्ञान को और बाइबिल के स्थान पर बुद्धि को प्रतिष्ठित करना चाहिए।

यद्यपि फायरबाख ने प्रकृति को उसकी गति में, उसके विकास, में, समझने की कोशिश की पर उनका दर्शन कुल मिलाकर अधिभौतिकी भौतिकवाद की सीमाओं से बाहर नहीं निकल सका। उन्होंने हेगेल के भावनावादी डायलेक्टिक्स को छोड़ दिया और वस्तुगत जगत में अन्तर्विरोधों को नहीं पहचाना यह सोचते रहे कि ये अन्तर्विरोध चिन्तन में ही संभव हैं। मार्क्स के पहले के अन्य दार्शनिकों की भांति फायरबाख ने भी समाज के विकास को भावनावादियों की भांति ही समझा। उन्होंने नैतिकता को, लोगों के मध्य नैतिक सम्बंधों को इतिहास की मुख्य प्रेरक शक्ति समझा। उन्होंने यह नहीं महसूस किया कि वे स्वयं आर्थिक और उत्पादन सम्बन्धों से उद्भूत होते हैं।

फायरबाख का दर्शन सच्चे वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण के विकास के लिए बड़े ही महत्व का था। उसमें निहित भौतिकवादी भावनाएं ही वह "मुख्य गूदा" थी जिसका मार्क्स और एंगेल्स ने द्वन्द्ववादी और ऐतिहासिक भौतिकवाद का सृजन करने के लिए इस्तेमाल किया।

अतः १८वीं-१९वीं सादियों का प्रतिष्ठित जर्मन दर्शन वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण का सृजन करने में एक और बड़ा कदम था। भौतिकवाद फायरबाख की कृतियों में और आगे विकसित हुआ। उधर हेगेल ने तार्किक प्रवर्गों के योग के रूप में भावनावादी डायलेक्टिक्स की एक समन्वित पद्धति निरूपित की। दर्शन

में हेगेल की महान देन यह है कि उन्होंने भावनाओं की द्वन्द्वात्मकता के पीछे वस्तुओं की द्वन्द्वात्मकता, अर्थात् भौतिक जगत में वस्तुओं और व्यापारों के विकास के स्वरूप की पेशगोई की।

प्रतिष्ठित जर्मन दर्शन, जिसका प्रतिनिधित्व हेगेल और फायरबाख करते हैं, वह सीधा सैद्धांतिक स्रोत था जिससे मार्क्सवादी दर्शन ने आकार ग्रहण किया।

४. १९वीं सदी के रूसी भौतिकवादी दर्शन की देन

१९वीं सदी मे रूस मे सामन्ती अर्थव्यवस्था के विघटन तथा उसके अन्दर नयी, पूंजीवादी व्यवस्था के परिपक्व होने की तीव्र प्रक्रिया चालू थी। जमींदारों के विरुद्ध किसानो का कटु वर्ग संघर्ष इस प्रक्रिया का लक्षण था। करोड़ों उत्पीड़ित किसानों तथा अपनी आजादी के लिए लड़ रहे सभी मेहनतकशों के हितो को क्रांतिकारी लोकतन्त्रवादी विस्सारिओन बेलिन्स्की (१८११-१८४८), अलेक्सान्द्र हर्जेन (१८१२-१८७०), निकोलाई चेर्नीशेव्स्की (१८२८-१८८९), निकोलाई दोब्रोल्यूबोव (१८३६-१८६१) अभिव्यक्त कर रहे थे।

क्रांतिकारी लोकतन्त्रवादियों ने एक भौतिकवादी दर्शन प्रस्तुत किया और उसका प्रयोग प्रतिगामी धार्मिक भाववादी विश्व दृष्टिकोण के विरुद्ध संघर्ष में तथा रूसी जनता के क्रान्तिकारी मुक्ति आन्दोलन के लिए सैद्धान्तिक आधार तैयार करने के हेतु करने की कोशिश की। वे एकतन्त्री शासन एवं भूदास व्यवस्था के कट्टर शत्रु थे। जनता की सृजनात्मक शक्ति में उनकी दृढ़ आस्था थी और उन्होंने कहा कि समाज का क्रान्तिकारी ढंग से निर्माण होना चाहिए।

रूसी भौतिकवादी दार्शनिक जनता के साथ, जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे। उन्हें समकालीन प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियों का भी ज्ञान था। इसीसे वे अनेक प्रश्नों पर मार्क्सवाद से पहले के पश्चिमी दर्शन की सीमाओं को पार करने मे समर्थ हुए और उन्होंने वैज्ञानिक दार्शनिक चिन्तन को विकसित करने में उल्लेखनीय प्रगति की। उन्होने हेगेल के डायलेक्टिक्स की भौतिकवादी ढंग से व्याख्या की और मेहनतकशो के मुक्ति संघर्ष को उचित ठहराने के लिए उसका इस्तेमाल किया। उदाहरणार्थ, हर्जेन ने कहा कि इसमे "क्रान्ति का बीजगणित निहित है।" चेर्नीशेव्स्की और हर्जेन ने सामाजिक विकास मे भौतिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका के सम्बन्ध मे अनेक बड़ी दूरदर्शितापूर्ण कल्पनाएं प्रस्तुत कीं। इसी सब के आधार पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों ने रूसी क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादियों के दर्शन को बहुत मूल्यवान बताया। लेनिन ने हर्जेन के दार्शनिक विचारों का सार पेश करते हुए यह कहा था कि वह द्वन्द्वात्मक

भौतिकवाद की देहरी तक पहुंच गये थे और ऐतिहासिक भौतिकवाद के पास पहुंच कर एक गये थे। ये प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादी रूस में मार्क्सवाद के प्रत्यक्ष पूर्ववर्ती थे।

रूसी भौतिकवादी दर्शन के जनक दर्शन के वर्ग चरित्र की सही समझदारी के निकट पहुंच गये थे। चेर्नीशेव्स्की ने लिखा था कि प्रत्येक दार्शनिक समाज में प्रभुत्व के लिए लड़ रही किसी न किसी राजनीतिक पार्टी का प्रतिनिधि रहा है।

दर्शन की विषयवस्तु की समझदारी के मामले में चेर्नीशेव्स्की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के निकट तक पहुंच गये थे। उनके मतानुसार दर्शन विज्ञान की सामान्यतम समस्याओं को और सर्वोपरि "पदार्थ के साथ आत्मा के सम्बंध" को निपटाता है। इसके अलावा, चेर्नीशेव्स्की ने इस बात पर जोर दिया कि इस प्रश्न के दो ही समाधान संभव हैं, एक भौतिकवादी और दूसरा भावनावादी और इन दोनो में कोई समझौता मुमकिन नहीं है।

रूसी क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादियों ने दर्शन के मौलिक प्रश्न को निरन्तर भौतिकवादी विधि से सुलझाने का प्रयास किया। उन्हें इस चीज में कोई सन्देह न था कि बाह्य जगत् की वस्तुओं तथा व्यापारों का वस्तुगत अस्तित्व है, वे मानव की चेतना से स्वतंत्र हैं, और पदार्थ के विविध योग प्रस्तुत करते हैं। विश्व की सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ समानता है, एकरूपता है। "भौतिक वस्तुओं की इस समान चीज को पदार्थ कहते हैं"—चेर्नीशेव्स्की ने लिखा था। वे लोग चेतना को गौण, पदार्थ द्वारा व्युत्पादित मानते थे। हर्जेन ने बताया था कि "चेतना प्रकृति से विजातीय वस्तु नहीं, अपितु उसके विकास का उच्चतम अंश है।..."

रूसी क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादी विज्ञान के प्रबल समर्थक थे और उन्होंने मानव मस्तिष्क की निस्सीम क्षमता की चर्चा की थी। उन्हें पूरा यकीन था कि मनुष्य सत्य का संज्ञान प्राप्त कर सकता है और उसे उसका संज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान को वे मानव चेतना में परिवेश की वास्तविकता का प्रतिबिम्ब मानते थे। दोब्रोल्यूबोव ने लिखा था: "मनुष्य धारणाओं को अपने अन्दर से नहीं विकसित किया करता, बल्कि उन्हें बाह्य जगत् से प्राप्त करता है।" चेर्नीशेव्स्की ने बताया था कि प्राप्त ज्ञान का सही होना अथवा उसकी सत्यता "जीवन के व्यावहारिक अनुभव से परखी जाती है।" चेर्नीशेव्स्की ने सत्य के ठोस स्वरूप की और ठोस ऐतिहासिक अवस्थाओं पर उसकी निर्भरता की बात कही थी।

रूसी क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादियों का भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक भावनाओं से ओतप्रोत था। वास्तविकता के सार्वभौम विकास की भावना उनकी सभी

इनियों में व्याप्त है। हर्जेन ने लिखा था कि प्रकृति एक "प्रक्रिया...धारा, प्रवाह, गति..." है। इसके अतिरिक्त गति को वे पुनरावृत्ति मात्र नहीं समझते थे, अपितु उसे एक प्रगतिशील विकास, सरल से संश्लिष्ट में, निम्नतर से उच्चतर में सन्तरण मानते थे। बेलिस्की ने कहा था—"जीवित होने का अर्थ है विकसित होना, आगे बढ़ना।" क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादी विकास के स्रोत को विश्व की वस्तुओं और व्यापारों के अन्दर विरोधी तत्वों के संघर्ष में देखते थे। यह संघर्ष द्वन्द्वात्मक निषेध की ओर, पुरातन नूतन द्वारा विस्थापन की ओर ले जाता है। बेलिस्की ने लिखा था कि नूतन पुरातन के निषेध से ही उदित होता है। उन्होंने अन्तर्विरोधों के अपने सिद्धान्त का प्रयोग सामाजिक जीवन के विश्लेषण में करने की तथा वर्ग संघर्ष में उसका उपयोग करने की कोशिश की। हेगेल के विपरीत, जो वर्ग-विरोधों के समन्वय की संभावना स्वीकार करते थे, रूसी क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादियों ने इस बात पर जोर दिया कि अन्तर्विरोध समन्वित नहीं हुआ करते उनका तो कटु संघर्ष द्वारा ही उन्मूलन होता है।

भौतिकवाद और डायलेक्टिक्स के क्षेत्र में अपनी अनेक असामान्य उपलब्धियों के बावजूद, रूसी क्रान्तिकारी लोकतन्त्रवादी दोनों को समन्वित कर एक विश्व दृष्टिकोण नहीं प्रस्तुत कर सके। वे उनका सामाजिक जीवन के व्यापारों में सतत प्रयोग नहीं कर सके; वे भौतिकवादी डायलेक्टिक्स को प्रकृति, समाज और चिन्तन को अधिशासित करने वाले सामान्यतम नियमों का विज्ञान नहीं बना सके।

समाज सम्बन्धी अपने विचारों में वे भावनावादी बने रहे। भौतिक उत्पादन को उन्होंने भारी महत्व तो प्रदान किया, पर समाज के जीवन में वे उसके निर्णायक महत्व को महसूस नहीं कर सके।

भूदास प्रथा, एकतन्त्र और पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना करते हुए वे समाजवादी भावनाओं तक पहुंच गये, पर उनका समाजवाद कल्पनाविलासी था। उन्होंने यह नहीं देखा कि सामन्तवाद की तुलना में पूंजीवाद प्रगतिशील है। अतः उन्होंने सोचा कि रूस किसान-कम्यूनों से होकर समाजवाद प्राप्त करेगा। उन्होंने कहा कि ये कम्यून ज्यों ही एकतन्त्र और भूदास प्रथा की बेड़ियों से मुक्त हो जायेंगे और भूमि किसानों को मिल जायगी, त्यों ही वे समाजवादी समाज के बीजाणु बन जायेंगे।

पर वास्तव में किसान कम्यून समाजवाद के बीजाणु नहीं बने। न ही वे बन सकते थे। सर्वहारा ही एकमात्र सुसंगत *क्रान्तिकारी वर्ग है और* वही अनिवार्यतया समाजवादी परिवर्तन ला सकता है। रूस ने अन्य योरोपीय देशों की तुलना में देर से पूंजीवादी पथ पर प्रवेश किया था। इसलिए रूसी

सर्वहारा वर्ग १९वी सदी के उत्तरार्ध में भी संख्या में कम था और फलतः बड़ी क्रान्तिकारी शक्ति नहीं बन पाया था।

हमारे रूसी चिन्तकों को सर्वहारा वर्ग का अहसास न था और न ही वे उसकी क्रान्तिकारी भूमिका को समझते थे। इसलिए वे कल्पनाविलासी भावनाओं में बह जाते थे। पर उनका कल्पनाविलासी समाजवाद पश्चिमी योरप के कल्पनाविलासी समाजवाद से बहुत भिन्न था। उसमे क्रान्तिकारी लोकतंत्रवाद का पुट मिला हुआ था। उसमें इस विश्वास का पुट मिला हुआ था कि समाजवाद केवल क्रान्तिकारी संघर्ष के द्वारा, जनता के सशस्त्र विप्लव द्वारा, प्राप्त किया जा सकता है। बेलिंस्की ने लिखा था कि भावी समाजवादी समाज "मीठे-मीठे तथा जोशभरे शब्दों" से नहीं, बल्कि "शब्द और कार्य की दोधारी तलवार" से स्थापित होगा।

रूसी क्रान्तिकारी लोकतंत्रवादियों का विश्व दृष्टिकोण भौतिकवाद के विकास मे एक और आगे-कदम था। यह वास्तविकता को द्वन्द्वात्मक विधि से देखने से सम्बद्ध भौतिकवाद था, जिसे अपनी मुक्ति के लिए लड़ रहे उत्पीड़ित किसानों की सेवा में अर्पित किया गया था। यह विद्यमान प्राकृतिक विज्ञान पर आधारित था। रूसी भौतिकवादियों का द्वन्द्ववाद एक समन्वित एवं संगत पद्धति नहीं बना था, पर उसका महत्व इस चीज में था कि उसने सामाजिक ध्येय की, क्रान्ति के ध्येय की सेवा की। १९वीं सदी के रूसी भौतिकवादी दर्शन ने वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण के विकास मे बहुत बड़ा योग दिया।

अध्याय ३

मार्क्सवादी दर्शन का विकास

मजदूर वर्ग के महान् नेता कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) और फ्रेडरिक एंगेल्स (१८२०-१८९५) मार्क्सवादी दर्शन के जन्मदाता थे। क्या यह दर्शन केवल उसके संस्थापकों के मेधावी मस्तिष्क का फल है? या वह जमाने की उपज, युग का लक्षण है? किस चीज ने इस दर्शन का सृजन किया?

मार्क्सवादी दर्शन का उदय ऐतिहासिक विकास का स्वाभाविक परिणाम है। वह सामाजिक-आर्थिक अवस्थाओं द्वारा उत्पन्न हुआ और प्राकृतिक विज्ञान एवं दर्शन की कुछ शाखाओं ने उसे आकार ग्रहण करने में सहायता दी।

१. मार्क्सवादी दर्शन के उदय की अवस्थाएं एवं पूर्व-उपकरण

सामाजिक-आर्थिक अवस्थाएं

१९वीं सदी के मध्य तक पूंजीवाद ने अनेक देशों में सामन्तवाद का स्थान ग्रहण कर लिया था। पूंजीवाद के आगमन से उत्पादन में भारी प्रगति हुई और प्रविधि, विज्ञान एवं संस्कृति तेजी से विकसित हुए।

पूंजीवाद ने उस वर्ग को भी जन्म दिया जिसे पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना तथा समाजवादी परिवर्तन लाने के लिए काम करना था। यह वर्ग है सर्वहारा। पूंजीपतियों द्वारा शोषित और सामान्यतम मानव अधिकारों से वंचित मजदूर वर्ग अपने को दास बनाने वालों के विरुद्ध कटु संघर्ष में लगा हुआ ... के अन्तर्गत वर्ग विरोध असामान्य रूप से
ती ... रुद्ध सर्वहारा वर्ग की प्रत्यक्ष कार्रवाइयों
... रों ने ल्योंस में विद्रोह किया और सार-
... इंग्लैंड में चार्टिस्ट आन्दोलन का प्रसार
...), उच्चतर मजूरी, अल्पतर कार्य-दिवस
... ों ... असंगठित और स्वतः
... ी समझा था कि किन
लड़ना ... शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष
और ... थे। इस सबसे सर्वहारा

वर्ग के आन्दोलन में रुकावट पड़ रही थी और वह सफलता नहीं प्राप्त कर पा रहा था। एक ऐसे वैज्ञानिक सिद्धान्त की गहरी आवश्यकता उत्पन्न हुई जो सर्वहारा वर्ग को सामाजिक विकास के नियमों को समझने और पूंजीवाद के अनिवार्य अन्त के बारे में जानने में मदद करता और पूंजीपति वर्ग की कब्र खोदनेवाले तथा नये, समाजवादी समाज के निर्माता की अपनी भूमिका का उसे अहसास कराता।

अतः स्वयं सर्वहारा आन्दोलन के विकास ने विज्ञान के सामने एक भारी महत्व का कार्य प्रस्तुत किया। यह कार्य था एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त का सृजन करना और पूंजीवाद के विरुद्ध तथा समाजवाद की खातिर संघर्ष में सर्वहारा के लिए एक बौद्धिक हथियार गढ़ना। और विज्ञान ने मार्क्स और एंगेल्स के प्रतिनिधित्व में इतिहास की इस गहरी मांग की पूर्ति की। मार्क्सवाद का सृजन हुआ। मार्क्सवादी दर्शन—द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद—उसका एक संघटक अंग एवं सैद्धान्तिक बुनियाद बना।

प्राकृतिक विज्ञान एवं दार्शनिक चिन्तन की पूरी प्रगति ने मार्क्सवादी दर्शन के लिए ज़मीन तैयार की। १९वीं सदी में प्राकृतिक विज्ञान का विकास असामान्य तेज़ी से हुआ। वह तथ्यों के संचय और पृथक वस्तुओं के अध्ययन में रत विज्ञान नहीं रह गया, बल्कि इन तथ्यों की व्याख्या करने वाला तथा उनके सम्बंध-सूत्रों को स्थापित करने वाला सैद्धान्तिक विज्ञान बन गया। प्रकृति विज्ञान में अधिभौतिकी का स्थान विश्व की एकता और ऐतिहासिक विकास की द्वन्द्वात्मक धारणाओं ने ले लिया।

प्राकृतिक विज्ञान और सैद्धान्तिक स्रोतों में पूर्व-उपकरण

प्रकृति सम्बंधी अधिभौतिक दृष्टिबिन्दु में सबसे पहले कांट ने दरार डाली। विश्व की उत्पत्ति सम्बंधी उनकी परिकल्पना ने सिद्ध किया कि पृथ्वी तथा सौरमण्डल चिरन्तन नहीं, बल्कि पदार्थ के दीर्घकालीन विकास का परिणाम थे। इसके बाद भूगर्भ विज्ञान का जन्म हुआ जो पृथ्वी की परत के विकास का पता लगाता है। भौतिकी, रसायन, जैविकी तथा अन्य विज्ञान बड़ी तेज़ी से विकसित हुए।

प्राकृतिक विज्ञान की तीन बड़ी खोजें प्रकृति सम्बंधी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिबिन्दु को आकार तथा प्रामाणिकता प्रदान करने में खास तौर से महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं। ये थीं : ऊर्जा के संधारण और परिवर्तन का नियम, जीवित शरीर की कोशिकीय संरचना का सिद्धान्त और डारविन का विकास का सिद्धान्त।

ऊर्जा के संधारण और परिवर्तन के नियम की खोज रूसी वैज्ञानिक लोमोनोसोव, जर्मन वैज्ञानिक मायेर और ब्रिटिश भौतिकीविद जूल ने अलग-

अलग काम करते हुए की थी। यह नियम विश्व की भौतिक एकता तथा पदार्थ एवं गति की अनश्वरता को पूर्णतया प्रमाणित कर देता है। साथ ही यह नियम यह भी सिद्ध करता है कि पदार्थ और गति गुणात्मक रूप से वैविध्य-पूर्ण, परिवर्तनशील तथा कुछ रूपों से अन्य रूपों मे सन्तरणीय हैं।

जीवित ऊतकों की कोशिकीय सरचना के सिद्धान्त को रूसी वनस्पति विज्ञानी गोर्यानिनोव, चैक वनस्पति विज्ञानी पुर्किने और जर्मन वैज्ञानिक श्लेडेन तथा श्वान ने विकसित किया था। इसने सिद्ध किया कि किसी भी कमोबेश जटिल जीव की बुनियाद एक भौतिक तत्व अर्थात् कोशा हुआ करती है। कोशा की परिवर्तन क्षमता को सिद्ध करके उन्होंने जीवो के विकास की सही समझ हासिल करने की राह बनायी।

महान् ब्रिटिश वैज्ञानिक चार्ल्स डारविन ने विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित करके इस धारणा का अन्त कर दिया कि वनस्पतियों और पशुओं की प्रजातियां आकस्मिक हैं, उनका किसी चीज से सम्बध नहीं है, कि उन्हें ईश्वर ने बनाया है और वे अपरिवर्तनीय हैं। उन्होंने वैज्ञानिक ढग से सिद्ध किया कि जटिल, उच्चतर जीव सरल, निम्नतर जीवों से बने हैं और वे दैवी इच्छा द्वारा नही, बल्कि स्वय प्रकृति मे निहित प्राकृतिक प्रवरण के नियमों की क्रिया से निर्मित हुए हैं। डारविन ने यह भी सिद्ध किया कि मनुष्य भी जीवित पदार्थ के दीर्घ विकास का फल है। इसने डायलेक्टिक्स की मौलिक भावना की, अर्थात् विकास की—निम्नतर से उच्चतर में, सरल से जटिल मे सन्तरण की—भावना की पुष्टि की।

प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियों के साथ-साथ उसी काल की दार्शनिक चिन्तन की सफलताएं भी मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण का निर्माण करने में बहुत महत्व की सिद्ध हुई। द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद का सृजन करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने दर्शन के इतिहास का गहराई से अध्ययन किया और शताब्दियों के विकास के बाद दार्शनिक चिन्तन ने जो सबसे अनमोल रत्न प्रदान किये थे, उनका उपयोग किया। वस्तुत. १९वी सदी का प्रतिष्ठित जर्मन दर्शन और सर्वोपरि हेगेल तथा फायरबाख का दर्शन मार्क्सवादी दर्शन का प्रत्यक्ष सैद्धान्तिक स्रोत था।

मार्क्स और एंगेल्स ने एकबारगी ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विकास नहीं कर लिया, बल्कि काफी चक्करदार रास्ते से गुजर कर वहा तक पहुंचे। जवानी के दिनो में उन्हें हेगेल के भाववादी दर्शन ने आकृष्ट किया था जिसका उन दिनों जर्मनी मे खूब प्रचार था। उन दिनों हेगेल की ही तरह वे भी इतिहास को मानव चेतना का विकास मानते थे।

वर्ग के आन्दोलन में रुकावट पड रही थी और यह सफलता नहीं प्राप्त कर पा रहा था। एक ऐसे वैज्ञानिक सिद्धान्त की फौरी आवश्यकता उत्पन्न हुई जो सर्वहारा वर्ग को सामाजिक विकास के नियमों को समझने और पूंजीवाद के अनिवार्य अन्त के बारे में जानने मे मदद करता और पूंजीपति वर्ग की कब्र खोदनेवाले तथा नये, समाजवादी समाज के निर्माता की अपनी भूमिका का उसे अहसास कराता।

अत: स्वयं सर्वहारा आन्दोलन के विकास ने विज्ञान के सामने एक भारी महत्व का कार्य प्रस्तुत किया। यह कार्य था एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त का सृजन करना और पूंजीवाद के विरुद्ध तथा समाजवाद की खातिर संघर्ष में सर्वहारा के लिए एक बौद्धिक हथियार गढ़ना। और विज्ञान ने मार्क्स और एंगेल्स के प्रतिनिधित्व में इतिहास की इस फौरी मांग की पूर्ति की। मार्क्सवाद का सृजन हुआ। मार्क्सवादी दर्शन—द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद—उसका एक संघटक अंग एव सैद्धान्तिक बुनियाद बना।

प्राकृतिक विज्ञान एव दार्शनिक चिन्तन की पूरी प्रगति ने मार्क्सवादी दर्शन के लिए जमीन तैयार की। १९वी सदी में प्राकृतिक विज्ञान का विकास

प्राकृतिक विज्ञान और सैद्धान्तिक स्रोतों में पूर्व-उपकरण

असमान्य तेजी से हुआ। वह तथ्यो के संचय और पृथक वस्तुओं के अध्ययन में रत विज्ञान नहीं रह गया, बल्कि इन तथ्यों की व्याख्या करने वाला तथा उनके सम्बंध-सूत्रों को स्थापित करने वाल सैद्धान्तिक विज्ञान बन गया। प्रकृति विज्ञान में अधिभौतिकी का स्थान वि को एकता और ऐतिहासिक विकास की द्वन्द्वात्मक धारणाओं ने ले लिया।

प्रकृति सम्बधी अधिभौतिक दृष्टिविन्दु में सबसे पहले कांट ने डाली। विश्व की उत्पत्ति सम्बधी उनकी परिकल्पना ने सिद्ध किया कि तथा सौरमण्डल चिरन्तन नही, बल्कि पदार्थ के दीर्घकालीन वि परिणाम थे। इसके बाद भूगर्भ विज्ञान का जन्म हुआ जो पृथ्वी की विकास का पता लगाता है। भौतिकी, रसायन, जैविकी तथा बड़ी तेजी से विकसित हुए।

प्राकृतिक विज्ञान की तीन बड़ी खोजें प्रकृति सम्बंधी वादी दृष्टिविन्दु को आकार तथा महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। ये थी :
जीवित शरीर की कोशिकीय का सिद्धान्त।

ऊर्जा के संधारण
लोमोनोसोव, जर्मन

इस प्रकार, इस दर्शन की सभी दार्शनिक पद्धतियों से अपने वर्ग
के कारण, सामाजिक जीवन में अपनी भूमिका के कारण भिन्न है।

कुछ अपवादों को छोड़कर, मार्क्स से पहले के दार्शनिक शासकों के
को प्रतिबिम्बित करते थे और इस कारण वे मेहनतकशों के हित में समा
पुनर्निर्माण करने का लक्ष्य अपने सामने नहीं रखते थे।

मार्क्सवादी दर्शन की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। यह सबसे प्रगति
वर्ग, सर्वहारा के हितों को, और सभी मेहनतकशों के हितों को, अभि
करता है। मार्क्स और एंगेल्स केवल नये दर्शन के संस्थापक ही नहीं थे,
सर्वहारा के बढ़ते हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेता भी थे। उन्होंने
कि मेहनतकश जनता की मुक्ति का एकमात्र मार्ग समाजवादी क्रान्ति
सर्वहारा अधिनायकत्व से होकर गुजरता है।

उत्पीड़ित वर्ग, सर्वहारा का साथी बनकर मार्क्स और एंगेल्स ने एक
दर्शन का सृजन किया जो पूंजीवाद के विरुद्ध उसके संघर्ष में उसका
हथियार है, जीवन को पुनर्निर्मित करने का शक्तिशाली साधन है।
सामाजिक विकास में दर्शन की भूमिका को अपरिमित रूप में बढ़ा दि
मेहनतकशों के मस्तिष्क पर हावी होकर यह दर्शन एक महती भौतिक
बन गया। "दार्शनिकों ने विभिन्न तरीकों से केवल दुनिया की व्याख्या
किन्तु सवाल की बात तो यह है कि उसे बदला जाये"—इन शब्दों में मा
द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद का अन्य दर्शनों से मौलिक
वर्णित किया। मार्क्सवादी दर्शन इसलिए ताकतवर है, क्योंकि वह स्वयं
के साथ आंगिक रूप में जुड़ा हुआ है, वह पूंजीवाद के विरुद्ध और समा
व कम्युनिज्म के लिए होनेवाले मजदूर वर्ग के संघर्ष का हितसाधन करता

भौतिकवाद और डायलेक्टिक्स की आंगिक एकता दर्शन के क्षेत्र में म
वादी क्रान्ति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है।

दर्शन का इतिहास बताता है कि डायलेक्टिक्स और भौतिकवाद, दोनों
मार्क्सवाद से बहुत पहले उत्पन्न हुए थे। पर पुराने दर्शन का दोष यह
कि भौतिकवाद और डायलेक्टिक्स एक-दूसरे से पृथक कर दिये गये थे।
डायलेक्टिक्स के पंडित थे, पर भौतिकवादी नहीं थे। फायरबाख भौतिक
थे पर डायलेक्टिक्स के ज्ञाता नहीं थे। मार्क्स और एंगेल्स ने डायलेक्टिक्स
भौतिकवाद की खाई पाटी और एक द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्व दृष्टि
में उनकी एकता स्थापित की।

---

१ मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं (अंग्रेजी संस्करण), भाग २, मास्को, १९
पृष्ठ ४०५।

को कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य होना ही चाहिए, पर यह अवश्य है कि उसे मेहनतकश जनता के हितों का रक्षक होना चाहिए।

मार्क्सवादी दर्शन का उदय पूंजीपतियों के विरुद्ध मजदूर वर्ग के संघर्ष में उस वर्ग के आत्मिक हथियार के रूप में हुआ। उसकी सर्वहारा-पक्षधरता सर्वोपरि मजदूर वर्ग की, मेहनतकश जनता की, निस्स्वार्थ सेवा तथा प्रतिक्रियावादी पूंजीपतियों के प्रति समझौताहीन रुख में निहित है। दर्शन मे पक्षधरता के सिद्धांत का, जैसा कि लेनिन ने कहा है, यह तकाजा होता है कि हम खुद अपनी लाइन का अनुसरण करें और अपने विरोधी शक्तियों और वर्गों की पूरी ताकत से संघर्ष करें।

दर्शन मे पक्षधरता तकाजा करती है कि भौतिकवाद और भाववाद के संघर्ष में, जो दो हजार वर्षों से ज्यादा से चला आ रहा है, निश्चित रुख अपनाया जाय। इस संघर्ष का समाप्त होना तो दूर रहा, आज यह कहीं अधिक कटु हो गया है और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा भाववादी दर्शन की तीव्र मुठभेड़ में अभिव्यक्त होता है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन में पक्षधरता का अर्थ है—सुसंगत भौतिकवादी स्थितियों का दृढ़तापूर्वक अनुसरण करना, द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की हर तरह से हिमायत करना, मार्क्सवाद-विरोधी किसी भी विचार धारा का, भाववाद और पादरी-पुरोहितवाद की हर अभिव्यक्ति का, डटकर मुकाबला करना। आज जब पूरा संसार दो विचारधाराओं (समाजवादी और पूंजीवादी) के तीव्र संघर्ष का अखाड़ा बन गया है और पूंजीवादी वर्ग मार्क्सवाद के दर्शन का मुकाबला करने के लिए भाववाद तथा पादरीवाद के परिष्कृत से परिष्कृत रूपों का इस्तेमाल कर रहा है, तो ऐसी स्थिति में यह तकाजा खास तौर से महत्वपूर्ण बन गया है।

मार्क्सवाद को संशोधित करनेवाले पूंजीवादी विचारवेत्ताओं के पदचिन्हों पर चलते हैं और दर्शन में पक्षधरता के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को विकृत करते हैं। वे यह तर्क करते हैं कि पक्षधरता वैज्ञानिक और वस्तुगत विधि के साथ मेल नहीं खाती। इसके अलावा, वे पूंजीवादी विचारधारा को इस तरह से चित्रित करते हैं मानो वह वर्गों से ऊपर कोई दर्शन हो। ऐसा करते हुए वे कहते हैं कि वही एकमात्र वैज्ञानिक विचारधारा है। वे मांग करते हैं कि इस विचारधारा के विरुद्ध संघर्ष का परित्याग किया जाय, क्योंकि उसमें, उनके मतानुसार, ऐसा सामान्य मानव ज्ञान निहित है जो समाज के सभी वर्गों के लिए उपयोगी और आवश्यक है।

वास्तविकता यह है कि सामाजिक विकास के नियमों की झूठी पूंजीवादी तसवीर पेश करने में पूंजीवादी बराबर ही लगे रहते हैं जिससे कि पूंजीवाद को

मार्क्सवाद का उदय समाज सम्बंधी दृष्टिकोण में भी क्रान्ति का प्रतीक था।

मार्क्सवाद से पहले के दार्शनिकों की सामाजिक विकास की समझदारी भाववादी थी। वे समझते थे कि इस विकास की प्रेरक शक्ति जनता की भावनाओं में, उनकी चेतना में निहित है। इसके विपरीत, मार्क्स और एंगेल्स ने इतिहास की भौतिकवादी धारणा पेश की। उन्होंने पहले-पहल दर्शन के मौलिक प्रश्न को—अर्थात् अस्तित्व के साथ चिन्तन के सम्बन्ध को—समाज में प्रयुक्त करके उठाया और उसका सही-सही समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मानव की सामाजिक चेतना उसके अस्तित्व को नहीं निर्धारित करती, बल्कि बात इसकी उलटी है। सामाजिक अस्तित्व, और सर्वोपरि भौतिक मूल्यों का उत्पादन ही सामाजिक चेतना को निर्धारित करता है। उन्होंने सिद्ध किया कि समाज का विकास भौतिक कारणों पर निर्भर करता है, न कि लोगों की भावनाओं, इच्छाओं अथवा इरादों पर। इसके फलस्वरूप समाज के इतिहास की यह समझदारी उत्पन्न हुई कि यह व्यापारों का विशृंखलित समूह नहीं है, बल्कि उत्पादन की कुछ निम्नतर प्रणालियों के अन्य उच्चतर प्रणालियों द्वारा विस्थापन की नियम-शासित, आवश्यक प्रक्रिया है। इसके अलावा, यह सिद्ध हुआ कि यह विस्थापन आकस्मिक रूप से नहीं, अपितु वस्तुगत नियमों के अनुसार, मानव की इच्छा और चेतना से स्वतंत्र रूप में, हुआ करता है।[1]

मार्क्सवादी दर्शन पक्षधर होता है

पूंजीवादी दर्शनशास्त्री अक्सर कहते हैं कि उनका दर्शन "निष्पक्ष" है, वह सभी वर्गों के हितों को अभिव्यक्त करता है, वे चाहे किसी भी वर्ग से सम्बंध क्यों न रखते हों। पर सामाजिक विग्रह के समय इनमें से अनेक दार्शनिक पूंजीपतियों का साथ देते हैं। वे वैयक्तिक पूंजी की हिमायत करते हैं और शोषण तथा युद्ध को उचित ठहराते हैं। कारण कि निष्पक्षता की ओट में वे पूंजीवादी दर्शन के वर्ग स्वरूप को, उसके पक्षपाती स्वरूप को छिपाते हैं।

पूंजीपति ... ताओं के विपरीत, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों ने ... क दर्श का राजनीति के साथ, निश्चित सामाजिक ... है। दर्शन विशेष युग की, निर्दि... लिए सदा उस युग की आवश्य... के हितों की हिमायत करता है। दर्शन ... क शक्तियों की खिदमत करता। मार्क्स... यह अर्थ नहीं है कि मार्क्सवादी दार्शनिक

... सिद्धान्त की "ऐतिहासिक भौतिकवाद" ... से व्याख्या की गयी है।

१९वीं सदी के अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र रूस की ओर खिसकने लगा जहां एक समाजवादी क्रान्ति परिपक्व हो रही थी। रूस लेनिनवाद का जन्मस्थान था और लेनिनवाद नये युग का, साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के युग का, पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण एवं कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के युग का मार्क्सवाद है। इसलिए यह कोरे संयोग की बात नहीं है कि मार्क्सवाद का और आगे सृजनात्मक विकास रूसी और अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग के नेता व्लादीमिर लेनिन (१८७०-१९२४) के नाम के साथ अटूट रूप में जुड़ा हुआ है। दर्शन में लेनिन का योगदान इतना विशाल एवं बहुल है कि यह दार्शनिक चिन्तन के इतिहास की एक पूरी मंजिल बन गया है।

दर्शन में लेनिनवादी मंजिल

दर्शन के विकास में लेनिनवादी मंजिल १९वीं सदी के अन्त से आरम्भ होकर आज तक चली आयी है।

लेनिन ने नई ऐतिहासिक अवस्थाओं में द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की हिमायत की तथा उसे आगे बढ़ाया। ऐसा करके उन्होंने दर्शन में बहुत बड़ा योगदान किया। सिद्धान्त के क्षेत्र में उनके काम का सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष तथा सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण के साथ सीधा लगाव था। लेनिन ने मार्क्सवाद के दर्शन को केवल समृद्ध ही नहीं किया, बल्कि व्यावहारिक क्षेत्र में उसके सिद्धान्तों के प्रयोग का निर्देशन भी किया। उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की जो एक नये, क्रान्तिकारी प्रकार की पार्टी है। इस पार्टी के नेतृत्व में रूस के मजदूरों और किसानों ने पूंजीवाद को खत्म किया और दुनिया का प्रथम समाजवादी राज्य कायम किया। लेनिन ने समाजवाद के निर्माण की योजना तैयार की और जीवन के अन्तिम क्षण तक इस योजना को कार्यान्वित करने में जनता एवं पार्टी का नेतृत्व करते रहे।

नये ऐतिहासिक युग ने मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी के सामने क्रान्तिकारी ढंग से समाज का पुनर्निर्माण करने, पूंजीवाद का सफाया और समाजवाद की रचना करने का कार्य प्रस्तुत किया। इसी बात को ध्यान में रख कर लेनिन ने सामाजिक विकास को अधिशासित करनेवाले नियमों का विश्लेषण करने, और सर्वप्रथम साम्राज्यवाद के स्वरूप का अध्ययन करने पर विशेष ध्यान दिया। बदली हुई ऐतिहासिक अवस्थाओं का लेखा लेते हुए लेनिन ने समाजवादी क्रान्ति के मार्क्सवादी सिद्धान्त को और आगे बढ़ाया और सामाजिक विकास की धारा पर जबर्दस्त असर डाला।

लेनिन ने वर्गों तथा वर्ग संघर्ष, सर्वहारा अधिनायकत्व और उसके रूप,

रचनात्मक समाधान प्रस्तुत किये गये हैं : आज की परिस्थितियों में सर्वहारा अधिनायकत्व, समाजवाद के कम्युनिज्म में विकास को अभिशासित करनेवाले नियम, कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार निर्मित करने के उपाय; कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बंधों की स्थापना तथा नये मानव की शिक्षा, पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के रूपों की अनेकता, समाजवादी देशों का कम्युनिज्म में न्यूनाधिक एक साथ प्रवेश, हमारे युग में विश्व युद्ध न होने देने की संभावना; वर्तमान युग का स्वरूप, आदि ।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का जबर्दस्त सैद्धान्तिक कार्य २२वीं पार्टी-कांग्रेस में स्वीकृत उसके नये कार्यक्रम में हमारे सामने उपस्थित है। यह कार्यक्रम हमारे युग का असाधारण सैद्धान्तिक एवं राजनीतिक दस्तावेज है। यह कम्युनिज्म के निर्माण का ठोस, विज्ञान-सम्मत कार्यक्रम है। यह मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन के क्रान्तिकारी सिद्धान्त के विकास में एक नई मंजिल का द्योतक है। यह समाजवाद के निर्माण के कार्य का सृजनात्मक रूप से सामान्यीकरण करता है, पूरी दुनिया के अन्दर क्रान्तिकारी आन्दोलन के अनुभव का लेखा लेता है, पार्टी की सामूहिक भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कम्युनिस्ट निर्माण के मुख्य कार्यों और प्रधान मंजिलों को निरूपित करता है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन प्रतिगामी पूंजीवादी विचारधारा—भावनावाद और पादरीवाद—के विरुद्ध घमासान संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। दर्शन के सदियों के विकास ने दार्शनिकों के दो शिविरों—भौतिकवादी और भावनावादी—में विभाजन को समाप्त नहीं किया है। इन दो धाराओं का संघर्ष आज भी प्रगतिशील और प्रतिगामी वर्ग शक्तियों के संघर्ष को प्रतिबिम्बित करता है।

क्रान्तिकारी सर्वहारा और सभी मेहनतकशों का विश्व दृष्टिकोण होने के नाते मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध तथा समाजवाद और प्रगति के हेतु होनेवाले संघर्ष का एक प्रचण्ड अस्त्र है। साम्राज्यवादी पूंजीवादियों का भावनावादी दर्शन उसका विरोध करता है। इन साम्राज्यवादी पूंजीवादियों का लक्ष्य है : पूंजीवाद को बचाना, करोड़ों श्रमजीवियों को भावनावाद के जाल में फंसाये रखना, मार्क्सवाद-लेनिनवाद का खण्डन करना और भौतिकवाद एवं वैज्ञानिक कम्युनिज्म के विचारों को जनता को प्रभावित करने से रोकना।

समकालीन पूंजीवादी दर्शन में अनेक धाराएं और कई पथ हैं। पर उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। मुख्य चीज—भावनावादी तत्व एवं साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद की सेवकाई—में वे एक समान हैं। इनमें से कुछ खुल कर भावनावाद, रहस्यवाद और विज्ञान के प्रति द्वेषभाव का प्रचार करते हैं।

दूसरे यही काम परिष्कृत रूप में करते हैं। ये अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का इस्तेमाल करने, और सामाजिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को ढालने की कोशिश करते हैं। कुछ और हैं जो खुलेआम मध्ययुगीन स्कालेस्टिसिज्म[1] को पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं और मजहब के कठमुल्ला सूत्रों को सही साबित करने की कोशिश करते हैं।

पूंजीपति वर्ग के समकालीन चिन्तक कितनी भी कोशिश क्यों न करें, वे मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त का खंडन करने में सफल नहीं हो सकते।

मार्क्सवादी दर्शन आज समाजवादी देशों का प्रचलित विश्व दृष्टिकोण है। इन देशों मे एक अरब लोग निवास करते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद धीरे-धीरे पूंजीवादी देशों के लोगों के हृदय और मस्तिष्क मे भी घर करता जा रहा है। पूरी दुनिया मे सच्चे और ईमानदार लोग अधिकाधिक सख्या में मार्क्सवाद को ग्रहण कर रहे हैं, क्योंकि वे भावनावाद के दिवालियापन और सामाजिक प्रगति एव विज्ञान के विकास के साथ उसकी असगति को भली-भाति देख चुके हैं। एक उदाहरण के रूप में यहा प्रख्यात जापानी दार्शनिक कैंजुरो सानागिदे का नाम लिया जा सकता है। वह वर्षों तक भावनावादी दार्शनिक रहे, परन्तु अपने व्यावहारिक अनुभव तथा वर्षों की शका और सत्यान्वेषण के बाद मार्क्सवादी बन गये।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समकालीन प्राकृतिक विज्ञान में निरन्तर दृढतर स्थान प्राप्त करता जा रहा है। आज वह समाजवादी देशों के प्राकृतिक वैज्ञानिकों का ही दृष्टिकोण नही है, बल्कि पूजीवादी राज्यों के अनेक वैज्ञानिक भी अब उसे स्वीकार करने लगे हैं। सुविख्यात फ्रासीसी वैज्ञानिक फ्रेडरिक जोलियो क्यूरी अपने जीवन-काल मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के समर्थक थे और प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक जान बर्नाल तथा अनेक दूसरे प्रख्यात वैज्ञानिक इस समय भी उसके समर्थक है। अनेकानेक प्राकृतिक वैज्ञानिक अपनी भावनावादी भ्रान्त धारणाओं को छोडते जा रहे है।

हमारा युग भौतिकवाद की विजय एव भावनावाद के गहरे सकट तथा ह्रास का प्रत्यक्षदर्शी है। भावनावाद अब भी भौतिकवादी दर्शन का विरोध कर रहा है, पर इस विरोध के आखिरी नतीजे के बारे में अब कोई सन्देह नही रह गया है। भविष्य वैज्ञानिक, मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्व दृष्टिकोण का ही है।

---

१. लैटिन शब्द स्कोला (स्कूल) से बना स्कालेस्टिसिज्म दर्शन का एक धार्मिक भावनावादी पथ है। इसका मध्य युग मे बोलबाला था।

भाग १

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

अध्याय ४-९

पदार्थ और उसके अस्तित्व के रूप

पदार्थ और मस्तिष्क

विकास और सार्वत्रिक सम्बंध के सिद्धान्त
के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

भौतिकवादी द्वन्द्वात्मकता के मौलिक नियम

भौतिकवादी डायलैक्टिक्स के प्रवर्ग

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के ज्ञान का सिद्धान्त

अध्याय ४

पदार्थ और उसके अस्तित्व के रूप

हम पहले ही देख चुके है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे मुख्य चीज दर्शन का मूल प्रश्न है, अर्थात पदार्थ और मस्तिष्क का सम्बध। अब आइए हम इस चीज का विश्लेषण करें कि पदार्थ क्या है और वह किन रूपों में पाया जाता है।

१. पदार्थ क्या है ?

मनुष्य अति विचित्र प्रकार के अगणित कायों से घिरा हुआ है। इनमे प्रकृति के अजैव काय—परमाणुओं के अतिसूक्ष्म कणों से लेकर विराट ब्रह्माण्डीय पिण्डो तक—भी हैं और सरलतम से लेकर जटिलतम जीवित प्राणी भी हैं। कुछ तो हमारे बिलकुल निकट हैं, हम उनके बीच रहते और उनकी उपस्थिति का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं। और कुछ हैं जिनके और हमारे बीच असाधारण रूप मे बड़ी दूरियां हैं। कुछ को हम सीधे-सीधे अपनी आखों से देखते हैं, पर कुछ अन्य हैं जिन्हें देखने के लिए हमे अति जटिल यन्त्रो और साज-सामान का इस्तेमाल करना पड़ता है। इन कायो मे अति विविध गुणधर्म, लक्षण और वैशिष्ट्य हैं।

मानव संसार की आश्चर्यजनक विविधता देखकर चकित होता आया है। उसने इस सम्बध मे बहुत दिन पहले ही यह कल्पना की थी कि हो न हो अपने चारो ओर के सभी काय एक ही आधार से प्रस्फुटित हुए हैं।

धीरे-धीरे, मानव के व्यावहारिक कार्यों और विज्ञान के विकास ने उसमें यह दृढ धारणा उत्पन्न की कि वस्तुओ और व्यापारों मे चाहे जितना अधिक ...के गुणो मे चाहे जितना वैविध्य हो, पर है वे सब के सब ...का अस्तित्व हमारे मस्तिष्क से, हमारी चेतना के बाहर तथा ...। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक विज्ञान ने निर्विवाद रूप से यह ...या है कि पृथ्वी का अस्तित्व मनुष्य के और सामान्यतः जीवन के प्रकट होने के करोड़ो वर्ष पहले से है। यह प्रकट करता है कि पदार्थ ...नुष्य और उसकी चेतना से स्वतन्त्र है और यह ...के विलम्बित विकास की उपज मात्र है

दार्शनिक धारणा अथवा परिकल्पना के रूप में पदार्थ उस गुणधर्म को अभिव्यक्त करता है जो सभी वस्तुओं और व्यापारों में समान है, अर्थात सभी का वस्तुगत यथार्थ होना, मनुष्य की चेतना से परे विद्यमान रहना तथा उसकी चेतना में प्रतिबिम्बित होना।

पदार्थ की परिकल्पना बड़ी ही व्यापक है। यह केवल किसी पृथक वस्तु या प्रक्रिया को नहीं, वस्तुओं और व्यापारों के किसी समूह को नहीं, बल्कि सम्पूर्ण वस्तुगत वास्तविकता को अपने में समोती है। यह पृथक वस्तुओं के विशेष गुणों, गुणधर्मों और पार्श्वों, उनके सभी सम्पर्कों और परस्पर घात-प्रतिघात की उपेक्षा करती है और इन सभी वस्तुओं में जो समान है, जो उनमें बुनियादी है, यानी उनकी वस्तुगतता को—मानव मस्तिष्क से उनके अस्तित्व की स्वतन्त्रता को—अभिव्यक्त करती है।

पदार्थ की धारणा वस्तुगत जगत के सामान्य गुणधर्मों का उसी रूप में केवल आभास ही नहीं कराती, बल्कि यह ज्ञान की आद्य परिकल्पना भी है। यह बताती है कि मनुष्य विश्व का सज्ञान प्राप्त करने में समर्थ है, वह हमारे ज्ञान के स्रोत का संकेत देती है। साथ ही यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के ज्ञान के सिद्धान्त की प्रमुख समस्याओं का उत्तर ढूंढने का एक आधार भी प्रदान करती है।

अपने चारों ओर की दुनिया की वस्तुगतता को स्वीकार करना और यह स्वीकार करना कि मानव मस्तिष्क में इस दुनिया का सज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है, द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण का मूल सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह है कि इन मूल सिद्धान्तों को प्रतिबिम्बित करने वाली पदार्थ की धारणा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की सबसे महत्वपूर्ण परिकल्पना है, वही उसकी धुरी है।

पदार्थ की धारणा अन्य विज्ञानों के लिए भी भारी महत्व रखती है—खास कर प्राकृतिक विज्ञान के लिए। कोई विज्ञान यदि वस्तुगत यथार्थ के किसी पहलू का अध्ययन न करे, तो वह इंसानी दिमाग की एक फजूल कसरत मात्र बन जायगा।

लेनिन ने अपनी पुस्तक *भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना* में पदार्थ की एक सच्ची वैज्ञानिक एवं सर्वग्राह्य परिभाषा प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा कि "पदार्थ *वस्तुगत यथार्थ* का इंगित करने वाली एक दार्शनिक परिकल्पना है जो मनुष्य को *उसकी संवेदनाओं* से प्राप्त होती है, और जो हमारी संवेदनाओं से स्वतंत्र रहते हुए उनके द्वारा अनुकृत, फोटो-चित्रित और प्रतिबिम्बित होती रहती है।"[1]

---

[1] लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड १४, पृष्ठ १३०

पदार्थ की लेनिनवादी परिभाषा का महत्व अकूत है। वह मानव जाति के सदियों के अनुभव का निचोड़ पेश करती है और ऐसा करते हुए हमें अपने चारों ओर के जगत की सही समझ प्रदान करती है, यह सिखाती है कि अपने व्यावहारिक कार्यों एवं सैद्धान्तिक अध्ययन में हमें स्वयं यथार्थ से, वस्तुगत भौतिक अवस्थाओं से आरम्भ करना चाहिए, अपनी निजी मनोगत भावनाओं से नहीं। वह जोर देकर बतलाती है कि विश्व ज्ञेय है, और ऐसा करते हुए वह मानव बुद्धि के लिए निस्सीम क्षेत्र प्रस्तुत करती है, मस्तिष्क को अनुप्रेरित करती है और मनुष्य को विश्व के गहनतम रहस्यों को भेदने में मदद करती है।

भौतिकवाद और भावनावाद तथा एग्नोस्टिसिज्म के बीच जो मौलिक भेद है, वह पदार्थ की इस परिभाषा में प्रतिबिम्बित होता है। इसका गहरा नास्तिकतावादी अर्थ भी है, क्योंकि वह इस धार्मिक कपोल-कल्पना को ध्वस्त करती है कि संसार ईश्वर का रचा हुआ है। वस्तुत यदि पदार्थ आद्य और चिरन्तन है, यदि उसका न सृजन होता है न विनाश, तो वही हर अस्तित्वमान वस्तु का आभ्यन्तरिक हेतु, चरम हेतु है। ऐसी दुनिया में जहा पदार्थ ही आद्य हेतु है, हर चीज का मूल आधार है, वहा दैव अथवा किसी अन्य अतिप्राकृतिक शक्ति के लिए कोई स्थान नही रह जाता है।

इसीलिए भावनावादी दार्शनिक और पादरी-पुरोहित हमेशा से पदार्थ को मान्यता प्रदान किये जाने का प्राणप्रण से विरोध करते आये हैं। प्लेटो से लेकर बर्कले तक, अतीत काल के सभी दार्शनिक पदार्थ की धारणा को "ध्वस्त" करने में लगे रहे हैं। और मैखवादी[1] तो आज भी उसके खिलाफ जेहाद चला रहे हैं। आज ऐसे अनेकानेक भावनावादी और संशोधनवादी हैं जो मैखवादियों के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। पदार्थ की धारणा पर उनके चौतरफा हमले का उद्देश्य भौतिकवाद की मूल धारणा को नष्ट कर देना है, पदार्थ को दर्शन तथा विज्ञान के दायरे से निकाल बाहर करना है, और इस प्रकार धर्म, भावनावाद और एग्नोस्टिसिज्म के लिए मैदान साफ कर देना है।

पर ये आक्षेप बिलकुल निराधार है। विज्ञान की प्रगति तथा मानव का सारा व्यावहारिक अनुभव अकाट्य रूप से सिद्ध करते हैं कि पदार्थ वस्तुगत यथार्थ के रूप में विद्यमान है और वह अपरिमित एवं शाश्वत है। सभी चीजें,

---

१. मैखवादी दर्शन की एक भावनावादी धारा के अनुयायी थे। यह धारा १९वीं सदी के अन्त और २०वीं के आरम्भ में प्रचलित हुई थी। आस्ट्रियन दार्शनिक अर्न्स्ट मैख के नाम पर इस धारा का नामकरण हुआ था। लेनिन ने १९०९ में प्रकाशित अपनी पुस्तक भौतिकवाद और अनुभव-सिद्ध आलोचना में मैखवाद की गहन और विशद समीक्षा की थी।

हर वस्तु और हर प्रक्रिया, गतिमान पदार्थ की अभिव्यंजनाएं अथवा रूप मात्र हैं। इसीलिए हमारे चारों ओर का संसार एक अविभक्त भौतिक संसार है। पर जैसा कि व्यक्तिगत अनुभव एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों से स्पष्ट है, पदार्थ के रूप विविध हैं। इसका मतलब यह हुआ कि भौतिक जगत विविधता की एकता है। भौतिक जगत मे, सूक्ष्म भी, कोई ऐसी चीज नही है जो शून्य से उद्भूत होती हो अथवा बिना अपनी निशानी छोड़े अस्त होती हो। एक वस्तु का विनाश दूसरी को जन्म देता है और दूसरी का तीसरी को और इसी तरह अनन्त प्रक्रिया चलती रहती है। ठोस चीजें बदल जाती हैं, एक चीज दूसरी मे तब्दील हो जाती है। पर इस प्रक्रिया मे पदार्थ का न तो लोप होता है, न ही नये पदार्थ का जन्म होता है।

पदार्थ की दार्शनिक धारणा एक चीज है और विज्ञान द्वारा प्रस्तुत संसार का चित्र दूसरी चीज है। दोनों मे हमें भेद करना चाहिए। पदार्थ के ठोस रूपों की सरचना, अवस्था एवं गुणधर्मों के सम्बंध में विज्ञान ने अपने विकास के क्रम में जो मत निरूपित किये हैं, वे पदार्थ की दार्शनिक धारणा से भिन्न हैं। ये मत निरन्तर बदलते और विकसित होते रहते हैं और कभी-कभी तो उनका बिल्कुल कायापलट हो जाता है। पर पदार्थ के सम्बंध मे दर्शन की इस समझ पर कि वह हमारी चेतना से परे विद्यमान एक वस्तुगत यथार्थ है, इससे कोई असर नहीं पड़ता।

पदार्थ की धारणा और विज्ञान द्वारा प्रस्तुत संसार का चित्र

पदार्थवाद का "खडन" करने के इरादे से भावनावादी विचारक पदार्थ की दार्शनिक धारणा को ठोस भौतिक कायो की सरचना सम्बधी विज्ञान के मतों के साथ जान-बूझकर उलझा देते हैं। इन मतों में परिवर्तन होने पर, पुराने विचारो के परित्याग और उनके स्थान पर नये विचारों के ग्रहण किये जाने पर, विचारो के अधिक सटीक और परिष्कृत किये जाने पर वे यह कहने लगते हैं कि पदार्थ का "अन्त" हो गया, भौतिकवाद का "जनाजा" निकल गया।

उदाहरणार्थ, अधिभौतिकीय पदार्थवादी कई सदियों तक पदार्थ और परमाणु को, जिसे वे अभेद्य एवं अखंड समझते थे, एक मानते थे। पर १९वीं सदी के अंत मे वैज्ञानिकों ने इलेक्ट्रोन का आविष्कार किया जो कि परमाणु का एक अखण्ड सूक्ष्म भाग है। इसके बाद अन्य कण भी प्रकाश में आ गये। फलतः मानव को लगा कि परमाणु, जिसे सदियों से विश्व की चरम, परम और अखंड इकाई माना जा रहा था, एक विलक्षण एवं जटिल व्यापार है। इलेक्ट्रोन के गुणधर्म परमाणु के गुणधर्मों से सर्वथा भिन्न सिद्ध हुए। इससे अधिभौतिक ढंग से सोचने वाले भौतिकीविद् उलझन मे पड़ गये। दूसरी ओर, उपस्थित

कठिनाई से लाभ उठानेवाले भावनावादी दार्शनिक इस उलझन को बहाना बनाकर परमाणु के "विपदार्थीकृत हो जाने" और पदार्थ के "विलुप्त" हो जाने की बातें करने लगे।

लेनिन ने भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना में इन तर्कों की धज्जियां उड़ा दीं। उन्होंने सिद्ध किया कि विज्ञान की नई खोजों से पदार्थ का खात्मा नहीं हुआ है, वरन् केवल पदार्थ सम्बंधी हमारे ज्ञान की सीमा-रेखा समाप्त हुई। कल हमारे ज्ञान की सीमारेखा परमाणु थी, आज वह इलेक्ट्रोन है, और कल यह सीमा भी विलुप्त हो जायगी। हमारा ज्ञान पदार्थ की गहराइयों में प्रवेश कर रहा है, वह उसके गुणधर्मों का, उसकी संरचना के सूक्ष्मतर पहलुओं का अधिकाधिक उद्घाटन कर रहा है। पदार्थ का ऐसा ही नया रूप इलेक्ट्रोन के अन्वेषण से प्रकाश में आया है। और अन्त में विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों की चर्चा करते हुए लेनिन ने कहा कि "इलेक्ट्रोन उतना ही निस्सीम है जितना कि परमाणु और प्रकृति सीमा-रहित है।"[1]

पदार्थ के गुणात्मक वैविध्य और उसकी संरचना तथा गुणधर्मों की निस्सीम विविधता के बारे में लेनिन का मत समकालीन विज्ञान के, खास तौर से भौतिकी के, निष्कर्षों द्वारा पूरी तरह परिपुष्ट हो चुका है।

द्रव्य आज की भौतिकी को ज्ञात पदार्थ के रूपों में से एक है। हर वह चीज द्रव्य है जिसकी यान्त्रिकी संहति, अथवा भौतिकीविदों के शब्दों में विराम संहति होती है। मानव के चारों ओर के सभी दृश्य काय (इन्हें मैक्रोस्कोपिक अथवा स्थूल काय भी कहते हैं) द्रव्यीय होते हैं। इन कायों में अणु होते हैं और अणुओं में परमाणु होते हैं। कायों, अणुओं और परमाणुओं में अत्यधिक वैविध्य है। पर इससे द्रव्य की गुणात्मक विविधता का अन्त नहीं हो जाता। परमाणुओं की बनावट स्वयं बहुत जटिल होती है। उनमें प्रारम्भिक अथवा मौलिक कण—प्रोटोन और न्यूट्रोन—होते हैं जिनसे न्यूक्लियस या बीजाणु बना होता है, और इलेक्ट्रोन होते हैं जो प्रचण्ड गति से न्यूक्लियस के चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं। उपर्युक्त कण तथा कुछ अन्य "मौलिक" कण, जिनका विज्ञान को पता है (मेसोन, हाइपेरोन, न्यूट्रिनो, आदि), द्रव्य के अभी तक ज्ञात लघुतम कण हैं। इन्हें मौलिक इसलिए कहा जा रहा है कि वैज्ञानिक अभी तक उन्हें और लघुतर पदार्थीय संरचनाओं में विखण्डित नहीं कर पाये हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि परमाणु की भांति इनकी भी जटिल संरचना है। ध्यान देने की बात है कि मौलिक कण परमाणुओं और न्यूक्लियसों के बल के

---

1. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड १४, पृष्ठ २६२।

रूप में ही नही रहते, वे मुक्त अवस्था में भी विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ, इनमें से अनेक कण ब्रह्माण्डीय किरणो के अन्दर मौजूद हैं।

हाल के वर्षों मे वि-कणों का (पोजिट्रोन, एंटिप्रोटोन और अन्य वि-कणों का) पता लगा है। वे द्रव्य के तदनुरूप कणो (इलेक्ट्रोन, प्रोटोन) मे विद्युतीय आवेश के विपरीत चिह्न द्वारा भिन्न होते हैं।

जब लेनिन ने अपनी पुस्तक **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना** लिखी थी, उस समय तक केवल एक मौलिक कण—इलेक्ट्रोन—का पता लगा था। इसके बाद से वैज्ञानिक तीस से अधिक कणो का पता लगा चुके हैं जो सजल, परिवर्त्य एव रूपान्तरणीय है। भौतिकीविदो ने परमाणु के बहुत सारे कणो का ही पता नहीं लगाया है, वरन् उनके गुणधर्मों का वैविध्य स्थापित करके यह भी सिद्ध किया है कि ये कण भी परमाणु की भांति निस्सीम हैं। आज अब इलेक्ट्रोन की एक नन्हे अपरिवर्तनीय गोले के रूप में कल्पना नहीं की जा सकती। उसमे अनिरन्तरता (देश पर आधारित) और निरन्तरता (अनाधारित) के गुण मौजूद है, अर्थात कण और तरग दोनो के ही गुण मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त उसमे महति, विद्युतीय आवेश तथा चुम्बकीय घूर्ण भी होते हैं। अन्य मौलिक कणो मे भी इसी प्रकार नाना प्रकार के गुण मौजूद हैं।

द्रव्य अनेक अवस्थाओं मे विद्यमान रहता है। साधारणतया द्रव्य को हम ठोस, द्रव अथवा गैसीय स्थिति मे पाते हैं। पर विश्व मे सबसे अधिक विद्यमान प्लाज्मा ही है। यह गैसीय अवस्था में रहता है और इसमे विद्युत प्रभारयुक्त कण—इलेक्ट्रोन और आयोन होते हैं। तारे, नीहारिकाएं और अन्तर्ग्रहीय गैस प्लाज्मा की अवस्था में विद्यमान हैं। दूसरी ओर ठोस, द्रव और गैसीय काय जो हमारी पृथ्वी पर सर्वत्र पाये जाते है, पूरे ब्रह्माण्ड के पैमाने पर अत्यन्त विरल हैं।

प्लाज्मा गैस के सदृश होता है किन्तु उसके गुणधर्म गैस के गुणधर्मों से भिन्न होते है। प्रबल चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव से प्लाज्मा कणों की गतिविधि एक विशिष्ट एवं संश्लिष्ट रूप धारण कर लेती है। चुम्बकीय क्षेत्र एक ऐसी दीवार अथवा पात्र का भी काम करता है जो प्लाज्मा को एक निश्चित आकार एवं आयतन में बनाये रखता है। इन विशिष्ट गुणधर्मों की विद्यमानता के कारण प्लाज्मा को हम द्रव्य की एक नई अवस्था, उसकी चौथी अवस्था मान सकते है।

वैज्ञानिक अब प्लाज्मा मे विशेष दिलचस्पी ले रहे हैं, क्योंकि उनका अध्ययन टेक्नोलाजी की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण सुयोग प्रदान करता है। खास तौर से वह ताप-परमाणविक प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करने और इस प्रकार ऊर्जा के असीम स्रोत प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

यदि द्रव्य को इसकी सामान्य ठोस अवस्था में संकुचित करके उसका आयतन बहुत कम कर दिया जाए तो उसके परमाणुओं के इलेक्ट्रोन बीजाणु में प्रविष्ट हो जायेंगे और प्रोटोनों से मिलकर न्यूट्रानों में परिणत हो जायेंगे। इससे द्रव्य की एक और अवस्था उत्पन्न होगी -न्यूट्रन अवस्था। इस अवस्था में द्रव्य विशिष्ट विशेषताएं प्राप्त कर लेता है। ये विशेषताएं हैं प्रचण्ड विपुल सघनता (सर्वाधिक सघन भारी धातुओं की सघनता से लाखों गुना अधिक), विद्युत की धारा प्रवाहित करने से प्रबल चुम्बकीय क्षेत्रों का उत्पन्न होना और विकिरणकारी घनत्व। न्यूट्रन अवस्था में द्रव्य के एक घन सेंटीमीटर का भार कुछ नहीं तो दस लाख टन होगा।

क्षेत्र आधुनिक विज्ञान को ज्ञात पदार्थ का एक अन्य भौतिक प्रकार है। भौतिक क्षेत्र एक पदार्थीय विभरता है जो कायों में परस्पर सम्पर्क स्थापित कराती और एक काय से दूसरे में क्रिया को प्रेषित करती है। गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र (गुरुत्वाकर्षण) और विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र (प्रकाश इसकी एक किस्म है) १९वीं सदी से ज्ञात थे। फोटोन तथा विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र के कण हैं जो द्रव्य के कणों से इस बात में भिन्न हैं कि उनमें द्रव्य-कणों का विराम संहति वाला गुण नहीं होता। इसके अलावा रिक्तक में फोटोन सदा तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकण्ड के स्थिर वेग से चलते हैं जबकि द्रव्य के कणों के वेग में बड़ी भिन्नता हो सकती है, लेकिन उसका वेग फोटोन के वेग से अधिक नहीं हो सकता।

गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों के अतिरिक्त नाभिकीय, मेसोन और इलेक्ट्रोन-पोजिट्रोन क्षेत्र भी होते हैं। हर क्षेत्र के अनुरूप उसके निश्चित कण भी होते हैं जिनके गुण फोटोन के गुणों की तरह के नहीं होते।

अतः द्रव्य और क्षेत्र दोनों ही अपनी सरचना तथा गुणधर्मों में विविधता पूर्ण एव निस्सीम हैं।

द्रव्य और क्षेत्र की सीमा-रेखाएं केवल स्थूल और दृश्य जगत् में ही एक-दूसरे से स्पष्ट होती हैं। लेकिन सूक्ष्म प्रक्रियाओं के क्षेत्र में ये सीमा-रेखाएं सापेक्ष होती हैं। द्रव्य के कुछ कण (उदाहरणार्थ मेसोन) तत्सम्बंधित क्षेत्र के भी कण (क्वांटा) होते हैं। द्रव्य और क्षेत्र में अटूट सम्बध होता है। वे एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और विशेष परिस्थितियों में एक-दूसरे में रूपान्तरित भी हो सकते हैं। द्रव्य के दो कण (इलेक्ट्रोन और पोजिट्रोन) खास अवस्थाओं में फोटोन बन जा सकते हैं जो विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र के कण हैं। इस प्रयोग का व्यवहार में चरितार्थ *किया जाना भौतिकी की एक महती उपलब्धि थी।* इसने संसार की भौतिक एकता, उसकी परिवर्तनशीलता और सचलता को एक बार फिर प्रमाणित कर दिया।

बड़े किस्म के अणुओं के, जो पोलीमेर रासायनिक यौगिक (रबर, प्रोटीन, सेलुलोज, स्टार्च, आदि) कहलाते हैं, अध्ययन के पदार्थ की संरचना के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण योगदान हुआ है। इन यौगिकों की विशेषता यह है कि वे शृंखलाबद्ध परमाणुओं के एक जैसे समूहों की अनेकानेक पुनरावृत्तियों, या अन्य अधिक जटिल विरचनाओं, द्वारा विरचित होते हैं।

पोलीमेरो की खोज से मानव-मस्तिष्क ने एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया जो वस्तुतः सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत की सरहद पर स्थित है। अनेक पोलीमेर यौगिक, विशेष कर प्रोटीन, जीवित द्रव्य की विरचना के लिए सामग्री का काम करते हैं। इस वजह से उनका सफलतापूर्वक अध्ययन करना जीवन-व्यापार की विशद गवेषणा की दिशा में महत्वपूर्ण पग है। वह प्राणमूलक प्रक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने तथा उन्हें नियन्त्रित करने की दिशा मे महत्वपूर्ण पग है।

इस प्रकार आज की भौतिकी, रसायन और अन्य विज्ञानों की सभी उपलब्धियां द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की पदार्थ की वस्तुगतता, विश्व की एकता और अनेकता, पदार्थ की अनन्तता एवं मानव-ज्ञान की निस्सीमता सम्बन्धी स्थापना की पुष्टि करती हैं। किन्तु ध्यान रहे कि कोई विज्ञान चाहे कितनी ही बड़ी सफलता क्यों न हासिल कर ले, उसकी अपनी कठिनाइयां और अनिष्पन्न समस्याएं भी होती हैं जिनका वैज्ञानिक ज्ञान के विरोधी इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए, चर्चपंथी कहते हैं कि विज्ञान में इन कठिनाइयों को हल करने की क्षमता नहीं है। फिर वे कहते हैं : अनुसंधान की वैज्ञानिक विधि को छोड़ दो और ईश्वर को, आस्था के मार्ग को अपनाओ; धार्मिक आस्था ही—मानव और भगवान की एकता ही—संसार का असल चित्र तुम्हारे सामने खोल सकती है।

विज्ञान में आ खड़ी कठिनाइयों को लेकर पूंजीवादी दार्शनिक और कुछ भावनावादी भौतिकीविद् कहते हैं कि पदार्थवाद गलत है। "मौलिक" कणों के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर पाने की असमर्थता को लेकर वे घोषणा करते हैं कि वे भौतिक काय नहीं, वरन् तर्कगत (मानसिक) संरचाएं मात्र हैं।

परन्तु वास्तविकता यह है कि पारमाण्विक कण भी उतने ही भौतिक और वस्तुगत हैं जितने कि परमाणु, परमाणुओं से बने अणु और अणुओं से बने काय। सभी एक ही भौतिक जगत के तत्व मात्र हैं।

निश्चित भौतिक विरचनाओं के (वह चाहे इलेक्ट्रोन, परमाणु, अणु या अन्य कोई काय हो) बारे में हमारा ज्ञान सापेक्षिक और परिवर्तनाधीन है। वह पहले बदल चुका है और आगे फिर बदलेगा। पर इस सबके बावजूद पदार्थ एक वस्तुगत यथार्थ बना रहता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद भावनावाद के एग्नास्टिसिज्म समेत सभी रूपों से इसी बात में भिन्न और

विशिष्ट है कि वह पदार्थ के मनुष्य की चेतना और संवेदनाओं से स्वतंत्र होने की बात को असंदिग्ध और अकाट्य रूप से स्वीकार करता है।

जैसा कि हमने देखा, संसार अपने स्वरूप से ही भौतिक है। हर विद्यमान चीज पदार्थ के विभिन्न रूपों और प्रकारों का प्रतिनिधित्व करती है। पर पदार्थ अक्रिय और स्थिर नहीं है। वह काल और देश में सदा गतिमान रहता है। गति, देश और काल पदार्थ की विद्यमानता के मूल रूप हैं। विश्व के भौतिक स्वरूप को और गहराई से समझने के लिए हमें इन रूपों की विवेचना करनी होगी। हम गति से आरम्भ करेंगे।

२. गति — पदार्थ के अस्तित्व का एक रूप

पदार्थ केवल गति में ही रहता है और गति के जरिए अपने को अभिव्यक्त अथवा प्रकट करता है। दैनन्दिन जीवन के तथ्यों, विज्ञान के विकास और व्यवहार ने इस चीज को पक्की तौर से प्रमाणित कर दिया है।

उदाहरणार्थ, परमाणु को ले लें। वह उसी हद तक एक सुनिश्चित भौतिक काय के रूप में विद्यमान है जिस हद तक कि उसे संरचित करनेवाले मौलिक कण सतत गतिमान रहते हैं। इन कणों की गति से बाहर परमाणु का अस्तित्व नहीं हो सकता। न ही गति के बिना और किसी काय का अस्तित्व हो सकता है। शरीर और परिवेश में उपापचयात्मक आदान-प्रदान (यह भी एक प्रकार की गति है) ज्यों ही बन्द होता है, शरीर फौरन मृत हो जाता है।

गति के कारण भौतिक काय अपने को प्रगट करते हैं, हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरणार्थ, सूर्य निरन्तर अनेकानेक गतिमान कणों को ब्रह्माण्डीय अवकाश में विसर्जित करता रहता है। ये कण जब पृथ्वी पर पहुंचते हैं, तो वे हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव उत्पन्न करते हैं और हमें सूर्य का अस्तित्व विदित कराते हैं। इन कणों की गतिविधियां न हों, तो हमें यह भान भी न होगा कि सूर्य का अस्तित्व है, क्योंकि वह पृथ्वी से करीब १५ करोड़ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

इसी तरह से अन्य सभी मौलिक काय केवल गति में ही विद्यमान हैं और गति में ही अपने को प्रगट करते हैं। केवल परमाणु के अन्दर के मौलिक कण ही गतिमान नहीं हैं, बल्कि अणुओं के अन्दर परमाणु और कायों के अन्दर अणु भी गतिमान स्थिति में हैं। पार्थिव और अन्तरिक्षीय कायों का सारा का सारा विराट पुंज गतिमान स्थिति में है। इसी प्रकार जीवित शरीर और सामाजिक जीवन भी परिवर्तित होते रहते हैं। भौतिक जगत् का एक भी ऐसा कण ढूंढ़ पाना कठिन है जो गतिमान न हो या बदलता न हो।

तो गति पदार्थ के अस्तित्व का एक रूप है, उसका अभिन्न गुण है।

एंगेल्स ने लिखा था : गति पदार्थ के अस्तित्व की विधि है। गति के बिना पदार्थ कहीं भी न तो कभी रहा है, न रह सकता है।[1]

पदार्थ की गति परम और शाश्वत है। वह न तो पैदा की जा सकती है और न मारी जा सकती है, क्योंकि स्वयं पदार्थ न पैदा किया जा सकता है और न नष्ट किया जा सकता है। ऊर्जा के संधारण और रूपान्तरण के नियम के रूप में विज्ञान इसका प्रमाण उपस्थित करता है। यह नियम बताता है कि पदार्थ की ही भांति गति न तो विलुप्त होती है और न नये सिरे से उदित होती है। उसमें केवल हेरफेर होता है। वह केवल एक रूप से दूसरे में परिवर्तित होती है।

गति परम और विराम सापेक्ष है

किन्तु गति यदि शाश्वत और परम है, तो क्या विराम का भी कोई तुक हो सकता है ?

निश्चय ही हो सकता है। भौतिक परिवर्तनों के दौरान साम्यावस्था अथवा विराम के भी क्षण आते हैं। पर वे पदार्थ पर समग्र रूप से लागू नहीं होते। केवल विशिष्ट वस्तुओं और प्रक्रियाओं पर लागू होते हैं। गति की परमता में अनिवार्यतः विराम भी पूर्वमान्य है, क्योंकि विराम विश्व के विकास का एक पूर्व-उपकरण है। कोई वस्तु गति में उदित होती है, जबकि विराम मानो गति के परिणाम को स्थिर करता है जिसके फलस्वरूप यह वस्तु कुछ समय के लिए परिरक्षित रहती है और जो है वही बनी रहती है।

गति की परमता के विपरीत विराम सापेक्ष होता है और उसे मृत और जड़ अवस्था नहीं समझ लेना चाहिए। कोई काय किसी अन्य काय की सापेक्षता में ही विरामावस्था में होता है, पर पदार्थ की सामान्य गतिमयता में वह अनिवार्यतया सम्मिलित रहता है। हमारा मकान जिसमें हम रहते हैं, पृथ्वी की धुरी के चारों ओर और पृथ्वी के साथ सूर्य के चारों ओर और इसी प्रकार अन्य क्रमों में घूमता रहता है। इसके अलावा कोई काय जब विरामावस्था में रहता है, उस समय भी उसके अन्दर भौतिक, रासायनिक तथा अन्य प्रक्रियाएं निरन्तर चालू रहती हैं।

पदार्थ की गति शाश्वत और परम है जबकि विराम अस्थायी और सापेक्ष है, वह गति का एक क्षण मात्र है।

पदार्थ की गति के सार्वभौम रूप को मार्क्सवाद से पहले के भौतिकवादियों ने भी स्वीकार किया था, पर उन्होंने उसकी संकुचित, अधिभौतिक ढंग से

१. एंगेल्स, ड्यूहरिंग मतखंडन; १९५९, पृष्ठ ८६।

पदार्थ की गति के रूप

व्याख्या की थी। उन्होंने गति को परिवर्तन के साथ, कार्यों के विकास के साथ सम्बद्ध नहीं किया था। उन्होंने प्रायः उसे अवकाश मे यांत्रिकीय विस्थापन मात्र समझा था।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद गति के रूपो की अनेकता को मात्र एक यांत्रिकीय अथवा कोई अन्य रूप मान कर छोड नही देता, बल्कि गति को परिवर्तन के साथ, कार्यों के विकास के साथ, नवीन के उदय और पुरातन के अवसान के साथ, सम्बद्ध करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद गति के बारे मे यह समझता है कि वह कोई ऐसा सामान्य परिवर्तन है जो विश्व मे हो रही सभी प्रक्रियाओं को अपने मे समाता है। सरलतम यांत्रिकीय विस्थापन से लेकर मानव चिन्तन जैसी अति जटिल प्रक्रिया तक उसकी परिधि मे आते हैं।

गति के अनेक प्रकार और रूप हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विज्ञान की उपलब्धियो का उपयोग करते हुए गति के प्रकारो का वर्गीकरण करता है। वह बुनियादी रूपो को प्रमुखता प्रदान करता है। एंगेल्स ने पदार्थ की गति के रूपों का पहला वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। बुनियादी रूपों मे उन्होंने निम्नांकित को शामिल किया था: यांत्रिक, भौतिक, रासायनिक, जैविक और सामाजिक। इसके अलावा उन्होंने प्रत्येक को पदार्थ के किसी न किसी निश्चित रूप के साथ सम्बद्ध किया था—यांत्रिक को आकाशीय और पार्थिव पिण्डों के साथ, भौतिक को परमाणुओं के साथ, आदि।

गति के मुख्य रूपो के सम्बध मे एंगेल्स के वर्गीकरण का वैज्ञानिक मूल्य आज भी कायम है, पर विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियो ने इन रूपो के हमारे ज्ञान को बहुत ज्यादा समृद्ध किया है।

एक उदाहरण ले लें। १९वी सदी मे यांत्रिक गति के बारे में मुख्य समझदारी यह थी कि वह अवकाश मे स्थूल पिण्डों का विस्थापन है। पर अब यह प्रमाणित हो चुका है कि अवकाशीय विस्थापन मौलिक कणों से लेकर जीवित शरीरो तक की सभी भौतिक विरचनाओं मे अन्तर्निहित है। यांत्रिक गति को पदार्थ के केवल एक रूप, स्थूल रूप के साथ—अर्थात् दृश्य कायों के साथ सम्बद्ध नही करना चाहिए। यह गति हर प्रकार के पदार्थ मे, गति के प्रत्येक अन्य रूप मे अन्तर्निहित होती है, यद्यपि अन्य, गैर-यांत्रिक रूपों मे उसका अधीन अथवा उपगामी स्वरूप होता है।

पदार्थ की गति के भौतिक रूप सम्बधी हमारे विचारों को, मुख्यतया भौतिकी द्वारा परमाणु के गहन भेदन से, बड़ा बल प्राप्त हुआ है। वैज्ञानिकों ने भौतिक गति की अन्तर-परमाणविक और अन्तर-नाभिकीय गति जैसी अब तक अज्ञात किस्मों का पता लगाया और उनका अध्ययन किया है। एंगेल्स ने गति के भौतिक रूप को मुख्यतया आण्विक प्रक्रियाओ के साथ सम्बद्ध किया

यंत्रिक प्रकृति से अलग करते हैं। जीवों में अन्तर्निहित यांत्रिकीय, भौतिकीय तथा रासायनिक प्रक्रियाओं का स्वतंत्र महत्व नहीं है और वे शरीर के अन्दर की मुख्य प्रक्रिया—उपापचय—के अधीनस्थ हैं।

अतः गति की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी धारणा का सारतत्व है : गति के परम तथा सार्वभौम स्वरूप को स्वीकार करना और साथ ही प्रत्येक रूप की गुणात्मक विशिष्टता का, इन रूपों के एक-दूसरे में रूपान्तरित होने की क्षमता का, तथा उच्चतर रूपों के निम्नतर में कदापि परिवर्तित न हो सकने का यथोचित ध्यान रखना।

हम पहले कह चुके हैं कि पदार्थ की जड़ या अचल अवस्था असंभव है, पदार्थ और गति अभिन्न हैं। किन्तु आज भी कुछ लोग हैं जो पदार्थ को गति से अलग करने की बात सोचते हैं। वे पदार्थ और गति का सम्बंध-विच्छेद कराते हैं।

पदार्थ और गति का सम्बंध-विच्छेद असंभव है

इस सम्बध में विश्व की ऊष्मा-क्षय के सिद्धान्त के समर्थकों का नाम लिया जा सकता है जो विज्ञान के निष्कर्षों को तोड़-मरोड़ कर पेश करते हुए यह भविष्यवाणी करते हैं कि दुनिया का "अन्त" होनेवाला है, हर अस्तित्वमान वस्तु "मरनेवाली" है। यह सिद्धान्त बहुत दिन पहले प्रमाणित किये जा चुके इस तथ्य को आधार बना कर अग्रसर होता है कि ऊर्जा के सभी रूप आसानी से ताप ऊर्जा में परिवर्तित हो सकते हैं, किन्तु इसकी उलटी प्रक्रिया अधिक जटिल है और इसके लिए ऊर्जा के अतिरिक्त व्यय की दरकार है। यह भी सही है कि कोई भी तप्त काय अगर निम्न तापमान वाले परिवेश में रख दिया जाय, तो वह ठंडा हो जाता है, अपना ताप उस परिवेश को दे देता है। इस सिंद्धान्त को पूरे विश्व पर लागू करते हुए, ये सिद्धान्तशास्त्री यह निष्कर्ष निकालते हैं कि एक ऐसा वक्त आयेगा जब आकाश के प्रदीप्त पिण्ड अपनी सारी गर्मी ठंडे ब्रह्माण्डीय अन्तरिक्ष को दे देंगे। उनके मतानुसार, ऐसा होने पर, विश्व अन्ततोगत्वा "ताप सन्तुलन" अथवा "ताप क्षय" की अवस्था में पहुंच जायगा, वह ठण्ड से जमे पिण्डों का एक विराट पुंज बन जायगा। उधर पदार्थ की गति के सभी रूप ताप ऊर्जा में परिवर्तित हो जायेंगे और आगे रूपान्तरित नहीं हो सकेंगे, और इस प्रकार पदार्थ की गति की क्षमता समाप्त हो जायगी।

एंगेल्स[१] ने इस मत की आलोचना की थी और उसका खण्डन कर दिया था, पर कुछ भावनावादी और धर्मपंथी आज भी इसकी हिमायत करते हैं। वे विश्व के दुर्निवार "अन्त" के "प्रमाण" के रूप में इसका इस्तेमाल करते हैं।

---

१. देखिए : एंगेल्स, प्रकृति का द्वन्द्व, मास्को, १९६४, पृष्ठ ३८-३९।

विज्ञान की दृष्टि से "विश्व की ताप क्षय का सिद्धान्त" सर्वथा आधारहीन है वह ऊर्जा के सधारण और रूपान्तरण के उस नियम की उपेक्षा करता है जिसके अनुसार गति केवल परिमाण में ही नही, वरन् गुण मे भी अनश्वर है, अर्थात् गति केवल एक रूप में नहीं रह सकती। न ही पदार्थ अचल अवस्था में रह सकता है, अर्थात ऐसी अवस्था मे रह सकता है जिसमें गति का एक रूप से दूसरे में परिवर्तित होना बन्द हो जायगा। पदार्थ की गतियों का रूपान्तरण उतना ही स्वाभाविक और नियमाधीन है जितना कि रूपान्तरण के दौरान गति का परिमाण में अक्षुण्ण बना रहना'

खगोल विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियां बताती हैं कि विश्व में पदार्थ चक्र एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता। ब्रह्माण्डीय आकाश के प्रदेशों में पदार्थ और ऊर्जा बिखरते जाते हैं और कुछ में वे पुनः सकेन्द्रित हो जाते हैं जिनसे नये आकाशीय पिण्डों का जन्म होता है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के सदस्य, विक्तर अम्बार्तसुम्यान ने सिद्ध किया है कि नये सितारों का बनना जारी है, और यह बनना केवल एकाकी सितारों के रूप में ही नहीं, पूरे के पूरे समूहों के रूप में भी हो रहा है। इससे प्रमाणित होता है कि पदार्थ की अचल अवस्था नहीं हो सकती।

पर हो सकता है कि गति का अपने-आपमें अलग अस्तित्व हो, अर्थात् बिना किसी भौतिक वाहन के अस्तित्व हो?

ऊर्जावाद (इनर्जीटिज्म) के समर्थक यही कहते हैं। ऊर्जावाद दर्शन और प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र का एक नया पथ है जिसका उदय १९वीं सदी के अन्त और २०वीं के आरम्भ मे हुआ। ऊर्जावादी पदार्थ को गति अथवा ऊर्जा मात्र बना देते हैं। यह पदार्थ को नहीं मानता है, और कुछ नहीं। यह विशुद्ध भाववाद है।

ऊर्जावाद के वर्तमान हिमायती अपने भाववादी मत का खास तौर पर जोर-शोर से ढोल पीटते हैं। ये विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों को अपूरा दिखा कर पदार्थ के "उच्छेद" की बातें करते हैं, यह कहते हैं कि पदार्थ तो विशुद्ध ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरणार्थ, अपनी बात प्रमाणित करने के लिए वे द्रव्य के दो मौलिक कणों (इलेक्ट्रोन और पोजिट्रोन) के फोटोनों में, जो विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र (प्रकाश) के कण हैं, रूपान्तरण की भाववादी ढंग से व्याख्या करते हैं। ऊर्जावाद के अनुयायी प्रकाश को पदार्थ रहित "विशुद्ध" ऊर्जा और द्रव्य को पदार्थ का एकमात्र रूप मान कर यह गलत निष्कर्ष निकालते हैं कि इस मामले में पदार्थ विलुप्त होकर ऊर्जा बन जाता है। पर फोटोन भी क्षेत्र का एक कण है, यह एक विशेष प्रकार का पदार्थ है। इलेक्ट्रोन और पोजिट्रोन का फोटोन में बदलना पदार्थ का एक

मे रूपान्तरण नहीं, बल्कि पदार्थ के एक प्रकार (द्रव्य) का दूसरे प्रकार (क्षेत्र) मे रूपान्तरण है।

आधुनिक भौतिकी की उपलब्धियों ने ऊर्जावाद का दिवालियापन पूरी तरह से साबित कर दिया है। खासकर महान भौतिकीविद अल्बर्ट आइंस्टाइन (१८७९-१९५५) द्वारा इस सदी के आरम्भिक काल मे अन्वेषित संहति और ऊर्जा के परस्पर सम्बंध के नियम से उसका पूर्णतया खडन हो गया। इस नियम के अनुसार किसी काय की संहति सदा ऊर्जा के एक तदनुरूप परिमाण से जुडी होती है। अपेक्षाकृत लघु रफ्तारों मे इस परस्पर-संबंध को प्रमाणित करना कठिन होता है। परन्तु कोई काय जब प्रकाश के निकटस्थ वेग से चलता है (मौलिक कणों में नाभिकीय रूपान्तरणों के दौरान ऐसा ही वेग होता है), तो उसकी संहति में वृद्धि का पता चलता है। वेग के आधार पर संहति बदला करती है, यह बात प्रयोगो द्वारा सिद्ध की जा चुकी है। पर संहति पदार्थ की माप है, जबकि ऊर्जा गति की माप है। फलत. यह नियम पदार्थ और गति की एकता को, उनके सीधे सम्बंध को प्रकट करता है।

उपरोक्त बातो से स्पष्ट हो जाता है कि गति के बिना पदार्थ नहीं होता और न पदार्थ से पृथक "विशुद्ध" गति होती है। पदार्थ और गति अभिन्न हैं।

३. देश और काल

अपने चारों ओर की चीजों को गौर से देखने पर हम पाते हैं कि उनमें से प्रत्येक न सिर्फ गतिमान है, बल्कि प्रत्येक का देश मे विस्तार है, अथवा यदि सरल शब्दो मे इसे कहा जाय तो प्रत्येक के आयाम भी होते हैं। वस्तुए बडी हों या छोटी, पर सब मे लम्बाई, चौडाई और ऊचाई होती है, वे एक खास स्थान घेरती हैं, और उनका घनमान होता है। प्रकृति के अन्दर वस्तुओं के आयाम ही नही होते, बल्कि वे एक-दूसरे की सापेक्षता मे एक खास ढग पर स्थित होती हैं। उनमे से कुछ औरो की अपेक्षा हमसे दूर अथवा नजदीक, ऊची या नीची, दायें या बायें होती हैं।

देश और काल की दार्शनिक धारणा

देश की दार्शनिक परिकल्पना भौतिक कायो का देश मे होने, निश्चित स्थान घेरने, और दुनिया की अन्य वस्तुओ के सबध मे खास ढग से स्थित होने के सार्वत्रिक गुणधर्म को प्रतिबिम्बित करती है।

वस्तुओ का देश मे न सिर्फ अस्तित्व है, बल्कि वे एक निश्चित क्रम से एक दूसरे का अनुगमन भी करती हैं। कुछ वस्तुओं का स्थान कुछ अन्य वस्तुए ले लेती हैं, फिर वे वस्तुए भी दूसरी वस्तुओ द्वारा विस्थापित हो जाती हैं। इसी

तरह का क्रम चलता रहता है। हर वस्तु में कालावधि होती है, आरम्भ और इति होती है और वह अपने विकास के दौर में खास मंजिलों या अवस्थाओं से होकर गुजरती है। कुछ वस्तुएं अभी जन्म ले रही हैं, कुछ जीवन की एक अवधि बिता चुकी हैं, और कुछ विनाश की प्रक्रिया में हैं।

काल की दार्शनिक परिकल्पना भौतिक प्रक्रियाओं के एक निश्चित क्रम में एक-दूसरे का अनुगमन करने के, कालावधि वाली होने के और मंजिलों में विकास करने के सार्वत्रिक गुणधर्म को प्रतिबिम्बित करती है।

देश और काल पदार्थ के अस्तित्व के सार्वत्रिक रूप हैं। लेनिन ने कहा था कि "दुनिया में गतिमान पदार्थ के अलावा कुछ नहीं, और गतिमान् पदार्थ देश और काल के सिवा अन्य किसी ढंग से गतिमान नहीं हो सकता।"[1]

देश और काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है उनकी वस्तुगतता, अर्थात मानव मस्तिष्क से उनका स्वतंत्र अस्तित्व रखना। यह स्वाभाविक है, क्योंकि वस्तुगत रूप से अस्तित्वमान पदार्थ के मुख्य रूपों की हैसियत से उन्हें वस्तुगत होना ही चाहिए।

भाववाद देश और काल की वस्तुगतता से इनकार करता है। मनोगत-वादी भाववादी उन्हें मनुष्य की चेतना की उपज समझते हैं, और वस्तु-गतवादी भाववादी कहते हैं कि वे परम भावना या विश्व-आत्मा से उत्पन्न होते हैं।

अपनी पुस्तक भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना में लेनिन ने देश और काल के सम्बध में भाववादी मतों के सर्वथा निराधार होने की बात को पूर्णतया प्रमाणित कर दिया। उन्होंने लिखा: भाववादी कहते हैं कि देश और काल मानव की शुद्ध बुद्धि की उपज मात्र है। मगर उनकी इस बात को हम मान लें, तो विज्ञान द्वारा सिद्ध इस अकाट्य तथ्य का क्या बनेगा कि पृथ्वी मनुष्य के प्रगट होने के बहुत समय पहले से, देश और काल के रूप में मौजूद थी। पृथ्वी अरबों वर्ष से है, जबकि मनुष्य को आये कुछ लाख वर्ष ही हुए हैं। स्पष्ट है कि इसके बाद देश और काल के मनुष्य अथवा किसी रहस्य-पूर्ण परम विचार या सार्वभौम शुद्ध बुद्धि द्वारा "सर्जित" किये जाने की मान्यता के लिए कोई गुंजायश नहीं रह जाती है।

देश की अनन्तता को निर्दिष्ट करती हैं। इसका अर्थ हुआ कि उनका न कभी क्षय था, न कभी हानि होगी। आधुनिक विज्ञान बाह्य अवकाश के सुदूर प्रदेशों का भेदन करता है और काल की विराट अवधियों का अध्ययन करता है। उदाहरणार्थ, खगोल वैज्ञानिक शक्तिशाली रेडियो दूरबीनों की मदद से पृथ्वी से अरबों प्रकाश-वर्ष दूर भौतिक पिण्डों का अध्ययन करते हैं। तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड के वेग से चलने वाला प्रकाश ९.५ × १०¹² किलोमीटर की दूरी एक अरब प्रकाश-वर्ष में तय करता है। ये दूरियां विराट हैं। पर अनन्त विश्व के मुकाबले में वे प्राय: कुछ भी नहीं हैं। इसी तरह विश्व की शाश्वतता के मुकाबले में अरबों वर्षों में मापी जाने वाली विराट कालावधियां, जिनका आज का भूगर्भ विज्ञान अध्ययन करता है, प्राय नगण्य हैं।

पदार्थ के अस्तित्व के रूप की हैसियत से देश के तीन आयाम हैं। इसका अर्थ हुआ कि हर भौतिक काय के तीन आयाम हैं—लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई। तदनुसार काय तीन लम्ब दिशाओं में चल सकते हैं।

पर देश के विपरीत काल का केवल एक आयाम होता है। इसीलिए सभी कार्यों का काल में केवल एक दिशा में विकास होता है—अतीत से भविष्य की ओर। काल उलटा नहीं चल सकता, वह केवल आगे की ओर बढ़ता है। उसकी गति को पीछे मोड़ना, अतीत को वापस लाना असम्भव है।

देश और काल के ये ही सबसे आम गुणधर्म हैं।

पदार्थ के अस्तित्व के सार्वभौम रूपों में देश और काल की इन दार्शनिक धारणाओं को ठोस भौतिक वस्तुओं के देश-कालीन गुणधर्म सम्बन्धी वैज्ञानिक धारणाओं से अलग करके विचार करना चाहिए।

विज्ञान में देश और काल की धारणा

विज्ञान के आगे बढ़ने के साथ ये धारणाएं भी आगे बढ़ती हैं और विशिष्टता प्राप्त करती हैं, देश और काल के नये गुणधर्मों का पता चलता है और इन गुणधर्मों का कायों के भौतिक स्वरूप पर निर्भर होना अधिक निश्चयपूर्वक प्रमाणित होता है।

शास्त्रीय यांत्रिकी ने देश और काल की वस्तुगतता को स्वीकार करते हुए इन्हें पदार्थ से पृथक कर दिया था। उसने इन्हें परम एक-रूप और अपरिवर्तनशील मान लिया था। उदाहरण के लिए, शास्त्रीय यांत्रिकी के संस्थापक आइजक न्यूटन (१६४२-१७२७) ने देश की कल्पना एक विराट पात्र के रूप में की थी जिसमें सारी चीजें निश्चित क्रम से सजाई हुई हैं, पर स्वयं इन चीजों का देश के साथ मानो कोई सम्बन्ध नहीं है।

न्यूटन के मतानुसार विश्व के सभी बिन्दुओं के देशीय गुणधर्म एक जैसे हैं और वे यूक्लिड के रेखागणित के अनुरूप [illegible] हैं। न्यूटन का

मान्य था कि यूक्लिड का रेखागणित ही रेखागणित का एकमात्र संभव और परम रूप था।

काल के बारे में भी न्यूटन के विचार इसी तरह अधिभौतिकीय थे।

रूसी गणितज्ञ निकोलाई लोबाचेव्स्की (१७९२-१८५६) ने एक नया रेखागणित प्रस्तुत किया जो यूक्लिड के रेखागणित से भिन्न था। इसने देश सम्बंधी अधिभौतिकीय मतों का खण्डन किया और पिण्डों के देशीय गुणधर्मों के बारे में मनुष्य के विचारों को आगे बढ़ाया। लोबाचेव्स्की ने निष्कर्ष निकाला कि देश के गुणधर्म विश्व के विभिन्न प्रदेशों में बिलकुल एक जैसे नहीं होते, बल्कि वे भौतिक पिण्डों के स्वरूप पर, उनके अन्दर चल रही प्रक्रियाओं पर अवलम्बित होते हैं। उनको पूरा विश्वास था कि प्रकृति में ऐसे काय मौजूद हैं जिनके देशीय गुणधर्म यूक्लिड के रेखागणित के चौखटे में फिट नहीं बैठते। इस आधार पर उन्होंने इन नये गुणधर्मों की खोज की और अन्य बातों के अतिरिक्त यह प्रमाणित किया कि त्रिकोण के कोणों का जोड़ १८० डिग्री नहीं होता जैसा कि यूक्लिड का रेखागणित बताता है, बल्कि उससे कम होता है।

अल्बर्ट आइंस्टाइन द्वारा प्रस्तुत सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्राकृतिक विज्ञान में देश और काल का आधुनिक सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त देश और काल के आपसी आंगिक सम्बंध को और साथ ही गतिमान पदार्थ के साथ उनके आंगिक सम्बंध को प्रकट करता है।

सापेक्षवाद का विशेष सिद्धान्त पिण्डों के देश-कालीय गुणधर्मों का उनके स्पन्दन के वेग पर निर्भर होना सिद्ध करता है। अपेक्षाकृत कम वेगों पर इस निर्भरता का पता पाना असम्भव है, क्योंकि देश-कालीय गुणधर्म ऐसे पैमाने के ऊपर परिवर्तित होते हैं जिसे व्यवहारतः प्रकाश के निकटस्थ वेगों पर ही ज्ञात किया जा सकता है।

सापेक्षवाद का सिद्धान्त बतलाता है कि प्रकाश के निकटस्थ रफ्तारों पर सचल पिण्ड की लम्बाई विरामशील पिण्ड की तुलना में रफ्तार बढ़ने के साथ कम होती जाती है। इसके अलावा काल अपरिवर्त्य नहीं रहता। रफ्तार की वृद्धि के साथ काल का पथ मन्द हो जाता है। सापेक्षवाद के सिद्धान्त से उत्पन्न होने वाले ये निष्कर्ष प्रयोगों द्वारा सही सिद्ध किये जा चुके हैं। उदाहरण के लिए, मेसोन (परमाणविक न्यूक्लीयस के विखण्डन के दौरान पैदा होने वाला एक मौलिक कण) की आयु अत्यल्प होती है, पर यदि उसकी रफ्तार बढ़ा दी जाय तो मेसोन का "जीवन काल" बढ़ जाता है।

सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार देश और काल स्वयमेव नहीं बदलते, वे अपने अभिन्न अन्तस्सम्बंध को लेकर ही परिवर्तित होते हैं। यह अन्तस्सम्बंध इतना दृढ़ है कि वे एक अटूट समष्टि बन जाते हैं और काल मानो एक

चौथे आयाम की—देश के तीन आयामों के अतिरिक्त एक और आयाम की—भूमिका ग्रहण कर लेता है। सापेक्षवाद का सिद्धान्त देश और काल के आंगिक सम्बन्ध को एक सर्वथा गणितीय अभिव्यक्ति भी प्रदान करता है।

सापेक्षवाद के सामान्य सिद्धान्त ने सिद्ध किया है कि देश और काल के गुणधर्म पदार्थ की सहतियों की मौजूदगी पर निर्भर करते हैं। विशाल सहति और भारी गुरुत्वाकर्षण-शक्ति वाले काय अपने निकट के अवकाश में एक परिवर्तन पैदा करते हैं भौतिकविदों के शब्दों में वक्रता पैदा करते हैं। काल भी तदनुसार परिवर्तित होता है—वह मन्द पड़ जाता है।

सापेक्षवाद के सिद्धान्त के निष्कर्ष प्रथम दृष्टि में देश और काल के गुणधर्मों की हमारी परम्परागत धारणाओं के विपरीत ज्ञात होते हैं। पर वे सत्य हैं और वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा उनकी पुष्टि हो चुकी है। उनका असामान्य स्वरूप हमें सिर्फ यह बतलाता है कि ज्ञान-क्षेत्र में मनुष्य को परम्परागत धारणाओं में ही अपने को आबद्ध नहीं रखना चाहिए, वरन् आगे बढ़ना चाहिए, और गहरे उतरना चाहिए तथा पदार्थ जगत् की सम्पूर्ण जटिलता एवं विविधता का उद्घाटन करना चाहिए।

हमने देखा कि देश और काल सम्बधी धारणाएं परिवर्तित हुई हैं। पर इस परिवर्तनशीलता से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की उनकी वस्तुगत विद्यमानता सम्बधी प्रस्थापनाओं पर कोई आंच नहीं आती है। इसके विपरीत, विज्ञान की हर सफलता देश और काल की वस्तुगतता तथा गतिमान् पदार्थ के साथ उनके अभिन्न सम्बध का नया प्रमाण पेश करती है।

अध्याय ५

पदार्थ और मस्तिष्क

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि पदार्थ क्या है और वह किन रूपों मे मौजूद है। हमने यह भी ज्ञात किया है कि पदार्थ मनुष्य के मस्तिष्क से परे और उससे स्वतंत्र विद्यमान है। अब हम यह देखेंगे कि मस्तिष्क या चेतना क्या है ?

१. मस्तिष्क — अति-संगठित पदार्थ का गुणधर्म

चेतना के स्वरूप पर विचार करने से पहले इस बात का उल्लेख करना होगा कि मनुष्य की चेतना अथवा आत्मिक सक्रियता में उसके विचार और आवेग, इच्छाशक्ति और चरित्र, संवेदनाएं, भावनाएं, मत, आदि शामिल हैं।

एक लम्बा और कठिन मार्ग तय करने के बाद ही विज्ञान तथा दर्शन इन व्यापारों की सही-सही परिभाषा कर सके। आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध किया है कि चेतना पदार्थ के दीर्घ विकास की उपज है। पदार्थ: प्रकृति सदा से रहे हैं, पर मनुष्य भौतिक जगत के अपेक्षाकृत बाद के विकास का परिणाम है। पदार्थ का अरबों वर्षों तक विकास चलता रहा तब जाकर सोचने की क्षमता रखनेवाला प्राणी, यानी मनुष्य पैदा हुआ। चेतना प्रकृति की उपज है, यह पदार्थ का एक गुणधर्म है, पर पूरे के पूरे पदार्थ का नहीं बल्कि केवल मानव मस्तिष्क जैसे अति संगठित पदार्थ का गुणधर्म है।

पदार्थ के विकास के फलस्वरूप उत्पन्न होने के कारण चेतना का पदार्थ के साथ अभिन्न सम्बंध है। चिन्तनशील पदार्थ यानी मस्तिष्क के साथ जिसका कि वह गुण है, उसका अभिन्न सम्बंध है। रूसी दैहिकीविद इवान सेचेनोव (१८२९-१९०५) और इवान पावलोव (१८४९-१९३६) ने सिद्ध किया कि सारा मानसिक कार्यकलाप निश्चित भौतिक प्रक्रियाओं पर, जिन्हें हम दैहिकीय प्रक्रियाएं कहते हैं, और जो मानव मस्तिष्क में, खासकर उसकी बाहरी रचना में, चलती रहती हैं, आधारित है। मस्तिष्क के सामान्य कार्यकलाप में अव्यवस्था आ जाने से, बीमारी, आघात या अन्य कारणों से मस्तिष्क पर आंच आने से, मनुष्य के चिन्तन में भारी अव्यवस्था पैदा हो जाती है, वह पागलपन का शिकार हो जाता है।

अनेकानेक प्रयोगों से प्राप्त सूचना के आधार पर पावलोव ने यह निष्कर्ष निकाला कि "आत्मिक कार्यकलाप मस्तिष्क की एक खास संहति के दैहिक व्यापार का परिणाम है...।"

उच्चतर स्नायविक कार्यकलाप का पावलोव का सिद्धान्त पदार्थ पर मस्तिष्क की निर्भरता सम्बंधी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मौलिक प्रस्थापना की पुष्टि करता है। *वह निश्चयपूर्वक प्रमाणित करता है कि मस्तिष्क तथा उसके* अन्दर की दैहिकीय प्रक्रियाएं मानव चेतना का उपस्तर (आधार) हैं। ये वे भौतिक अवस्थाएं हैं जिनके बिना चिन्तन असम्भव है।

पर चेतना की क्रियाशीलता के लिए अकेले मानव मस्तिष्क ही काफी नहीं है। वह स्वयमेव, चारों ओर की दुनिया के प्रभाव से स्वतंत्र होकर, चिन्तन नहीं कर सकता।

पावलोव ने कहा था कि मस्तिष्क प्यानो बाजा नहीं है जिससे कि आप कोई स्वर निकाल लें, जो चाहे वह संगीत बजा लें। चेतना मनुष्य के भौतिक परिवेश के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है, और वह इस परिवेश के प्रभाव के बिना कार्य नहीं कर सकती। रंगों, गंधों, ध्वनियों तथा अन्य गुणधर्मों से युक्त और वस्तुगत रूप में मौजूद वस्तुओं के प्रभाव से ही मस्तिष्क के अन्दर दृश्य, ध्वनि, गंध आदि की संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं। ये वस्तुएं तथा इनके गुणधर्म ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालते हैं, फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला उद्दीपन स्नायु मार्गों से मस्तिष्क के गोलार्धों की ऊपरी त्वचा में पहुंचती है जहां अलग-अलग संवेदनाएं पैदा होती हैं। संवेदनाओं के आधार पर अनुभूतियां, भावनाएं, धारणाएं एवं विचार के अन्य रूप तैयार होते हैं। ये सब के सब परछाइयां मात्र हैं—वस्तुगत रूप से मौजूद वस्तुओं और व्यापारों के न्यूनाधिक हूबहू प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इनसे परे ये परछाइयां मानव चेतना में पैदा नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक जगत को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता मस्तिष्क के गुणधर्म की हैसियत से चेतना की अपनी खास विशेषता है।

मनुष्य के मस्तिष्क में रहने वाली परछाइयां केवल वास्तविक रूप से विद्यमान वस्तुओं और व्यापारों की ही नहीं होतीं। वे उन चीजों की परछाइयां भी हो सकती हैं जो अभी अस्तित्व में नहीं आती हैं। मनुष्य किसी भावी इमारत, किसी भावी मशीन अथवा किसी भावी सामाजिक व्यवस्था के बिंबों का सृजन कर सकता है। किन्तु ये बिंब विद्यमान किसी न किसी वस्तु के आधार पर ही पैदा होते हैं। वे अपने चारों ओर की दुनिया के ज्ञान के आधार पर आधारित होते हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मानव की चेतना अति संगठित पदार्थ, यानी मस्तिष्क का एक विशेष गुणधर्म है जिसके जरिए वह भौतिक वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करता है।

प्राकृत भौतिकवाद और भावनावाद निराधार हैं

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के विपरीत प्राकृत भौतिकवादी[1] पदार्थ और चेतना को एक मान लेते हैं। उदाहरण के लिए, वोग्ट ने कहा कि विचार मस्तिष्क से रस-रस कर निकलता है, मस्तिष्क और विचार का सम्बंध करीब-करीब वही है जो पित्त और गुर्दे का है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद चेतना की प्राकृत भौतिकवादी समझ को गलत मानता है और विज्ञान की उपलब्धियां भी यही कहती हैं। यह सही है कि चेतना का निश्चित भौतिक और दैहिकीय प्रक्रियाओं से सम्बंध है, पर इन क्रियाओं को ही चेतना मान लेना ठीक नहीं है। विचार पदार्थ से अभिन्न है, मस्तिष्क से अभिन्न है, पर विचार और पदार्थ एक नहीं मान लिये जा सकते। लेनिन ने कहा था कि विचार को भौतिक मानना ऐसा गलत कदम है जिससे भौतिकवाद और भावनावाद का घोलमट्ठा हो जाता है।

विचार कोई चीज नहीं है, उसे देखा नहीं जा सकता या उसका फोटो नहीं लिया जा सकता। विचार दुनिया मे वस्तुओ और व्यापारो की परछाई है। वह भावना मूलक परछाई है, भौतिक नहीं। वह यथार्थ का सीधा-सादा चित्र नहीं है, उसकी निर्जीव प्रतिलिपि नहीं है, बल्कि मानव मस्तिष्क मे समुचित रूप से रूपान्तरित यथार्थ है। मार्क्स ने विचार के सम्बंध मे लिखा था कि "विचार इसके सिवा और कुछ नहीं है कि भौतिक संसार मानव मस्तिष्क मे प्रतिबिम्बित होता है और चिन्तन के रूपो मे बदल जाता है।"[2] यथार्थ, मनुष्य को प्रभावित करते हुए, सदा विचार को अधिशासित करने वाले विशेष नियमो, जैसे विश्लेषण, संश्लेषण, सामान्यीकरण आदि, के क्रियाकलाप से होकर गुजरता है। जो चीज मानव को पशु से अलग करती है, वह उसकी चिन्तन-क्षमता है, अर्थात यथार्थ को सक्रिय रूप से प्रतिबिम्बित करने, उस पर असर डालने, अपने सामने कोई लक्ष्य रखने और उनकी प्राप्ति के लिए काम करने की क्षमता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार यह तर्क कि चेतना या विचार समग्र पदार्थ की विशेषता है, भारी भूल है। उदाहरण के लिए, स्पिनोज़ा ने कहा

---

१. प्राकृत भौतिकवाद वह दार्शनिक पथ है जो जर्मनी मे १९वीं सदी के मध्य में चला था।

२. मार्क्स, पूंजी, भाग १, मास्को, १९६४, पृष्ठ २७।

था कि चेतना समस्त प्रकृति की उसी तरह एक अनिवार्य विशेषता (गुणधर्म) है जिस तरह कि आयतन और दैर्घ्य।

यह मत गलत है, क्योंकि वह अजैव और जैव पदार्थ (खासकर चिन्तन करने वाले पदार्थ) के गुणात्मक भेदों को नजरअन्दाज कर देता है। लेनिन के मतानुसार, स्पष्ट रूप मे प्रकट संवेदना केवल पदार्थ के उच्चतर, जैव रूपो मे ही सम्बन्धित होती है, जबकि समग्र पदार्थ में केवल प्रतिबिम्बन का गुणधर्म ही, अर्थात् बाह्य प्रभावों से निश्चित ढंग से प्रभावित होने की क्षमता मात्र ही, विद्यमान होता है। एक हद तक यह गुणधर्म संवेदना के ही सदृश होता है, पर यह वही चीज नहीं है। इसलिए चेतना को समग्र पदार्थ का गुणधर्म नहीं माना जा सकता।

साइबर्नेटिक्स नामक नये विज्ञान की सफलताओं ने इस प्रयास के लिए प्रेरणा उत्पन्न की है कि अजैव वस्तुओं में भी चिन्तन क्षमता का होना स्वीकार किया जाना चाहिए। यह विज्ञान विभिन्न नियंत्रण प्रणालियों, नियंत्रण प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, और इसने असाधारण मशीनें तैयार की हैं। कुछ मशीनें विमानों, ट्रेनों अथवा जटिल उत्पादन-क्रियाओं को निर्देशित कर सकती हैं। कुछ अन्य एक भाषा से दूसरी में अनुवाद का, गणित के पेचीदे सवालों को हल करने का और ऐसे ही अन्य कार्य कर सकती हैं। ये मशीनें बाहर से सूचना ग्रहण करती हैं, उन्हें "याद करती" हैं, उनका विश्लेषण करती हैं और सर्वोत्तम हल बताती हैं। इसके आधार पर कुछ वैज्ञानिक स्वचालित मशीनों मे संवेदना अनुभूत करने और यहां तक कि सोचने की क्षमता होने की बात भी करने लगे हैं.

पर सर्वांगपूर्ण से सर्वांगपूर्ण मशीन भी संवेदना क्षमता से रहित होती है, उसमे सोचने की क्षमता होने की तो बात ही दूर रही। चिन्तन तो केवल मनुष्य का गुण है जो पदार्थ जगत और खास कर सामाजिक परिवेश के लम्बे विकास की उपज है। समूची प्रकृति के अन्दर मनुष्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। वह अपने चारो ओर के यथार्थ का सज्ञान प्राप्त करता है, उस पर प्रभाव डालता है और उसे बदलता है। उसमे असीम सृजनात्मक क्षमता है और वह संस्कृति की बड़ी-बड़ी निधियां उत्पन्न कर सकता है। मशीन मनुष्य के चतुर मस्तिष्क और दक्ष हाथों द्वारा निर्मित होती है। मनुष्य पहले से ही जानता है कि मशीन क्या काम करेगी। वही उसकी "क्षमताओं" का, वे कितनी ही संश्लिष्ट और विस्मयजनक क्यों न हो निर्माता होता है। यह क्षमता मशीन में कहां से आ सकती है। मशीन इस प्रकार का कोई काम नहीं कर सकती।

साधारण मशीन मनुष्य के शारीरिक श्रम को हलका करती है। साइबर्नेटिक मशीन उसके मानसिक श्रम को हलका करती है और मस्तिष्क को

ऐसे पकाने और उबाने वाले कार्यों के भार से मुक्त करती है जिनमें सृजनात्मक श्रम की जरूरत नहीं होती। यह मनुष्य की बौद्धिक क्षमता का विस्तार करती है और उसे उन्नत करती है। किन्तु साइबर्नेटिक विज्ञान कितना ही उन्नत क्यों न हो जाय, वह मानव के चिन्तन का वाहन कदापि नहीं बन सकेगा और सामाजिक प्राणी के रूप में मानव का स्थान नहीं ग्रहण कर सकेगा। मशीन मशीन ही रहेगी, यह मानव के समक्ष उपस्थित उत्पादन एवं सज्ञान-प्राप्ति सम्बधी समस्याओं को हल करने का साधन मात्र रहेगी।

अतः हमें चेतना को किसी भी अवस्था में पदार्थ नहीं समझ लेना चाहिए।

भावनावादी यह मानते हैं कि चेतना का अस्तित्व पदार्थ से स्वतंत्र है। इस मान्यता का आधार वे इस तथ्य को बनाते हैं कि चेतना भावनामूलक है, भौतिक नहीं। उनका तर्क यों चलता है—यदि विचार भावनामूलक है, यदि वह कोई चीज नहीं है और मानव मस्तिष्क में अगर उसे पाया नहीं जा सकता, तो वह पदार्थ या मस्तिष्क से सम्बद्ध नहीं है और स्वतंत्र रूप में मौजूद है। वह पदार्थ से स्वतंत्र ही नहीं है, बल्कि उसका "सृजन" भी करती है। भावनावादी विचार के पीछे उसके आदि रूप को, वस्तुगत जगत की चीजों और वस्तुओं को, देखने से इनकार करते हैं।

विचार को मस्तिष्क से असम्बद्ध करने की चेष्टाएं भी आधारहीन हैं। लेनिन ने ऐसी चेष्टा करनेवाले और यह कहनेवाले दर्शन को कि विचार बिना मस्तिष्क के विद्यमान रहता है, बड़ा बढ़िया नाम दिया था। उन्होंने उसे "मस्तिष्क शून्य" दर्शन कहा था। उन्होने लिखा था कि विज्ञान का दृढ मत है कि चेतना शरीर से स्वतंत्र नहीं है, वह गौण है और मस्तिष्क का एक व्यापार है, बाह्य जगत का प्रतिबिम्ब है।

साथ ही हमें चेतना को पदार्थ का परम प्रतिपेध नहीं बना देना चाहिए, क्योंकि चेतना अति-संगठित पदार्थ का गुणधर्म है। वह भौतिक उपकरणों के प्रभाव से उदित और विकसित होती है। परन्तु, पदार्थ से उद्भुत होकर चेतना एक प्रकार की स्वतंत्र स्थिति हासिल कर लेती है और भौतिक जगत के विकास पर सक्रिय प्रभाव डालती है।

२. चेतना—पदार्थ के विकास की उपज

चेतना की उत्पत्ति और विकास

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सभी पदार्थों में प्रतिबिम्बन का आभ्यन्तरिक आम गुणधर्म होता है, अर्थात् बाह्य प्रभावों के अन्तर्गत आभ्यन्तरिक रूप में अपना पुनर्निर्माण करने की, तदनुसार उनसे प्रभावित होने की क्षमता होती है। प्रतिबिम्बन सदा दो (अथवा दो से अधिक) कार्यों—एक प्रभाव

डालनेवाला और दूसरा उस प्रभाव से प्रभावित होनेवाला—के परस्पर-प्रभाव के साथ जुड़ा होता है। यही वजह है कि प्रतिबिम्बन का स्वरूप बाह्य प्रभावों पर और साथ ही प्रभाव से प्रभावित हो रहे काय की आन्तरिक अवस्था पर निर्भर करता है।

इस सिलसिले में अगर हम किसी अजैव काय, किसी सजीव शरीर तथा मनुष्य की जाच करें तो हम पायेंगे कि वे जगत् को भिन्न भिन्न ढग से प्रतिबिम्बित करते है।

अजैव काय में सहज, अचर प्रतिबिम्ब निहित होता है। अजैव काय पर्यावरण के तत्वों मे तमीज नहीं करता, अनुकूल तत्वों को छाट नहीं लेता और उसमे प्रतिकूल तत्वों से अपनी हिफाजत करने की क्षमता नहीं होती।

सजीव शरीर की बाह्य प्रभावों के प्रति भिन्न प्रतिक्रिया होती है। वह अपने को पर्यावरण के मुताबिक ढाल लेता है, विभिन्न बाह्य उद्दीपनों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाए भिन्न होती हैं, वह अनुकूल तत्वों का उपयोग करता है और अनावश्यक, क्षतिकर तत्वों से बचता है। सजीव शरीर जीता और विकास करता ही इसीलिए है कि वह सफलतापूर्वक अपने को पर्यावरण के मुताबिक ढाल लेता है।

मनुष्य मे हम गुणात्मक रूप से एक नये, उच्चतर रूप का परावर्तन पाते हैं, क्योंकि उसमे यथार्थ को सचेत ढंग से प्रतिबिम्बित करने की क्षमता है। वह न केवल अपने को पर्यावरण के मुताबिक ढाल लेता है, बल्कि उसके ऊपर प्रभाव डालता है; जो ज्ञान उसने अर्जित किया होता है, उसके आधार पर वह अपने पर्यावरण को बदलता है।

चेतना की उत्पत्ति का पता लगाने का अर्थ यह ज्ञात करना है कि किस प्रकार अजैव पदार्थ से जैव पदार्थ मे और जैव पदार्थ से चिन्तनशील पदार्थ (मानव मस्तिष्क) मे संक्रमण के दौरान अजीवित, अचर प्रतिबिम्बन का, प्रखरणशील प्रतिबिम्बन मे, जो हर जीवित चीज मे निहित होता है, बदल जाता है, और उसमे किस प्रकार सोचने की क्षमता पैदा होती है।

अजैव से जैव पदार्थ और जैव पदार्थ से चिन्तनशील पदार्थ

प्राकृतिक विज्ञान मे ऐसे तथ्यों की भरमार है जो बताते है कि जीवित प्रकृति अजीवित अचेतन प्रकृति से उद्भूत हुई है। दोनों के बीच कोई दुर्भेद्य दीवार नहीं है। रासायनिक विश्लेषण सिद्ध करता है कि अजैव काय और जीवित काय, दोनों ही एक ही रासायनिक तत्वों से बनते है। हर जैव शरीर मे हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन तथा खास कर कार्बन की बड़ी मात्राएं मौजूद होती हैं। वे ही जीवित शरीरों की रासायनिक विरचना और उनके आवश्यक कार्यकलाप के आधार होते हैं।

वैज्ञानिकों ने यह पूर्व-प्रस्थापना प्रस्तुत की है कि आद्य गैस-धूलि रूपी पदार्थ में, जिससे हमारी पृथ्वी बनी, मूलतः हाइड्रोजन तथा अन्य द्रव्यों के साथ कार्बन के सामान्यतम यौगिक—हाइड्रोकार्बन रहे होंगे। इनसे ही बाद में अधिक संश्लिष्ट जैव यौगिक बने होंगे। एक-दूसरे के साथ रासायनिक योग स्थापित करते हुए जैव यौगिक अधिकाधिक संश्लिष्ट होते गये, यहां तक कि एमिनोएसिडों का जन्म हुआ। ये ही प्रोटीन अणुओं के बुनियादी तत्व हैं। जैव द्रव्यों में ज्यों-ज्यों अधिक विभेद उत्पन्न होते गये और वे अधिक जटिल बनते गये, त्यों-त्यों परावर्तन की उनकी क्षमता अधिक नानारूपी और सूक्ष्म होती गयी।

इसके अरबों साल बाद एमिनोएसिडों से बने इस आद्य रासायनिक प्रोटीन के अणु जीवित प्रोटीन कायों में परिवर्तित हुए और इस तरह उपापचय का गुण प्राप्त किया जो हर सजीव चीज की मौलिक विशेषता है। शुरू में ये प्रोटीन तथा अन्य जटिल जैव यौगिक अजैव लवणों से मिलजुल कर विशेष बूंद जैसे यौगिक—कोएसेर्वेट—बने। इनमें जलीय पर्यावरण के साथ उपापचयात्मक आदान-प्रदान तथा अन्य जैव द्रव्यों को आत्मसात करने की क्षमता थी। इसके बाद अधिक स्थिर कोएसेर्वेटों से जीवन की क्षमता रखने वाले अति जटिल, बहुआणविक प्रोटीन बने। अनुकूल पर्यावरण में पहुंच कर और उसके साथ उपापचयात्मक आदान-प्रदान स्थापित कर यही प्रोटीन जैव काय बन गया।

आत्मीकरण (पर्यावरण से पोषक द्रव्यों का जज्ब किया जाना और उनका शरीर की जीवित कोशिकाओं और ऊतकों में परिवर्तित होना) और विशोषण (जीवित ऊतकों के विघटन और विनाश) की अन्तर्विरोधी प्रक्रिया को उपापचय कहते हैं। शरीर के केवल सजीव प्रोटीन में ही यह प्रक्रिया होती है। पर्यावरण के साथ उपापचयात्मक आदान-प्रदान तथा सतत स्व-पुनरुत्पादन—ये सरलतम जीवित शरीर को जटिल से जटिल अजैव काय से भिन्न बनाते हैं। कोई शरीर केवल उपापचय द्वारा ही, अर्थात् पोषक द्रव्यों को आत्मसात करते रहने और उनके विघटन से उत्पन्न वस्तुओं को बाहर निकालते रहने के द्वारा ही, जिन्दा रह सकता और विकास कर सकता है। एंगेल्स ने कहा था, "जीवन प्रोटीन कायों के अस्तित्व की विधि है, जिसका सारभूत तत्व है बाहर के प्राकृतिक पर्यावरण के साथ निरन्तर उपापचयात्मक आदान-प्रदान, और इस उपापचय की समाप्ति के साथ ही जीवन समाप्त हो जाता है।"[1]

प्रारम्भिक सरलतम शरीरों का उदय प्रतिबिम्बन से, जो पदार्थ का आम आभ्यान्तरिक गुण है, विकास की दिशा में पहला जबर्दस्त कदम था। वह मस्तिष्क के विकास की ओर पहला जबर्दस्त कदम था। यथार्थ का प्रतिबिम्बन,

---

१. एंगेल्स, प्रकृति का द्वन्द्व, मास्को १९६४, पृष्ठ १०९।

जो अजैव प्रकृति में निहित है, गुणात्मक रूप से नये, जैविकीय प्रतिबिम्बन में परिवर्तित हो गया। जैविकीय प्रतिबिम्बन का सबसे सरल रूप है उद्दीप्तियों की प्रतिक्रिया का होना। यह चीज सभी शरीरों के अन्दर होती है और बाह्य पर्यावरण के मुताबिक अपने को ढालने अथवा दिक्स्थिति ग्रहण करने की उनकी क्षमता के साधन का काम देती है।

उदाहरण के लिए, पौदे सूर्य के प्रकाश के प्रति अत्यन्त सवेदनशील होते हैं। वे मानो उसके लिए दौड़ते हैं। प्रकाश उनके लिए जीवन का स्रोत होता है। सबसे सादे, एक कोशिका वाले जीव, अमीबा में भी खाद्य-उद्दीप्तियों की प्रतिक्रिया होती है। अगर उसने अभी अभी भोजन ग्रहण किया हो, तो खाद्य-उद्दीप्तियों का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होगा। इसका मतलब होता है कि अन्य जीवों की भांति अमीबा भी, जिसमें उनकी ही तरह उद्दीप्तियों की प्रतिक्रिया का गुण होता है बाह्य जगत को अमर रह कर नहीं वरन् प्रवरण करते हुए (चुनते हुए) प्रतिबिम्बित करता है। उसका शरीर मानो उपयोगी और आवश्यक उद्दीप्तियों की ओर खिंचता है और हानिकर तथा अनावश्यक उद्दीप्तियों से अपने को दूर रखता है। पर प्रवरण करने या चुनने की उसकी ताकत बहुत बड़ी नहीं होती। किसी सामान्य जीव में उद्दीप्तियों के अलग-अलग रूपों को ग्रहण कर सकनेवाले अवयव, ऊतक या कोशिकाएं नहीं होतीं। बाहरी उत्तेजना से यह कुल का कुल ही प्रभावित होता है।

विकास के साथ जब स्वय जीव तथा पर्यावरण अधिक जटिल हुए, तो उद्दीप्तियों की प्रतिचेष्टा के आधार पर प्रतिबिम्बन का एक उच्चतर रूप—संवेदन—उत्पन्न हुआ। लेनिन ने लिखा था कि संवेदन बाह्य उत्तेजना की ऊर्जा को चेतना में परिवर्तित कर देता है। जैसा कि उद्दीप्तियों की प्रतिचेष्टा के सम्बंध में होता है वैसे ही संवेदन जीव पर बाह्य जगत की क्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। पर बाह्य उद्दीप्तियों का दायरा बहुत व्यापक हो गया, जिससे जीव रंग, गध और ध्वनि से प्रभावित हुआ, उसमें स्वाद, सर्दी, गर्मी, नमी की संवेदनाएं विकसित हुई और उसके अन्दर यांत्रिकीय, भौतिकीय तथा अन्य प्रभावों की प्रतिचेष्टा हुई। जीव में ऐसे अवयव विकसित हुए जो बाह्य प्रभावों (रंग, ध्वनि, गध आदि) की निश्चित परिधियों को ही अनुभव कर सकते थे। इसके बाद जीव ज्यों-ज्यों विकसित हुआ, त्यों-त्यों उसकी संवेदनाएं ज्यादा सूक्ष्म एवं विविध हुई। पर्यावरण के अनुसार अपने को ढालने की जीव की क्षमता बढ़ी और पर्यावरण के साथ सम्पर्क कायम रखने के लिए एक विशेष अवयव तैयार हुआ। यह है स्नायविक प्रणाली।

जैविकी के क्षेत्र में प्रतिवर्तों (रिफ्लैक्सों) के अध्ययन से ज्ञात हो चुका है कि चारों ओर की दुनिया को प्रतिबिम्बित करने और पर्यावरण के अनुसार

करने को ज्ञान लेने की क्षमता निम्नतर और उच्चतर पशुओं में एक सी नहीं होती। प्रतिवर्त जीवन में बाह्य प्रभावों की प्रतिचारी प्रतिक्रियाओं को कहते हैं। सारे के सारे प्रतिवर्तों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—एक है अननुकूलित (अनकन्डिशन्ड) प्रतिवर्त और दूसरा अनुकूलित (कण्डिशन्ड) प्रतिवर्त। अननुकूलित प्रतिवर्त हर जीव में होता है, वह निम्न हो या उच्च। वह जन्म-जात अथवा मौरूसी होता है। किसी गरम चीज का स्पर्श होते ही आदमी फौरन अपना हाथ खींच लेता है—यह अननुकूलित प्रतिवर्त है। अननुकूलित प्रतिवर्तों का जटिल संघात ही सहजवृत्ति या इंस्टिंक्ट है (लैंगिक और आहारीय, आदि) जो किसी जीव के जीवन एवं विकास में बड़ी भूमिका अदा करता है।

पर उच्चतर पशुओं में अनुकूलित प्रतिवर्त भी होते हैं जो अस्थायी किस्म के होते हैं और निश्चित अवस्थाओं में उत्पन्न हुआ करते हैं। किसी कुत्ते को यदि घंटियों की आवाज के साथ भोजन दिया जाता है, तो कुछ समय बाद उस पर घंटियों की आवाज की वैसी ही प्रतिक्रिया होती है जैसे भोजन देते समय, यानी घंटी की आवाज से उसके मुंह से राल टपकने लगती है। कुत्ते के दिमाग में एक अस्थायी सम्बंध कायम हो गया है जिसके अनुसार घंटी की आवाज भोजन का संकेत बन गयी है। अन्य सभी अनुकूलित प्रतिवर्त इसी सिद्धान्त के आधार पर बनते हैं। उनकी बदौलत जीव अपने को बड़ी सूक्ष्मता से पर्यावरण के अनुकूलित बना लेता है और उसके प्रभावों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हो जाता है। वे अनुकूलित प्रतिवर्त जो जीव के लिए विशेष महत्व धारण कर लेते हैं, स्थिर हो जाते हैं और अननुकूलित प्रतिवर्तों में परिवर्तित हो जाते हैं। अननुकूलित प्रतिवर्तों के आधार पर नये अस्थायी सम्बंध पैदा होते हैं और इसका एक अंश फिर स्थिर हो जाता है। अतः सजीव कायों के विकास के दौरान मनःशक्ति निरन्तर प्रगति करती गयी, और इसके फलस्वरूप अन्ततः संज्ञासम्पन्न पदार्थ ने सोचने की क्षमता हासिल की।

चेतना के उदय में श्रम की निर्णायक भूमिका

मनुष्य और उच्चतर पशु, दोनों संवेदना का अनुभव कर सकते हैं। पावलोव के मतानुसार यह क्षमता दैहिकीय आधार पर स्थित है जो कि मनुष्य और पशु दोनों में मौजूद है। यह दैहिकीय आधार है प्रथम संकेत व्यवस्था। यह ऐसी यंत्र-व्यवस्था है जिसके जरिए जीव पर वस्तुओं एवं व्यापारों की क्रिया का प्रत्यक्ष प्रतिचार होता है। पशु के लिए ये एकमात्र संकेत या सिग्नल हैं, इस नाते ये वस्तुएं उसकी ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालती हैं और उसकी स्नायवीय व्यवस्था में तदनुरूप संवेदनाएं उत्पन्न करती हैं।

मनुष्य की संवेदनाओं के साथ और भी कुछ बात है, जो पशुओं के साथ नहीं है। मनुष्य की संवेदना सदा बुद्धि के प्रकाश से दीप्त होती है। मनुष्य में

अमूर्त चिन्तन की क्षमता होती है। उसमे यथार्थ के सामान्यीकृत प्रतिबिम्ब उत्पन्न करने की, जो शब्दों में अभिव्यक्त धारणाओं का रूप लेते हैं, क्षमता होती है। हर शब्द एक निश्चित वस्तु का द्योतक होता है जिसके साथ वह अभिन्न रूप से जुड़ा रहता है। यही कारण है कि मनुष्य पर शब्दों की वैसी ही प्रतिक्रिया होती है जैसे स्वयं वस्तुओं के प्रत्यक्ष प्रभाव की होती है। चूंकि प्रथम संकेत वस्तुएं स्वयं होती हैं, इसलिए उन्हें लक्षित करने वाले शब्द गौण संकेत की भूमिका ग्रहण करते हैं। जैसा कि पावलोव ने कहा था—वे "संकेतों के संकेत" हैं। उस दैहिकीय यंत्र-व्यवस्था का नाम, जिसके जरिए मनुष्य पर शब्दों की, वाणी की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, उन्होंने द्वितीय संकेत व्यवस्था रखा। यह व्यवस्था केवल मानव की विशेषता है।

प्रथम और द्वितीय संकेत व्यवस्थाएं आंगिक रूप से सम्बद्ध होती हैं, उनसे मनुष्य को यथार्थ का सर्वतोमुखी और गहन ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः, मनुष्य की चेतना पशुओं की मनःशक्ति से गुणात्मक रूप में भिन्न है।

इस अन्तर का कारण यह है कि पशुओं की मनःशक्ति केवल जैविकीय विकास की उपज है, पर मनुष्य की चेतना सामाजिक और ऐतिहासिक विकास की उपज है।

मनुष्य और पशु की संवेदनाओं मे मौलिक अन्तर होता है। उदाहरण के लिए, गिद्ध मनुष्य से अधिक दूर तक देख सकता है, पर देखी हुई चीज मे मनुष्य की अन्तर्दृष्टि पशु की तुलना मे अपरिमित रूप से अधिक होती है।

मार्क्स के मतानुसार मनुष्य की पांच ज्ञानेन्द्रियों का निर्माण पूरे विश्व इतिहास की उपज है। मनुष्य के संगीत ग्रहण करनेवाले कान, प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द ले सकने वाली उसकी दृष्टि, उसकी परिष्कृत अभिरुचि, और अन्य ज्ञानेन्द्रियां मानव समाज के व्यावहारिक अनुभव के आधार पर विकसित हुई हैं।

श्रम अर्थात् भौतिक मूल्यों का उत्पादन, मनुष्य के विकास में उसकी चेतना के प्रादुर्भाव एवं विकास का मौलिक तत्व है। एंगेल्स ने लिखा है—"श्रम ने स्वयं मनुष्य का सृजन किया।"[1] श्रम की बदौलत हमारे कपि-सदृश पूर्वज, जंगली मानव ने मनुष्य का चेहरा मोहरा हासिल किया था। श्रम ने मनुष्य को भोजन, वस्त्र और घर प्रदान किया। उसने उसे प्रकृति की शक्तियों से केवल बचाया ही नहीं, बल्कि उन्हें वशीभूत करने तथा अपनी सेवा में लगाने की क्षमता भी प्रदान की। श्रम के द्वारा मनुष्य ने अपना वातावरण बदल

---

१. एंगेल्स, प्रकृति का द्वंद्व, मास्को, १९६४, पृष्ठ १७२।

डाला और उस धरती को भी बदल दिया जिस पर वह निवास करता है। श्रम मनुष्य की सबसे बड़ी दौलत है। यह उसके जीवन और विकास के लिए अनिवार्य है।

मानवाकार बन्दरों के हाथ मे श्रम के पूर्व-उपकरण पहुंच चुके थे। वे भोजन प्राप्त करने के लिए डण्डों-पत्थरों और अन्य मामूली चीजों का इस्तेमाल करते थे। पर यह इस्तेमाल वे अचेतन एव आकस्मिक रूप से ही करते थे। वनमानुष या किसी भी अन्य पशु मे मामूली से मामूली औजार भी गढ़ने की क्षमता नहीं होती। पर मनुष्य ने औजार गढ़े और उनका इस्तेमाल किया। इस बात ने उसके श्रम को गुणात्मक रूप से सर्वथा भिन्न बना दिया। इसे सीखने मे मनुष्य को लाखों वर्ष लगे, और इस सारी अवधि के दौरान मनुष्य के प्रादुर्भाव की और साथ-साथ उसकी चेतना के निर्माण और विकास की अत्यन्त जटिल प्रक्रिया चलती रही।

मानवाकार बन्दर ने जब सीधा खड़े होकर चलना सीखा, तो यह श्रम की परिस्थितियां उत्पन्न करने और चेतना के प्रथम आभास के प्रकट होने के लिहाज से बड़े ही महत्व की घटना थी। सीधा खड़ा हो सकने का अर्थ यह था कि आगे के अगों का चलने-फिरने मे सहायक के रूप मे जो उपयोग था, उससे उन्हे छुट्टी मिल गयी और अब वे काम के लिए इस्तेमाल हो सकते थे। हमारे अति प्राचीन कालीन पूर्वजो ने पहले हाथो की मदद से "औजारों" (डण्डे और पत्थरो) का प्राकृतिक रूप मे इस्तेमाल किया और इसके बाद धीरे-धीरे उन्हे गढ़ना शुरू किया। सबसे पहले जो औजार बने, वे निहायत आदिम किस्म के थे (भद्दे ढंग से कटा पत्थर का टुकडा, ऐसा डण्डा जिसमे नोक निकाल दी गयी थी, आदि)। उस समय के मनुष्य की चेतना भी आदिम थी। उसे वस्तुओ की उपयोगिता की तमीज नही थी। वह वस्तुओ के बीच की समानता को देख नही सकता था, वह नही जानता था कि ये वस्तुएं उसके लिए किस प्रकार उपयोगी हो सकती हैं।

श्रम का जब और विकास एव परिष्कार हुआ तो उसके साथ ही साथ मनुष्य की चेतना भी विकसित हुई। जीवन निर्वाह के साधनो को ढूंढने के सिलसिले मे मनुष्य का तरह-तरह की वस्तुओ मे सम्पर्क हुआ, और उसने उनके गुणों को जाना, आपस मे उनकी तुलना की और यह समझने लगा कि उनमे समान क्या है।

श्रम के औजारों का निर्माण एव परिष्कार चेतना के विकास के लिए खास तौर से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त औजारों में अनुभव और ज्ञान सन्निहित होता था। नई पीढ़ियों को मालूम [illegible] कि उनके पूर्वज इन औजारों को कैसे बनाते [illegible] नही है।

थे, और इस ज्ञान के आधार पर वे उनको निरन्तर सुधारते, उन्हें सदा विकसित करते थे।

आदिम मानव की चेतना का उसके श्रम के साथ प्राणिक सम्बन्ध था। वह मानो उसके श्रम सम्बन्धी कार्यकलाप के साथ ताने-बाने की तरह जुड़ी हुई थी। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि मनुष्य सबसे पहले वही सीखता था जो उसके श्रम के साथ, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ, सीधे-सीधे सम्बद्ध हुआ करता था।

यही कारण है कि प्राचीन कला कृतियों में मनुष्य के श्रम का चित्रण हमें बार बार देखने को मिलता है। इस प्रकार श्रम और चिन्तन की एकता में, तथा श्रम के आधार पर मानव की चेतना विकसित और परिष्कृत हुई।

भाषा अथवा व्यक्त वाणी मानव चेतना को विकसित करने में बहुत बड़े महत्त्व की चीज थी। भाषा का श्रम के आधार पर चेतना के साथ-साथ उदय हुआ। उसने मनुष्य को पशुजगत् से बाहर निकलने, चिन्तन विकसित करने और भौतिक उत्पादन संगठित करने में सक्षम बनाने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की। श्रम सदा से सामाजिक रहा है। जिस दिन से मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ, उसी दिन से उन्हें प्रकृति की प्रबल शक्तियों से लोहा लेने के लिए, उससे रोजी के साधन निकालने के लिए गिरोहबद्ध होना पड़ा। इसीलिए श्रम की प्रक्रिया में पारस्परिक संचार की, एक-दूसरे से कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता पैदा हुई। इस जबर्दस्त आवश्यकता के जरिए वनमानुष का अविकसित कंठ वाणी की स्पष्ट ध्वनि निकालने की क्षमता रखने वाले अवयव में परिवर्तित हो गया।

भाषा और विचार

मार्क्स ने कहा था कि भाषा विचार का प्रत्यक्ष यथार्थ है। ऐसा उन्होंने इसलिए कहा था कि विचार शब्द के भौतिक खोल में ही मौजूद रह सकता है। मनुष्य स्वतः सोच रहा हो, अपने विचारों को बोल कर व्यक्त कर रहा हो, या उन्हें लिख रहा हो, हर हालत में विचार शब्दों में निहित रहता है। भाषा की बदौलत विचार न केवल बनते हैं, बल्कि संचरित और अनुभूत भी होते हैं। शब्दों में और शब्दों के योगों में मनुष्य वस्तुगत जगत के प्रतिबिम्बित होने के परिणामों को अपनी चेतना में अंकित करता है। इससे हम न केवल विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं, बल्कि उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी को प्रेषित भी कर सकते हैं। वाणी और लिखित भाषा के बिना अनेक पीढ़ियों का अमूल्य अनुभव लुप्त हो जायगा और हर पीढ़ी को विश्व का अध्ययन करने की अति कठिन प्रक्रिया नये सिरे से आरम्भ करनी होगी।

भाषा का सम्बन्ध यथार्थ से सीधे-सीधे नहीं होता, बल्कि विचार के जरिए होता है। इसीलिए कभी-कभी शब्द का किसी विशिष्ट भौतिक वस्तु के साथ

प्रत्यक्ष सम्बंध स्थापित करना आसान नहीं होता। भिन्न-भिन्न भाषाओं में, और यहां तक कि एक भाषा में भी, एक शब्द अक्सर अनेक वस्तुओं का द्योतक होता है, या अनेक शब्द एक ही वस्तु के द्योतक होते हैं। इस सबसे यह भ्रम पैदा होता है कि भाषा यथार्थ से मुक्त है।

शब्दार्थशास्त्री भाववादी, जो समकालीन पूंजीवादी दर्शन के एक धारा के प्रतिनिधि हैं, इसी भ्रम को लेकर आगे बढ़ते हैं। वे भाषा को विचार और विचार को यथार्थ से अलग कर देते हैं। उनका कहना है कि शब्द मनुष्य द्वारा मनमाना गढ़ लिये गये हैं और वे किसी यथार्थ वस्तु को लक्षित नहीं करते, यह कि शब्द केवल ध्वनियों के योग हैं। इस आधार पर उनमें से कुछ लोग यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि समकालीन पूंजीवाद, शोषण, आक्रामकता, आदि खोखले शब्द अथवा ध्वनियां मात्र हैं। उनका तर्क है कि यदि इन शब्दों के स्थान पर हम दूसरे शब्द रख लें, तो सामाजिक विग्रह के सारे स्रोत दूर हो जायेंगे, समकालीन पूंजीवाद के सारे दोष लुप्त हो जायेंगे।

पर शब्द बिलकुल मनमाने ढंग से नहीं गढ़े जाते हैं। वे निश्चित वस्तुओं और व्यापारों से सम्बद्ध होते हैं और व्यावहारिक कार्यकलाप के दौरान उनकी संज्ञान प्राप्ति होती है। एक शब्द की जगह दूसरा आ जाने से वस्तुगत प्रक्रियाएं बदल नहीं जातीं, न ही उनका अस्तित्व लुप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, पूंजीवाद के वकीलों ने वर्तमान पूंजीवादी समाज के लिए दर्जनों मीठी-मीठी संज्ञाएं तैयार की हैं। वे उसे "जनता का पूंजीवाद," "समृद्ध समाज," "आर्थिक मानवतावाद," आदि नामों से पुकारते हैं। पर इन शब्दों ने पूंजीवाद को और उसके साथ-साथ शोषण, बेरोजगारी और वर्ग-विग्रह की उसकी प्रकृति को समाप्त नहीं किया। पूंजीवाद तो पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा के संघर्ष के परिणामस्वरूप ही समाप्त होगा। समाजवादी क्रांति ही उसका खात्मा करेगी।

इस प्रकार चेतना पदार्थ के दीर्घ-कालीन विकास की उपज है। पर पदार्थ के आधार पर आकार ग्रहण करने के बाद वह पदार्थ के विकास को भी सक्रियतापूर्वक प्रभावित करती है।

भौतिकवाद की निन्दा करने के लिए भाववादी यह तर्क देते हैं कि भौतिकवादी चूंकि पदार्थ को ही हर विद्यमान चीज का आधार मानते हैं और कहते हैं कि चीजों का वस्तुगत रूप में स्वतंत्र अस्तित्व है, इसलिए वे चेतना की भूमिका को कम करके आंकते और उसे प्रकृति का निश्चेष्ट प्रतिबिम्ब मात्र समझते हैं।

पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदार्थ के, प्रकृति के, विकास में चेतना की भूमिका को रत्ती भर भी घटा कर नहीं आंकता। पदार्थ की उपज के रूप में

और उसके प्रतिबिम्ब की हैसियत से, चेतना अप्रतिकारी नहीं होती, वरन् विश्व पर सक्रियता पूर्वक प्रभाव डालती है। लेनिन ने इसी अर्थ में कहा था कि 'मनुष्य की चेतना न सिर्फ वस्तुगत जगत को प्रतिबिम्बित करती है, बल्कि उसका सृजन भी करती है।'[1]

निस्सन्देह, इसका अर्थ यह नहीं है कि चेतना प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति पर प्रभाव डालती है, अथवा वह विश्व का सृजन करती है। विचार अपने आप तो घास का एक तिनका भी नहीं हिला सकता। इसका अर्थ केवल यह है कि चेतना यदि विश्व को सही-सही प्रतिबिम्बित करे, तो वह जीवन का कायापलट करने में मनुष्य के सृजनात्मक कार्य का मार्गदर्शक बन सकती है।

बाद के अध्यायों में चेतना की सक्रिय भूमिका की, खास कर समाज के जीवन में उसकी सक्रिय भूमिका की, विशद विवेचना की जायगी।

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, भाग ३८, पृष्ठ २१२।

अध्याय ६

विकास और सार्वभौम सम्पर्क के सिद्धान्त के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

प्रबल शक्ति को काबू में कर लिया है। सर्वशक्तिमान मानव बुद्धि के आगे बाह्य अन्तरिक्ष की सीमाएं टूट रही हैं। मनुष्य की चेतना, भावनाएं, सिद्धान्त और मन भी, जो भौतिक जगत् को प्रतिबिम्बित करते हैं, बदलते हैं।

अतः सतत विकास, वस्तुओं और व्यापारों का एक अवस्था से दूसरी में गुजरना, एक का जाना और उसकी जगह दूसरी का आना भौतिक जगत् की महत्वपूर्ण विशिष्टता है। वस्तुओं और व्यापारों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले उनके सतत परिवर्तन और विकास का अध्ययन किया जाय। किसी वस्तु को सचमुच जानने के लिए हमें उसको, उसके विकास को "स्वगति" और परिवर्तन सहित जांचना होगा।

विश्व के विकास की आम तसवीर का अध्ययन करना भौतिकवादी द्वन्द्ववाद का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एंगेल्स ने लिखा था कि द्वन्द्ववाद "प्रकृति, मानव समाज तथा चिन्तन के विकास और गति के सामान्य नियमों का विज्ञान है।"[1]

मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद विकास को निम्नतर से उच्चतर की ओर, सरल से जटिल की ओर आगे बढ़ना मानता है। वह उसे ऐसी क्रान्तिकारी प्रक्रिया मानता है जो एक मंजिल से दूसरी मंजिल में छलांगें भरती हुई अग्रसर होती है। इसके अलावा, यह आगे बढ़ना बन्द चक्र में नहीं होता, बल्कि सर्पिल चक्र में होता है और हर सर्पिल चक्र पिछले सर्पिल चक्र से अधिक गहरा, अधिक समृद्ध और अधिक विविधतापूर्ण होता है। द्वन्द्ववाद वस्तुओं और व्यापारों के आभ्यन्तरिक अन्तर्विरोधों में विकास के स्रोत की तलाश करता है। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद ही विकास प्रक्रिया की सही और सचमुच वैज्ञानिक समझ पेश करता है।

भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के मौलिक नियम विश्व के विकास, उसके संक्रमण एवं परिवर्तन की आम तसवीर पेश करते हैं। विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम विकास के स्रोतों और उसकी उत्प्रेरक शक्तियों का उद्घाटन करता है। परिमाणात्मक परिवर्तनों के गुणात्मक परिवर्तनों में सन्तरित हो जाने का नियम विश्व के छलांग लगाते हुए क्रान्तिकारी परिवर्तन का, वस्तुओं के आभ्यन्तरिक परिमाणात्मक परिवर्तनों के निरन्तर मौलिक, गुणात्मक परिवर्तनों में सन्तरण को इंगित करता है। निषेध के निषेध का नियम विकास के प्रगतिशील, सर्पिल चक्र जैसे स्वरूप को वर्णित करता है। हम अगले अध्याय में इन सभी नियमों की विवेचना करेंगे।

भौतिक जगत् का विकास पुरातन के अवसान और नये के उद्भव की अनन्त प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की ऊपरी परत का इतिहास लिए

१. एंगेल्स, ड्यूहरिंग मत-खण्डन, मास्को, १९५९, पृष्ठ १९४।

नये की अजेयता

नये भौगोलिक ढांचों की रचना का इतिहास है। वनस्पति एवं जन्तु जगत् में पुराने जैव रूपों का स्थान नये और अधिक समुन्नत जैव रूप लेते रहते हैं। सजीव शरीरों में कोशाओं की सतत पुनरुत्पत्ति होती रहती है, अर्थात् पुराने मरते और नये जन्म लेते रहते हैं, और समाज में भी सामाजिक संरचना के पुराने पड़ चुके रूप मृतक होते और नये, प्रगतिशील रूप पैदा होते रहते हैं।

अतः वह जो समुन्नत है, नया है, निरन्तर आगे आता और पुराने का स्थान ग्रहण करता रहता है। इस प्रक्रिया को कोई भी चीज रोक नहीं सकती। प्रकृति, समाज और विचार के विकास में नये की अजेयता प्रमुख विशेषता है।

पर मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद हर नये व्यापार को अथवा हर उस चीज को जो नूतन होने का दावा करती है, सचमुच नया नहीं मान लेता। उदाहरणार्थ, जर्मन फासिस्टों का दावा था कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उनके द्वारा स्थापित पाशविक शासन एक "नई व्यवस्था" थी। अपने दुष्कृत्यों पर उन्होंने "राष्ट्रीय समाजवाद" का झूठा आवरण चढ़ाने की कोशिश की थी। पर जो "नया" था, वह प्रतिगामी था, जीवन्तता से शून्य था। समय की कसौटी पर वह खरा नहीं उतर सका और स्वाधीनता प्रेमी जनता के प्रबल प्रहारों के आगे धराशायी हो गया।

नया वह है जो प्रगतिशील है, समुन्नत और जीवन क्षम है, जो निरन्तर बढ़ता और विकास करता है। आरम्भ में नया सामान्यतया काफी दुर्बल होता है और कभी-कभी तो देखने पर उसका आसानी से पता भी नहीं चलता। इसके विपरीत, पुरातन छाया रहता है और अजेय ज्ञात होता है। पर [illegible] पुरातन का ह्रास होता है, वह अप्रचलित बन जाता है। इसके विपरीत नया बढ़ता है, निरन्तर विकसित होता और पुरातन के साथ घोर संघर्ष में विजय प्राप्त करता है। १९वीं सदी के मध्य में श्रमिक आन्दोलन के प्रथम अंकुर रूप में प्रस्फुटित हुए। एकतंत्रीय शासन और पूंजीपतियों को नष्ट करने के लिए उनकी ताकत कमजोर ज्ञात होती थी। पर [illegible] समाज का प्रगतिशील वर्ग होने के नाते बढ़ा और दृढ़ हुआ [illegible] में परिवर्तन हुआ और [illegible] अपने [illegible] और पूंजीपति वर्ग को [illegible]

[illegible]

का उदय हुआ जो पर्यावरण के अधिक अनुकूल थे। उनके बीज मौसम
घकों से विश्वसनीय रूप से सुरक्षित थे और इसके फलस्वरूप वे
प्रजातियों की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ थे। नतीजा यह हुआ कि
वनस्पतियों ने पुरानी प्रजातियों को निकाल बाहर किया। वे तेजी से
पर फैल गये और पृथ्वी के वनस्पति-मण्डल का पूरा चेहरा ही बदल दिय

नये की अजेयता सामाजिक विकास में खास तौर पर परिलक्षित
है। समाज में नये की विजय इसलिए होती है कि वह सामाजिक जीवन
भौतिक उत्पादन के तकाजों के अनुरूप होता है। समाजवादी व्यवस्था पूंजी
व्यवस्था पर इसलिए हावी हो रही है कि वह उत्पादक शक्तियों के विकास
पथ प्रशस्त करती है और इस विकास के रास्ते की बड़ी बाधा, पूंजी
निजी सम्पत्ति का उन्मूलन करती है।

नया समाज के उन्नत और प्रगतिशील वर्गों के हितों के साथ मेल खात
और इसीलिए वे इसकी विजय के लिए जोर और जोर के साथ लड़ते
नई सामाजिक व्यवस्था के लिए संघर्ष में जनता के सक्रिय रूप से भाग
के कारण सोवियत संघ में समाजवाद की विजय सुनिश्चित हुई। यही क
निरंतर निर्माण में सोवियत जनता की सफलताओं की पहली शर्त भी है।

सामाजिक विकास में जो नया है, वह इसलिए भी अजेय है कि उ
सामाजिक आधार निरन्तर बढ़ और फैल रहा है। नया प्रकट होने के
अपने चारों ओर समाज की प्रगतिशील ताकतों को एकत्र करता है। सोवि
संघ वह केन्द्र है जो हमारे युग की प्रगतिशील शक्तियों को आकृष्ट करत
और उसे पूरी दुनिया में प्रगतिशील लोगों का समर्थन और आदर प्राप्त
समाजवादी देशों की पारस्परिक मित्रता और सहयोग, मजदूर वर्ग तथा दु
की सभी प्रगतिशील शक्तियों का समर्थन ऐसे महत्वपूर्ण तत्व हैं जो कम्यु
के महान ध्येय को अजेय बनाते हैं।

नये की अजेयता का अर्थ यह नहीं है कि उसकी विजय आपसे आप
जाती है। इस विजय के लिए तैयारी करने की जरूरत होती है, उसके
डटकर लड़ना पड़ता है। जनता की, उन्नत वर्गों और प्रगतिशील पार्टियों
चेतना युक्त सक्रियता सामाजिक जीवन में पुराने पर नये की विजय में निर्ण
भूमिका अदा करती है।

२. द्वन्द्ववाद सार्वत्रिक अन्तस्सम्बंध का सिद्धान्त है

भौतिक जगत् विकासशील ही नहीं अपितु एक सुसम्बद्ध, अखण्ड सम
भी है। उसकी सारी वस्तुएं तथा व्यापार अपने आपमें, औरों से पृथक
कर, विकसित नहीं होते। उनका विकास अन्य वस्तुओं और व्यापारों के

भीमकाय भार-इंजन के विशालकाय चक्के से लेकर कलाकार की तूलिका और कवि की लेखनी तक के लिए ऊर्जा का स्रोत है।"

मनुष्य भौतिक उत्पादन द्वारा प्रकृति से *सम्बद्ध है। यह सम्बन्ध श्रम* के द्वारा क्रियान्वित होता है जो मनुष्य के अस्तित्व की एक अनिवार्य शर्त है। श्रम की बदौलत मनुष्य प्रकृति से जीवन-निर्वाह का अपना साधन प्राप्त करता है। *श्रम की प्रक्रिया में मनुष्य के आर्थिक, उत्पादन सम्बंध आकार* ग्रहण करते हैं और उसके अन्य सम्बंधों को—राजनीतिक, कानूनी और नैतिक सम्बंधों को—जन्म देते हैं।

*वस्तुओं और व्यापारों का सार्वत्रिक अन्तरसम्बंध और परस्पर प्रभावी-*करण भौतिक जगत की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। किसी वस्तु का असली ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके सभी पहलुओं और सम्बंधों का अध्ययन करना आवश्यक है। एक अखण्ड अन्तरसम्बंधित समग्रता के रूप में विश्व का अध्ययन करना, चीजों के सार्वत्रिक अन्तरसम्बंधों की छानबीन करना, मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद का अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

भौतिक जगत की वस्तुएं एवं व्यापार नाना प्रकार के हैं। इस कारण उनके अन्तरसम्बंध और परस्पर सम्बंध भी नाना प्रकार के हैं। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद सबका नहीं, बल्कि सबसे आम अन्तरसम्बंधों का ही अध्ययन करता है। वह केवल उन अन्तरसम्बंधों का ही अध्ययन करता है जो भौतिक और आत्मिक जगत के सभी क्षेत्रों में विद्यमान हैं।

भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के नियम एवं प्रवर्ग मनुष्य की चेतना में इन अन्तरसम्बंधों के प्रतिबिम्ब हैं।

अन्तरसम्बंधों का ज्ञान जबर्दस्त महत्व रखता है, क्योंकि अन्तरसम्बंधों का उद्घाटन करके ही हम वस्तुगत जगत् के नियमों को जान पाते हैं। इन नियमों का ज्ञान मानव के व्यावहारिक कार्यकलाप के लिए अनिवार्य रूप से जरूरी है। इन नियमों का ज्ञान प्राप्त करना और मनुष्य को इस ज्ञान से लैस करना विज्ञान का कर्तव्य है।

नियम सम्बंधी धारणा

वस्तुगत् जगत् में अनेक नियम कार्यशील हैं। वे हैं अजैव प्रकृति के नियम, जैव जगत् के नियम, समाज के नियम, विचार के नियम। पर वास्तविकता के किसी भी क्षेत्र के नियमों में कुछ समान विशेषताएं होती हैं जो नियम सम्बंधी दार्शनिक धारणा के अन्तर्गत आती हैं। ये विशेषताएं क्या होती हैं?

पहली बात तो यह कि कोई भी नियम हो, वह वस्तुओं या इन वस्तुओं के पार्श्वों का सम्बंध अथवा अन्तरसम्बंध होता है। पर कोई भी अन्तरसम्बंध

और इस अन्तस्सम्बन्ध परस्पर क्रिया में होता है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्रक्रिया अन्य वस्तुओं और प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है और स्वयं भी उनसे प्रभावित होता है।

निर्जीव प्रकृति में प्रक्रियाओं और वस्तुओं के आपस में सम्बन्धित होने तथा एक-दूसरे को प्रभावित करने के ढेरों प्रमाण मौजूद हैं। एक उदाहरण ले लें। कुछ मौलिक कण अन्य कणों के साथ परस्पर-प्रभावी होकर परमाणु की रचना करते हैं। पर परमाणु स्वयं भी पृथक नहीं होते। वे अन्तस्सम्बन्ध स्थापित करते हुए अणुओं की रचना करते हैं फिर ये अणु स्थूल कायों की रचना करते हैं। स्थूल कायों का परस्पर प्रभावीकरण गुरुत्वाकर्षण के नियम द्वारा सिद्ध होता है। इस नियम के अनुसार पृथ्वी सूर्य और सौरमण्डल के अन्य ग्रहों के साथ सम्बद्ध है और सौरमण्डल और भी बड़ी ब्रह्माण्डीय विरचनाओं से सम्बद्ध होता है।

सप्राण जीव परस्पर प्रभाव की एक जटिल शृंखला द्वारा आबद्ध होते हैं। पृथक वनस्पतियां और पृथक पशु भी, प्रजातियों की रचना करते हैं, फिर प्रजातियां मिलकर जातियों, वर्गों आदि को निर्मित करती हैं। जीव केवल परस्पर सम्बन्धित नहीं होते, बल्कि पर्यावरण के साथ भी सम्बद्ध रहते हैं जिससे उन्हें आवश्यक भोजन और ऊर्जा प्राप्त होती है।

रूसी वैज्ञानिक क्लिमेन्त तिमिर्याजेव (१८४३-१९२०) ने वनस्पतियों के हरे की जीवनदायी ऊर्जा के साथ सम्बन्धित होने का पता लगाया। उन्होंने सिद्ध किया कि सौर ऊर्जा के असर से पौदों की हरी पत्तियों के क्लोरोफिल में कार्बन-डि-आक्साइड विघटित हो जाती है। कार्बन को तो पौदा जज्ब कर लेता है और आक्सीजन, जिसके बिना मनुष्य सांस नहीं ले सकता, वायु में मिल जाती है। परिणामस्वरूप प्रस्तुत कार्बनिक द्रव्य रासायनिक ऊर्जा के रूप में सौर ऊर्जा को जमा करते है जो बाद में मनुष्य द्वारा तब उपयोग में लाया जाता है जब वह पौदों का भोजन या ईंधन के रूप में इस्तेमाल करता है। तिमिर्याजेव ने लिखा था, "हरी पत्ती, अथवा यदि और ठीक-ठीक कहा जाय तो क्लोरोफिल का अण्वीक्षीय हरा दाना नाभि, विश्व अवकाश का वह बिन्दु है जहां एक छोर पर सौर ऊर्जा बहकर पहुंचती है जबकि पृथ्वी पर जीवन की सभी अन्य अभिव्यक्तियां दूसरे छोर पर उद्गमित होती हैं। वनस्पति व्योम और पृथ्वी का सम्बंध जोड़ने वाली कड़ी है। सही 'प्रोमीथियस'[1] है जिसने स्वर्ग से आग चुरायी। लकड़ी के टुकड़े की दमक में भी और बिजली की चकाचौंध करने वाली चिनगारी में भी वही चुरायी हुई सूर्य-किरण जगमगाती है। सूर्य-किरण

---

१ यूनानी दन्तकथा का हीरो—अनु.।

भीमकाय भार-उत्तोलक के विशालकाय यन्त्रों से लेकर कलाकार की तूलिका और कवि की लेखनी तक के लिए ऊर्जा का स्रोत है।"

मनुष्य भौतिक उत्पादन द्वारा प्रकृति से सम्बद्ध है। यह सम्बन्ध श्रम के द्वारा क्रियान्वित होता है जो मनुष्य के अस्तित्व की एक अनिवार्य शर्त है। श्रम की बदौलत मनुष्य प्रकृति से जीवन-निर्वाह का अपना साधन प्राप्त करता है। श्रम की प्रक्रिया में मनुष्य के आर्थिक, उत्पादन सम्बन्ध आकार ग्रहण करते हैं और उनके अन्य सम्बन्धों को—राजनीतिक, कानूनी और नैतिक सम्बन्धों को—जन्म देते हैं।

वस्तुओं और व्यापारों का सार्विक अन्तस्सम्बन्ध और परस्पर प्रभावीकरण भौतिक जगत की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। किसी वस्तु का असली ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके सभी पहलुओं और सम्बन्धों का अध्ययन करना आवश्यक है। एक अखण्ड अन्तस्सम्बन्धित समग्रता के रूप में विश्व का अध्ययन करना, चीजों के सार्विक अन्तस्सम्बन्धों की छानबीन करना, मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद का अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

भौतिक जगत की वस्तुएं एवं व्यापार नाना प्रकार के हैं। इस कारण उनके अन्तस्सम्बन्ध और परस्पर सम्बन्ध भी नाना प्रकार के हैं। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद सबका नहीं, बल्कि सबसे आम अन्तस्सम्बन्धों का ही अध्ययन करता है। वह केवल उन अन्तस्सम्बन्धों का ही अध्ययन करता है जो भौतिक और आत्मिक जगत के सभी क्षेत्रों में विद्यमान हैं।

भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के नियम एवं प्रवर्ग मनुष्य की चेतना में इन अन्तस्सम्बन्धों के प्रतिबिम्ब हैं।

अन्तस्सम्बन्धों का ज्ञान जबर्दस्त महत्व रखता है, क्योंकि अन्तस्सम्बन्धों का उद्घाटन करके ही हम वस्तुगत जगत् के नियमों को जान पाते हैं। इन नियमों का ज्ञान मानव के व्यावहारिक कार्यकलाप के लिए अनिवार्य रूप से जरूरी है। इन नियमों का ज्ञान प्राप्त करना और मनुष्य को इस ज्ञान से लैस करना विज्ञान का कर्तव्य है।

नियम सम्बन्धी धारणा वस्तुजगत् जगत् में अनेक नियम कार्यशील हैं। वे हैं: अजैव प्रकृति के नियम, जैव जगत् के नियम, समाज के नियम, विचार के नियम। पर वास्तविकता के किसी भी क्षेत्र के नियमों में कुछ समान विशेषताएं होती हैं जो नियम सम्बन्धी दार्शनिक धारणा के अन्तर्गत आती हैं। ये विशेषताएं क्या होती हैं?

पहली बात तो यह कि कोई भी नियम हो, वह वस्तुओं या इन वस्तुओं के पार्श्वों का सम्बन्ध अथवा अन्तस्सम्बन्ध होता है। पर कोई भी अन्तस्सम्बन्ध

नियम नहीं होता। नियम केवल टिकाऊ, पुनरावृत्त अन्तस्सम्बंध ही होता है जो किसी एक वस्तु या वस्तुओं के छोटे से समूह में निहित न होकर वस्तुओं और व्यापारों के विराट पुंज में निहित होता है। उदाहरणार्थ, संहति और ऊर्जा के अन्तस्सम्बंध का नियम, जिसकी हम पहले चर्चा कर चुके हैं, अगणित भौतिक कार्यों की संहति एवं ऊर्जा की अन्योन्याश्रितता का परिचायक है। द्मित्री मेन्देलेयेव (१८३४-१९०७) द्वारा अन्वेषित आवर्त नियम बताता है कि सभी रासायनिक तत्वों के गुणधर्म नाभिक के धन-आवेश के विन्यास पर अवलम्बित हैं। अतः नियम व्यापारों का एक नहीं, वरन् आम अन्तस्सम्बंध है। एंगेल्स के शब्दों में, नियम "प्रकृति की सार्वत्रिकता का एक रूप" है।

नियम की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह सभी आवर्त अन्तस्सम्बंधों का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि केवल उन अन्तस्सम्बधों का करता है जो आवश्यक एवं सारभूत स्वरूप वाले हैं। संहति और ऊर्जा के परस्पर सम्बंध का एक ही नियम भौतिक कार्यों के संहति और ऊर्जा जैसे सारभूत, अविच्छेद्य गुणधर्मों के रिश्ते के विशेष स्वरूप का द्योतक होता है। किसी जीव और पर्यावरण के पारस्परिक सम्बंध का जैविकीय नियम अपने अस्तित्व की अवस्थाओं के साथ जीव के आवश्यक और महत्वपूर्ण अन्तस्सम्बंध का द्योतक होता है।

कोई भी नियम जो व्यापारों में सारभूत हो, तभी क्रियाशील होता है जब ऐसी उपयुक्त अवस्थाएं हों जो एक निश्चित (कोई सा भी नहीं) भौतिक घटनाक्रम को उत्पन्न करती हो। नियमों के क्रियाशील होने में दृढ़ निश्चितता भारी व्यावहारिक महत्व रखती है। विकास के नियमों और प्रवृत्तियों को जानने पर मनुष्य भविष्य को पहले से जान सकता है। उदाहरण के लिए, सामाजिक विकास के नियमों और उन अवस्थाओं को जिनमें ये नियम क्रियाशील होते है, समझ लेने पर हममें ऐतिहासिक घटनाओं के भावी क्रम को पहले से देख सकने की क्षमता उत्पन्न होती है।

इस प्रकार नियम भौतिक जगत के व्यापारों के मध्य एक सारभूत और आवश्यक, आम और आवर्त अन्तस्सम्बंध है जो घटनाओं का एक निश्चित क्रम उत्पन्न करता है।

नियमों के स्वरूप के प्रश्न पर भौतिकवाद और भाववाद में काफी अरसे से एक संघर्ष चल रहा है। भाववादी कहते हैं कि मनुष्य अथवा कोई काल्पनिक "परम भावना" या "विश्व आत्मा" नियमों का निर्माता है। विश्लेषण करने पर यह दृष्टिबिन्दु अन्ततः हमें यहां पहुंचाता है कि हम नियमों को दैवी होना स्वीकार करें। समकालीन अमरीकी दार्शनिक व्हाइटमैन का कहना है कि "प्रकृति का हर नियम ईश्वर का नियम है, प्रकृति की हर ऊर्जा ईश्वर की कृति है।"

भाववादियों के इस मत के विपरीत, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद नियमों के वस्तुगत स्वरूप को स्वीकार करके चलता है। इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्य इच्छानुसार नियमों को बना या परिवर्तित नहीं कर सकता, वह केवल उनका सज्ञान प्राप्त कर सकता है उन्हें प्रतिबिम्बित कर सकता है। लेनिन ने लिखा था कि स्वयं नियम के अनुसार चलने वाला पदार्थ है और हमारी चेतना प्रकृति की उच्चतम उपज होने के नाते नियम के प्रति इस अनुरूपता को केवल प्रतिबिम्बित कर सकती है।

नियमों की वस्तुगतता का यह भी अर्थ होता है कि वे मनुष्य की इच्छा अथवा अभिलाषाओं से स्वतन्त्र कार्य करते है और इसलिए नियमों के विरुद्ध कार्य करने की चेष्टाओं का विफल होना पूर्व निश्चित है। उदाहरण के लिए, गुरुत्वाकर्षण के नियमो की उपेक्षा करना और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति पर काबू पाये बिना बाह्य अन्तरिक्ष में पहुचने की चेष्टा करना असभव है। इसी तरह सामाजिक विकास के नियमों की भी उपेक्षा करना सभव नहीं है। इसकी एक *मिसाल औपनिवेशिक व्यवस्था के विघटन को रोकने की साम्राज्य*-वादियों की जी-तोड कोशिशों की विफलता है। यह तथ्य उपरोक्त कथन को सही सिद्ध करता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद नियमों की भावनावादी धारणा का विरोध करता है और नियतिवाद (अर्थात् अधे होकर नियमों को पूजना, मानव-बुद्धि की शक्ति मे तथा नियमो का सज्ञान प्राप्त करने और उनका उपयोग करने की मनुष्य की योग्यता के विषय में अनास्था) को अस्वीकार करता है। मनुष्य नियमों का उन्मूलन या सृजन नही कर सकता, पर उनका सज्ञान प्राप्त कर सकता है और अपने व्यावहारिक कार्यकलाप मे उनका उपयोग कर सकता है। प्रकृति के नियमो का ज्ञान मनुष्य को आधी, पानी और अन्य प्राकृतिक तत्वों की विनाशकारी क्रिया पर काबू पाने में सक्षम बनाता है। इतना ही नहीं, इस ज्ञान की बदौलत वह इस क्रिया का अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करता है—अपने खेतो की सिचाई करता है, बिजलीघरों के टर्बाइनों को घुमाता है, और ऐसे ही अनेक अन्य कार्य करता है। सामाजिक विकास के नियमों के आधार पर जनता सामाजिक जीवन का कायापलट करती है।

समाजवादी व्यवस्था नियमो के ज्ञान एव उपयोग की सबसे अनुकूल परिस्थितिया प्रदान करती है क्योंकि इस व्यवस्था मे सामाजिक विकास को अधिशासित करने वाले नियमो की क्रिया का समस्त जनता के हितों के साथ पूरा-पूरा मेल होता है, समाजवादी सम्पत्ति के प्रभुत्व की बदौलत समाज अपने प्राकृतिक ससाधनों को नियोजित एवं सोद्देश्य ढग से सामाजिक सम्बधो को सुधारने के लिए इस्तेमाल कर सकता है।

अध्याय ७

भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के मौलिक नियम

जैसा कि हम ज्ञात कर चुके हैं, मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद विकास एवं सार्विक अन्तरसम्बंध को विद्या है। विकास में मुख्य चीज उसके स्रोतों, उसकी प्रेरक शक्तियों का प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम देता है, अतः भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के मौलिक नियमों की विवेचना हम इस नियम से ही आरम्भ करेंगे।

विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम

लेनिन ने कहा था कि विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम द्वन्द्ववाद का सारतत्व है, उसका बीज है। यह नियम भौतिक जगत की शाश्वत गति एवं विकास के स्रोतों का, उसके असल कारणों का उद्‌घाटन करता है। इस नियम का ज्ञान प्रकृति, समाज और चिंतन के विकास की द्वन्द्वात्मकता को समझने के लिए भारी महत्व रखता है। यह विज्ञान एवं क्रांतिकारी कार्यकलाप के लिए भी महत्वपूर्ण है।

किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन या व्यावहारिक कार्य के लिए यह एक प्रमुख पूर्वावश्यकता है कि वस्तुगत यथार्थ के अन्तर्विरोधों का अध्ययन किया जाय और उनके स्वरूप का पता लगाया जाय।

१. विपरीतों की एकता और संघर्ष

विपरीतों की एकता और संघर्ष के नियम की आम विवेचना आरम्भ करने से पहले हम यह देखें कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी द्वन्द्ववाद "विपरीतता" का, विपरीतों की "एकता" का क्या अर्थ समझता है।

विपरीतों की एकता

हममें से बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होंने साधारण चुम्बक का इस्तेमाल न किया हो और यह न जानते हों कि [illegible] विशेषता यह है कि उसमें एक उत्तर और एक दक्षिण ध्रुव होते हैं जो एक-दूसरे के विरोधक होने के साथ-साथ परस्पर सम्बद्ध होते हैं। अगर हम किसी चुम्बक के उत्तर ध्रुव को दक्षिण ध्रुव से अलग करना चाहें तो [illegible] कभी सफल नहीं होंगे।

चुम्बक के दो टुकड़े कर दीजिए, चार कर दीजिए, आठ कर दीजिए या उससे भी अधिक टुकड़े कर दीजिए, पर उसमें ये दो ध्रुव बने ही रहेंगे।

अतः विपरीत किसी वस्तु के वे आन्तरिक पहलू, प्रवृत्तियां या शक्तियां हैं जो परस्पर निषेधक होने के साथ ही साथ एक-दूसरे को पूर्व-मान्य भी करते हैं। इन पहलुओं के अविच्छेद्य अन्तरसम्बन्ध से ही विपरीतों की एकता बनती है।

सभी वस्तुओं और व्यापारों के परस्पर विरोधी पहलू होते हैं जो आंगिक रूप से सम्बद्ध हुआ करते हैं, जिनमें विपरीतों की अटूट एकता बनती है। उदाहरणार्थ, मौलिक कण ऊर्मि एवं कणीय गुणधर्मों का अन्तर्विरोध-युक्त एका होते हैं। केवल मौलिक कण ही नहीं बल्कि उनसे निर्मित होने वाले परमाणु भी अन्तर्विरोधयुक्त होते हैं। परमाणु के केन्द्र में धन-आवेशयुक्त नाभिक होता जो ऋण-आवेशयुक्त एक अथवा कई इलेक्ट्रोनों से घिरा रहता है। रासायनिक प्रक्रिया परमाणुओं के सुघटन और विघटन का अन्तर्विरोधयुक्त एका है।

सजीव शरीरों में भी विपरीत पहलू होते हैं। जैसे, परिपाचन और विपाचन की विपरीत प्रक्रियाओं को ले लीजिए जिनसे हर सजीव पदार्थ में निहित उपापचय की प्रक्रिया बनती है। इसके अलावा जीवों में आनुवंशिकता और अनुकूलन क्षमता जैसे अन्तर्विरोधी गुणधर्म भी होते हैं। आनुवंशिकता वंशक्रम में अर्जित विशेषताओं को कायम रखने की जीवों की प्रवृत्ति होती है। दूसरी ओर, अनुकूलनक्षमता परिवर्तित अवस्थाओं के अनुरूप नई विशेषताएं विकसित करने की क्षमता हुआ करती है।

मनुष्य के मानसिक कार्यकलाप में मस्तिष्क के गोलार्धों के वल्क में उद्दीपन एवं दमन, उद्दीपन के संकेन्द्रण और विकिरण की विपरीत प्रक्रियाएं निहित हुआ करती हैं।

विग्रहपूर्ण वर्ग समाजों में विपरीत वर्ग हुआ करते हैं—दास समाज में दास और दासस्वामी, सामन्तवाद के अन्तर्गत भूदास और सामन्ती प्रभु और पूंजीवाद के अंतर्गत सर्वहारा और पूंजीपति।

ज्ञान की प्रक्रिया में भी अन्तर्विरोधी पक्ष अन्तर्निहित होते हैं। मनुष्य अध्ययन के लिए आगमन और निगमन, विश्लेषण और संश्लेषण जैसी विपरीत और परस्पर सम्बद्ध विधियों का प्रयोग करता है।

इस प्रकार वस्तुओं और व्यापारों का अन्तर्विरोधी होना आम और सार्वत्रिक है। विश्व में ऐसी कोई वस्तु या व्यापार नहीं है जिसे विपरीतों में बांटा न जा सके।

विपरीत परस्पर निषेधक ही नहीं होते, वे एक-दूसरे को अनिवार्यतः पूर्वमान्य भी करते हैं। किसी वस्तु या व्यापार में उनका साथ-साथ अस्तित्व

होता है और एक के बिना दूसरे की बात भी नही सोची जा सकती। चुम्बक के विपरीत ध्रुवों का हम उल्लेख कर चुके हैं। सजीव शरीरों में [illegible] और विपाचन तथा ज्ञान की प्रक्रिया में विश्लेषण और संश्लेषण भी [illegible] तरह अविच्छेद्य हैं। विपरीत वर्गों—मजदूर और पूजीपति—के बिना पूजीवादी समाज का होना असम्भव है। समाजवादी क्रांति के फलस्वरूप सर्वहारा [illegible] वर्ग के रूप मे पूजीपतियो को समाप्त कर देता है, पर ऐसा होने पर [illegible] पूजीवाद नही रह जाता और समाजवाद के लिए मैदान खाली कर देता है। किन्तु जब तक पूजीवाद कायम है, तब तक पूजीपति के यहां अपने को [illegible] पर लगाये बिना मजदूर का अस्तित्व नही रह सकता, और पूजीपति [illegible] कि सदा मजदूर का शोषण करता है।

एगेल्स ने लिखा था कि "अन्तर्विरोध के एक पक्ष के बिना दूसरे पक्ष [illegible] होना उसी तरह असम्भव है जिस तरह से सेब को आधा खा चुकने के बाद हाथ में पूरे सेब का होना असम्भव है।"[1]

विपरीतों का संघर्ष विकास का स्रोत है

अतएव वस्तुएं और व्यापार विपरीतों की एकता हैं। इस एकता का स्वरूप क्या है? इस एकता में क्या विपरीतो का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व [illegible] है, या उनमे विग्रह होता है? वे एक-दूसरे के साथ संघर्ष मे रत होते हैं।

भिन्न से भिन्न वस्तुओ और व्यापारों का विकास यही सिद्ध करता है कि किसी वस्तु के विपरीत पहलू शान्तिपूर्वक एक-दूसरे के साथ नहीं रह सकते। विपरीतों का विरोधी, परस्पर निषेधक स्वरूप अनिवार्यतया उनमें संघर्ष [illegible] है। पुरातन और नूतन का, नवोदित और अप्रचलित का विग्रह होना अनिवार्य है। वे टकराते हैं और टकराएंगे। अन्तर्विरोध ही, विपरीतों का संघर्ष ही पदार्थ और चेतना के विकास का मुख्य स्रोत है। लेनिन ने लिखा था कि "विकास विपरीतों का 'संघर्ष' है।"[2] उन्होंने इस बात पर और [illegible] दिया था कि यह संघर्ष उसी प्रकार चरम है जिस प्रकार विकास या गति चरम होती है।

यह कथन कि विपरीतों का संघर्ष विकास में निर्णायक है, उनकी एकता के महत्त्व को घटाता नहीं। विपरीतों की एकता संघर्ष की आवश्यक शर्त है, क्योंकि यह वहीं होता है जहां किसी वस्तु या व्यापार के अन्दर विरोधी पक्ष विद्यमान रहते हैं।

लेनिन ने बताया था कि विपरीतों के मध्य सापेक्षी समतुल्य की अवस्था भी रह सकती है। इसका अर्थ यह है कि प्रक्रिया के विकास की एक [illegible]

शक्ति मे किसी पक्ष का प्राधान्य नहीं रहता है। मिसाल के लिए, ऐसी स्थिति रूस मे अक्तूबर १९०५ मे थी जब जारशाही जीतने की क्षमता खो चुकी थी पर क्रान्ति के पास अभी तक विजय के लिए पर्याप्त शक्तियां नहीं थी। पूंजीपतियो-जमींदारों और मजदूरों-किसानों के बीच शक्तियों का एक खास सन्तुलन रूस मे फरवरी १९१७ से जून १९१७ तक भी मौजूद था। पर दोनों ही मामलों मे विपरीत शक्तियों का यह सन्तुलन अस्थायी था। १९०५ मे प्रतिक्रियावादी शक्तियां विजयी हुई और १९१७ मे क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग और उसके मित्रों ने विजय प्राप्त की।

किसी भी प्रक्रिया के अन्दर विपरीतों का सन्तुलन सापेक्ष होता है, क्योंकि यदि यह स्थायी या शाश्वत हो तो दुनिया मे कोई विकास होगा ही नहीं। संघर्ष विकास का एकमात्र स्रोत है, उसकी एकमात्र प्रेरक शक्ति है।

अनेक आधुनिक पूंजीवादी दार्शनिक विपरीतों के सन्तुलन को परम मान कर और विपरीतों के संघर्ष से इन्कार कर मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता के मुख्य तत्व के क्रान्तिकारी स्वरूप को विकृत करते हैं। मुख्य चीज उन्हें विपरीतों का संघर्ष नहीं, बल्कि उनका समन्वय दिखाई देता है, उनका सन्तुलन दिखाई देता है। इस प्रकार पूंजीवादी सिद्धान्तवेत्ता पूंजीपतियों के हितों को मजदूरों के हितों के साथ समन्वित करने की कोशिश करते हैं और क्रांति द्वारा पूंजीवाद के गहनतम अन्तर्विरोधों का समाधान करने के पथ से जनता को विमुख कर देना चाहते हैं।

पर वास्तव मे वर्ग-विरोधों का समन्वय करना असंभव है। मानव जाति का समूचा इतिहास और मजदूर वर्ग का क्रान्तिकारी संघर्ष इस चीज को पक्की तौर से प्रमाणित करता है।

विज्ञान एवं समाज का इतिहास सिद्ध करता है कि विपरीतों का संघर्ष विकास का स्रोत है। साथ ही हमें यह ध्यान मे रखना चाहिए कि यह संघर्ष भौतिक जगत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे भिन्न-भिन्न तरीकों से अभिव्यजित होता रहता है।

आकर्षण और प्रतिकर्षण जैसी विपरीत शक्तियों का संघर्ष (अन्योन्यक्रिया) अजैव प्रकृति में छाया हुआ है। आकर्षण व प्रतिकर्षण की यान्त्रिकीय, विद्युतीय और नाभिकीय शक्तियों की अन्योन्यक्रिया पारमाणविक नाभिकों, परमाणुओं और अणुओं के गठन एवं उनके अस्तित्व के जारी रहने मे बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है। जैसा कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति सम्बंधी आधुनिक मतों से ज्ञात होता है, इन शक्तियों के संघर्ष का सौर-मंडल की रचना करने मे महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान ने यह भी प्रमाणित किया है कि आकर्षण और प्रतिकर्षण की शक्तियों की अन्योन्यक्रिया बाह्य अन्तरिक्ष मे हो रही नव प्रक्रियाओ के महत्वपूर्ण कारणों मे से है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में इन शक्तियों का परम सन्तुलन कहीं नहीं है। एक शक्ति सदा दूसरे पर हावी रहती है। जहा प्रतिकर्षण हावी होता है, वहा पदार्थ और ऊर्जा विच्छिन्न और सितारे काल-कवलित हो रहे हैं। जहा आकर्षण हावी है, वहां पदार्थ और ऊर्जा संकेन्द्रित हो रहे है और फलतः नये सितारे प्रज्वलित होते हैं। इन दो विपरीत शक्तियों के संघर्ष और उनकी अन्योन्यक्रिया के दौरान पदार्थ और ऊर्जा ब्रह्माण्ड मे शाश्वत रूप से गतिशील रहते है।

हम पहले बता चुके है कि सजीव शरीरो मे परिपाचन और विपाचन की विपरीत प्रक्रियाए अन्तर्निहित हैं। उनका संघर्ष ही, उनकी अन्योन्यक्रिया ही, हर जीवित प्राणी के विकास का विशिष्ट स्रोत है। ये विपरीत शक्तियां पूर्ण सन्तुलन की अवस्था मे कभी नही रह सकती, उनमे से एक न एक हावी रहती ही है। किशोर जीव मे परिपाचन विपाचन पर हावी रहता है और उस जीव की वृद्धि को, उसके विकास को निर्धारित करता है। जब विपाचन हावी होता है, तो शरीर बूढ़ा होता है और गिरने लगता है। हर जीव मे, वह जवान हो या बूढ़ा, ये प्रक्रियाए एक-दूसरे पर क्रियाशील होती हैं। उनकी अन्योन्यक्रिया ही, उनका अन्तर्विरोध ही जीवन है। जब यह अन्तर्विरोध समाप्त हो जाता है, तो जीवन भी समाप्त हो जाता है।

सामाजिक विकास भी विपरीतो की एकता और संघर्ष के आधार पर अग्रसर होता है। भौतिक उत्पादन के अन्दर के विरोध, खासकर उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बधों के परस्पर विरोध सामाजिक विकास के अन्तर्विरोधों में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विरोधी वर्गों वाले समाजों में उत्पादक-शक्तियों और उत्पादन-सम्बधों का पारस्परिक विरोध विरोधी वर्गों के संघर्ष मे अभिव्यजित होता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक क्रान्ति होती है और पुरानी सामाजिक व्यवस्था को हटाकर उसका स्थान नई सामाजिक व्यवस्था ग्रहण करती है।

इस प्रकार वस्तुओं और व्यापारों में विपरीत पहलू होते हैं। वे विपरीतों की एकता के प्रतिरूप होते हैं। विपरीतों का केवल सह-अस्तित्व ही नहीं होता, वरन् वे सतत अन्तर्विरोध की अवस्था में रहते हैं, उनमे आपस में संघर्ष चलता रहता है। विपरीतों का संघर्ष या टकराव आन्तरिक तत्व है, संघर्ष है विकास का स्रोत है।

यही विपरीतों की एकता और संघर्ष का द्वन्द्वात्मक नियम है।

२. अन्तर्विरोधों की विविधता

दुनिया मे नाना भाति के अन्तर्विरोध मौजूद है। अपने रोजमर्रे की जिन्दगी मे हमारा निरन्तर उनसे सामना होता रहता है। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद उनसे आम अन्तर्विरोधों का अध्ययन करता है। इस चीज मे वह अन्य विज्ञानो से अलग है। यहा हम आन्तरिक और बाह्य, वैमनस्यपूर्ण और वैमनस्यरहित, मौलिक और अमौलिक अन्तर्विरोधो की विवेचना करेंगे, क्योंकि ये अन्तर्विरोधों के बड़े और महत्वपूर्ण समूह हैं।

आन्तरिक और बाह्य अन्तर्विरोध

मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता सबसे पहले आन्तरिक और बाह्य *अन्तर्विरोधो मे विभेद करती है।*

किसी वस्तु के विपरीत पक्षो की अन्योन्यक्रिया, इन पक्षो का संघर्ष उसके आन्तरिक अन्तर्विरोध होते है। किसी वस्तु के अपने पर्यावरण के साथ, उस पर्यावरण की वस्तुओ के साथ अन्तर्विरोधी सम्बध उसके बाह्य अन्तर्विरोध होते हैं।

मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता के विरोधी लोग विकास मे अन्तर्विरोधो के विभिन्न समूहो द्वारा अदा की जाने वाली भूमिका को विकृत करके पेश करते है। वे आन्तरिक अन्तर्विरोधो के निर्णायक महत्व को नही मानते और बाह्य अन्तर्विरोधो को विकास का एकमात्र स्रोत बतलाते हैं। उदाहरणार्थ, उनके मतानुसार वर्ग समाज के विकास का स्रोत विरोधी वर्गो का संघर्ष नही, बल्कि समाज और प्रकृति का अन्तर्विरोध है। वे इस बात को नही समझना चाहते कि प्रकृति के साथ मनुष्य का सम्बध तथा प्रकृति पर मनुष्य की प्रभुता का दायरा समाज के अन्दर वर्ग-सम्बधों पर निर्भर होता है, सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर होता है।

भौतिक जगत की वस्तुओ और व्यापारो मे आन्तरिक और बाह्य दोनो ही *अन्तर्विरोध निहित होते है, किन्तु स्वय वस्तु मे मौजूद आन्तरिक अन्तर्विरोध* प्रधान अन्तर्विरोध होते हैं जो विकास के लिए निर्णायक हैं, क्योकि वे विकास का मुख्य स्रोत हैं। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद पदार्थ की स्व-गति, उसकी आन्तरिक गति को ही गति मानता है जिसकी प्रेरक शक्तिया अथवा आवेग स्वय विकासशील वस्तुओं और व्यापारो के अन्दर निहित होते है।

अन्योन्यक्रिया, पदार्थ के तरग और कणिका सम्बधी गुणधर्म, आकर्षण और प्रतिकर्षण की शक्तिया, परिपाचन और विपाचन एव अन्य अंतर्विरोध जिनका जिक्र हम पदार्थ के विभिन्न क्षेत्रो मे विकास के स्रोतो के रूप मे कर चुके है, *वस्तुओ और व्यापारो मे बाहर से नही प्रविष्ट होते, बल्कि उनके भीतर* ही मौजूद रहते है।

आन्तरिक अन्तर्विरोध विकास के स्रोत इसलिए होते हैं कि वे स्वयं वस्तु के पहलू अथवा स्वरूप को निर्धारित करते हैं। अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधों से ही वस्तु वह होता है जो वह है। उदाहरण के लिए, अन्योन्यक्रिया के बिना, धन-आवेशित नाभिक और ऋण-आवेशित इलेक्ट्रोनों के "संघर्ष" के बिना परमाणु का अस्तित्व नहीं हो सकता; या परिपाचन और विपाचन के बिना किसी शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता, आदि।

किसी वस्तु पर पड़ने वाले सभी बाह्य प्रभाव सदा उसके अन्तर्निहित अन्तर्विरोधों द्वारा वर्तित होते हैं और यह विकास में इन अन्तर्विरोधों की निर्धारक भूमिका की अभिव्यक्ति है। बाह्य पर्यावरण में परिवर्तन केवल किसी शरीर के विकास को आवेग प्रदान करते हैं, पर विकास की दिशा और उसका अन्तिम लक्ष्य शरीर के उपापचय पर निर्भर करता है, अर्थात् परिपाचन और विपाचन की अन्योन्यक्रिया पर निर्भर करता है जो उस खास शरीर की विशेषता होती है।

सामाजिक विकास का स्रोत भी स्वयं समाज के अन्दर होता है, उसमें निहित आन्तरिक अन्तर्विरोधों में होता है। कोई देश किस दिशा में विकास करता है और उसकी सामाजिक व्यवस्था क्या होती है, यह इस पर निर्भर करता है कि उसके आन्तरिक, वर्ग अन्तर्विरोधों का किस तरह समाधान होता है। जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है, "(समाजवादी) क्रान्ति आर्डर देकर नहीं करायी जा सकती। किसी जनता पर उसे बाहर से नहीं लादा जा सकता। वह तो पूंजीवाद के गहरे आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्विरोधों का परिणाम हुआ करती है।"

यह सही है कि ऐसी मिसालें मौजूद हैं जब किसी देश पर बाहरी प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा आन्तरिक व्यवस्था थोप दी गयी है। पर किसी जनता पर बाहर से थोपी गयी शासन व्यवस्था टिकाऊ नहीं होती और गंभीर कठिनाई का सामना पड़ते ही भहरा पड़ती है।

भौतिकवादी द्वन्द्ववाद आन्तरिक अन्तर्विरोधों की निर्णायक भूमिका पर जोर देता है, पर वह विकास के लिए बाह्य अन्तर्विरोधों के महत्व से इनकार नहीं करता। बाह्य अन्तर्विरोधों की भूमिका नाना प्रकार की हुआ करती है और ये अन्तर्विरोध प्रायः ही विकास के आवश्यक पूर्व-उपकरण हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए, समाज और परिवेश का, जिससे मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह का साधन हासिल करता है, अन्तर्विरोध ऐसा ही अन्तर्विरोध है।

बाह्य अन्तर्विरोध विकास में सुगमता ला सकते हैं या उसमें बाधा डाल सकते हैं, वे उसे विभिन्न रंग या रूप प्रदान कर सकते हैं, पर आम तौर पर वे किसी प्रक्रिया के अथवा पूरे विकास के पथ को निर्धारित करने में [illegible]

हैं। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में समाजवाद की विजय आन्तरिक अन्तर्विरोधों का, सर्वोपरि सर्वहारा वर्ग और पूजीपति वर्ग के पारस्परिक विग्रह का, सही समाधान निकालने की वजह से सुनिश्चित हुई। पर समाजवाद की ओर प्रगति सोवियत राज्य और पूजीवादी देशों के, जिन्होंने रूस मे पूजीवादी व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा, बाह्य अन्तर्विरोधों से भी प्रभावित हुई। राजनीतिक बहिष्कार और आर्थिक नाकेबन्दी, सशस्त्र हस्तक्षेप, बार-बार फौजी उकसावों और अन्ततः नाजियों के आक्रमण ने सोवियत संघ के विकास को बडा धक्का लगाया, किन्तु साम्राज्यवादियों की ये सारी साजिशें समाजवाद की विजयी प्रगति को रोक न सकी।

आन्तरिक अन्तर्विरोध द्वारा सभी वस्तुओं और व्यापारों के विकास के निर्धारित होने के कारण व्यावहारिक कार्य में यह खास तौर पर जरूरी हो जाता है कि हम इन अन्तर्विरोधों को प्रकाश में लाने और उनका समाधान निकालने मे समर्थ हो। लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि बाह्य अन्तर्विरोधों की उपेक्षा न की जाय, क्योंकि विकास मे उनका भी महत्व है।

आन्तरिक और बाह्य अन्तर्विरोधों की परस्पर क्रिया का लेखा लिये बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

वैमनस्यपूर्ण और वैमनस्य-रहित अन्तर्विरोध

जब हम वैमनस्यपूर्ण और वैमनस्यरहित अन्तर्विरोधों की बात करते हैं, तो सामाजिक व्यापारों के सभी क्षेत्र हमारे सामने रहते हैं। यह सही है कि प्राणवान् जीवों मे भी खास किस्म के वैमनस्य मौजूद रहते हैं—जैसे खास-खास किस्म की बैक्टीरिया मे, परभक्षी जानवरों और उन जानवरों मे जो परभक्षी नहीं होते और कतिपय पौदों मे। पर ये सामाजिक वैमनस्य से भिन्न हैं।

वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोध सर्वोपरि उन वर्गों का अन्तर्विरोध है जिनके हित इतने शत्रुतापूर्ण होते हैं कि उनका समन्वय हो ही नहीं सकता। ये सबसे अधिक तीव्र और प्रगट अन्तर्विरोध हैं जो भिन्न-भिन्न वर्गों के जीवन की गहन विरोधी अवस्थाओं और इन वर्गों के भिन्न-भिन्न लक्ष्यों और उद्देश्यों से उत्पन्न होते हैं। इन अन्तर्विरोधों की मुख्य विशेषता यह होती है कि वे उस सामाजिक व्यवस्था के ढांचे के अन्दर, जिसकी विशेषता के वे नमूने होते हैं, समन्वित नहीं हो सकते। अधिक गहरे और अधिक तीव्र होते जाने के साथ-साथ इन वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोधों के फलस्वरूप भारी टक्करें होती हैं, संघर्ष उठ खड़े होते हैं। इनके समाधान का एकमात्र तरीका सामाजिक क्रान्ति है।

पूजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग का अन्तर्विरोध पूजीवादी समाज का सबसे तीव्र एवं गहरा अन्तर्विरोध है। पूजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग का वैमनस्य

आन्तरिक अन्तर्विरोध विकास के स्रोत इसलिए होते हैं कि वे सार एवं के पहलू अथवा स्वरूप को निर्धारित करते हैं। अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधों से ही वस्तु वह होना है जो वह है। उदाहरण के लिए, अन्योन्यक्रिया के लिए धन-आवेशित नाभिक और ऋण-आवेशित इलेक्ट्रोनों के "संघर्ष" के बिना परमाणु का अस्तित्व नहीं हो सकता; या परिपाचन और विपाचन के बिना किसी शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता, आदि।

किसी वस्तु पर पड़ने वाले सभी बाह्य प्रभाव सदा उसके अन्तर्निहित अन्तर्विरोधों द्वारा वर्तित होते हैं और यह विकास में इन अन्तर्विरोधों की निर्धारक भूमिका की अभिव्यक्ति है। बाह्य पर्यावरण में परिवर्तन केवल किसी शरीर के विकास को आवेग प्रदान करते हैं, पर विकास की दिशा और उसका अन्तिम लक्ष्य शरीर के उपापचय पर निर्भर करता है, अर्थात् परिपाचन और विपाचन की अन्योन्यक्रिया पर निर्भर करता है जो उस खास शरीर की विशेषता होती है।

सामाजिक विकास का स्रोत भी स्वयं समाज के अन्दर होता है, उसमें निहित आन्तरिक अन्तर्विरोधों में होता है। कोई देश किस दिशा में विकास करता है और उसकी सामाजिक व्यवस्था क्या होती है, यह इस पर निर्भर करता है कि उसके आन्तरिक, वर्ग अन्तर्विरोधों का किस तरह समाधान होता है। जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है, "(समाजवादी) क्रान्ति आर्डर देकर नही करायी जा सकती। किसी जनता पर उसे बाहर से नही लादा जा सकता। वह तो पूंजीवाद के गहरे आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्विरोधों का परिणाम हुआ करती है।"

यह सही है कि ऐसी मिसालें मौजूद हैं जब किसी देश पर बाहरी प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा आन्तरिक व्यवस्था थोप दी गयी है। पर किसी जनता पर बाहर से थोपी गयी शासन व्यवस्था टिकाऊ नहीं होती और गंभीर कठिनाई का सामना पडते ही भहरा पड़ती है।

भौतिकवादी द्वन्द्ववाद आन्तरिक अन्तर्विरोधों की निर्णायक भूमिका पर जोर देता है, पर वह विकास के लिए बाह्य अन्तर्विरोधों के महत्व से इनकार नही करता। बाह्य अन्तर्विरोधो की भूमिका नाना प्रकार की हुआ करती है। और ये अन्तर्विरोध प्राय: ही विकास के आवश्यक पूर्व-उपकरण हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए, समाज और परिवेश का, जिससे मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह का साधन हासिल करता है, अन्तर्विरोध ऐसा ही अन्तर्विरोध है।

बाह्य अन्तर्विरोध विकास मे सुगमता ला सकते हैं या सकते हैं, वे उसे विभिन्न रंग या रूप प्रदान कर सकते हैं, किसी प्रक्रिया के अथवा पूरे विकास के पथ को [illegible]

मौलिक हितो का यह साम्य पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष मे मजदूर वर्ग और किसानो के गठबंधन के लिए एक वस्तुगत आधार पैदा करता है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने मजदूरो और किसानो के मौलिक हितों की एकता का लेखा लिया और उन्हे साथ मिला कर एक प्रबल सामाजिक शक्ति खडी की जिसने पूंजीवाद को परास्त किया। समाजवाद के विकसित होने के साथ मजदूर वर्ग और किसानो के अन्तर्विरोध, जो पूंजीवाद से विरासत मे मिले थे, मिटा दिये गये और समाजवाद तथा कम्युनिज्म का निर्माण करने के प्रयास मे उनकी एकता अधिकाधिक दृढ और अजेय बनती जा रही है।

समाजवादी समाज के अन्तर्विरोध भी वैमनस्यरहित होते हैं। इस चीज की विशद व्याख्या आगे चल कर की जायगी।

बुनियादी और गैर-बुनियादी अन्तर्विरोध

सरल से सरल और जटिल से जटिल वस्तुओ और व्यापारो के अन्दर एक साथ ही कई अन्तर्विरोध मौजूद होते हैं। अन्तर्विरोधो के इस जमघट मे से राह निकालने के लिए हमे उनमे से बुनियादी अन्तर्विरोध को चुनना होगा। बुनियादी अन्तर्विरोध वह है जो विकास मे निर्णायक या अग्रणी भूमिका अदा करता है और अन्य सभी अन्तर्विरोधो पर असर डालता है।

उदाहरण के लिए, रासायनिक प्रक्रिया का बुनियादी, निर्णायक अन्तर्विरोध परमाणुओं के संघटन और विघटन का अन्तर्विरोध है। इसी तरह जैविकीय प्रक्रिया का बुनियादी, निर्णायक अन्तर्विरोध उपापचय की अन्तर्विरोधी प्रकृति है।

सामाजिक जीवन के, जो असाधारण रूप से जटिल और बहुमुखी होता है, बुनियादी अन्तर्विरोध का पता लगाना खास तौर से महत्वपूर्ण है। इस बुनियादी अन्तर्विरोध की खोज से समाज के आगे बढे हुए वर्गों और मार्क्सवादी पार्टियो को काम की सही लाइन निकालने तथा व्यावहारिक कार्य को कुशलतापूर्वक संगठित करने मे मदद मिलती है।

आज के समाज मे ढेर सारे अन्तर्विरोध मौजूद हैं। पूंजीवादी देश मे उत्पादन प्रक्रिया के सामाजिक स्वरूप का लाभ हथियाने के निजी रूप के साथ विरोध रहता है, श्रम का पूंजी के साथ विरोध रहता है। पूंजीवादी देशों के बीच, उनके समूहों, गुटो आदि के बीच विरोध रहते हैं।

अन्तर्विरोधों के इस जमघट मे बुनियादी और निर्णायक अन्तर्विरोध है समाजवाद की शक्तियों, जिनका प्रतिनिधित्व विश्व समाजवादी व्यवस्था करती है तथा साम्राज्यवाद की प्रतिगामी शक्तियों के बीच का अन्तर्विरोध। यह अन्तर्विरोध इस समय मानवजाति के विकास की प्रेरक-शक्ति बन गया है। इसमे दो नीतियां, दो ऐतिहासिक प्रवृत्तियां निहित हैं। एक जिसका प्रतिनिधित्व

विश्व समाजवादी व्यवस्था करती है, प्रगति, शान्ति और रचनात्मक प्रयास की नीति है। दूसरी जिसका प्रतिनिधित्व साम्राज्यवाद करता है प्रतिक्रियावाद उत्पीड़न और युद्धों की नीति है।

समाजवाद और साम्राज्यवाद के बीच का अन्तर्विरोध विश्व इतिहास की पूरी धारा पर जबर्दस्त प्रभाव डाल रहा है। वह पूजीवादी देशो के अन्दर वर्गों के संघर्ष और उत्पीड़कों के विरुद्ध उपनिवेशो और परतन्त्र देशों की जनता के संघर्ष पर प्रभाव डालता है। यह युद्ध साम्राज्यवादी देशो के पारस्परिक अन्तर्विरोधों पर भी प्रभाव डालता है। विश्व समाजवादी व्यवस्था का अस्तित्व साम्राज्यवादियो की राह का बहुत बड़ा रोड़ा है और उन्हें नया विश्व युद्ध छेड़ने से तथा अन्य राष्ट्रों के सार्वभौम अधिकारों को मनमाने तौर पर पैरो तले रौंदने से रोकता है। यह पूजीवादी देशो के मेहनतकशो के दिलो मे अपने ध्येय के न्यायपूर्ण होने के बारे मे आत्मविश्वास भरता है और शोषकों के विरुद्ध संघर्ष में उन्हे बल प्रदान करता है। समाजवादी व्यवस्था ज्यों-ज्यो आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित होती जाती है, त्यों-त्यो दुनिया में उसका प्रभाव बढ़ता जाता है। इसीलिए मार्क्सवादी पार्टिया अपने व्यावहारिक कार्यकलाप का आयोजन करते समय हमारे युग की सर्वप्रमुख विशेषता —समाजवादी शक्तियों की निरन्तर वृद्धि और साम्राज्यवादी शक्तियो की दुर्बलता—के प्रभाव का लेखा लेती हैं।

वर्तमान युग का बुनियादी अन्तर्विरोध अर्थात् समाजवाद और साम्राज्यवाद के बीच का अन्तर्विरोध पूजीवादी जगत के अन्दर के गहरे अन्तर्विरोधो को दूर नही कर देता। जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है, "विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था गहरे और तीव्र अन्तर्विरोधों द्वारा क्षत-विक्षत हो रही है। श्रम और पूजी का वैमनस्य, जनता और इजारेदारियो के बीच का अन्तर्विरोध, बढ़ता हुआ सैन्यवाद, औपनिवेशिक व्यवस्था का टूटना, साम्राज्यवादी देशो के आपसी अन्तर्विरोध, नये राष्ट्रीय राज्यों और पुरानी उपनिवेशवादी शक्तियों के बीच टक्कर और अन्तर्विरोध और विश्व समाजवादी व्यवस्था का तेज विकास, जो सबसे महत्वपूर्ण बात है, साम्राज्यवाद को अन्दर से खोखला और नष्ट कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप वह दुर्बल और चकनाचूर हो रहा है।"

आन्तरिक और बाह्य, वैमनस्यपूर्ण और वैमनस्यरहित, बुनियादी और गैर-बुनियादी अन्तर्विरोधों के बीच कोई पक्की सीमा-रेखाए नही हैं। दरअसल वे एक-दूसरे से गुथे हुए हैं, एक दूसरे मे सन्तरित हो जाया करते हैं और विकास मे भिन्न-भिन्न भूमिकाएं अदा करते हैं। इसीलिए [illegible] के प्रति अलग-अलग रुख अपनाना चाहिए। ऐसा उन अवस्था[illegible] प्रगट

होता है और उस भूमिका का जो वह अदा करता है, लेखा लेते हुए किया जाना चाहिए।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी सामाजिक विकास के अन्तर्विरोधों के प्रति ठोस रुख अपनाती है। वह ऐतिहासिक अवस्थाओं का लेखा लेती है, मुख्य अन्तर्विरोधों को चुन लेती है और मुख्य शक्तियों और साधनों को उनके समाधान के निमित्त लगाती है। सोवियत सत्ता की स्थापना के प्रथम वर्षों में देश में स्थापित उन्नत राजनीतिक व्यवस्था और जारशाही रूस से विरासत मे मिली पिछड़ी अर्थव्यवस्था के अन्तर्विरोध ने जोरदार असर दिखलाया। इस अन्तर्विरोध का औद्योगीकरण की प्रक्रिया मे समाधान हुआ। पर जब औद्योगीकरण आगे बढ़ा तो समाजवादी उद्योग और छोटे पैमाने की किसानी के मध्य अन्तर्विरोध अधिकाधिक तीव्र होने लगा। जनता और पार्टी ने किसानों को सामूहिक फार्मों मे सगठित करके इस अन्तर्विरोध का भी समाधान किया। इन अन्तर्विरोधो का उन्मूलन सोवियत सघ मे समाजवाद के निर्माण के लिए निर्णायक महत्व का कदम सिद्ध हुआ।

३. समाजवादी समाज के अन्तर्विरोध और उन्हें दूर करने के उपाय

सोवियत सघ मे समाजवाद की विजय के फलस्वरूप शोषक वर्गों का, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को पैदा करने वाले कारणों का खातमा हो गया। साथ ही नगर और देहात की, शारीरिक और मानसिक श्रम की प्रतिकूलता भी दूर हो गयी। मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियो के मौलिक हितो की एकता सोवियत जनता की सामाजिक-राजनीतिक और विचारधारात्मक एकता का आधार बनी। अनेकानेक सोवियत जातियो मे दृढ़ मित्रता विकसित हुई। सोवियत संघ जैसे-जैसे कम्युनिज्म की दिशा मे प्रगति करता है, यह एकता और अधिक मजबूत होती जाती है, जातिया एव सामाजिक समूह एक-दूसरे के निकटतर आते जाते हैं, वे एक-दूसरे को समृद्ध बनाते हैं और उनके विभेद धीरे-धीरे लुप्त होते जाते हैं। पर इसका अर्थ यह नही है कि समाजवाद के अन्तर्गत कोई अन्तर्विरोध होने ही नही। समाजवादी समाज निरन्तर विकास करता है और जहां विकास होता है, वहां पुरातन और नूतन होते हैं और फलतः उनमें सघर्ष भी होता ही है। लेनिन ने लिखा था कि "वैमनस्य और अन्तर्विरोध एक ही चीज नही हैं। समाजवाद के अन्तर्गत वैमनस्य समाप्त हो जायगा पर अन्तर्विरोध बना रहेगा।"[1]

---

१. लेनिन के चुने हुए लेख, रूसी संस्करण, मास्को, १९३१. पृष्ठ ३५७।

सोवियत जनता का प्रधान बहुमत कम्युनिज्म के निर्माण में सक्रिय होकर भाग ले रहा है। पर अब भी ऐसे व्यक्ति हैं जो उत्पादन की पुरानी, बेकार हो चुकी विधियों से, पिछड़ी हुई प्रविधि से चिपके रहना चाहते हैं। इसके अलावा कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनके दिमाग पर पूंजीवाद के अवशेषों का असर सवार है। इन व्यक्तियों के हित और सारी जनता की बहुसंख्या के हितों के विपरीत जाते हैं। ये लोग कम्युनिज्म के निर्माण में रुकावटें डालते हैं। इन व्यक्तियों में से अधिकतर को जनता और कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयास द्वारा फिर से शिक्षित किया जाता है। लेकिन जो एकदम सुधरने का नाम ही नहीं लेते, उनके खिलाफ दमनकारी पगों का इस्तेमाल किया जाता है।

इस बात को समझ लेना जरूरी है कि सोवियत जनता तथा पुरातन के अवशेषों को ढोने वाले व्यक्तियों के अन्तर्विरोधों का स्रोत समाजवादी समाज के स्वरूप में नहीं बल्कि पूंजीवाद की विरासत और उसके असर में विचार-धारा सम्बंधी कार्य एवं शिक्षा आदि की त्रुटियों में निहित है। ये अन्तर्विरोध अस्थायी हैं और कम्युनिज्म की विजय के साथ पूर्णतया समाप्त हो जायेंगे।

समाजवाद के अन्तर्विरोध कैसे प्रकाश में लाये और मिटाये जाते हैं?

समाजवादी समाज के अन्तर्विरोधों का उद्घाटन करने की विधि आलोचना और आत्मालोचना है। यह विधि अन्तर्विरोधों को प्रकाश में लाती तो है, पर उनको सुलझाने की क्षमता उसमें नहीं है। उन्हें खत्म करने के लिए हर एक को सक्रिय बनाने की, पार्टी और राज्य दोनों ही द्वारा कुशल सांगठनिक और शैक्षणिक काम किये जाने की जरूरत होती है। उत्पादन का निरन्तर विकास और सुधार, कम्युनिज्म के निर्माण में जनता का सक्रिय होकर भाग लेना, सोवियत नागरिकों को शिक्षित करने के लिए पार्टी द्वारा अध्यवसाय के साथ कार्य —ये ही समाजवादी समाज के अन्तर्विरोधों को दूर करने के मुख्य साधन हैं।

आन्तरिक अन्तर्विरोधों के अतिरिक्त, सोवियत संघ और पूरी विश्व समाजवादी व्यवस्था का विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के साथ वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोध है। यह अन्तर्विरोध बाह्य है, समाजवादी देशों के विकास पर इसका भारी प्रभाव पड़ता है और इसके महत्व को हमें घटा कर नहीं आंकना चाहिए। समाजवादी देश इस अन्तर्विरोध को शान्तिपूर्ण तरीके से, शान्तिपूर्ण सह-जीवन के आधार पर, निपटाने के लिए पूरा प्रयास कर रहे हैं। ऐटमी विश्व युद्ध से भयंकर जनसंहार और बरबादी होगी और मानव जाति की प्रगति को जबर्दस्त धक्का लगेगा। इसीलिए नया विश्वयुद्ध न होने देने और शान्ति बनाये रखने के लिए संघर्ष सभी ईमानदार लोगों का सर्वोपरि कर्तव्य है। शान्ति के लिए संघर्ष सामाजिक प्रगति और समाजवाद एवं कम्युनिज्म के सफल [illegible] के लिए जरूरी है।

परिमाणात्मक से गुणात्मक परिवर्तन में सन्तरण का नियम

यह नियम बतलाता है कि विकास कैसे और किस ढंग से चलता है और इस प्रक्रिया की क्रियाविधि क्या है।

इस नियम को समझने के लिए हमें पहले यह समझना होगा कि गुण और परिमाण क्या हैं।

१. गुण और परिमाण

हम अगणित विविध वस्तुओं और व्यापारों से घिरे रहते हैं और ये सारी की सारी वस्तुएं और सारे के सारे व्यापार सतत रूप से गतिमान हैं तथा निरन्तर परिवर्तित हो रहे हैं। पर हम इन वस्तुओं को उलझाते नहीं, बल्कि उनमें भेद करते हैं और सब को सीमांकित करते हैं। ऐसा नहीं होता कि सारी वस्तुएं मिल-जुलकर एक आकारहीन ढेरी बन जायें, बल्कि हर वस्तु दूसरी वस्तु से अलग और स्पष्ट रहती है और उसके अपने-अपने विशिष्ट गुणधर्म होते हैं।

उदाहरण के लिए, सोने जैसी धातु को ले लीजिए। उसका अपना खास पीला रंग, लोच, कुट्टनीयता, निश्चित घनत्व और ताप क्षमता, गलनांक और क्वथनांक होता है। सोना किसी अलकली (क्षार) में नहीं घुलता। कई तेजाब भी हैं जिनमें यह नहीं घुलता। वह रासायनिक दृष्टि से बहुत सक्रिय नहीं है और खुली हवा में उसमें मोर्चा नहीं लगता। इस सबको मिलाकर सोना अन्य धातुओं से स्पष्टतः अलग हो जाता है।

कोई वस्तु क्या चीज है, अन्य अगणित वस्तुओं से वह जिस बात में विशिष्ट है, वह है उसका गुण।

सभी वस्तुओं और व्यापारों में गुण रहता है। गुण से ही हम उसे सीमांकित कर सकते हैं और उसकी पहचान कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कौन सी चीज सजीव पदार्थ को निर्जीव पदार्थ से भिन्न बनाती है? यह है पर्यावरण के साथ उपापचयात्मक सम्बंध कायम करने की, बाह्य प्रभावों का सोद्देश्य प्रतिचार करने और प्रजनित करने की उसकी क्षमता। इन तथा कुछ अन्य गुणधर्मों से ही सजीव पदार्थ का गुण बनता है।

सामाजिक व्यापारों में भी गुणात्मक भेद हुआ करता है। समाजवाद से पूंजीवाद किस बात में अलग है? माल-उत्पादन के अभाव, पूंजीवादी सम्पत्ति की विद्यमानता, मजूरी तथा अन्य विशेषताओं में।

किसी वस्तु का गुण उन चीजों ... भेद है ... गुणधर्म

कहते हैं। गुणधर्म किसी वस्तु का ...

है, पर गुण वस्तु को पूरे तौर पर दर्शाता है। सोने का पीला रंग, कुट्टनीयता, लोच और अन्य विशेषताएं, अलग-अलग उसके गुणधर्म हैं और जब इन सारे गुणधर्मों को एक साथ मिलाकर विचार किया जाता है, तो वह सोने का गुण बन जाता है।

निश्चित गुण के अलावा हर वस्तु में परिमाण भी होता है। गुणों के विपरीत, परिमाण किसी वस्तु के विकास के अंश अथवा उसके आभ्यन्तरिक गुणधर्मों की प्रगाढ़ता को और इसके अलावा उसके आकार, आयतन आदि को प्रतिबिम्बित करता है। परिमाण आम तौर पर किसी संख्या द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। आकार, भार, वस्तुओं का आयतन, उनके आभ्यन्तरिक वर्णों की प्रगाढ़ता और उनके द्वारा व्यक्त ध्वनियों की प्रगाढ़ता आदि सख्याओं में अभिव्यक्त किये जाते हैं।

सामाजिक व्यापारों में भी परिमाणात्मक विशेषताएं हुआ करती हैं। हर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन के विकास का अपना एक तदनुरूप स्तर अथवा परिमाण हुआ करता है। हर देश की अपनी एक निश्चित उत्पादन क्षमता, श्रम, कच्चा माल और शक्ति-स्रोत होते हैं।

गुण और परिमाण का एका होता है क्योंकि वे एक ही वस्तु के दो पक्षों के द्योतक होते हैं। किन्तु उनमें महत्वपूर्ण भेद भी हैं। गुण में परिवर्तन होने से वस्तु परिवर्तित हो जाती है, वह अन्य वस्तु में तब्दील हो जाती है। इसके विपरीत, खास सीमाओं के अन्दर परिमाण में परिवर्तन होने से वस्तु का कोई दर्शनीय कायापलट नहीं होता। यदि पूंजीवादी सम्पत्ति, यानी पूंजीवाद की सबसे महत्वपूर्ण गुणात्मक विशेषता, समाप्त कर दी जाय और उसकी जगह समाजवादी सम्पत्ति की स्थापना की जाय, तो एक नई, गुणात्मक रूप से भिन्न व्यवस्था (समाजवाद) पूंजीवाद का स्थान ले लेगी। पर यदि पूंजीवादी सम्पत्ति का विस्तार किया जाय, उसे केन्द्रीकृत किया जाय, उसे इजारेदारों के छोटे से समूह या पूंजीवादी राज्य के हाथों में केन्द्रित किया जाय, जैसा कि पूंजीवादी जगत में इन दिनों हो रहा है, तो पूंजीवाद पूंजीवाद ही बना रहेगा।

गुण और परिमाण की एकता को मान (मेजर) कहते हैं। मान एक प्रकार की सीमा-रेखा है, चौखटा है जिसके भीतर वस्तु जैसी की तैसी बनी रहती है। इस मान में, परिमाणात्मक और गुणात्मक पक्षों के इस योग में, "व्यतिक्रम" आ जाने के फलस्वरूप वस्तु में परिवर्तन आता है, वह अन्य वस्तु में तब्दील होती है। उदाहरण के लिए, द्रव अवस्था में पारे का तापमान —३९° सेंटीग्रेड से +३५७° सेंटीग्रेड तक होता है। —३९° सेंटीग्रेड ताप पर पारा घन रूप धारण कर लेता है और +३५७° सेंटीग्रेड ताप पर वह उबलने और भाप का रूप धारण करने लगता है।

सामाजिक व्यापारों में भी परिमाणात्मक और गुणात्मक सीमांकन अन्तर्निहित होते हैं। उदाहरण के लिए, कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का द्योतक केवल उत्पादन की बड़ी परिमाणात्मक वृद्धि ही नहीं होती, बल्कि गुणात्मक विशिष्टताएं—उत्पादन का सर्वतोमुखी एवं पूर्ण विद्युतीकरण, उत्पादन प्रक्रियाओं का समग्र यन्त्रीकरण और आटोमेशन, शक्ति, कच्चे तथा अन्य मालों के नये स्रोतों का उपयोग, विज्ञान और उत्पादन की आंशिक एकता, आदि—भी उसकी द्योतक होती हैं।

सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही में व्यापारों के परिमाणात्मक और गुणात्मक पक्षों की एकता का लेखा लेना बहुत महत्वपूर्ण है।

२. परिमाणात्मक परिवर्तन का गुणात्मक में सन्तरित होना विकास का एक नियम है

हम पहले बता चुके हैं कि कुछ खास सीमाओं के अन्दर परिमाणात्मक परिवर्तन होने से वस्तु में गुणात्मक परिवर्तन नहीं हो जाता। पर ज्यों ही ये सीमाएं पार होती हैं और "मान" बिगड़ता है, त्यों ही सारभूत न ज्ञात होने वाले परिमाणात्मक परिवर्तन अनिवार्यतया आमूल गुणात्मक रूपान्तर प्रस्तुत कर देते हैं—परिमाण गुण मे बदल जाता है। मार्क्स ने लिखा था कि विकास की प्रक्रिया मे "...केवल परिमाणात्मक भेद भी एक खास विन्दु से आगे जाने पर गुणात्मक परिवर्तन वन जाते हैं।"[1]

परिमाणात्मक से गुणात्मक परिवर्तनो मे सन्तरण भौतिक जगत के विकास का सार्वत्रिक नियम है।

इस नियम के सार्वत्रिक स्वरूप को सिद्ध करने के लिए हमें यथार्थ के विभिन्न क्षेत्रो में इसकी क्रिया का पता लगाना होगा।

आधुनिक भौतिकी ने सिद्ध किया है कि कुछ मौलिक कण अन्य मौलिक कणो में, जो गुणात्मक रूप मे भिन्न होते हैं, रूपान्तरित हो सकते हैं। उनके कायापलट की प्रक्रिया का सम्बध सदा ही एक खास गुणात्मक संचय से होता है—वह तभी होता है जब कणों में ऊर्जा का एक खास, काफी उच्च स्तर मौजूद हो।

द्रव्यो के एक अवस्था से दूसरी मे अगणित परिवर्तन (जैसे घन से द्रव में, द्रव से गैस में) भी परिमाणात्मक परिवर्तनों के गुणात्मक मे सन्तरण के नियम की अभिव्यक्तियां हैं। उदाहरण के लिए, जब पानी को १००° सेंटिग्रेड से अधिक गरम किया जाता है तो वह भिन्न गुण में परिवर्तित हो जाता है। वह

---

१. मार्क्स, पूंजी, खड १, मास्को, १९५९, \ ९।

भाप बन जाता है। भाप के गुणधर्म जल के गुणधर्मों से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, नमक और चीनी भाप में नहीं घुलते, पर पानी में घुल जाते हैं।

परिमाण से गुण में गमन का नियम रासायनिक प्रक्रियाओं मे सबसे स्पष्टता के साथ परिलक्षित होता है। मेन्देलेयेव का आवर्त नियम सिद्ध करता है कि रासायनिक तत्वो का गुण उनके पारमाणविक नाभिक धन-आवेश के परिमाण पर निर्भर करता है। खास सीमाओ के अन्दर आवेश मे परिमाणात्मक परिवर्तन रासायनिक तत्व मे कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं उत्पन्न करता, पर एक निश्चित मंजिल में इन परिमाणात्मक परिवर्तनों की बदौलत एक नया तत्व निर्मित होता है। मिसाल के लिए, रेडियोसक्रिय विघटन के दौरान यूरेनियम नाभिक जैसे-जैसे पारमाणविक भार और आवेश खोता जाता है, वैसे-वैसे वह गुणात्मक रूप से एक नये तत्व—सीसा मे परिवर्तित हो जाता है। सामान्यतया, रसायन वह विज्ञान है जो परिमाणात्मक परिवर्तनो के फलस्वरूप उत्पन्न द्रव्यों के गुणात्मक कायापलट का अध्ययन करता है। उदाहरण के लिए, आक्सीजन के एक अणु मे दो परमाणु होते हैं, पर ज्यो ही उसमे आक्सीजन का एक परमाणु और जुड जाता है, वह ओजोन बन जाता है जो गुणात्मक रूप से एक नया रासायनिक द्रव्य है।

जैव जगत में भी परिमाणात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तनो में सन्तरित हो जाते हैं, यद्यपि यहां परिमाणात्मक सचयों पर गुण के परिवर्तनो की निर्भरता को देखना अधिक कठिन होता है।

परिमाण से गुण मे गमन सामाजिक विकास मे भी हुआ करता है। पूंजीवाद से समाजवाद में गमन के लिए, जो समाजवादी क्रान्ति द्वारा सम्पन्न होता है, निश्चित परिमाणात्मक पूर्व-उपकरण आवश्यक होते हैं। ये हैं. पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादक शक्तियों मे वृद्धि, उत्पादन के सामाजिक स्वरूप का विस्तार और क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं की सख्या मे बढ़ती, आदि।

परिमाणात्मक परिवर्तनो के फलस्वरूप गुणात्मक परिवर्तन तो होते ही हैं, गुणात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप परिमाण की वृद्धि भी होती है। सामाजिक व्यवस्था में आमूल, गुणात्मक परिवर्तन से, पूंजीवाद की जगह समाजवाद की स्थापना से, विभिन्न प्रकार के परिमाणो में भी भारी परिवर्तन होता है। औद्योगिक और कृषि उत्पादन की मात्रा बढ जाती है, आर्थिक और सास्कृतिक विकास ज्यादा तेज रफ्तारों से होने लगते हैं, राष्ट्रीय आय और मजूरी मे वृद्धि होती है।

इस प्रकार परिमाणात्मक और गुणात्मक परिवर्तन एक-दूसरे से जुडे होते हैं और एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं।

विकास में अविरामता और क्रमभंग (छलांग) एवं उनकी एकता

परिमाणात्मक परिवर्तनों का स्वरूप अपेक्षाकृत धीमा और अविराम होता है और गुणात्मक परिवर्तन इस को भंग करते हुए तथा छलांगों के रूप में होते हैं। अतः विकास दो भिन्न पर परस्पर सम्बन्धित रूपों या मंजिलों की एकता के रूप में प्रकट होता है। ये हैं अविरामता और क्रमभंग (छलांग)।[1]

विकास में अविरामता धीमे, अदृश्य परिमाणात्मक संचय की मंजिल है। वह किसी वस्तु के गुण को प्रभावित नहीं करती, बल्कि उसमें नगण्य परिमाणात्मक परिवर्तन लाती है। यह विद्यमान वस्तु के बढ़ने या घटने की प्रक्रिया है।

क्रमभंग या छलांग किसी वस्तु में आमूल, गुणात्मक परिवर्तन की मंजिल है, यह वह क्षण या काल होता है जब पुराना नये गुण में बदल जाता है। छुपे हुए, धीमे परिमाणात्मक परिवर्तनों के विपरीत, छलांग किसी वस्तु के गुण में कमोबेश खुला, अपेक्षाकृत तेज परिवर्तन है। उस वक्त भी जब कि गुणात्मक कायापलट क्रमिक सन्तरण का रूप धारण कर लेते हैं, यह परिवर्तन अपेक्षाकृत तेज ढग से हुआ करता है।

भौतिक जगत के विकास मे छलांगो के कुछ उदाहरण हैं: कुछ मौलिक कणों से किन्हीं अन्य मौलिक कणों का बनना, द्रव्य की अवस्था मे परिवर्तन, किसी नये रासायनिक तत्व का जन्म लेना, वनस्पति या जीव की किसी ऐसी प्रजाति का पैदा होना जो पहले कभी नहीं रही हो, या किसी नई सामाजिक व्यवस्था का आविर्भाव, आदि। इनमें से प्रत्येक परिवर्तन निश्चित परिमाणात्मक संचय का फल होता है।

छलांग से पुराने का नाश होता है और नूतन एवं प्रगतिशील का विकास होता है। इसलिए छलांगो का विकास में भारी महत्व है।

छलांगें समाज के विकास मे खास महत्व रखती हैं। समाज के विकास में वे अक्सर ऐसी क्रांतियों का रूप धारण कर लेती हैं जो पुराने का उन्मूलन करती और नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करती हैं और इस प्रकार सामाजिक प्रगति की राह के रोड़ों को दूर करती हैं।

विकास चूंकि परिमाणात्मक (अविराम) और गुणात्मक (छलांग जैसे) परिवर्तनों की एकता के रूप में प्रकट होता है, इसलिए सिद्धान्त और व्यवहार मे विकास की इन दोनो मंजिलों का लेखा लेना आवश्यक है। इनमें से किसी

---

१. अविरामता और क्रमभंग न सिर्फ विकास में, बल्कि पदार्थ की स्थिति में भी निहित होते हैं। पदार्थ में तरंग (अविराम) और कणीय (क्रमभंग) गुणधर्म होते हैं।

एक को नजरअन्दाज करने का मतलब विकास की प्रक्रिया को विकृत करना और अधिभौतिकी के गड्ढे में गिरना है।

अधिभौतिकीविद् गुणात्मक परिवर्तनों का होना स्वीकार नहीं करते और वे विकास को अक्सर परिमाणात्मक संचय मात्र मान लेते हैं। पूर्वगठन का सिद्धान्त जैविकी के क्षेत्र में विकास की ऐसी ही गलत समझदारी का एक नमूना है। इस सिद्धांत के प्रतिपादक (उदाहरणार्थ, रोबिनेट) कहते हैं कि भ्रूण अति सूक्ष्म पैमाने पर पूर्णतया विकसित और परिपक्व शरीर होता है। इस दृष्टिविन्दु के अनुसार शरीर का विकास सहज वृद्धि मात्र, यानी भ्रूण की आकार-वृद्धि मात्र है। पर वास्तव में भ्रूण में विकास के दौरान गहरे गुणात्मक परिवर्तन होते रहते हैं।

पूंजीवादी सिद्धान्तवेत्ता और संशोधनवादी सामाजिक विकास की व्याख्या करते हुए इसी अधिभौतिकीय विचार-सरणी का अनुसरण करते हैं। सामाजिक विकास को वे विशुद्ध अविरामता मानते हैं जिसमें कोई छलांग या क्रांति नहीं होती। ऐसा करके वे सामाजिक क्रांति की आवश्यकता को अस्वीकार करते हैं।

इसी तरह परिमाणात्मक परिवर्तनों को नजरअन्दाज करना, विकास को महज छलांगें या क्रमभंग होना मान लेना जैसा कि १९वीं सदी के फ्रांसीसी वैज्ञानिक जार्ज कूविए ने किया था, भी गलत है। कूविए का कहना था कि पृथ्वी के ऊपर लगातार कई उत्क्रान्तियां हुईं जिनके फलस्वरूप पौधों और पशुओं की पुरानी प्रजातियां मिट गयीं और उनका स्थान सर्वथा नई प्रजातियों ने ले लिया। इसके अलावा, कूविए ने यह भी कहा कि नई प्रजातियों और विलुप्त प्रजातियों में कोई सम्बंध न था।

गुणात्मक परिवर्तनों की अस्वीकृति अराजकतावाद के सैद्धांतिक आधार का काम देती है जो एक निम्न-पूंजीवादी प्रवृत्ति है और मार्क्सवाद के बिलकुल विरुद्ध है। मार्क्सवादी पार्टियां अपनी ताकतों को संचित करने, जनता को संगठित करने और उसे क्रांतिकारी प्रहार के लिए धीरे-धीरे तैयार करने के लिए लम्बी अवधियों तक परिश्रमपूर्वक जो काम करती हैं, उसका अराजकतावादी मजाक उड़ाते हैं। अराजकतावादियों की अपनी कार्यनीति है: दुस्साहसी और षडयन्त्रकारी कार्रवाइयां करना। यह कार्यनीति मजदूर आंदोलन को भारी नुकसान पहुंचा चुकी है।

मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता आग्रह करती है कि विकास के अविराम और छलांग जैसे रूपों का, खास कर सामाजिक विकास में उनकी एकता का लेखा लिया जाय। समाज के विकास में छलांग या क्रांति के निर्णायक होने के कारण पूंजीवाद से समाजवाद में गमन धीमे, परिमाणात्मक परिवर्तनों के जरिए या सुधारों के जरिए नहीं हो सकता, वह तो पूंजीवादी व्यवस्था के

गुणात्मक परिवर्तन के जरिए ही, अर्थात समाजवादी क्रान्ति [illegible] सकता है।

इस प्रकार परिमाण और गुण ऐसी निश्चित विशेषताएं हैं जो सभी वस्तुओं और व्यापारों में अन्तर्निहित हैं। परिमाण और गुण परस्पर सम्बद्ध हैं। विकास की प्रक्रिया में अव्यक्त, क्रमिक परिमाणात्मक परिवर्तन मौलिक, गुणात्मक परिवर्तनों में गमन करते हैं। यह गमन छलांग का रूप धारण करता है।

परिमाणात्मक परिवर्तनों के गुणात्मक परिवर्तनों में गमन के [illegible] नियम का यही सारतत्व है।

छलांग वह सार्वत्रिक, अनिवार्य रूप है जिसके द्वारा परिमाणात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन बन जाते हैं। पर दुनिया में अनेकानेक प्रकार की वस्तुएं और व्यापार हैं, अतः छलांगों के भी अनेक रूप हैं। अब हम इन [illegible] की [illegible] तफसील के साथ विवेचना करेंगे।

३. पुराने से नये गुण में गमन के तरीकों की विविधता

नया व्यापार होता है। उदाहरण के लिए, कुछ मौलिक कणों का अन्य मौलिक कणों मे कायापलट विस्फोट के जरिए होता है। जब कोई इलेक्ट्रोन और कोई पोजिट्रोन काफी उच्च ऊर्जाओ पर टक्कर खाते हैं, तो क्षण भर के अन्दर कौंध (विस्फोट) होता है जो पहले के कणों के अन्य कणो (फोटोनों) मे कायापलट का प्रमाण है। पारमाणविक नाभिको के आवेश मे वृद्धि या ह्रास के दौरान कुछ रासायनिक तत्वों का अन्य रासायनिक तत्वो मे रूपान्तरित हो जाना भी इसी तरह क्षण भर के अन्दर हो जाता है।

जैव प्रकृति मे छलांगें आम तौर पर क्रमिक प्रकार की होती हैं। नई प्रजातियों का जन्म बाह्य परिवेश पर निर्भरता के साथ ही होता है। पर परिवेश, धीरे-धीरे, क्रमिक रूप से बदलता है। अधिकांशत यही कारण है कि पौधों और पशुओं की प्रजातियां एकबारगी नही प्रगट होती, बल्कि लम्बे विकास के दौरान ही प्रगट होती हैं। विकास की इस प्रक्रिया मे जीव धीरे-धीरे नई चारित्रिक विशेषताए—ऐसी विशेषताए जो परिवर्तित परिवेश के अनुरूप होती हैं—प्राप्त करते हैं और इन्हे वंशानुक्रम द्वारा आगे बढाते हैं। साथ ही वे अपनी उन पुरानी चारित्रिक विशेषताओ को, जो नई अवस्थाओ के अनुरूप नहीं रह जाती हैं, त्यागते जाते हैं।

जैसा कि सुविदित है, मनुष्य भी लम्बे विकास के दौरान प्रगट हुआ था। वनमानुष से मनुष्य मे रूपान्तरण बडे ही क्रमिक प्रकार का था। फिर भी यह रूपान्तर पशु जगत के विकास मे सबसे बडी छलांग अथवा जबर्दस्त मोड था। मानव समाज का आरम्भ यहीं से हुआ।

छलांग का रूप भी उन अवस्थाओं पर निर्भर करता है जिनमे व्यापार विकसित होते हैं। उदाहरण के लिए, रेडियो-सक्रिय विघटन के दौरान कुछ रासायनिक तत्वों के नाभिक कुछ अन्य तत्वो के, हलके तत्वो के, नाभिको मे परिवर्तित हो जाते हैं और इस प्रक्रिया के साथ-साथ पारमाणविक ऊर्जा ताप ऊर्जा मे परिवर्तित होती है। यह परिवर्तन—अवस्थाओ पर निर्भर करते हुए—विस्फोट का (पारमाणविक बम मे) रूप धारण कर सकता है या पारमाणविक ऊर्जा के ताप मे क्रमिक परिवर्तन का (एटमी शक्ति कारखानों के रिएक्टरों मे) रूप धारण कर सकता है।

सामाजिक विकास में पुराने गुण से नये गुण मे परिवर्तन तेज और प्रचण्ड परिवर्तनो का या क्रमिक परिवर्तनों का रूप धारण कर सकते हैं।

इतिहास का महान् गुणात्मक मोड जिसने कि मानव जाति के विकास मे एक नये युग का, समाजवाद और कम्युनिज्म के युग का सूत्रपात किया, अर्थात अक्तूबर क्रान्ति हुत और प्रचण्ड छलांग थी। इस क्रान्ति के फलस्वरूप

रूसी मजदूरों ने सशस्त्र विप्लव के जरिए, एक बार में ही पूंजीपति वर्ग के शासन का तख्ता उलट दिया और सत्ता पर अधिकार कर लिया।

सोवियत संघ की सांस्कृतिक क्रान्ति भी छलांग थी, नई समाजवादी संस्कृति में क्रान्तिकारी सन्तरण था। पर यह क्रान्ति एकबारगी नहीं हुई, बल्कि क्रमिक रूप से हुई, समाजवादी निर्माण की सफलताओं के कदम-ब-कदम हुई। इस सांस्कृतिक क्रान्ति की चरम परिणति की मंजिल कम्युनिस्ट समाज के भरपूर निर्माण के काल में आयेगी।

व्यावहारिक कामों के लिए छलांग के विशिष्ट पहलुओं का लेखा लेना बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन विशेषताओं को ज्ञात किये बिना पुराने से नये में सन्तरण के सही उपायों का पता लगाना असम्भव है।

भिन्न-भिन्न देशों में पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के रूपों का प्रश्न आज विशेष महत्व रखता है। किसी भी देश के अन्दर समाजवाद में सन्तरण केवल समाजवादी क्रान्ति के जरिए ही हो सकता है। बिना गुणात्मक छलांग के, बिना क्रान्ति के, समाजवाद में सन्तरण असम्भव है। पर हर देश के अन्दर क्रान्ति किन विशिष्ट मार्गों से आगे बढ़ेगी, यह उस देश के विकास पर, मजदूर वर्ग और उसके मित्रों की शक्ति और संगठन पर, जनता की परम्पराओं और रीति-रिवाजों पर, पूंजीपति वर्ग की ताकत पर, यह किस ढंग का विरोध करता है उस पर, और अनेकानेक अन्य आन्तरिक और बाह्य तत्वों पर निर्भर करेगा।

सोवियत संघ और अन्य देशों में समाजवाद के निर्माण के अनुभव ने सिद्ध किया है कि भिन्न-भिन्न देशों के अन्दर समाजवादी क्रान्ति का विकास एक ही ढंग से नहीं हो सकता है और यह कि विकास के भावी रूपों में अधिकाधिक विविधता होगी।

४. समाजवाद से कम्युनिज्म में सन्तरण के दौरान गुणात्मक परिवर्तन का स्वरूप

कम्युनिस्ट समाज अपने विकास में दो दौरों से होकर गुजरता है। एक समाजवाद और दूसरा कम्युनिज्म।

समाजवाद और कम्युनिज्म एक ही सामाजिक आर्थिक विरचना की दो मंजिलें हैं। इन मंजिलों में अन्तर आर्थिक विकास की मात्रा और सामाजिक सम्बन्धों की परिपक्वता का होता है। उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व में दोनों का समान आर्थिक आधार निहित होता है। इसके अलावा, जनता के बीच सहयोग और पारस्परिक सहायता के सम्बन्ध और एक ही कम्यु-निस्ट विचारधारा में भी दोनों का समान [illegible] है। [illegible]

अर्थतन्त्र के नियोजित, समानुपाती विकास का नियम समाजवाद और कम्यु-निज्म दोनों ही के अन्तर्गत कार्य करता है। सामाजिक उत्पादन का लक्ष्य (मेहनतकश जनता की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति) और इस लक्ष्य की सिद्धि के साधन (उन्नत टेक्नालाजी के आधार पर उत्पादन का निरन्तर विकास और सुधार) भी समाजवाद और कम्युनिज्म में एक ही रहते हैं।

पर समाजवाद और कम्युनिज्म में साथ ही साथ गुणात्मक विभेद भी हैं। कम्युनिज्म कम्युनिस्ट सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की उच्चतर मंजिल है। कम्युनिज्म के अन्तर्गत यंत्रीकरण और आटोमेशन असाधारण उच्च स्तर प्राप्त करेंगे। उत्पादन स्तर इतना ऊंचा होगा कि समाज 'हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसके काम के अनुसार' के समाजवादी सिद्धान्त को "हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार" के गुणात्मक रूप से नये, कम्युनिस्ट सिद्धान्त में परिवर्तित कर सकेगा। श्रम का स्वरूप भी बहुत बदल जायगा। समाज के सभी सदस्यों में सबके समान कल्याण के लिए स्वेच्छापूर्वक और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार काम करने की आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न हो जायगी।

कम्युनिज्म की विजय के साथ केवल अर्थतन्त्र में ही नहीं, बल्कि सामाजिक सम्बंधों, जनता की जीवन-प्रणाली और चेतना में भी महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन आयेंगे। देहात और शहर के मूलभूत अन्तर लुप्त हो जायेंगे और उसके बाद शारीरिक और मानसिक श्रम का भेद भी दूर हो जायगा। देश के सभी नागरिक कम्युनिस्ट समाज के श्रमिक हो जायेंगे। कम्युनिज्म के अन्तर्गत राज्य धीरे-धीरे विलुप्त हो जायगा और समाजवादी राज्य कम्युनिस्ट सार्वजनिक स्वशासन में प्रस्फुटित होगा। जनता के मस्तिष्क से पूंजीवाद के अवशेष पूरी तरह मिट जायेंगे और उसकी जीवन-प्रणाली और आदतें बदल जायेंगी।[1]

ऐसे गहरे गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए वक्त दरकार है। और सबसे महत्व की बात यह है कि इसके लिए तदनुरूप भौतिक, राजनीतिक और आत्मिक पूर्व-उपकरणों की आवश्यकता है—अति विकसित भौतिक और प्राविधिक आधार, शोषण से मुक्त जनता के उन्नत सामाजिक सम्बंध, समृद्ध आत्मिक संस्कृति तथा सामाजिक चेतना का उच्च स्तर। पर ये सभी उपकरण समाजवाद के अन्तर्गत ही उपलब्ध होते हैं, अतएव विकास की समाजवादी

---

१. सामाजिक विभेदों के उन्मूलन, राज्य के शनैः शनैः विलोप और अतीत के अवशेषों की लोगों के मस्तिष्क से समाप्ति के सम्बंध में अध्याय ११, १५ और १९ में और तफसील के साथ पढ़ें।

कार्यक्रम में वितरण के समाजवादी सिद्धान्त के कम्युनिस्ट सिद्धान्त में क्रमिक विकास के पथ का भी संकेत दिया गया है जो यह तकाजा करता है कि काम के अनुसार वितरण के साथ-साथ समाज के सदस्यों में मुफ्त वितरित होने वाले सार्वजनिक कोषों में निरन्तर वृद्धि हो। भौतिक और सांस्कृतिक लाभों का एक काफी बड़ा हिस्सा सार्वजनिक कोषों द्वारा वितरित हो भी रहा है। इन कोषों में शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, संस्कृति, खेल-कूद आदि पर होने वाले राजकीय व्यय भी सम्मिलित हैं। आगे ज्यों-ज्यों कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार निर्मित होता जायगा, त्यों-त्यों वितरण का यह रूप लगातार विकसित होता जायगा और धीरे-धीरे काम के अनुसार वितरण के समाजवादी सिद्धान्त का स्थान ग्रहण कर लेगा।

नैतिक उत्प्रेरणाएं भी, जो सोवियत नागरिक के श्रम का अभिन्न अंग बन चुकी हैं, इसी तरह क्रमिक रूप से प्रधानता प्राप्त कर लेंगी। राज्य के कार्यकलाप का सार्वजनिक संगठनों को हस्तांतरण तथा कम्युनिज्म के निर्माताओं की चेतना और जीवन-प्रणाली का नये सिरे से ढाला जाना भी एकबारगी नहीं हो जायेंगे।

इस प्रकार, *समाजवाद से कम्युनिज्म में संतरण* समाजवादी सामाजिक सम्बंधों की उन्नति और विकास की एक अविराम प्रक्रिया है, जीवन के पुराने रूपों का क्रमशः गुजरना और नयों का जन्म लेना है, इनका आपस में गुथा हुआ और एक-दूसरे पर निर्भर होना है। कम्युनिज्म के सिद्धान्तों को वक्त से पहले लागू कर देने से इस क्रमिक सन्तरण को तेज नहीं किया जा सकता। आर्थिक विकास, सामाजिक संगठन और जीवन-प्रणाली के नये रूप भौतिक और आत्मिक पूर्व-उपकरणों के परिपक्व होते जाने के साथ-साथ क्रमशः, कदम-ब-कदम आविर्भूत होंगे।

कम्युनिज्म में सन्तरण की अविरामता नियमों द्वारा अधिशासित है और स्वयं समाजवादी व्यवस्था के स्वरूप द्वारा निर्दिष्ट होती है। समाजवाद के अन्तर्गत ऐसी कोई सामाजिक शक्तियां नहीं होतीं जो कम्युनिज्म की दिशा में समाज की अग्रगति की विरोधी हों। पार्टी और सोवियत राज्य के सचेतन और नियोजित कार्य इस चीज को सुनिश्चित बनाते हैं कि इस अग्रगति के दौरान उठनेवाले अन्तर्विरोधों का समय रहते पता चल जाय और उन्हें खत्म कर दिया जाय। इससे सामाजिक उथल-पुथल की, समाज के जीवन में आकस्मिक परिवर्तनों की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती तथा विकास क्रमिक और अविराम बन जाता है।

पर क्रमिकता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि विकास की गति मन्द हो। बात उल्टी होती है। कम्युनिज्म में सन्तरण असाधारण रूप से तेज आर्थिक और

मंजिल से बचना, पूंजीवाद से सीधे-सीधे कम्युनिज्म में छ
असंभव है । लेनिन ने कहा था कि "पूंजीवाद से मानव ज.
समाजवाद में ही—यानी उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामि
व्यक्ति के काम के अनुसार उत्पादित वस्तुओं के वितरण में—प्रवेश
है ।"[1] कम्युनिज्म समाजवाद से भिन्न अवश्य है, पर वह समाजव
नींवों पर खडे हो जाने के बाद उसके अन्दर से स्वाभाविक रूप से बो
तौर पर प्रस्फुटित होता है । वह अर्थतंत्र में और संस्कृति के क्षेत्र में र
की महती उपलब्धियों के आधार पर विकसित होता है । सोवियत र
अब अनेक प्रत्यक्ष और दृश्यमान कम्युनिस्ट विशेषताएं विद्यमान हैं । प
उत्पादन-संगठन के कम्युनिस्ट रूप तेजी से विकसित हो रहे हैं—जैसे ता
प्रगति के लिए आम पैमाने पर आन्दोलन, उत्पादन का आटोमेशन
यंत्रीकरण; मजदूर एक धंधे से बदल कर दूसरे में लग सकें और एक दू
को कारगर मदद पहुंचा सकें इसके लिए सम्बद्ध धंधों में पूर्ण निपुणता हा
करना; तथा सामूहिक, कम्युनिस्ट श्रम का आन्दोलन ताकि पिछड़े हुए विभ
और फैक्टरियां एक स्तर पर लाये जा सकें । जनता की भौतिक और सांस्
तिक आवश्यकताओं की पूर्ति के समाजीकृत रूप—सार्वजनिक आहार प्रदान
करना (केटरिंग), बोर्डिंग स्कूल, किंडरगार्टन और नर्सरियां आदि—अधिक से
अधिक व्यापक होते जा रहे हैं । ये कम्युनिस्ट विशेषताएं विकसित होती चली
जायेंगी और निरन्तर उन्नत बनती जायेंगी ।

समाजवाद से कम्युनिज्म में सन्तरण में यह पूर्वमान्य है कि समाजवाद
की आर्थिक और सांस्कृतिक उपलब्धियां बरकरार रहें और उन्नत हों । यही
कारण है कि यह सन्तरण सामाजिक क्रान्ति के द्वारा नहीं होता, उसका रूप एक-
बारगी छलांग का नहीं होता, बल्कि धीरे-धीरे, अविराम गति से होता है ।

उदाहरण के लिए, वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त में सन्तरण एकबारगी
नहीं होगा, बल्कि क्रमिक रूप से, एक के बाद दूसरी मंजिल को पार करते
हुए होगा । जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया
गया है, पहली मंजिल (१९६१-१९७०) में जीवन-मान इतना बढ़ेगा कि हर
आदमी की बुनियादी भौतिक आवश्यकताएं पूरी होंगी । दूसरी मंजिल
(१९७१-१९८०) में कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण
पूरी आबादी को जीवन की आवश्यकताएं और आराम प्रचुर मात्रा में प्रदान
करेगा; अतएव समाज आवश्यकताओं के अनुसार वितरण के सिद्धान्त को लागू
करने के नजदीक पहुंच जायगा ।

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड २४,

समाजवाद ने निषेध किया। ज्ञान के विकास में भी निषेध अन्तर्निहित है। प्रत्येक नया, उन्नत वैज्ञानिक सिद्धान्त पुराने और कम विकसित सिद्धान्त का निषेध करता है।

निषेध किसी वस्तु या व्यापार में ऊपर से नहीं प्रविष्ट होता, वह तो वस्तु या व्यापार के अपने ही आन्तरिक विकास का परिणाम होता है। वस्तुएं और व्यापार अन्तर्विरोध-युक्त होते हैं और अपने आन्तरिक विपरीतों के आधार पर विकसित होते हैं। वे अपने विनाश को, नये व उच्चतर गुण में गमन को, अवस्थाएं स्वयं तैयार करते हैं। निषेध आन्तरिक अन्तर्विरोधों द्वारा पुराने का अभिभून होना है। यह आत्मविकास का, वस्तुओं और व्यापारों की स्वगति का परिणाम है। उदाहरण के लिए, समाजवाद पूंजीवाद का स्थान इसलिए ग्रहण करता है कि वह पूंजीवादी व्यवस्था के आन्तरिक, आभ्यन्तरिक अन्तर्विरोधों का समाधान करता है।

निषेध की द्वन्द्वात्मक और अधिभौतिक धारणाएं

निषेध के सारतत्व को द्वन्द्ववाद और अधिभौतिकी भिन्न-भिन्न ढंग से समझते हैं। अधिभौतिकी समझती है कि निषेध पुराने *का परित्याग* है, उसका परम विनाश है। इस तरह वह यथार्थ के विकास की गलत व्याख्या करती है। लेनिन ने निषेध की इस समझदारी को "छूछा" और "निष्फल" कहा था, क्योंकि वह और आगे विकास की संभावना को बाद देती है।

निम्न-पूंजीवादी प्रोलेतकुल्त[1] विचारधारा के समर्थक भी निषेध को इसी रूप में लेते थे। यह विचारधारा सोवियत सत्ता के प्रारम्भिक दिनों में मौजूद थी। इसके समर्थक कहते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था में उदित संस्कृति को तज कर बिलकुल नये सिरे से एक नई सर्वहारा संस्कृति का निर्माण होना चाहिए। निषेध की इस धारणा ने विकास को प्रोत्साहित करना तो दूर रहा, उल्टे उसे भारी क्षति पहुंचायी। इसीलिए लेनिन ने प्रोलेतकुल्त के समर्थकों की आलोचना करते हुए कहा था कि अतीत की सांस्कृतिक विरासत का उपयोग करना जरूरी है। उन्होंने कहा कि पहले की विरासत को नीर-क्षीर विवेक करते हुए ग्रहण करके ही एक सच्ची सर्वहारा, समाजवादी संस्कृति का सृजन किया जा सकता है।

मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद द्वन्द्वात्मक निषेध के सच्चे स्वरूप को प्रगट करता है। लेनिन के मतानुसार मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद की लाक्षणिकता "छूछा", "निष्फल"

---

१. प्रोलेतार्स्काया कुल्तुरा का संक्षिप्त नाम। यह एक सांस्कृतिक और शैक्षणिक संगठन था जो सोवियत संघ में १९१७ से १९३२ तक कायम रहा।

निषेध नही है, बल्कि "सिलसिले के क्षण के रूप में, विकास के क्षण के रूप में, जो विधेयात्मक है उसे कायम रखते हुए" निषेध है। निषेध की इस व्याख्या में मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद इस पूर्वस्थापना के साथ आगे बढ़ता है कि नया पुराने को पूर्णतया मिटा नही देता, बल्कि उसमें जो श्रेष्ठतम है उसे कायम रखता है। वस्तुत वह श्रेष्ठतम को कायम ही नही रखता, बल्कि उसे आत्मसात भी करता है और उसे एक नये, उच्चतर स्तर पर उठाता है। उदाहरण के लिए, जब उच्चतर जीव निम्नतर का निषेध करते हैं, जिनके आधार पर वे उदित हुए हैं, तो वे निम्न जीव की आभ्यन्तरिक कोशिकीय संरचना को, परावर्तन की उसकी प्रवरणशील प्रकृति तथा अन्य लक्षणो को बनाये रखते हैं। पुरानी सामाजिक व्यवस्था का निषेध करनेवाली नई सामाजिक व्यवस्था उसकी उत्पादक शक्तियो तथा विज्ञान, टेक्नालाजी और संस्कृति की उपलब्धियों को सुरक्षित रखती है। इसी तरह नये और पुराने का सिलसिला ज्ञान-विज्ञान में भी विद्यमान रहता है।

इस प्रकार अनुक्रम को, विकास में नये और पुराने के सम्बंध को, स्वीकार करना निषेध की मार्क्सवादी धारणा की विशेषता है। पर याद रखना चाहिए कि नया पुराने को, जैसा कि वह है, पूर्णतया ग्रहण नहीं कर लेता। पुराने से वह केवल कुछ तत्वों या पहलुओं को ही लेता है। इसके अलावा, वह उन्हें यांत्रिक ढग से नही ग्रहण करता, बल्कि उन्हें आत्मसात करता है, अपनी प्रकृति के अनुरूप बनाने के लिए उन्हें परिवर्तित करता है। मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता कहती है कि मानव जाति के अतीत के अनुभव के प्रति नीर-क्षीर विवेक से युक्त रुख अपनाना चाहिए। वह बतलाती है कि इस अनुभव का सृजनात्मक प्रयोग करना चाहिए। परिवर्तित परिस्थितियों और क्रान्तिकारी अमल के नये कर्तव्यों का पूरी तौर से लेखा लेना चाहिए। उदाहरण के लिए, मार्क्सवादी दर्शन ने पहले के दार्शनिकों के प्रगतिशील विचारों को उसी रूप में नहीं अपनाया, बल्कि उनका समीक्षात्मक शोधन किया, उन्हें विज्ञान और व्यवहार की नई उपलब्धियों से समृद्ध किया और एक विज्ञान के रूप में दर्शन को गुणात्मक तौर पर नई, उच्चतर मंजिल पर पहुंचाया।

२. विकास का प्रगतिशील चरित्र

प्रगति के रूप में विकास

हम देख चुके हैं कि निषेध के फलस्वरूप किसी न किसी अन्तर्विरोध का समाधान होता है, पुराना नष्ट होता है और नया प्रकट होता है। पर क्या इससे विकास का अन्त हो जाता है? नहीं। नये के उदय से विकास का अन्त नहीं हो जाता। कोई भी नई चीज हो, वह हमेशा नई नहीं रहती। विकसित होते हुए वह किसी अन्य

नवीन, अधिक प्रगतिशील चीज के उदय के लिए पूर्व-उपकरण तैयार करती है। और इन पूर्व-उपकरणों तथा अवस्थाओं के परिपक्व होने ही निषेध की पुनरावृत्ति होती है। यह है निषेध का निषेध, अर्थात् उसका निषेध जिसने पहले स्वयं पुराने को अभिभूत किया था। यह नये का स्थान उससे भी नये द्वारा ग्रहण किया जाता है। इस दूसरे निषेध का परिणाम भी फिर निषेधित या अभिभूत होना होता है और इसी तरह यह अनन्त क्रम चलता रहता है। अतः विकास अगणित सिलसिलेवार निषेधों के रूप में, अनन्त रूप से नये द्वारा पुराने का स्थान ग्रहण किये जाने या पुराने के अभिभूत किये जाने के रूप में सामने आता है।

विकास का चरित्र कुल मिला कर प्रगतिशील और अग्रगामी बन जाता है, क्योंकि विकास की हर उच्चतर सीढ़ी सिर्फ उसका ही निषेध करती है जो निम्नतर सीढ़ी में जर्जर हो गया है और साथ ही वह पिछली सीढ़ी की उपलब्धियों को ग्रहण करती और उन्हें बढ़ाती है। प्रगति द्वंद्वात्मक विकास की आम दिशा है।

प्रगति यथार्थ के सभी क्षेत्रों में होती है। उदाहरणार्थ, हम अपने ग्रह के *प्रगतिशील विकास को ले लें।*

हम ऊपर बता चुके हैं कि सामान्यतम रासायनिक द्रव्यों वाली गैस-धूलि वह आद्य सामग्री थी जिससे सौर-मंडल के सभी ग्रह, जिसमें पृथ्वी भी है, निर्मित हुए। प्रकृति के विकास के दौरान ये द्रव्य अधिकाधिक जटिल होते गये। फलस्वरूप सजीव, जैविक प्रकृति अस्तित्व में आयी। सजीव शरीर भी सरल से जटिल में विकसित हुए—कोशापूर्व अवस्थाओं से कोशाओं में, एक कोशिकीय से बहुकोशिकीय में और फिर उससे भी अधिक जटिल जन्तुओं में। इस विकास-क्रम में अन्ततः मानवरूपी जन्तु प्रकट हुए और फिर मनुष्य प्रकट हुआ। मनुष्य के आगमन के साथ सामाजिक विकास का प्रारम्भ हुआ। समाज के प्रगतिशील विकास की क्रमबद्ध सीढ़ियां ये रही हैं: आदिम सामुदायिक, दास, सामन्ती, पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाएं।

विकास की गति का निरन्तर अधिक वेगवान होते जाना समाज की प्रगति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। मनुष्य के विकास की प्रक्रिया करीब दस लाख वर्ष पहले आरम्भ हुई थी। आज के मानव का इतिहास दस सहस्राब्दियों तक सीमित है। इससे कल्पना की जा सकती है कि मनुष्य के आविर्भाव की प्रक्रिया कितनी धीमी रही होगी। दास और सामन्ती समाजों में प्रगति की रफ्तार ज्यादा तेज थी, यद्यपि वह भी सहस्राब्दियों तक चलती रही। पूंजीवाद ने सामन्तवाद से अधिक तेजी के साथ विकास किया। समाजवाद में सन्तरण के साथ आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की रफ्तार में भारी वेग आ गया है। भविष्य में जब मनुष्य जाति प्रगति में बाधक पूंजीवादी सम्बंधों से छुटकारा

पा लेगी और प्रकृति की शक्तियों को वशीभूत करने के लिए अपने समस्त प्रयासों को केन्द्रित कर सकेगी, तो प्रगति अभूतपूर्व रफ्तार से होगी।

विकास का सर्पिल स्वरूप

विकास का प्रगतिशील स्वरूप निषेध के नियम की मुख्य विशेषता है, एकमात्र विशेषता नहीं। यह नियम विकास का वर्णन सीधी रेखा में होनेवाली गति के रूप में नहीं, वरन् बहुत ही उलझी हुई, सर्पिल प्रक्रिया के रूप में करता है जिसमें गुजर चुकी सीढ़ियों की निश्चित रूप से पुनरावृत्ति होती है, एक हद तक अतीत की वापसी होती है। डायलैक्टिक्स की इस महत्वपूर्ण विशेषता के सम्बन्ध मे लेनिन ने लिखा था कि "ऐसा विकास जो प्रगटतया गुजर चुकी मंजिलों को दुहराता है, पर वस्तुतः उन्हें दूसरे ढंग से, उच्चतर आधार पर दुहराता है (निषेध का निषेध), या यों कहें कि जो सर्पिल विकास है, सीधी रेखा मे विकास नही है।"[1]

विकास का सर्पिल स्वरूप यथार्थ के विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है। मेन्देलेयेव की आवर्त सारणी संभवतः अजैव प्रकृति मे उसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण है।

मेन्देलेयेव की आवर्त व्यवस्था मे रासायनिक तत्वो को उनके परमाणविक नाभिक के धन-आवेश के आकार के आधार पर क्रमबद्ध किया गया है। इन तत्वों के आवर्त अथवा मालाएं होती हैं जिनमें हम एक हद तक गुणधर्मों की पुनरावृत्ति पाते हैं। उदाहरण के लिए, दूसरे आवर्त को ले लें जो लिथियम से आरम्भ होता है। लिथियम में कुछ सुनिश्चित धात्वीय गुणधर्म होते हैं, वह अलकली धातु है। जैसे-जैसे लिथियम के बाद आनेवाले तत्वों के नाभिक का आवेश बढ़ता है, वैसे-वैसे लाक्षणिक धात्वीय गुणधर्म घटते और अधात्वीय गुणधर्म बढते जाते हैं। आवर्त के अन्त में हम एक ठेठ धात्वाभ (अधातु) फ्लुओरिन और अक्रिय गैस निओन को पाते हैं। अगला अर्थात तीसरा आवर्त फिर अलकली धातु (सोडियम) से शुरू होता है और अधात्वीय क्लोरिन और अक्रिय गैस आर्गोन से समाप्त होता है। बाद के आवर्तों में भी इसी चीज की पुनरावृत्ति होती है। उनमें धात्वीय गुणधर्मों का अधात्वीय गुणधर्म निषेध करते हैं, और फिर उसके बाद आने वाले आवर्त में अधात्वीय गुणधर्मों का धात्वीय गुणधर्म पुनः निषेध करते हैं। ऐसा लगता है कि पुराना वापस आ गया, निषेध का निषेध हुआ।

तत्वों की इस व्यवस्था को मोटे [illegible] पर उ[illegible] बल न खाने वाले [illegible] पर सर्पिल चक्र के रूप में अंकित किया

---

1. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड २

गुणधर्मों का पुनरावर्तन होता है (प्रथम आवर्त में दो तत्व, दूसरे में आठ, और इसी क्रम से अन्य) और यह हर मंजिल पर गुणात्मक रूप से भिन्न आधार पर अग्रसर होता है—हर नये आवर्त में तत्वों का अधिक बड़ा नाभिकीय आवेश होता है, अधिक संश्लिष्ट सरचना होती है, आदि।

जैव जगत् में भी सर्पिल विकास हुआ करता है। एंगेल्स ने जौ के दाने के विकास द्वारा इस नियम की क्रिया प्रदर्शित की थी। अनाज का एक दाना जब अनुकूल अवस्था मे पड़ता है, तो डण्ठल पैदा होता है। यह अनाज के दाने का निषेध हुआ। इसके बाद डण्ठल के ऊपर नये दानो से युक्त बाली उगती है। ये नये दाने डण्ठल का निषेध हैं—निषेध का निषेध। साथ ही एक हद तक आरम्भिक विन्दु पर वापसी भी हो जाती है, यानी दाने की दाने पर, लेकिन नये आधार पर। नये दाने मूल दाने मे केवल परिमाण मे ही भिन्न नहीं होते (१ की जगह १०-२०), बल्कि अक्सर गुणधर्मों मे भी भिन्न होते हैं। अतः विकास सर्पिल हुआ। आरम्भिक विन्दु पर एक दाना था, उससे कई दाने पैदा हुए, फिर इन दानो ने उससे भी अधिक संख्या मे दाने दिये और इसी तरह क्रम चलता गया।

सर्पिल विकास सामाजिक जीवन मे भी होता है। आदिम सामुदायिक व्यवस्था सामाजिक संगठन का पहला रूप थी। वह उत्पादन के अत्यन्त आदिम औजारों के समान स्वामित्व पर आधारित वर्गहीन समाज था। उत्पादन के विकास के साथ वर्ग समाज—दास समाज—ने इस व्यवस्था का निषेध किया। फिर दास व्यवस्था का स्थान सामन्तवाद ने लिया और सामन्तवाद का निषेध पूंजीवाद द्वारा हुआ। अब पूंजीवाद की जगह समाजवाद आया है जो कम्यु-निज्म का प्रथम चरण है। यह भी एक प्रकार से निषेध का निषेध, एक अर्थ मे विकास के आरम्भिक विन्दु को वापसी है, पर ऐसा सर्वथा भिन्न, गुणा-त्मक रूप से नये, आधार पर हुआ है।

निषेध के निषेध मे किंचित आवर्तता निहित होती है, पदार्थ के प्रगति-शील विकास का पुनरागमन होता है। पर इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि विकास की कतिपय गुजर चुकी मंजिलों की पुनरावृत्ति वस्तुतः पुराने पर वापसी नहीं है, बल्कि नये का उदय है जिसका पुराने के साथ सिर्फ एक ऊपरी, बाह्यरूपी सादृश्य होता है और जो अपने आन्तरिक चरित्र मे उससे मूलतः भिन्न होता है। सोडियम जिससे मेन्देलेयेव की व्यवस्था के तीसरे आवर्त का आरम्भ होता है, लिथियम की भांति एलकली धातु समूह का तत्व है, पर उसकी संरचना अधिक जटिल है और उसके अपने विशिष्ट गुणधर्म होते हैं।

समाजवाद के अन्तर्गत जिस सामाजिक सम्पत्ति का अस्तित्व होता है, वह एक अर्थ मे आदिम समाज की सामुदायिक सम्पत्ति का पुनर्जन्म तो अवश्य

है, पर यह प्रतिरूप सर्वथा नये भौतिक और आत्मिक आधार पर स्थित है जिसकी आदिम सामुदायिक व्यवस्था के साथ कोई तुलना नहीं हो सकती।

इस प्रकार विकास नये द्वारा पुराने के, उच्चतर द्वारा निम्नतर के निषेध के जरिए घटित होता है। पर नया, जो पुराने का निषेध करता है, पुराने के सद्गुणों को कायम रखता और उन्हें विकसित करता है। इसीलिए विकास प्रगतिशील स्वरूप धारण करता है। साथ ही विकास की गति सर्पिल होती है जिसमें निम्नतर सोपान के कतिपय पहलू और लक्षण उच्चतर सोपान पर पुनरावृत्त होते रहते हैं।

निषेध के निषेध के द्वन्द्वात्मक नियम का यही सार-तत्व है।

× × ×

इस अध्याय में हमने भौतिकवादी द्वन्द्वात्मकता के मौलिक नियमों की विवेचना की। ये नियम भौतिक जगत में सार्वत्रिक गति और विकास को समझने की कुंजी प्रदान करते हैं, उनके स्रोतों को, आन्तरिक अन्तर्विरोधों में विद्यमान प्रेरक शक्तियों को, प्रगट करते हैं। ये नियम विकास के सर्पिल स्वरूप को, उसकी अग्रगामी, प्रगतिशील प्रवृत्ति को प्रगट करते हैं। ये दिखलाते हैं कि यथार्थ निरन्तर विस्थापना के जरिए, नये द्वारा पुराने के निषेध के जरिए आगे बढ़ता है।

विकास को और अच्छी तरह समझने के लिए अब हमें भौतिकवादी द्वन्द्वात्मकता की मुख्य परिकल्पनाओं पर दृष्टि डालनी होगी।

अभिव्यक्त करता है। इसलिए परिकल्पनाओं के ज्ञान के बिना नियमों को समझ पाना असंभव है। दूसरी ओर, नियमों के ज्ञान से हम द्वन्द्ववाद की परिकल्पनाओं के स्वरूप को समझ सकते हैं। विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम अन्तर्वस्तु और आकृति, अनिवार्यता और आकस्मिकता, संभावना और वास्तविकता जैसी एक-दूसरे की उल्टी परिकल्पनाओं के असल अर्थ का उद्घाटन करने को संभव बनाता है।

विशेष परिकल्पनाओं पर विचार करने से पहले हम उनकी उत्पत्ति की जानकारी हासिल करें और उनकी कुछ समान विशेषताओं पर भी गौर करें।

१. द्वन्द्ववाद की परिकल्पनाओं की उत्पत्ति और उनकी समान विशेषताएं

मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद की परिकल्पनाएं सदियों के अनुभव, श्रम और ज्ञान का परिणाम हैं, उनका सामान्यीकरण हैं। अपने व्यावहारिक कार्य के सिलसिले में मनुष्य का दुनिया की वस्तुओं और व्यापारों से सम्पर्क होता है, वह इनका संज्ञान प्राप्त करता है और ऐसा करते हुए वह उनकी सारभूत, सामान्य विशेषताओं को अलग कर लेता है और परिणामों को खास परिकल्पनाओं या धारणाओं में बांध लेता है। निश्चित भौतिक कार्यों और यथार्थ के अन्य प्रमुख पहलुओं में वस्तुगत रूप से विद्यमान कारणों और कार्यों या अन्तर्वस्तु और आकृति से मनुष्य लाखों-करोड़ों बार सम्पर्क में आया। फलतः उसके मस्तिष्क में कारण और कार्य या अन्तर्वस्तु और आकृति जैसी परिकल्पनाओं ने आकार ग्रहण किया। अतः परिकल्पनाएं मनुष्य के व्यावहारिक और संज्ञानात्मक कार्य-कलाप का परिणाम हैं। वे मनुष्य द्वारा अपने चारों ओर की दुनिया के ज्ञान की सीढ़िया हैं। लेनिन ने लिखा था कि "मनुष्य का सामना प्राकृतिक व्यापारों के एक तानेबाने से होता है। सहज प्रवृत्ति वाला मनुष्य यानी जंगली मनुष्य, प्रकृति और अपने में विभेद नहीं करता। पर सचेतन मनुष्य करता है। परिकल्पनाएं विभेद की, अर्थात दुनिया का संज्ञान प्राप्त करने की सीढ़ियां हैं।"[1]

व्यवहार और संज्ञान का फल होने के नाते भौतिकवादी द्वन्द्वात्मकता की परिकल्पनाएं मनुष्य के व्यावहारिक और संज्ञानात्मक कार्यकलाप के लिए भारी महत्व रखती हैं। वे ज्ञान की सीढ़ियां हैं जो मनुष्य को प्रकृति और समाज के अन्दर व्यापारों के भूलभुलैया में अपना मार्ग ज्ञात करने में मदद देती हैं। इनकी बदौलत वह वस्तुओं के परस्पर सम्बंध और परस्पर निर्भरता का,

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड ३८, पृष्ठ ९३।

परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में भाववादी मत बिलकुल आधारहीन है। व्यावहारिक कार्यकलाप, विज्ञान का विकास और मनुष्य के व्यक्तिगत अनुभव यह प्रमाणित करते हैं कि परिकल्पनाएं मनुष्य द्वारा गढ़ी नहीं गयी हैं, वरन उसके द्वारा वस्तुगत यथार्थ में पायी गयी हैं।

परिकल्पनाएं परस्पर सम्बन्धित, परिवर्तनीय और सचल हैं क्योंकि वे भौतिक जगत्, उसकी वस्तुओं और व्यापारों के सार्वभौम सम्बन्ध और अन्योन्य-क्रिया की रचना का प्रतिबिम्ब हैं। परिकल्पनाओं का सम्बन्ध इतना नजदीकी है कि विशेष परिस्थिति में एक परिकल्पना दूसरी बन जा सकती है। कारण कार्य बन जाता है और कार्य कारण, आवश्यकता आकस्मिकता बन जाती है और आकस्मिकता आवश्यकता। परिकल्पनाएं निरन्तर विकसित होते भौतिक जगत् को प्रतिबिम्बित करती हैं, इसलिए स्वयं भी बदल जाती हैं।

भौतिक जगत का अध्ययन करते हुए मनुष्य सबसे पहले विशेष, वैयक्तिक वस्तुओं और व्यापारों के अगणित समूह को देखता है। इसके बाद वह उनमें

तुलना करता है, और ऐसा करके ऐसी विशेषताओं और सम्बंधों को छांटता है जो उनमें समान रूप से मौजूद होते हैं। हम भी ऐसा ही करेंगे : परिकल्पनाओं की विवेचना हम वैयक्तिक और सार्वत्रिक से आरम्भ करेंगे।

२. वैयक्तिक और सार्वत्रिक

हर वस्तु में अनेक विशेषताएं होती हैं जो मात्र उस वस्तु की ही विशेषताएं हैं। उदाहरण के लिए चिनार के दरख्त को ले लीजिए। उसका अपना खास आकार है, शाखाओं की एक खास संख्या है जो एक खास ढंग से पक्तिबद्ध है, जड़ों की खास रूपरेखा है तथा कुछ अन्य विशेषताएं हैं।

हर मनुष्य की अपनी अलग स्वभावगत विशेषताएं, योग्यताएं और आदतें, रुचियां और प्रवृत्तियां, चलने और बोलने के ढंग होते हैं। ये चीजें उसे भूमण्डल पर निवास करने वाले अरबों अन्य लोगों से विशिष्ट बनाती हैं।

तो चिनार का दरख्त, मानव, भौतिक जगत् की वैयक्तिक वस्तु या व्यापार ही वैयक्तिक अथवा विशेष हुए।

पर कोई विशेष व वैयक्तिक वस्तु अलग-अलग नहीं होती, बल्कि अन्य वस्तुओं और व्यापारों के साथ उसका लगाव होता है। मनुष्य पृथ्वी पर निवास करता है जहां बहुत सारे अन्य लोग भी उसके चारों ओर निवास करते हैं। उनके साथ उसकी बहुत बड़ी समानता होती है और वह अगणित प्रकार के विविध धागों से उनके साथ जुड़ा होता है। वह कोई न कोई धंधा करता है जिसका अर्थ यह होता है कि उस धंधे में लगे सभी लोगों की कुछ विशेषताएं उसमें भी मौजूद होती हैं। मनुष्य किसी खास वर्ग और जाति का होता है, अतः उसमें कुछ जातीय और वर्गीय विशिष्टताएं होती हैं। खास तरह का शारीरिक ढांचा अनुभव और चिन्तन की क्षमता, काम करने और बोलने की क्षमता जैसी विशेषताएं सभी लोगों में होती हैं। इसी तरह, प्रत्येक वस्तु में अपनी वैयक्तिक विशेष विशेषताओं के अतिरिक्त ऐसी भी विशेषताएं होती हैं जो अन्य वस्तुओं में समान रूप से पायी जाती हैं।

सार्वत्रिक वह है जो अनेक वैयक्तिक या विशेष वस्तुओं में मौजूद रहता है। वैयक्तिक विशेषताएं किसी वस्तु को अन्यों से अलग करती हैं, तो सार्वत्रिक विशेषताएं उसे उनके निकट ले जाती हैं, उनके साथ जोड़ती हैं और उसे सवर्ण वस्तुओं की निश्चित प्रजाति वर्ग में बिठाती हैं।

वैयक्तिक और सार्वत्रिक द्वन्द्वात्मकता

किसी भी वस्तु के अन्दर वैयक्तिक और सार्वत्रिक द्वन्द्वात्मक रूप से ऐक्यबद्ध पाये जाते हैं। वैयक्तिक में सार्वत्रिक भी होता है और लेनिन के शब्दों में, "उसका अस्तित्व उस कड़ी में ही होता है जो सार्वत्रिक तक पहुंचती है।"

अत: हर वैयक्तिक जीवन सार्वत्रिक के साथ, उस प्रजाति के साथ जिसमें वह रहता है और जिसमें उस जैसी समान विशेषताएं होती हैं, जुड़ा रहता है, और प्रजाति के द्वारा प्रजाति से भी अधिक सार्वत्रिक, यानी वंश (जीनस), के साथ जुड़ा होता है। सार्वत्रिक के साथ विशेष की कड़ी का, विशेष में सार्वत्रिक की विद्यमानता का लेखा लेते हुए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यह मानता है कि प्रत्येक विशेष किसी-न-किसी तरीके से सार्वत्रिक है।

इसी प्रकार, सार्वत्रिक का अस्तित्व भी केवल विशेष में या विशेष के द्वारा है। वनस्पति या पशु की कोई प्रजाति नहीं जिसका वैयक्तिक वनस्पति या पशु से परे अस्तित्व हो। वैयक्तिक के नाते से सार्वत्रिक होने के कारण प्रजाति में उसमें सम्मिलित वैयक्तिक जीवों की सभी की सभी विशेषताएं नहीं होतीं, बल्कि केवल वे विशेषताएं होती हैं जो सारभूत और आवर्तक हैं। इसीलिए लेनिन ने सार्वत्रिक को विशेष का पहलू या सार कहा था।

वैयक्तिक और सार्वत्रिक परस्पर सम्बधित ही नहीं होते, बल्कि निरन्तर बदलते रहते हैं। उनके बीच की सीमारेखा निश्चित नहीं है। कुछ अवस्थाओं में, विकास के दौरान, एक-दूसरे में सन्तरित हो जाता है—विशेष सार्वत्रिक बन जाता है और सार्वत्रिक विशेष।

जीवों के विकास में ऐसी मिसालें पायी गयी हैं कि किसी वैयक्तिक जीव द्वारा अर्जित नई, उपयोगी विशेषता आनुवंशिकता के द्वारा अगली पीढ़ियों में पहुंच गयी और समय पाकर समूह की, वैयक्तिक जीवों की अधिक संख्या की समान विशेषता बन गयी। अर्थात् वह सार्वत्रिक विशेषता प्रजाति की विशेषता बन गयी। पर यदि कोई सार्वत्रिक विशेषता प्रजाति के जीवन्त कार्यकलाप के लिए महत्वहीन बन जाती है, तो वह धीरे-धीरे विलुप्त हो जाती है, उसका अपक्षय हो जाता है और आनेवाली पीढ़ियों में वह बिरले ही प्रगट होती है। किसी खास वैयक्तिक जीव में वह ऐटाविज्म (पूर्वजोद्भव) के तौर पर, दूरवर्ती पूर्वजों के गठन की पुनरावृत्ति के तौर पर, प्रगट हो सकती है। यहां सार्वत्रिक वैयक्तिक बन जाता है।

वैयक्तिक व सार्वत्रिक की परिकल्पनाओं का महत्व

वैज्ञानिक और व्यावहारिक कार्यकलाप में वैयक्तिक और सार्वत्रिक की द्वन्द्वात्मकता का लेखा लेना बहुत महत्वपूर्ण है। वस्तुगत यथार्थ की नाना प्रक्रियाओं की भूलभुलैया में वैयक्तिक और सार्वत्रिक के परस्पर सम्बन्ध का, उनकी द्वन्द्वात्मकता का ज्ञान ही मार्ग ढूंढ़ने में हमारी मदद करता है। उसकी ही बदौलत हम उसके विकास के नियमों को ज्ञात कर सकते और व्यवहार में उनका ठीक उपयोग कर सकते हैं। इसके अलावा, सार्वत्रिक का, और विशेष के साथ सार्वत्रिक के सम्बंध का ज्ञान वैज्ञानिक

तुलना करता है, और ऐसा करके ऐसी विशेषताओं और सम्बंधों को छांटता है जो उनमें समान रूप से मौजूद होते हैं। हम भी ऐसा ही करेंगे: परिकल्नाओं की विवेचना हम वैयक्तिक और सार्वत्रिक से आरम्भ करेंगे।

२. वैयक्तिक और सार्वत्रिक

हर वस्तु में अनेक विशेषताएं होती हैं जो मात्र उस वस्तु की ही विशेषताएं हैं। उदाहरण के लिए चिनार के दरख्त को ले लीजिए। उसका अपना खास आकार है, शाखाओं की एक खास संख्या है जो एक खास ढंग से पंक्तिबद्ध है, जड़ों की खास रूपरेखा है तथा कुछ अन्य विशेषताएं हैं।

हर मनुष्य की अपनी अलग स्वभावगत विशेषताएं, योग्यताएं और आदतें, रुचियां और प्रवृत्तियां, चलने और बोलने के ढंग होते हैं। ये चीजें उसे भूमण्डल पर निवास करने वाले अरबों अन्य लोगों से विशिष्ट बनाती हैं।

तो चिनार का दरख्त, मानव, भौतिक जगत् की वैयक्तिक वस्तु व्यापार ही वैयक्तिक अथवा विशेष हुए।

पर कोई विशेष व वैयक्तिक वस्तु अलग-अलग नहीं होती, बल्कि अ वस्तुओं और व्यापारों के साथ उसका लगाव होता है। मनुष्य पृथ्वी पर निवा करता है जहां बहुत सारे अन्य लोग भी उसके चारों ओर निवास करते हैं। उन साथ उसकी बहुत बड़ी समानता होती है और वह अगणित प्रकार के विवि धागों से उनके साथ जुड़ा होता है। वह कोई न कोई धंधा करता है जिसक अर्थ यह होता है कि उस धंधे में लगे सभी लोगों की कुछ विशेषताएं उसमें भी मौजूद होती हैं। मनुष्य किसी खास वर्ग और जाति का होता है, अतः उसमें कुछ जातीय और वर्गीय विशिष्टताएं होती हैं। खास तरह का शारीरिक ढांचा, अनुभव और चिन्तन की क्षमता, काम करने और बोलने की क्षमता जैसी विशेषताएं सभी लोगों मे होती हैं। इसी तरह, प्रत्येक वस्तु में अपनी वैयक्तिक, विशेष विशेषताओं के अतिरिक्त ऐसी भी विशेषताएं होती हैं जो अन्य वस्तुओं में समान रूप से पायी जाती हैं।

सार्वत्रिक वह है जो अनेक वैयक्तिक या विशेष वस्तुओं में मौजूद रहता है। वैयक्तिक विशेषताएं किसी वस्तु को अन्यों से अलग करती हैं, तो सार्वत्रिक विशेषताएं उसे उनके निकट ले जाती हैं, उनके साथ जोड़ती हैं और उसे सवर्ग वस्तुओं की निश्चित प्रजाति वर्ग में बिठाती हैं।

वैयक्तिक और सार्वत्रिक द्वन्द्वात्मकता

किसी भी वस्तु के अन्दर
द्वन्द्वात्मक रूप से
में सार्वत्रिक भी होता

"उसका अस्तित्व उस कड़ी में ही होता है

किसी भी तरीके को समाजवादी क्रांति करने में और किसी न किसी रूप में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व कायम करने में सभी मेहनतकशों का मजदूर वर्ग द्वारा नेतृत्व, जिसकी रीढ़ मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी हो;

मजदूर वर्ग की किसान समुदाय के मुख्य अंग और मेहनतकश जनता के अन्य अंगों के साथ मैत्री;

पूंजीवादी स्वामित्व का खात्मा और उत्पादन के बुनियादी साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना;

कृषि का क्रमिक समाजवादी कायापलट,

समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण के लिए और मेहनतकश जनता के रहन-सहन के मानदण्डों को ऊपर उठाने के लिए राष्ट्रीय अर्थतंत्र का नियोजित विकास;

विचारधारा और संस्कृति के क्षेत्र मे समाजवादी क्रांति सम्पन्न करना, मजदूर वर्ग, सभी मेहनतकशों और समाजवाद के ध्येय के प्रति वफादार बुद्धिजीवियों की एक जमात तैयार करना,

जातीय उत्पीडन का खात्मा और सभी जातियों की समता और बंधुत्वपूर्ण मित्रता की स्थापना;

विदेशी और देशी शत्रुओं से समाजवादी जीतों की हिफाजत,

देश के मजदूर वर्ग की अन्य देशों के मजदूर वर्ग के साथ एकजुटता—सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद ।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद बतलाता है कि समाजवाद मे संतरण के लिए ये मुख्य नियम अनिवार्य हैं। पर साथ ही वह किसी देश की राष्ट्रीय विशिष्टताओं को नजरअन्दाज नही करता। इसके विपरीत, वह विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्थाओं में इन नियमों को सृजनात्मक ढंग से लागू करने को कहता है। किन्हीं भी दो देशों को ले लीजिए, उनमे आर्थिक विकास का स्तर एक नही होगा। उनमे वर्ग-शक्तियों का अन्तस्सम्बंध भी एक नही होगा, न ही राष्ट्रीय परम्पराएं एक होंगी। इन सबका योग समाजवाद के निर्माण के रूपों और विधियों के विशिष्ट पहलुओं को तथा अलग-अलग देशों मे समाजवादी कायापलट की रफ्तार को निर्धारित करता है।

अब हम मोटे तौर पर ज्ञात कर चुके कि विशेष क्या है, और यह स्थापित कर चुके कि वह सार्वत्रिक के साथ जुड़ा हुआ है। अब हम आगे बढ़ेंगे और यह ज्ञात करेंगे कि विशेष वस्तुएं, विषय और व्यापार क्या हैं जिनसे मनुष्य को बराबर साबका पड़ता रहता है।

अन्तर्वस्तु और आकृति की परिकल्पना हमे भान कराती है कि कोई वस्तु वास्तव में है क्या।

१. अन्तर्वस्तु और आकृति

अन्तर्वस्तु और आकृति क्या है ?

अन्तर्वस्तु उन तत्वों और प्रक्रियाओं का कुलयोग है जिनसे कोई वस्तु या व्यापार बनता है। आकृति अन्तर्वस्तु का ढांचा है, उसकी बनावट है। वह अन्तर्वस्तु से परे नहीं, बल्कि उसी में निहित होती है।

मौलिक कण और उनकी गतिविधि से सम्बंधित प्रक्रियाएं रासायनिक तत्व के परमाणु की अन्तर्वस्तु हैं। उनका विन्यास उसकी आकृति है। उपापचय, उत्तेज्यता, संकुचन-क्षमता तथा अन्य प्रक्रियाएं, और वे अंग, ऊतक और कोशाएं भी जिनमें ये प्रक्रियाएं होती हैं, मिलकर सजीव शरीर की अन्तर्वस्तु बनते हैं। सजीव शरीर की आकृति उसके अन्दर होनेवाली जीवन-प्रक्रियाओं के ढंग की और उसके अंगों तथा ऊतकों के ढांचे की प्रतिनिधि होती है।

अन्तर्वस्तु और आकृति हर सामाजिक व्यापार में भी निहित होती हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादक शक्तियां (खास कर उत्पादन के औजार और इन्हें इस्तेमाल करने वाले लोग) किसी इतिहास-निर्दिष्ट उत्पादन पद्धति की अन्तर्वस्तु होती हैं। उत्पादन-सम्बंध (उत्पादन की प्रक्रिया में लोगों के सम्बंध जो इन औजारों के प्रति उनके सम्बंध पर आधारित होते हैं) किसी उत्पादन पद्धति की आकृति होते हैं।[1]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अन्तर्वस्तु और आकृति की एकता, उनकी अभिन्नता को आधार मान कर अग्रसर होता है। अन्तर्वस्तु और आकृति—ये दोनों हर वस्तु में निहित होती हैं और इसलिए एक-दूसरे से भिन्न नहीं की जा सकतीं। यों अन्तर्वस्तु जैसी कोई चीज नहीं होती, केवल आकृतियुक्त अन्तर्वस्तु ही होती है, अर्थात् ऐसी अन्तर्वस्तु होती है जिसकी निश्चित आकृति हो। इसी तरह अन्तर्वस्तु से अलग विशुद्ध आकृति का अस्तित्व नहीं होता। आकृति में अन्तर्वस्तु रहेगी ही। उसमें एक निश्चित अन्तर्वस्तु मान्य होती है जिसके ढांचे या गठन का वह रूप होती है।

अन्तर्वस्तु का निर्णायक महत्व और आकृति की सक्रिय भूमिका

यह हम ज्ञात कर चुके हैं कि हर वस्तु अन्तर्वस्तु और आकृति की एकता का रूप है। अब हम यह देखेंगे कि अन्तर्वस्तु और आकृति किस तरह परस्पर सम्बंधित हैं, किस तरह वे वस्तुओं के विकास की प्रक्रिया में एक-दूसरे पर प्रभाव डालती हैं।

---

१. उत्पाद[illegible] ों और उत्पादन [illegible] विवेचना हम आगे
आ[illegible]

अन्तर्वस्तु बहुत सक्रिय होती है। अपने आभ्यन्तरिक अन्तर्विरोधों की बदौलत वह निरन्तर विवर्तित होती रहती है, निरन्तर गतिशील रहती है। इसके बाद, अन्तर्वस्तु के बदलने के साथ, आकृति भी बदलती है। अन्तर्वस्तु आकृति को निर्धारित करती है।

मिसाल के लिए, हम सामाजिक उत्पादन के विकास के मूल को ले लें। उसका आरम्भ सदा अन्तर्वस्तु से—उत्पादक शक्तियों से—होता है। अधिक से अधिक भौतिक सम्पदा उत्पन्न करने के लिए लोग उत्पादन के अपने औजारों को निरन्तर सुधारते-सवारते और अपना कौशल भी बढ़ाते रहते हैं। इससे सामाजिक उत्पादन की आकृति में—उत्पादन सम्बंधों में—परिवर्तन होना अनिवार्य बन जाता है।

प्रकृति में भी अन्तर्वस्तु आकृति को स्थिर करती है। जैविकी बतलाती है कि किसी सजीव शरीर के अस्तित्व की अवस्थाओं में परिवर्तन होने पर पहले उसकी क्रियाओं में (आभ्यन्तरिक प्रकार के उपापचय और अन्य प्रक्रियाओं में जिनसे जीवन की अन्तर्वस्तु बनती है) परिवर्तन आता है, नये प्रोटीन द्रव्य आदि प्रगट होते हैं। इसके बाद ही, अन्तर्वस्तु के परिवर्तन के आधार पर, *आकृति भी—शरीर का सगठन या ढांचा भी—बदलता है।* उदाहरण के लिए, किसी पौदे को अगर नम जलवायु से सूखी जलवायु में भेज दिया जाय, तो उसका उपापचय बदल जायगा। यह परिवर्तन ऐसे ढग से होगा कि पौदा नई अवस्थाओं में अधिक नमी हासिल कर सके और कम नमी गवा सके। पौदे के ढांचे मे तदनुसार परिवर्तन हो जायगा—उसकी जड़ें जमीन में और गहरी जायेंगी, जिससे अधिक नमी खींच सके। पत्तियां अधिक पतली हो जायेंगी जिससे कम नमी उड़े।

आकृति अन्तर्वस्तु से जनित तो होती है, किन्तु अन्तर्वस्तु के प्रति निश्चेष्ट नहीं रहती। वह अन्तर्वस्तु पर सक्रियता पूर्वक प्रभाव डालती है, उसके विकास को सुगम बनाती अथवा उसमें रुकावट डालती है। नई आकृति, जो अन्तर्वस्तु के अनुरूप होती है, अन्तर्वस्तु के विकास को, उसकी अग्रगति को प्रोत्साहित करती है। पुरानी आकृति, जो अन्तर्वस्तु के अनुरूप नहीं होती, अन्तर्वस्तु के विकास को रोकती है। अगर हम, मिसाल के रूप में, फिर सामाजिक उत्पादन को ले लें तो देखेंगे कि उसकी आकृति—उत्पादन-सम्बंध—अन्तर्वस्तु पर निर्भर ही नहीं रहती बल्कि अन्तर्वस्तु के विकास में स्वयं सक्रिय भूमिका अदा करती है। उदाहरणार्थ, प्रगतिशील समाजवादी उत्पादन-सम्बंध औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन की असाधारण रूप से उच्च वृद्धि की रफ्तार को सुनिश्चित करते हैं। वे पूरे समाजवादी अर्थतन्त्र की उन्नति को सुनिश्चित करते हैं। पर आज के पूंजीवाद के उत्पादन सम्बध उत्पादन शक्तियों के विकास को

रोकते हैं, और कभी-कभी तो उनके फलस्वरूप उत्पादक शक्तियां नष्ट भी हो जाती हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि विकास में आकृति की भूमिका और महत्व को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए।

आकृति और अन्तर्वस्तु की अन्योन्यक्रिया का विश्लेषण करते समय हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि एक ही अन्तर्वस्तु विभिन्न आकृतियां ग्रहण कर सकती है। यह अवस्थाओं के ऊपर निर्भर करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन को अपने अनुभव से मालूम है कि सर्वहारा अधिनायकत्व की, जो पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के युग की अन्तर्वस्तु है, एक से अधिक आकृतियां संभव है। सोवियत संघ में सर्वहारा अधिनायकत्व ने मेहनतकश जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतों की आकृति ग्रहण की और विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्य देशों में उसकी आकृति लोक जनतन्त्र की थी। संभव है कि भविष्य में सर्वहारा अधिनायकत्व के नये रूप पैदा हों।[1]

आकृतियों की विविधता से अन्तर्वस्तु मजबूत होती है, वह अधिक सम्पन्न और अधिक विविधतापूर्ण बनती है। इसकी बदौलत वह अनेकानेक प्रकार की अवस्थाओं में विकसित हो सकती है। इसलिए क्रान्तिकारी संघर्ष और कम्युनिस्ट निर्माण में ऐसी आकृतियां (ऐसे रूप) चुनना बहुत महत्वपूर्ण है जो विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्थाओं के सबसे अधिक उपयुक्त हों।

आकृति और अन्तर्वस्तु के अन्तर्विरोध

अन्तर्वस्तु और आकृति के सम्बंध को ज्यादा अच्छी तरह समझने के लिए उसके अन्तर्विरोधी स्वरूप की व्याख्या करना जरूरी है। हम पहले ही कह चुके हैं कि आकृति अन्तर्वस्तु से अधिक स्थायी होती है। इसीलिए वह अन्तर्वस्तु के विकास से पीछे पड़ जाती है। वह पुरानी पड़ जाती और उसके साथ टकराने लगती है। पुरानी आकृति और नई अन्तर्वस्तु के अन्तर्विरोध का अन्तिम नतीजा आमतौर से यह होता है कि पुरानी आकृति परित्यक्त होती है और नई आकृति उसका स्थान लेती है जिसके फलस्वरूप अन्तर्वस्तु आगे विकास की गुंजायश हासिल करती है।

इस प्रकार, अवस्थाओं के बदलने के साथ शरीर नये पौष्टिक द्रव्यों को ग्रहण करने को बाध्य होता है। इस सिलसिले में शरीर की अन्तर्वस्तु—यानी उसका विशिष्ट प्रकार का उपापचय और उसकी सारी जीवनीय क्रियाएं—कमोवेश तेजी के साथ बदल जाती हैं। जहां तक आकृति का या शरीर के ढांचे का सम्बंध है, वह अन्तर्वस्तु के विकास के स[illegible]म मिलाकर

१. इस प्रश्न की विशद विवेचना १७वें अध्याय में की ज[illegible]

नही चल पाता और उसके साथ अन्तर्विरोध उठ खड़ा होता है। इस अन्तर्विरोध का समाधान शरीर के ढांचे में परिवर्तन के साथ होता है। यह परिवर्तन बदली हुई अन्तर्वस्तु के साथ उसका मेल बैठा देता है। फलतः वर्तमान अवयवों का रूपान्तर होता है या नये अवयव बनते हैं। उदाहरण के लिए, जब जल के अन्दर विकसित कोई जन्तु जल-थलीय जीवन परिस्थिति में गमन करता है, तो उसमे धीरे-धीरे गलफड़ो की जगह फेफड़े विकसित होते हैं, मीनपंखो के बदले हाथ-पाव जैसी चीजें पैदा होती हैं।

सामाजिक जीवन मे भी अन्तर्वस्तु और आकृति मे अन्तर्विरोध होता है। यह सामाजिक उत्पादन के विकास के बारे मे दिये गये ऊपर के उदाहरण से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है।

विकास के दौरान नई अन्तर्वस्तु (उत्पादक शक्तियों) का पुरानी आकृति (उत्पादन सम्बंधों) के साथ अन्तर्विरोध होता है। यह अन्तर्विरोध नये उत्पादन-सम्बधों द्वारा पुराने उत्पादन-सम्बधों का स्थान ग्रहण किये जाने के साथ समाप्त होता है। ये नये उत्पादन-सम्बध उत्पादक शक्तियों के आगे के अबाध विकास को सुनिश्चित करते हैं। उदाहरण के लिए, पूजीवादी समाज के विकास के दौरान बड़े पैमाने की सामाजिक, मशीनी उत्पादनवाली उत्पादक शक्तियो का निजी पूजीवादी स्वामित्व पर आधारित उत्पादन-सम्बधों के साथ अन्तर्विरोध पैदा होता है। रूस मे इस वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोध को समाजवादी क्रांति ने हल किया, उत्पादन के पुराने पूंजीवादी रूप की जगह उसने एक नये रूप को स्थापित किया। यह था सामाजिक, सामूहिक सम्पत्ति पर आधारित उत्पादन सम्बध। साम्राज्यवादी देशों मे सामाजिक उत्पादन के रूप (आकृति) और अन्तर्वस्तु के अन्तर्विरोध का हल होना अभी बाकी है।

समाजवाद मे भी सामाजिक उत्पादन की आकृति और अन्तर्वस्तु में अन्तर्विरोध होता है। पर यह अन्तर्विरोध वैमनस्यपूर्ण कोटि का नहीं होता। इसका सफलतापूर्वक हल निकाल लिया जाता है।[1]

इन तथा अन्य अन्तर्विरोधों और कठिनाइयो को दूर कर सोवियत जनता ने कम्युनिस्ट निर्माण मे बाधा डालने वाले पुराने जर्जर रूपों का परित्याग किया है। लेकिन समाजवादी समाज के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी रूपों को सुधारने-सवारने की प्रक्रिया निरन्तर जारी है।

हम देख चुके हैं कि वस्तु की अन्तर्वस्तु और आकृति क्या होती है। अब हम यह देखेंगे कि क्या उसके सभी तत्व और पहलू समान महत्व रखते हैं, क्या उस वस्तु के अस्तित्व और विकास मे उन सबकी भूमिका बराबर

---

1. इसकी विशद विवेचना १२वें अध्याय में की गयी है।

होती है। इस प्रश्न की छानबीन के लिए हमें सार और व्यापार की परिकल्पनाओं की विवेचना करनी होगी।

४. सार और व्यापार

सार की धारणा अन्तर्वस्तु की धारणा जैसी ही है, पर दोनों एक नहीं हैं। अन्तर्वस्तु किसी वस्तु को संघटित करने वाले सभी तत्वों और प्रक्रियाओं का योग है। पर सार किसी वस्तु का मुख्य, आन्तरिक, अपेक्षाकृत स्थिर पहलू है (अथवा उसके पहलुओं और सम्बंधों का योग है)। सार किसी वस्तु *की प्रकृति को तय करता है, उस वस्तु के सभी अन्य पहलू और लक्षण उसका अनुगमन करते हैं।*

उपापचय सजीव शरीर का सार है। वह सभी प्राण-मूलक क्रियाओं में अन्तर्निहित होता है। यही सभी सजीव शरीर की आन्तरिक प्रकृति भी होता है। एंगेल्स ने बताया था कि उपापचय से ही, जो प्रोटीन की सारभूत क्रिया है, शरीर की अन्य सारी शक्तिदायी क्रियाएं अनुगमित होती हैं—यथा उत्तेज्यता, संकुचन क्षमता, विकास, आन्तरिक गतिविधि।

सामाजिक व्यापारों में सार प्रक्रियाओं के आन्तरिक, मुख्य पहलू को अभिव्यक्त करता है। पूंजीवाद की उच्चतर मंजिल, साम्राज्यवाद का वर्णन करते हुए लेनिन ने उसे इजारेदार पूंजीवाद कहा था। अबाध प्रतियोगिता का स्थान इजारेदारियों के प्रभुत्व द्वारा ग्रहण किया जाना—यही साम्राज्याद का सार है। इजारेदारियों के प्रभुत्व से ही साम्राज्यवाद की अन्य सारी विशेषताएं—सर्वोपरि, उन पूंजीपतियों द्वारा, जो इजारेदार संघों के सदस्य होते हैं, इजारेदार अतिलाभों का वसूल किया जाना—पैदा होती हैं। अतिलाभ की तलाश में साम्राज्यवादी मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदार संघ खड़े करते हैं और दुनिया को अपने प्रभाव क्षेत्रों में बांट लेते हैं, वित्त पर इजारा कायम करते हैं, मालों के बदले पूंजी का निर्माण करते हैं और खुद अपने देशों की मेहनतकश जनता और साथ ही उपनिवेशों और परतन्त्र देशों की जनता का शोषण तीव्र करते हैं। *इस सबके फलस्वरूप पूंजीवाद के स्वभावगत अन्तर्विरोध बहुत ज्यादा तीव्र* हो जाते हैं। साम्राज्यवाद समाजवादी क्रान्ति के उदय की पूर्वबेला है।

समाजवादी समाज का सार है : समाजवादी सम्पत्ति का प्रभुत्व, शोषण का न होना, अर्थतंत्र का नियोजित स्वरूप, समाज के सदस्यों में सहयोग और एक-दूसरे की सहायता, *उन्नत प्रविधियों के आधार पर उत्पादन का विकास* और सुधार करके समाज के सदस्यों की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ण तुष्टि।

व्यापार सार की बाह्य, प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है, वह रूप है जिसमें सा
प्रगट होता है। उपापचय हर जीवित प्राणी के सार की हैसियत से अनेकाने
प्रकार के व्यापारों में प्रगट हुआ करता है। वह पौदों की कोई पांच लाख औ
पशुओं की कोई पन्द्रह लाख प्रजातियों में अभिव्यक्त होता है। वे सभी बा
रूपों और विकास स्तर में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। वे भोजन ग्रहण कर
हैं, बढ़ते हैं और भिन्न-भिन्न ढंगों से प्रजनन करते हैं।

समाजवाद का सार दैनिक सोवियत जीवन के व्यापारों में अभिव्य
होता है—नई फैक्टरियों और शक्तिशाली बिजली-घरों के निर्माण, अर्थतंत्र
नाना शाखाओं में जोरदार तकनीकी प्रगति, मकानों और सांस्कृतिक प्रति
ष्ठानों के अभूतपूर्व गति से निर्माण, कार्यदिवस का छोटा होने आदि में।

सार और व्यापार की द्वन्द्वात्मकता

हम देख चुके हैं कि सार और व्यापार का क्या अ
है। अब हम यह देखेंगे कि उनका आपसी रिश
क्या है। सार और व्यापार एक इकाई हैं।
परस्पर सम्बंधित और अभिन्न हैं। लेनिन ने कहा था : सार व्यापार-रूप
प्रकट होता है और व्यापार सारगत होता है। व्यापार वही सार है जैसा
वह यथार्थ में अभिव्यक्त होता है। यथार्थ का बाहरी, सतही पहलू, वस्तुओं
वैयक्तिक गुणधर्म, क्षण और पहलू—यह व्यापार होता है। सार वही व्यापार
वही नानाविध क्षण, पहलू है, पर अपने सबसे स्थिर, गहन और आम रूप में
लेनिन ने सार की तुलना किसी तेज बहाव वाली नदी की अपेक्षाकृत स्थि
शक्तिशाली और गहरी धारा से की थी जिसकी सतह पर लहरें और फेन है
हैं। "पर फेन भी तो सार की एक अभिव्यंजना है,"[1] उन्होंने कहा था।

सार का हर व्यापार में प्रगट होना अनिवार्य है, पर वह पूर्णतया प्रग
नहीं होता। उसका केवल एक अल्पांश ही अभिव्यंजित होता है। व्यापार
सार का अन्त नहीं होता। व्यापार तो उसके केवल एक पक्ष को पेश करता है

"विशुद्ध" सार जैसी कोई चीज नहीं। अर्थात्, ऐसा कोई सार नहीं
जो अपने को किसी चीज में प्रगट न करता हो। हर सार व्यापारों के
पुंज में अपने को प्रगट करता है। समाजवाद का सार समाजवादी समाज
दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं और तथ्यों के द्वारा अपने को प्रगट करता है

सार बाहर दिखाई नहीं देता है। वह छुपा हुआ रहता है और सीधे-सी
नहीं देखा जा सकता। वह किसी वस्तु के लम्बे अरसे तक तथा सव
अध्ययन के दौरान ही प्रगट होता है। मार्क्स ने लिखा था कि यदि वस्तु
के प्रगटीकरण के रूप तथा सार सीधे-सीधे समापाती हों, तो हर विज्ञान बेक

---

१. लेनिन, संगृहीत रचनाएं, खंड ३८, पृष्ठ १३०।

हो जाय। विज्ञान का काम है कि व्यापारों के अगणित समूह के पीछे छिपे सार का, उनकी आन्तरिक, गहन और उनमें निहित प्रक्रियाओं का, यथार्थ के बाहरी पहलुओं और विशेषताओं का उद्घाटन करे।

सार और व्यापार की परिकल्पनाओं का महत्व

सार और व्यापार की द्वन्द्वात्मकता का ज्ञान जीवन में बड़ा महत्व रखता है। वह विज्ञान और व्यावहारिक कार्यकलाप के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, यह ज्ञान वैज्ञानिकों को आत्मविश्वास प्रदान करता है कि वे जिन व्यापारों का अध्ययन कर रहे हैं उनका संज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया चाहे कितनी ही जटिल हो, सार इन व्यापारों के अन्दर चाहे कितना गहरा छुपा बैठा हो, एक-न-एक दिन वे उसे ज्ञात कर ही लेंगे। मिसाल के तौर पर, ज्योतिर्विदों ने वर्षों सूर्य का गहराई से प्रेक्षण किया। विभिन्न यंत्रों की मदद से उन्होंने सूर्य में धब्बे और शोथ देखा। उन्होंने सूर्य द्वारा उत्सर्जित विभिन्न कणों के स्रावों का भी पता लगाया। पर इनमें से किसी भी व्यापार से स्वयं सूर्य के अन्दर होने वाली गहन प्रक्रियाओं का, सौर ऊर्जा के स्रोतों का, रहस्य प्रगट नहीं हो सका। विज्ञान को इन व्यापारों के पीछे निहित प्रक्रियाओं के सार का रहस्योद्घाटन करने में लम्बा समय लग गया। अब पता चला है कि सूर्य में तापनाभिकीय प्रतिक्रियाएं (हाइड्रोजन से हीलियम का निर्माण) चलती रहती हैं और इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न अपार ऊर्जा ही सूर्य के अति उच्चताप को कायम रखती है।

सार का ज्ञान खास तौर पर आवश्यक है, क्योंकि व्यापारों में अक्सर प्रक्रिया के स्वरूप के बारे में गलत धारणा उत्पन्न करने की प्रवृति होती है। उदाहरण के लिए, हमें लगता है कि सूरज पृथ्वी का चक्कर काटता है, जबकि हम जानते हैं कि दरअसल पृथ्वी सूर्य का चक्कर काट रही है। लगता है कि साम्राज्यवादी दुनिया में जनतंत्र का अस्तित्व है। आखिर वहां सबके लिए मतदान का अधिकार, भाषण और समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता, राजनीतिक पार्टियां या संगठन खड़े करने की आजादी आदि चीजों की बाकायदा घोषणा जो की जाती है! पर दरअसल साम्राज्यवाद के अंतर्गत जनतंत्र केवल एक धोखा है। वह सीमित जनतन्त्र है, केवल अमीरों के लिए जनतंत्र है।

केवल ऊपर से दिखाई देने वाली चीज पर, सार की अभिव्यक्तियों पर, आधारित ज्ञान हमें विश्व का सही चित्र नहीं दे सकता। वह कार्य का पथ-निर्देशक नहीं बन सकता। व्यापारों और सार में भेद करने की अक्षमता सिद्धांत और व्यवहार में गंभीर भूलों का कारण बनती है

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों ने सामाजिक सार का अनुपम विश्लेषण किया। इन्हीं विश्लेषणों में मार्क्स

के सार की खोज भी शामिल है। इस खोज ने सामाजिक विचारों के विकास में एक पूरे युग का निर्माण किया।

पूंजीवादी अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री व्यापारों के अध्ययन तक ही—ऊपर से सत्य लगने वाली चीज तक ही—अपने को सीमित रखते हुए तर्क करते हैं कि पूंजीवादी समाज में शोषण नहीं होता, उसमे मजदूर को पूंजीपति से अपनी पूरी कमाई प्राप्त होती है। उनके दृष्टिकोण से पूंजीवादी मुनाफे का स्रोत मजदूरों का शोषण नहीं, बल्कि खुद पूंजी है जिसे पूंजीपति उत्पादन के काम में लगाता है।

वास्तविक स्थिति बिलकुल भिन्न है। मजदूर को अपने और अपने परिवार के जीवन निर्वाह के लिए कतिपय साधनो की दरकार होती है। उन्हें प्राप्त करने के लिए वह पूंजीपति के पास जाने और अपनी मेहनत बेचने को लाचार होता है। बाहर से ऐसा लग सकता है कि मजदूर और पूंजीपति में साधारण लेन-देन का सौदा हुआ। मजदूर ने अपनी श्रमशक्ति बेची और पूंजीपति ने उसे खरीदा। मजदूर काम करता और पूंजीपति उसे वेतन देता है।

सतही तौर पर यह पूंजीपति और मजदूर के बीच बराबर का सौदा ज्ञात होता है। पूंजीवादी सिद्धांतशास्त्री अपने को इस बाहरी व्यापार तक ही सीमित रख कर इस सर्वथा मिथ्या निष्कर्ष पर पहुच जाते हैं कि पूंजीवाद में शोषण नहीं है। वे पूंजीवादी उत्पादन के असल सार को देखना नहीं चाहते।

मार्क्स ने अपने को पूंजीवादी समाज के सतही व्यापारो के विश्लेषण तक ही सीमिति नहीं रखा। उन्होंने इस व्यापार के पीछे, अर्थात् पूंजीपति और मजदूर मे बराबरी के सौदे के दिखावे के पीछे, छिपे पूंजीवादी उत्पादन की शोषक प्रकृति का रहस्योद्घाटन किया। मार्क्स ने प्रमाणित किया कि श्रम-शक्ति एक विशेष प्रकार का माल है जिसमे भौतिक मूल्यों को उत्पादित करने की क्षमता है। इसके अलावा, जो मूल्य वह उत्पादित करती है, उसकी कीमत पूंजीपति द्वारा अदा की जाने वाली मजूरी से कही अधिक है। पूंजीपति मजदूर द्वारा उत्पादित माल के मूल्य के केवल एक अंश की ही कीमत चुकाता है और बाकी खुद रख लेता है। जो भाग पूंजीपति खुद रख लेता है, उसके लिए मार्क्स ने अतिरिक्त-मूल्य शब्द का प्रयोग किया। यह अतिरिक्त मूल्य ही पूंजीवादी मुनाफे का स्रोत है।

पूंजीवादी शोषण के सार की मार्क्स द्वारा की गयी खोज जबर्दस्त ऐतिहासिक महत्व की है। उसके जरिए ही पूंजीपति और सर्वहारा के वैमनस्य के आधार को प्रकट किया जा सकता है। उससे ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि इन दोनों का संघर्ष क्यों अनिवार्य है और इस संघर्ष की चरम परिणति समाजवादी क्रान्ति में और पूंजीवाद के पतन में होती है।

यह उदाहरण प्रकट करता है कि वस्तुओं और प्रक्रियाओं के सार का ज्ञान विज्ञान और क्रान्तिकारी व्यवहार के लिए कितना अधिक महत्वपूर्ण है।

अब हम वैयक्तिक और सार्वत्रिक, अन्तर्वस्तु और आकृति, सार और व्यापार का विश्लेषण कर चुके। दूसरे शब्दों में, हमने उन सभी चीजों का विश्लेषण किया जिनसे हम किसी वस्तु अथवा व्यापार को समझ सकते हैं। पर वस्तुएं और व्यापार अलग-अलग नहीं रहा करते। वे परस्पर सम्बंधित होते हैं और उनके इस आपसी सम्बंध से बाहर उन्हें नहीं समझा जा सकता। किसी वस्तु को अन्य वस्तुओं के साथ उसके रिश्ते में समझने का अर्थ सर्वोपरि उसकी उत्पत्ति के हेतु को प्रमाणित करना है। अब हम कारण और कार्य की परिकल्पनाओं की विवेचना करेंगे।

५. कारण और कार्य

वस्तुगत जगत में हम व्यापारों की निरन्तर अन्योन्यक्रिया देखा करते हैं जिसके फलस्वरूप कुछ व्यापार कुछ अन्य व्यापारों का कारण बनते हैं; फिर वे अन्य व्यापार दूसरे व्यापारों को पैदा करते हैं, और इस तरह शृंखला चलती जाती है। उदाहरण के लिए, रगड़ से ताप पैदा होता है और गर्मी से सूखा पड़ता है जिससे फसलों का मारा जाना आदि सामने आता है। सामाजिक जीवन में भी व्यापारों की इसी प्रकार की अन्योन्यक्रिया देखने में आती है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन से साम्राज्यवादी औपनिवेशिक व्यवस्था का विघटन हुआ।

कोई व्यापार या परस्पर क्रियाशील व्यापारों का समूह जो ऐसे ही अन्य व्यापारों या व्यापारों के समूह से पहले आता है और उसे पैदा करता है, कारण कहलाता है। कारण की क्रिया से जो व्यापार प्रकट होता है, उसे कार्य कहते हैं।

कारण कार्य से सदा पहले आता है। पर पहले आना ही कारण का पर्याप्त लक्षण नहीं है। उदाहरण के लिए, रात के बाद दिन आता है, पर रात दिन का कारण नहीं है। रात के बाद दिन का और दिन के बाद रात का आना पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण होता है।

दो व्यापारों की कारण-सम्बधी निर्भरता तब होती है जब उनमें से एक न केवल दूसरे से पहले आता है, बल्कि प्रत्यक्ष रूप में उस दूसरे का जनक भी होता है।

कारण और तात्कालिक हेतु को एक नहीं समझ लेना चाहिए। तात्कालिक हेतु वह घटना है जो कार्य से ठीक पूर्व आता है। वह स्वयं कारण नहीं होता, पर कारण को गतिमान करता है। उदाहरण के लिए, जून [illegible] में सेराजेवो

नगर में आस्ट्रिया के युवराज आर्चड्युक फर्डिनेन्ड की हत्या प्रथम विश्व युद्ध को छेड़ने का तात्कालिक हेतु थी। पर युद्ध का असल कारण प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी शक्तियों का अन्तर्विरोध था।

कारण का उन अवस्थाओं से भी विभेद करना चाहिए जिनके अन्तर्गत वह कार्य करता है। उत्पादक श्रम सभी सामाजिक सम्पदा का कारण है। पर श्रम सम्पदा उत्पन्न कर सके, इसके लिए श्रम के प्रयोजन और इस प्रयोजन को लेकर कार्य करने के लिए औजारों की जरूरत होती है। श्रम का प्रयोजन अथवा श्रम के औजार अपने-आप सम्पदा नहीं उत्पन्न करते, पर मनुष्य के श्रम के लिए ये आवश्यक शर्तें होते हैं।

कार्य-कारण सम्बन्ध के मार्क्सवाद-विरोधी मतों की आलोचना

भौतिक जगत् में कार्य-कारण सम्बन्ध का आम, सार्विक स्वरूप होता है। कारण के बिना कोई व्यापार न होता है और न हो सकता है, क्योंकि हर चीज का अपना कारण हुआ करता है। जैसी कि पुरानी कहावत है "बिना आग धुआं नहीं होता।" कार्य-कारण सम्बन्ध वस्तुगत है. मनुष्य की बुद्धि अथवा प्रकृति से परे किसी शक्ति ने उसका यथार्थ में समावेश नहीं किया है। कार्य-कारण सम्बन्ध यथार्थ के अन्दर स्वयं समाविष्ट है और सज्ञान प्राप्त करने तथा व्यावहारिक कार्यकलाप की प्रक्रिया में मनुष्य उसकी खोज निकालता है।

कार्य-कारण सम्बन्ध की द्वन्द्वात्मक-मार्क्सवादी समझ धर्म द्वारा की गयी विश्व व्याख्या से बिलकुल उल्टी है। मजहबी व्याख्या के अनुसार ईश्वर हर विद्यमान वस्तु का कारण है। वह मानती है कि ईश्वर ने विश्व व्यवस्था की सृष्टि की और तरह-तरह के अलौकिक कार्य करके इस व्यवस्था को वह उलटता-पुलटता रहता है। धर्म विश्व के हेतुवादी सिद्धान्त का भी प्रतिपादक है जिसके अनुसार विश्व का विकास दैव द्वारा पूर्वनिर्दिष्ट उद्देश्यों का चारितार्थ रूप है। एंगेल्स ने इस मत की चुटकी लेते हुए लिखा था कि हेतुवाद के दृष्टिबिन्दु से बिल्लियां चूहों को खाने के लिए बनायी गयीं, चूहे बिल्लियों द्वारा खाये जाने के लिए बने और समूची प्रकृति सृष्टिकर्ता की बुद्धिमत्ता प्रमाणित करने के लिए बनायी गयी।

पर अलौकिक कार्य अथवा पूर्वनिर्दिष्ट उद्देश्यों जैसी कोई चीज नहीं है। सब कुछ प्राकृतिक कारणों, वस्तुगत नियमों के अनुसार होता है। यह स्वतः स्पष्ट है कि प्रकृति अपने लिए कोई उद्देश्य निर्दिष्ट नहीं कर सकती, न करती है। समाज की स्थिति भिन्न है, क्योंकि मनुष्य सचेत होकर कार्य करते हैं, अपने सामने निश्चित लक्ष्य रखते हैं, तथा इन लक्ष्यों की सिद्धि के लिए कार्य करते हैं। पर ये लक्ष्य सर्वशक्तिमान परमात्मा द्वारा पूर्वनिर्दिष्ट नहीं होते। वे

उन्होंने घोषणा की कि सूक्ष्म प्रक्रियाओं में कार्य-कारण सम्बंध मनुष्य द्वारा खुद प्रेक्षण और मापन कार्यों के दौरान गढ़ा जाता है। पर वास्तव में, आधुनिक भौतिकी ने कार्य-कारण सम्बंध के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त का खण्डन नहीं किया। उल्टे उसने उसके लिए अतिरिक्त प्रमाण ही जुटाये। साथ ही उसने सिद्ध किया कि नियतिवाद यथार्थ के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न तरीकों से अपने को अभिव्यक्त करता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कारण और कार्य के बीच दीवार मानने की अधिभौतिकीय विधि का भी विरोध करता है। विज्ञान और व्यवहार की उपलब्धियों के आधार पर अग्रसर होते हुए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने यह तथ्य प्रतिपादित किया कि कारण और कार्य मे अटूट सम्बंध है, बिना कारण कार्य नही होता और बिना कार्य कारण नहीं। कार्य और कारण के सम्बध का स्वरूप आन्तरिक और नियम-अधिशासित है। यह ऐसा सम्बध है जिसमें कार्य कारण से उद्भूत होता है, कारण की क्रियाशीलता का फल होता है। कारण से जनित होकर कार्य अपने कारण के प्रति उदासीन नहीं रहता और उस पर प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, उत्पादन की प्रक्रिया में संलग्न मनुष्यों के आर्थिक सम्बध राजनीतिक, दार्शनिक और अन्य विचारों के कारण और स्रोत हैं। ये विचार फिर आर्थिक सम्बधों के विकास पर भी प्रभाव डालते हैं।

कारण और कार्य के परस्पर सम्बध का यह भी अर्थ है कि कोई व्यापार एक सन्दर्भ में कारण और दूसरे सन्दर्भ में कार्य हो सकता है। बिजलीघरों में ब्यॉलरों के अन्दर कोयले का दहन पानी के भाप में परिवर्तित होने का कारण है। भाप, जो कोयले के दहन का फल है, स्वयं जेनरेटर के रोटर की गति का कारण है। उसका घर्षन बिजली पैदा करता है जो लोगों को ताप और प्रकाश आदि प्रदान करने वाले अनेक मशीनों की गति का स्रोत है, कारण है। इसी तरह तर्क आगे बढ़ता है। कार्य-कारण सम्बध की विशेषता पारस्परिक सम्बधों की यही अनन्त शृंखला है, दुनिया की वस्तुओं और व्यापारों का सार्वत्रिक सम्बंध है जहां हर कड़ी कारण भी है और कार्य भी।

कार्य-कारण सम्बंध का वैज्ञानिक और व्यावहारिक महत्व

व्यापारों की कार्य-कारण निर्भरता का ज्ञान विज्ञान और व्यवहार मे भारी महत्व रखता है। उपयोगी व्यापारों के कारणों का पता लगा कर मनुष्य उनकी क्रिया को सुगम बना सकता है और इस प्रकार उपयोगी व्यापारों और [illegible] की, जिसकी उसे जरूरत है, [illegible] जानता है कि जमीन की [illegible] ग आदि अच्छी उपज के

कारण होते हैं। अतएव सर्वोत्तम फार्म कृषि-विधियों को निरन्तर बेहतर बनाने की चेष्टा करते हैं।

हानिकारक व्यापारों के कारण के ज्ञान से मनुष्य इन व्यापारों को बन्द कर सकता है अथवा उनकी क्रिया संकुचित कर सकता है और इस तरह अवांछनीय प्रभावों का आगमन रोक सकता है।

किसी व्यापार के मुख्य कारणों का उद्घाटन करने की क्षमता व्यावहारिक कार्यों के क्षेत्र में खास तौर पर महत्वपूर्ण है। मुख्य कारणों का पता लगाके मनुष्य किसी व्यापार की उत्पत्ति और सार को, अन्य व्यापारों के बीच उसके स्थान और विकास को अधिशासित करने वाले नियमों को समझ सकता है।

मुख्य कारण वह है जिसके बिना व्यापार सामने नहीं आता। वही इस व्यापार की मुख्य विशेषताओं को भी स्थिर करता है।

उदाहरण के लिए, दूसरे विश्व युद्ध में नाजी हमलावरों पर सोवियत जनता की विजय का मुख्य कारण क्या है? यह कारण है सोवियत संघ की सामाजिक और राज्यीय व्यवस्था, सोवियत सैन्य-बल, न कि विशाल भूभाग या रूस की कठोर सर्दी तथा ऐसी ही अन्य चीजें जिन्हें पूंजीवादी मिथ्यावादी तर्क रूप में पेश किया करते हैं। इन तत्वों ने भी कुछ काम किया, किन्तु वे मुख्य और निर्णायक कारण हरगिज न थे।

कम्युनिस्ट पार्टी सदैव मुख्य निर्णायक कारणों को देखती है। अनेक अन्य कारणों में से मुख्य कारणों को छांटने की क्षमता से घटना-क्रम की कुंजी और मुख्य कड़ी का पता चल जाता है। इसकी बदौलत कम्युनिस्ट पार्टी और जनता खास अवधि में उपस्थित हर कार्य को निपटाने में समर्थ होती है। लेनिन कहा करते थे कि राजनीति-कला सामाजिक व्यापारों की शृंखला की मुख्य कड़ी को दृढ़ता से पकड़ने और इस तरह पूर्ण शृंखला सुनिश्चित करने में है।

कार्य-कारण सम्बन्ध सबसे अभिन्न और सार्वत्रिक सम्बन्ध है। पर व्यापारों के अनेक सारे सम्बन्धों की उससे ही इति नहीं हो जाती। वह तो विश्व सम्बन्धों का एक छोटा सा हिस्सा मात्र है। फिर भी कार्य-कारण सम्बन्धों के अंतिम ताने-बाने में अनिवार्य और आकस्मिक सम्बन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। अब हम उनकी विवेचना करेंगे।

हमी जानते हैं कि यदि नमी और खाद हो तो बीज डालने से अंकुर निकलेगा। पर बर्फ पड़ जाय तो किशोर पौधा नष्ट हो जा सकता है। क्या ये दोनों चीजें (बीज का अङ्कुरित होना और पौधे का नष्ट होना) अनिवार्य हैं?

दोनों चीजें लाजमी नहीं हैं। दैनिक अनुभव हमें बताता है कि खास अवस्थाओं में, यानी अनुकूल खाद और नमी की मौजूदगी होने पर, बीज का अङ्कुरित होना अनिवार्य है। पौधे की प्रकृति ही ऐसी है। पर ओले का पड़ना ऐसी चीज है जो हो सकती है और नहीं भी हो सकती। ओले पौधे को नष्ट कर दे सकते हैं या सिर्फ नुकसान पहुंचा सकते हैं। ओले पौधे की प्रकृति से निसृत नहीं होते और उनका पड़ना लाजमी नहीं होता है।

कोई व्यापार या घटना जिसका निश्चित अवस्थाओं में होना लाजमी है, अनिवार्यता कही जाती है (उपरोक्त उदाहरण में बीज का अङ्कुरित होना अनिवार्यता है)। रात के बाद दिन का आना, एक मौसम के बाद दूसरे मौसम का आना अनिवार्य है। पूंजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग के कम्युनिस्ट आन्दोलन का जन्म और विकास अनिवार्य है। यह मजदूर वर्ग की रहन-सहन की अवस्थाओं, समाज में उसकी स्थिति और उसके सामने उपस्थित कर्तव्यों से जनित होता है।

अनिवार्यता सार से, विकसित होते व्यापार की आन्तरिक प्रकृति से, निकलती है। किसी खास व्यापार के लिए यह सतत एवं स्थिर है।

अनिवार्यता के विपरीत, आकस्मिकता (उपरोक्त उदाहरण में पौदे का ओले से नष्ट हो जाना) लाजमी नहीं है। किन्हीं खास अवस्थाओं के अन्दर यह हो सकती है और नहीं भी हो सकती। वह इस या उस तरीके से हो सकती है। आकस्मिकता किसी वस्तु की प्रकृति से नहीं निसृत होती। वह अस्थिर और अस्थायी होती है। पर आकस्मिकता अकारण नहीं होती। उसका कारण स्वयं वस्तु नहीं होता, बल्कि वस्तु के बाहर होता है, बाह्य अवस्थाओं में होता है।

अनिवार्यता और आकस्मिकता की द्वन्द्वात्मकता

अनिवार्यता और आकस्मिकता द्वन्द्वात्मक रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। कोई घटना अनिवार्य और आकस्मिक साथ ही साथ हो सकती है—एक मामले में अनिवार्य और दूसरे में आकस्मिक। वे ही ओले जो पौदे के विनाश के सन्दर्भ में आकस्मिक थे, उस क्षेत्र की, जहां वे पड़े, वायुमण्डलीय अवस्थाओं के सन्दर्भ में अनिवार्य फल होते हैं।

द्वन्द्ववादी अनिवार्यता और आकस्मिकता के परस्पर-सम्बंध को मानते हैं पर अधिभौतिकीवादी उसे नहीं मानते। कुछ अधिभौतिकीवादी विकास में केवल अनिवार्यता को मानते हैं और आकस्मिकता के तत्व की संभावना को स्वीकार

नहीं करते। उनके दृष्टिविन्दु से सब कुछ अनिवार्य है, आवश्यक है, अतः मनुष्य बेबस है। उसे तो चुपचाप घटनाओं के दुर्निवार क्रम का इन्तजार करना चाहिए। कुछ अन्य दार्शनिक हैं जो केवल आकस्मिकता को मानते हैं। इसका नतीजा कार्यतः विज्ञान को तिलांजलि देना, घटनाक्रम को पहले से जानने और निर्देशित करने की मानव की समर्थता को अस्वीकार करना होता है।

अनिवार्यता और आकस्मिकता एक दूसरे में गमन भी कर सकते हैं: जो चीज किन्हीं खास अवस्थाओं में अनिवार्यता है, वह भिन्न अवस्थाओं में आकस्मिकता बन जाती है। इसी तरह आकस्मिकता भी अनिवार्यता बन जाती है। उदाहरण के लिए, आदिम समाज मे मालों के आदान-प्रदान का स्वरूप आकस्मिकता का था। कोई कम्यून (समुदाय) जो चीजें उत्पादित करता था, आम तौर पर उन्हें खपा भी डालता था। निजी सम्पत्ति के उदय और विकास से मालों के आदान-प्रदान का फैलाव हुआ और पूंजीवाद के अन्तर्गत तो वह वस्तुगत अनिवार्यता बन गया।

अनिवार्यता और आकस्मिकता एक-दूसरे से पृथक नहीं रहा करते। किसी प्रक्रिया मे अनिवार्यता मुख्य दिशा, विकास की प्रवृत्ति ज्ञात होती है, पर यह प्रवृत्ति आकस्मिक व्यापारों के एक पूरे समूह के अन्दर से निकाल कर बाहर आती है। आकस्मिकता अनिवार्यता की पूरक होती उसकी अभिव्यक्ति का एक रूप होती है। आकस्मिक व्यापारो के ढेर के अन्द सदा वस्तुगत अनिवार्यता का नियम छुपा हुआ होता है। किसी डब्बे के अन्द गैस को ले लीजिए। इस गैस के अणु निरन्तर अस्तव्यस्ततापूर्ण गति में रहते हैं, उनकी आपस में और डब्बे के किनारों के साथ आकस्मिक टक्करें होती हैं। इसके बावजूद डब्बे के चारों ओर गैस का दबाव समान होता है, वह भौतिकी के नियमो द्वारा अनिवार्यता पर निर्दिष्ट होता है। अणुओं की आकस्मिक गति उस अनिवार्यता के लिए मार्ग प्रशस्त करती है जो न केवल गैस के दबाव, बल्कि उसके तापमान, घनत्व, ताप-क्षमता और अन्य गुण-धर्मों को तय करती है। सामाजिक विकास में भी आकस्मिकता आवश्यकता की अभिव्यक्ति के रूप का काम करती है। पूंजीवाद मे मूल्य का नियम बाजार में पूर्ति और मांग के आधार पर कीमतों के आकस्मिक उतार-चढ़ाव में अभिव्यक्त होता है।

अनिवार्यता और आकस्मिकता की परिकल्पनाओं का महत्व

विज्ञान और व्यवहार मे अनिवार्यता और आकस्मिकता की वस्तुगत द्वन्द्वात्मकता का लेखा लेना बहुत महत्वपूर्ण है। विज्ञान का काम है कि वह बाह्य अभिव्यक्तियों, अगणित आकस्मिक घटनाओं और अन्तस्सम्बन्धों के पीछे छिपे आन्तरिक, अनिवार्य अन्तरसम्बंधों को खोज निकाले। नियमों के, वस्तुगत अनिवार्यता के ज्ञान से मनुष्य प्रकृति और

सामाजिक जीवन के अगणित व्यापारों का अपनी जरूरतों के वशीभूत कर सकता है। हर विज्ञान का प्राथमिक लक्ष्य अनिवार्यता का संज्ञान प्राप्त करना ही होना चाहिए। अतः सामाजिक विज्ञान का कार्य सामाजिक विकास की वस्तुगत अनिवार्यता का पता लगाना और इस संज्ञानित अनिवार्यता के आधार पर सामाजिक व्यवस्था को मजदूरों के हितार्थ परिवर्तित करना है।

पर विज्ञान को आकस्मिकता की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आकस्मिक घटनाएं भी होती हैं और उनका भी जीवन पर कुछ असर पड़ता है। इसलिए विज्ञान को विकास में उनकी भूमिका का लेखा लेना चाहिए, मनुष्य को उनसे बचाना चाहिए। उदाहरण के लिए, कृषि विज्ञान को जुताई-बुवाई और कटाई की ऐसी विधियां निकालनी चाहिए जिनसे कि मौसम की अप्रत्याशित से अप्रत्याशित खराबी में भी अच्छी उपज हासिल की जा सके।

भिन्न ऐतिहासिक अवस्थाओं में अनिवार्यता और आकस्मिकता का अन्तस्सम्बन्ध भिन्न-भिन्न रहता है। पूंजीवादी सम्पत्ति का प्राधान्य पूंजीवादी अवस्थाओं के अन्तर्गत अनिवार्यता की स्वतःस्फूर्त क्रिया को स्थिर करता है। मूल्य के नियम, अराजकता और प्रतियोगिता के नियम, आकस्मिक घटनाओं के ढेर के अन्दर से अपना मार्ग निकाल कर बाहर आते हैं। इसलिए पूंजीवाद के अन्तर्गत लोग समाज के जीवन का नियोजन करने के सुयोग से वंचित रहते हैं। वे इन स्वतःस्फूर्त शक्तियों के हाथ का खिलौना मात्र होते हैं। मुनाफा पूंजीवादी उत्पादन का नियामक है। पर वह बाजार-भावों के अगणित आकस्मिक उतार-चढ़ावों के, जो पूर्ति और मांग के वैसे ही आकस्मिक परिवर्तनों पर निर्भर करते हैं, अन्दर से काम करता है। पूंजीवाद में श्रम का वितरण भी आकस्मिक है। इस सबसे मजदूर के लिए सुरक्षा का अभाव उत्पन्न होता है। वह किसी भी क्षण बेरोजगार हो सकता है और अपनी जीविका का साधन गंवा बैठता है। व्यवसायी को भी पूंजीवाद में मानसिक शान्ति नहीं मिलती। खास कर छोटा या मझोला मालिक चैन से नहीं रह पाता, क्योंकि वह अपने से अधिक शक्तिशाली प्रतियोगियों की प्रतिद्वन्दिता के सामने कमजोर सिद्ध होता है और इस प्रतिद्वन्दिता को बर्दाश्त न कर पाने के कारण किसी भी क्षण बरबाद हो जा सकता है।

समाजवाद में, उसके आभ्यन्तरिक नियमों की क्रियाशीलता के कारण, जनता इतिहास के घटनाक्रम को पहले से देख सकने में और जीवन के हर क्षेत्र में उसी के मुताबिक अपने कार्यकलाप आयोजित करने में समर्थ होती है। सामाजिक अनिवार्यता ... कार्यकलाप में प्रकट होती है। सामाजिक विकास की वस्तुगत ... होती हैं।

समाजवादी समाज में आकस्मिकता का प्रभाव कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जनता के सचेतन और नियोजित प्रयास से बहुत कम हो जाता है। पर समाजवाद में भी आकस्मिक घटनाएं होती हैं। कभी-कभी किन्हीं खास परिस्थितियों के कारण कोई कारखाना अपनी योजना पूरी नहीं कर पाता, या ऐसी ही अन्य बातें हो जाती हैं। इसके कारण उद्योग या कृषि की कुछ शाखाएं पीछे रह जाती हैं, अर्थतंत्र के विकास में कुछ बेढंगापन, कुछ विसंगतियां आ जाती हैं। कभी-कभी मौसम की अवस्थाओं—सूखा, बाढ़, हिमपात, आदि—के कारण आकस्मिकता उत्पन्न हो जाती है।

कम्युनिस्ट पार्टी और सरकार समाजवादी समाज में आकस्मिकता के प्रतिकूल प्रभाव को कम-से-कम करने के लिए प्रयत्नशील रहती है। इसके लिए उत्पादन के नियोजन और संगठन में निरन्तर सुधार किया जाता है और नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्धियों का उपयोग किया जाता है। आकस्मिक स्थितियों का मुकाबला करने के लिए राज्य की ओर से आरक्षण की बखूबी व्यवस्था है। विकास की लक्षित दिशा से बहुत सारे आकस्मिक भटकाव आर्थिक प्रबंध की जिम्मेदारी सम्भालने वाले व्यक्तियों द्वारा इन्तजाम अच्छी तरह न किये जाने का नतीजा होते हैं। इसीलिए कम्युनिस्ट पार्टी अर्थतंत्र की विभिन्न शाखाओं में नेतृत्व को सुधारने और सबल बनाने पर विशेष ध्यान देती है। वह अग्रणी कार्यकर्ताओं में सौंपे गये काम के प्रति जिम्मेदारी की भावना को मजबूत बनाने पर विशेष ध्यान देती है।

अनिवार्यता सदा निश्चित वस्तुगत अवस्थाओं में उत्पन्न होती है। पर ये अवस्थाएं खुद भी बदल जाती हैं और इसलिए अनिवार्यता भी बदलती और विकसित होती है। पर प्रत्येक नई अनिवार्यता पूर्णतया तैयार रूप में पैदा नहीं होती। वह आरम्भ में केवल संभावना के रूप में प्रकट होती है और खास अवस्थाओं के अन्दर ही वास्तविकता में परिणत होती है।

अब हम संभावना और वास्तविकता की परिकल्पनाओं पर विचार करेंगे।

७. संभावना और वास्तविकता

परिपक्व पौधे में रूपान्तरित होने की क्षमता होती है। अंकुर से विकसित परिपक्व पौधा वास्तविकता (पदार्थ) है। वास्तविकता उपलब्ध समावना है, वह समावना जो साकार हो चुकी है।

संभावनाएं वस्तुगत नियमों से निमृत होती हैं। वस्तुगत नियम ही उन्हें पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए, जीव और पर्यावरण की एकता का नियम, बाह्य अवस्थाओं में परिवर्तन के जरिए, जीवों पर उद्देश्य के साथ कार्यशील होने की, पौधों और पशुओं की नई प्रजातियों का आविर्भाव करने की, समावना पैदा करता है। समाजवाद में अर्थतंत्र के नियोजित, समानुपातिक विकास का नियम आयोजन आदि की समावना पैदा करता है।

दुनिया की वस्तुओं और व्यापारों में चूंकि अन्तर्विरोध होता है, इसलिए संभावनाएं भी अन्तर्विरोध-युक्त होती हैं। हमे प्रगतिशील (सकारात्मक) और प्रतिगामी (नकारात्मक) संभावनाओं में भेद करना चाहिए। उदाहरण के लिए, हर सामाजिक क्रान्ति में प्रगतिशील शक्तियों की विजय की सकारात्मक समावना और प्रतिगामी ताकतों की जीत की नकारात्मक सभावना, दोनों ही निहित रहती हैं। पर इतिहास के वस्तुगत नियमों की क्रिया के कारण प्रगतिशील समावनाएं अन्तत. विजयी होती हैं और प्रतिगामी सभावनाओं की विजय—यह भी कहीं-कहीं सामने आती है—अस्थायी और क्षणिक होती है। १९०५-०७ की रूसी क्रान्ति में प्रतिक्रियावाद की विजय अस्थायी थी। कुछ ही वर्षों बाद—१९१७ में—मजदूर वर्ग ने किसानों के सहयोग से पहले जारशाही पर और उसके बाद पूजीपति वर्ग पर निर्णायक जीत हासिल की।

विश्व की अन्य सभी चीजो की तरह, सभावनाएं भी विकसित होती हैं। कुछ बढ़ती हैं, और कुछ घटती हैं। रूस साम्राज्यवाद की जजीर तोड़ने वाला पहला देश था और वह वर्षों तक साम्राज्यवादी राज्यों से घिरा रहा। इसीलिए, क्रान्ति की विजय के फौरन बाद समाजवाद की विजय की समावना के साथ-साथ वहा पूजीवाद की पुनर्स्थापना की भी कुछ हद तक संभावना पैदा हुई। जैसे-जैसे सोवियत सघ की ताकत बढ़ी, समाजवाद की जीत की समावना निरन्तर बढ़ती गयी और वह वास्तविकता बन गयी। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है : "समाजवाद, जिसके बारे में मार्क्स और एंगेल्स ने वैज्ञानिक भविष्यवाणी की थी कि वह अवश्यम्भावी है, और जिसके निर्माण का नक्शा लेनिन ने तैयार किया था, सोवियत सघ मे वास्तविकता बन गया है।" दूसरी ओर ज्यों-ज्यों समाजवाद प्रगति करता गया, पूजीवाद की पुनर्स्थापना की सभावनाएं घटती गयी और आज कार्यतः उसकी कोई समावना नहीं रह गयी है, क्योंकि दुनिया में ऐसी कोई ताकत नहीं जो सोवियत सघ में पूजीवाद को फिर से स्थापित कर सके, प्रबल

शक्तिशाली समाजवादी समुदाय को कुचल सके। सोवियत संघ में समाजवाद की जीत पूर्ण हो चुकी है।

मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद दुरूह (एब्स्ट्रैक्ट) और सहज (रीयल) संभावनाओं में विभेद करता है।

दुरूह (बाह्यरूपी) संभावना वह है जो उन खास ऐतिहासिक अवस्थाओं में साकार नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, सौर-मंडल के ग्रहों और अन्य आकाशीय पिण्डों में टक्कर की संभावना दुरूह है—ऐसी घटना के घटने का संयोग अपरिमित रूप में अति लघु है।

दुरूह, बाह्यरूपी संभावना और असंभव में स्पष्ट अन्तर है। असंभव कभी साकार नहीं होगा क्योंकि वह वस्तुगत नियमों के विरुद्ध है। उदाहरण के लिए, पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के हितों का सामंजस्य असंभव है। दुरूह संभावना वस्तुगत नियमों के विपरीत नहीं होती और सिद्धांततः सहज बन सकती है, पर तभी जब कि उपयुक्त अवस्थाएं परिपक्व हो जायें।

सहज संभावना वह है जो किन्हीं निश्चित ऐतिहासिक अवस्थाओं के अन्दर चरितार्थ हो सकती है। उदाहरण के लिए, सभी उपनिवेशों और परतन्त्र देशों को उपनिवेशवाद के उत्पीड़न से मुक्त करने की संभावनाएं सहज हैं। दरअसल यह प्रक्रिया इस समय चालू है।

दुरूह और सहज संभावनाओं के अन्तर सापेक्ष हैं। विकास की प्रक्रिया में दुरूह संभावना सहज बन जा सकती है। कुछ ही वर्ष पहले तक मानव के अन्य ग्रहों तक उड़ने की संभावना दुरूह थी क्योंकि प्राविधिक सुविधाएं न थीं। अब यह संभावना सहज बन गयी है। वह समय दूर नहीं जब मनुष्य चन्द्रमा तथा सौर-मंडल के अन्य ग्रहों पर उतरेगा। १९वीं सदी के आरम्भ के कल्पनाविलासी समाजवादियों का समाजवाद में सन्तरण का सपना दुरूह था। उस समय समाजवाद के लिए आवश्यक शक्तियां परिपक्व नहीं हुई थीं, पर्याप्त संगठित क्रांतिकारी सर्वहारा न था। किन्तु इस युग में यह संभावना सहज बन गयी है और दुनिया के एक बड़े भाग में साकार भी हो चुकी है।

समाजवाद की अवस्थाओं में संभावना का वास्तविकता में परिणत होना

प्रकृति में, संभावना आप ही आप, अचेतन रूप में, वास्तविकता बनती है। पर समाज में संभावनाओं को वास्तविक बनाने में जनता का सोद्देश्य और सचेतन कार्यकलाप निर्णायक महत्व रखता है। संज्ञानित नियमों के आधार पर काम कर रहे मनुष्य के हस्तक्षेप के बिना संभावना वास्तविकता नहीं बनती। शांति बनाये रख सकने की संभावना, जो आज विद्यमान है, मानव जाति की तमाम शांतिप्रेमी ताकतों के जोरदार प्रयास के फलस्वरूप वास्तविकता बन रही है।

दुनिया का कायापलट करनेवाले लोग व्यावहारिक कार्यकलाप के दौरान आम्यन्तरिक सम्भावनाओं को ज्ञात करते हैं और उन्हें वास्तविकता में परिणत करने के लिए कार्यशील होते हैं। समाजवाद की परिस्थितियों में सहज संभावनाओं का लेखा लेना और उनको वास्तविक बनाने के लिए कार्य करना खास तौर पर महत्वपूर्ण है।

सोवियत समाजवादी व्यवस्था में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति की अपार संभावनाएं निहित हैं। नवीन तथा प्रगतिशील अंकुरों का समर्थन और पोषण करनेवाली सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी इन संभावनाओं का योग्यतापूर्वक लेखा लेती है और इन्हें ठीक समय पर साकार बनाती है। प्रगतिशील सम्भावनाओं को साकार करने में सभी की दिलचस्पी होती है और इसीलिए, समाजवादी समाज में सम्भावनाएं तेजी से वास्तविकता में बदल दी जाती हैं।

सोवियत जनता ने अक्तूबर समाजवादी क्रांति के फलस्वरूप प्रकट हुई समाजवाद का निर्माण करने की सम्भावना को बहुत थोड़े समय के अन्दर साकार कर लिया। समाजवाद के निर्माण ने एक अन्य सम्भावना को, कम्युनिज्म का निर्माण करने की सहज सम्भावना को, जन्म दिया।

सोवियत संघ के पास अब कम्युनिज्म का निर्माण करने की हर सम्भावना मौजूद है। उसके पास अपार सृजनात्मक शक्तिवाली सामाजिक व्यवस्था है, प्रथम श्रेणी की मशीनों से लैस शक्तिशाली उद्योग हैं, बड़े पैमाने की यन्त्रीकृत कृषि है और दुनिया का सबसे उन्नत विज्ञान है। देश के पास अक्षय प्राकृतिक सम्पदा है। ये सब असीम आर्थिक विकास के पूर्व-उपादान हैं। सोवियत संघ के दक्ष मजदूर कम्युनिस्ट निर्माण के जटिल से जटिल कार्य को पूरा करने की सामर्थ्य रखते हैं।

सोवियत संघ में कम्युनिज्म के निर्माण की सम्भावनाओं को वास्तविकता में परिणत करने के तरीके सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में निरूपित हैं। इसमें कम्युनिस्ट निर्माण की ठोस योजना बनायी गयी है।

हमने मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता के नियमों और परिकल्पनाओं की विवेचना की। इससे हमें सार्वभौम विकास और भौतिक जगत के अन्तस्सम्बंधों का एक अन्दाजा मिला। अब हमें यह ज्ञात करना है कि मनुष्य कैसे इस भौतिक जगत का सज्ञान प्राप्त करता है। इसके लिए हमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के ज्ञान के सिद्धान्त का अध्ययन करना होगा।

अध्याय ९

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का ज्ञान का सिद्धान्त

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मानव जाति द्वारा संचित अनुभव के अमित भंडार तथा विज्ञान एवं क्रांतिकारी व्यवहार की महानतम उपलब्धियों का लेखा लेता है, और इस आधार पर निष्कर्ष निकालता है कि विश्व सर्वथा ज्ञेय है तथा मनुष्य की बुद्धि में यथार्थ की सही समझ हासिल करने की सामर्थ्य है।

आइए, अब हम विश्व के संज्ञान की प्रक्रिया की विशद विवेचना करें।

१. ज्ञान क्या है ?

ज्ञान मानव के मस्तिष्क में वस्तुगत जगत और उसके नियमों का सक्रिय, सोद्देश्य प्रतिबिम्ब है। ज्ञान का स्रोत मानव के चारों ओर का बाह्य जगत है। मनुष्य पर उसकी प्रतिक्रिया होती है और वह उसके अन्दर तदनुकूल उद्वेग, भावनाएं और धारणाएं उत्पन्न करता है। मनुष्य वनों, खेतों और पर्वतों को देखता है, सूर्य के ताप और प्रकाश का अनुभव करता है, पक्षियों के गीत सुनता है, फूलों की सुगंध लेता है। यदि मनुष्य की चेतना से परे विद्यमान इन वस्तुओं की उस पर प्रतिक्रिया न हो तो उसे इन चीजों का बिलकुल ही बोध न होगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य केवल विश्व की वस्तुओं और व्यापारों को इन्द्रियों द्वारा अनुभूत ही नहीं करता वरन् सक्रिय एवं व्यावहारिक रूप से उन्हें प्रभावित भी करता है। आगे हम इसकी विशद विवेचना करेंगे।

ज्ञान का मार्क्सवादी सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तुगत जगत, उसकी वस्तुएं और व्यापार मानव ज्ञान का एकमात्र स्रोत हैं।

भाववादी दार्शनिक वस्तुगत यथार्थ को हमारे ज्ञान का स्रोत नहीं मानते। भाववादी दर्शन में ज्ञान का पात्र या तो व्यक्तिगत मानव (अह) की चेतना अथवा उद्वेग है या वह एक प्रकार की रहस्यवादी चेतना है जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसका निवास मनुष्य के बाहर है ("परम भावना," "विश्व आत्मा", आदि)। धर्म का भी इस प्रश्न के बारे में यही रुख है। उसके अनुसार मनुष्य प्रकृति और सामाजिक जीवन के व्यापारों के सार का संज्ञान प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखता। वह दैवी सृष्टि के

परिणामों का वर्णन और वर्गीकरण मात्र कर सकता है। और यह भी वह ईश्वर की अनुकम्पा से ही कर सकता है।

मार्क्स से पहले के भौतिकवादियों ने, जो ज्ञान को मनुष्य के मस्तिष्क में बाह्य वस्तुओं का प्रतिबिम्ब मानते थे, भाववाद और पादरीवाद पर करारी चोट की थी। पर ज्ञान की प्रक्रिया के बारे में उनके विचार भी सीमित थे। अधिभौतिकवादी होने के कारण वे ज्ञान की प्रक्रिया में द्वन्द्ववाद को लागू करने में असमर्थ रहे। वे प्रतिक्षेप को मनुष्य के मस्तिष्क में किसी वस्तु की निश्चेष्ट छाप मानते थे। फ्रांस के १८ वीं सदी के भौतिकवादी देनिस दिदेरो मस्तिष्क की उपमा मोम से देते थे जिस पर चीजें अपनी छाप छोड़ती हैं। मार्क्स से पहले के भौतिकवादी सज्ञान प्राप्त करने में रत मनुष्य के कार्यकलाप का, उसके जीवन का लेखा नहीं लेते थे। इसके अलावा, उनकी मुख्य त्रुटि इस चीज में थी कि वे ज्ञान में व्यवहार की भूमिका का मूल्यांकन नहीं कर सके थे।

मार्क्स और एंगेल्स ने सज्ञान की प्रक्रिया को समझने में पूर्ववर्ती दर्शनों द्वारा स्थिर सीमाओं को तोड़ दिया और ऐसा करके गुणात्मक रूप से नया सिद्धान्त, ज्ञान का द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

ज्ञान के मार्क्सवादी सिद्धान्त का मौलिक निरालापन इस बात में है कि वह संज्ञान की प्रक्रिया को व्यवहार पर, जनता के भौतिक उत्पादन सम्बंधी कार्यकलाप पर आधारित करता है। इसी प्रक्रिया के दौरान मनुष्य वस्तुओं और व्यापारों का ज्ञान प्राप्त करता है। मार्क्सवादी दर्शन में व्यवहार ज्ञान की प्रक्रिया का प्रारम्भ बिन्दु, उसका आधार है और साथ ही सत्य की कसौटी भी है। लेनिन ने लिखा था : "जीवन का, व्यवहार का दृष्टिबिन्दु ज्ञान के सिद्धान्त में प्रथम और मौलिक होना चाहिए। और यह हमें अनिवार्यतया भौतिकवाद के निकट पहुंचा देता है।"[1]

मनुष्यों के व्यावहारिक कार्यकलाप तथा भौतिक उत्पादन में ही मानव ज्ञान का सक्रिय स्वरूप तथा सोद्देश्यता परिलक्षित होते हैं। मनुष्य व्यक्ति के रूप में विश्व पर सक्रिय प्रभाव नहीं डालता, वह तो अन्य मनुष्यों के सहयोग से, सम्पूर्ण समाज के साथ ही ऐसा करता है। इसका अर्थ यह होता है कि यदि भौतिक जगत ज्ञान का पात्र है, स्रोत है, तो मानव समाज ज्ञान का कर्ता एवं उसका वाहक है। ज्ञान के सामाजिक स्वरूप को मान्यता देना ज्ञान सम्बन्धी मार्क्सवादी सिद्धान्त की एक प्रमुख विशेषता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दृष्टिबिन्दु से ज्ञान चिन्तन को मनुष्य वस्तु के निकट लाने की अन्तहीन प्रक्रिया है। यह चिन्तन का अज्ञानता से ज्ञान की

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड १४, पृष्ठ १४२।

ओर, अपूर्ण और अनिश्चित ज्ञान से अधिक पूर्ण और अधिक निश्चित ज्ञान की ओर रूपान्तरित होना है। ज्ञान जीर्ण-शीर्ण मतों के स्थान पर नये मतों की स्थापना करते हुए, पुराने मतों को अधिक निश्चित बनाते हुए आगे बढ़ता रहता है, और ऐसा करते हुए यथार्थ के नये-नये पहलुओं पर से निरन्तर परदा उठाता जाता है।

अतः व्यवहार ज्ञान के आधार का काम करता है। अब हम उसकी जांच करें और यह देखें कि ज्ञान-प्रक्रिया में यह क्या भूमिका अदा करता है।

२ व्यवहार—ज्ञान की प्रक्रिया का प्रारंभ-विन्दु और आधार

व्यवहार मनुष्यों का प्रकृति और समाज को बदलने वाला सक्रिय कार्य है। व्यवहार की नींव श्रम है, भौतिक उत्पादन है। व्यवहार में जीवन का राजनीतिक पक्ष, वर्ग संघर्ष, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और वैज्ञानिक अनुभव एवं प्रयोगादि भी शामिल हैं। व्यवहार का स्वरूप सामाजिक होता है। वह पृथक व्यक्तियों का कार्यकलाप नहीं, बल्कि सभी श्रमशील जनों का, भौतिक सम्पदा के उत्पादकों का कार्यकलाप है।

व्यवहार के क्रम में मनुष्य प्रकृति में विद्यमान वस्तुओं को ही परिवर्तित नहीं करता बल्कि ऐसी वस्तुएं भी पैदा करता है जो प्रकृति में तैयार नहीं मिलती। मनुष्य बहुत सी ऐसी कृत्रिम सामग्री उत्पन्न करता है जो प्रकृति द्वारा उपलब्ध किसी भी चीज से अधिक टिकाऊ, सुन्दर और उपयोगी होती हैं।

व्यवहार ज्ञान का प्रारम्भ विन्दु और आधार है।

ऐसा सर्वप्रथम इसलिए है कि ज्ञान स्वयं व्यवहार पर, भौतिक उत्पादन पर आधारित है। अस्तित्व में आने के साथ ही मनुष्य को कार्य करना पड़ा। उसे अपनी जीविका उपार्जित करनी पड़ी। काम के दौरान उसका प्रकृति की शक्तियों से मुकाबला हुआ और वह धीरे-धीरे उन्हें समझने लगा। उत्पादन के और आगे विकास ने नये ज्ञान की मांग की। प्राचीन काल में भी मनुष्य को भूमि का रकबा नापने, औजारों की संख्या गिनने, उत्पादित सामानों का परिमाण ज्ञात करने की आवश्यकता पड़ी। इसके परिणामस्वरूप गणित का सूत्रपात हुआ। मनुष्य ने अपनी रिहायश का इन्तजाम किया, पुल, सड़कें, सिंचाई व्यवस्थाएं और अन्य ढांचे बनाये जिनके लिए उसे यांत्रिकी के ज्ञान की जरूरत पड़ी। इस तरह, व्यावहारिक आवश्यकताओं के प्रभाव से

करता है। पर व्यवहार का सामान्यीकरण करते हुए सिद्धान्त उलट कर उस पर प्रभाव भी डालता है। वह उसके विकास में योगदान करता है। सिद्धान्त बिना व्यवहार के निरर्थक है और व्यवहार बिना सिद्धान्त के अंधा रहता है। सिद्धान्त रास्ता बताता है, व्यावहारिक उद्देश्य उपलब्ध करने के सर्वोत्तम साधन ढूंढने में मदद करता है।

उदाहरण के लिए, प्राकृतिक विज्ञान को ले लें। वह व्यवहार की नींव पर विकसित हुआ। उत्पादन में संलग्न मनुष्यों के अनुभव के सामान्यीकरण के परिणामस्वरूप उसका जन्म हुआ। पर इसके साथ ही उसने उत्पादन को मूल्यवान सहायता प्रदान की। वह उत्पादन की नयी विधियां ढूंढने मे, अत्यन्त कार्यकुशल मशीनें और यान्त्रिक उपकरण, कृत्रिम कच्चे माल तथा अन्य सामग्री तैयार करने में और ऐसे ही अन्य कार्य करने मे मदद करता है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त समाज के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त यथार्थ का सही और गहरा अक्स है, सर्वहारा के क्रान्तिकारी संघर्ष का सामान्यीकरण है, इसीलिए वह समाजवाद और कम्युनिज्म के लिए सर्वहारा के संघर्ष में पथ-प्रदर्शन का काम करता है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद शक्तिशाली इसलिए है कि वह सत्य है। वह सामाजिक विकास के नियमों को अनावृत करके हमें वर्तमान में सही ढंग से काम करने में तो सक्षम बनाता ही है, साथ ही भविष्य की झांकी प्राप्त करने में भी, आगामी कई वर्षों के लिए अपने कार्यकलाप को नियोजित करने मे भी, हमें समर्थ बनाता है।

सिद्धान्त और व्यवहार की एकता मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सर्वोपरि सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त ने इस समय खास तौर से भारी महत्व प्राप्त कर लिया है क्योंकि आज मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त कम्युनिज्म के निर्माण के व्यवहार के साथ एकाकार हो गया है, आज कम्युनिज्म के निर्माण के व्यावहारिक कर्तव्यों का पूरा होना साथ ही महती सैद्धान्तिक समस्याओं का समाधान भी है।

सिद्धान्त और व्यवहार की एकता का सिद्धान्त सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकलाप में पूर्णतया साकार है। पार्टी अपने सारे कामों में मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त से निर्देशन प्राप्त करती है। साथ ही वह अमल के नये-नये तकाजों के आधार पर इस सिद्धान्त को निरन्तर विकसित भी करती चलती है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का नया कार्यक्रम सिद्धान्त और व्यवहार की आंगिक एकता का एक आदर्श नमूना पेश करता है। कार्यक्रम मे प्रस्तुत मूल सैद्धान्तिक प्रस्थापनाएं समाजवादी और कम्युनिस्ट निर्माण के व्यावहारिक अनुभव के सामान्यीकरण का परिणाम हैं। दूसरी ओर, व्यावहारिक पग

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त का सृजनात्मक ढंग से विकास करते है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का नया कार्यक्रम बतलाता है कि समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण की प्रक्रिया जनता के व्यावहारिक अनुभव के आधार पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को समृद्ध करने की प्रक्रिया भी है।

३. सजीव अनुभूति से अविशिष्ट चिन्तन तक

ज्ञान एक स्थान पर स्थिर नही रहता, वह तो निरन्तर गतिमान् और विकासमान् है। ज्ञान का यह विकास प्रत्यक्ष सजीव अनुभूति से अविशिष्ट (एब्सट्रैक्ट) चिन्तन की दिशा में उसकी गति मे अभिव्यक्त होता है। लेनिन ने बताया है—"सजीव अनुभूति से अविशिष्ट चिन्तन की ओर और उससे फिर व्यवहार की ओर—सत्य के सज्ञान का यही द्वन्द्वात्मक पथ है।"[1]

संवेदनात्मक ज्ञान

ज्ञान का आरम्भ सदा हमारी ज्ञानेन्द्रियों की मदद से बाह्य जगत् की वस्तुओ के अध्ययन द्वारा होता है। यह चीज हम अपने रोजमर्रा के अनुभव से जानते हैं। जब हमें किसी अपरिचित वस्तु का अध्ययन करना होता है, तो हम पहले उसकी जाच करते हैं और आवश्यक होने पर उसका स्पर्श करते, उसे चखते और ऐसे ही अन्य कार्य करते हैं। वस्तुओं की प्रत्यक्ष अनुभूति प्रारम्भिक मंजिल होती है। ज्ञान के मार्ग पर वह पहला कदम होती है। मनुष्य अपने व्यावहारिक कार्यों के दौरान जब प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारो से पहले-पहल सम्पर्क मे आता है तो उनके विषय मे उसकी प्रथम धारणाएं उसकी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा बनती हैं। ज्ञानेन्द्रियां एक प्रकार के दरवाजे हैं जिनसे होकर बाह्य जगत् मानव के मस्तिष्क मे "प्रवेश करता है"।

संवेदना संवेदनात्मक ज्ञान का मुख्य रूप है। संवेदना किसी वस्तु के वैयक्तिक गुणो, विशिष्टताओ अथवा पहलुओ का अक्स है। वस्तुएं गरम या ठण्डी, अंधेरी या प्रकाशित, चिकनी या खुरदरी होती हैं। उनके ये तथा अनेक अन्य गुणधर्म हमारी ज्ञानेन्द्रियो पर आघात करते है और कुछ संवेदनाओ को जन्म देते हैं।

मनुष्य के शरीर मे संवेदनाओ की उत्पत्ति के लिए आवश्यक दैहिक यत्र हुआ करता है। इस यत्र में तीन चीजें होती है। पहली, ज्ञानेन्द्रियां। दूसरे, स्नायु-तंत्र जिसके जरिए उद्दीपन मस्तिष्क के अगो को उसी तरह प्रेषित होते हैं जैसे तार के माध्यम से बिजली। तीसरे, मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्र जिनमें पहुच कर ये उद्दीपन अलग अलग संवेदनाओ का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड ३८, पृष्ठ १७१।

की उगलियो और आंखो से काम ले सकता है। अगर यह भी काफी न हुआ, तो वह आलो से, प्रयोगो से, व्यावहारिक अनुभव से काम लेता है। अतः, ज्ञानेन्द्रिया आपस मे एक-दूसरे द्वारा प्रदत्त परिणामों का मिलान करने के बाद, अन्य लोगों की ज्ञानेन्द्रियो, अनुभव, प्रयोग, और व्यवहार द्वारा प्रदत्त परिणामो से मिलान करने के बाद, हमारी पहुच की भीतर की चीजो की हमे कुल मिला कर सही धारणा प्रदान करती हैं।

सवेदना के अतिरिक्त, सवेदनात्मक ज्ञान मे अनुभूतिया और भावनाए शामिल हैं। इन्द्रियगत अनुभूति सवेदनात्मक ज्ञान का उच्चतर रूप है। वह किसी वस्तु को उसकी सवेदनात्मकता, प्रत्यक्ष सम्पूर्णता के साथ प्रतिबिम्बित करता है। उसके बाहरी पहलुओं और विशिष्ट लक्षणों के कुल योग को प्रतिबिम्बित करता है। भावना मनुष्य के मस्तिष्क मे पहले की अनुभूतियो का पुनर्जनन है। उदाहरण के लिए, हम अपने मस्तिष्क मे पाठशाला के अपने किसी पुराने साथी की वर्तमान छवि अकित कर सकते है, उसकी कल्पना कर सकते है, यद्यपि हमने उसे वर्षों से नहीं देखा है।

तार्किक ज्ञान

हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत चित्र असामान्य रूप से भडकीला और रग-बिरगा होता है। किन्तु वह सीमित और अत्यन्त पूर्ण होता है। सवेदनात्मक ज्ञान हमे चीजो के बाहरी पहलुओ की धारणा प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, ज्ञानेन्द्रियो की मदद से हम बिजली के लट्टू को अनुभूत कर सकते हैं। किन्तु यह कल्पना करना असभव है कि बिजली इलेक्ट्रोनो की एक खास प्रवेग से बहती हुई धारा है। इसी तरह ज्ञानेन्द्रियो से प्रकाश के प्रचण्ड वेग को, परमाणु मे मौलिक कणों के स्पन्दन को तथा प्रकृति एव सामाजिक जीवन के अनेक जटिल व्यापारों को अनुभूत करना सभव नहीं है।

सक्षेप मे, सवेदनात्मक ज्ञान चीजो की आन्तरिक प्रकृति व उनके सार को, उनके विकास के नियमो को नही प्रकट कर सकता। किन्तु ज्ञान का मुख्य प्रयोजन तो यही करना है। नियमो का ज्ञान, वस्तुओ के सार का ज्ञान ही व्यावहारिक कार्यों मे मनुष्य का पथ-प्रदर्शन कर सकता है। अविशिष्ट अथवा तर्कगत चिन्तन यही काम आता है।

तार्किक सज्ञान ज्ञान के विकास की गुणात्मक रूप मे नई उच्चतर मजिल है। उसका काम किसी वस्तु के मुख्य गुणधर्मों और लक्षणों को प्रकट करना है। चिन्तन की मजिल पर ही मनुष्य पदार्थ के विकास को अधिशासित करने वाले नियमो का ज्ञान प्राप्त करता है जो कि उसके व्यावहारिक कार्यों के लिए अति आवश्यक है।

तार्किक चिन्तन का मुख्य रूप धारणा है। धारणा वस्तुओं में उनके सभी पहलुओं को नहीं, बल्कि केवल सारभूत और आम पहलुओं को प्रतिबिम्बित करती है। यह गौण लक्षणों की उपेक्षा करती है, उन्हें दरकिनार करती है। उदाहरण के लिए, 'मानव' नामक धारणा को ले लीजिए। इस धारणा में आदमी की सभी विशेषताएं प्रतिबिम्बित नहीं होतीं। उसकी जाति क्या है, उम्र क्या है, उसका निवास-स्थान कहां है, जीवन-काल क्या है, आदि बातों के बारे में इसमें कोई सूचना नहीं है। इस धारणा में केवल वही स्थिर है जो सामान्य और सारभूत है, जो हर मनुष्य में निहित है—अर्थात काम करने, भौतिक सम्पत्ति उत्पादित करने, सोचने की क्षमता। इसी तरह, 'वृक्ष', 'पशु' 'वर्ग', 'उत्पादन' आदि धारणाओं में वे बातें आती हैं जो वस्तुओं में आम और सारभूत हैं।

व्यावहारिक क्रियाकलाप धारणाओं के उद्भव का आधार है। त्रिकोण, वर्ग तथा अन्य ज्यामितिक आकृतियों की धारणा तैयार करने से पहले मनुष्य को अपने व्यावहारिक कार्यों के दौरान वस्तुगत रूप में विद्यमान अनेक त्रिकोणात्मक, वर्गाकार और ऐसी ही अन्य वस्तुओं के सम्पर्क में आना पड़ा था।

इन्द्रियग्रहीत ज्ञान द्वारा उपलब्ध सूचनाओं का सामान्यीकरण एवं वर्गीकरण करने वाली मानसिक क्रिया की नींव व्यावहारिक क्रिया के अन्दर होती है। भौतिक जगत की वस्तुओं पर प्रभाव डालते हुए मनुष्य उनमें तुलना करता है और आकस्मिक एवं गौण चीजों को दरकिनार करते हुए सबके अन्दर की सारभूत एवं समान चीजों को पृथक कर लेता है तथा भौतिक उत्पादन की प्रक्रिया के लिए उनके वस्तुगत महत्व एवं मानव के जीवन एवं इतिहास में उनके स्थान को प्रकट करता है। निरन्तर रचनात्मक प्रयास की प्रक्रिया में और प्रकृति से अपने काज सिद्ध कराने के मानव के प्रयासों के परिणामस्वरूप ही "विद्युत शक्ति," "पारमाणविक ऊर्जा," "पोलीमराइजेसन," "आटोमेशन" (स्वचलन) एवं अन्य अनेक वैज्ञानिक धारणाएं पैदा हुई हैं।

धारणाओं के निर्माण में विश्लेषण और संश्लेषण जैसी तार्किक विधियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। किसी वस्तु या व्यापार का उसके संघटक तत्वों या पहलुओं में मानसिक विभाजन जिसमें कि व्यापार में इन पहलुओं का महत्व समझा जा सके तथा सारभूत पहलुओं को छांटकर अलग किया जा सके—यह है विश्लेषण। संश्लेषण है किसी व्यापार के टुकड़ों या पार्श्वों को साथ जोड़ना। यह व्यापार को उसकी सम्पूर्णता में, उसके सभी लक्षणों एवं गुणधर्मों की एकता में, समझना संभव बनाता है।

विश्लेषण और संश्लेषण ज्ञान के अन्दर अभिन्न हैं। कार्ल मार्क्स ने अपने ग्रन्थ पूंजी में पूंजीवादी उत्पादन पद्धति की छानबीन करते हुए पहले विषय का

अनेक भागों में (उत्पादन, वितरण, आदि में) मानसिक विभाजन किया और हर भाग का अलग से अध्ययन किया। इसके बाद अध्ययन किये गये भागों को एक साथ जोड़ कर उन्होंने सम्पूर्णतया पूँजीवाद का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रथम दृष्टि में ऐसा लग सकता है कि धारणाएं अथवा निचोड़ प्रत्यक्ष इन्द्रिय-अनुभूतियों से कमजोर चीजें हैं। पर बात उल्टी ही है। सरल से सरल धारणा भी प्रकृति को अधिक गहराई, पूर्णता एव सच्चाई के साथ प्रतिबिम्बित करती है क्योंकि वह पदार्थ के आन्तरिक पहलुओं को, जो प्रत्यक्ष संवेदनात्मक ज्ञान की पहुंच के बाहर हैं, प्रतिबिम्बित करती है। वह प्रकृति को अधिक पूर्णता के साथ प्रतिबिम्बित करती है, क्योंकि वह एक वस्तु या छोटे वस्तु-समूह को नहीं बल्कि उनके पूरे पुंज को, उनकी असीम बहुलता को समेटती है।

संवेदनात्मक से अविशिष्ट में सक्रमण ज्ञान की प्रक्रिया में निम्नतर से उच्चतर में उसकी गति में, गुणात्मक छलांग है। यह छलांग इसलिए है कि मनुष्य की बुद्धि व्यापार की बाह्य और सतही चीजों के ज्ञान से उनके सार के, आन्तरिक प्रकृति के उद्घाटन में सक्रमण करती है। यह छलांग व्यवहार के जरिए लगायी जाती है। लोगों के व्यावहारिक कार्य ही, जिनका लक्ष्य विश्व की वस्तुओं और व्यापारों को रूपान्तरित करना हो, यह सभव बनाते हैं कि हम उनके सार को भेद सकें, महत्वपूर्ण एव गौण में, आन्तरिक एव बाह्य में विभेद कर सकें। व्यावहारिक कार्यकलाप का विकास जितने ही उच्च स्तर का होता है और उसकी रूपान्तरकारी शक्ति जितनी ही प्रबल होती है, उतना ही अधिक गहन और विविधतापूर्ण मनुष्य का ज्ञान होता है।

धारणाए परिवर्तनशील विश्व को, निरन्तर विकासशील व्यवहार को प्रतिबिम्बित करती हैं, अतः उन्हें स्वय भी नमनशील और सचल होना होता है। मौजूदा धारणाओं का विशद और गहन बनना और साथ ही परिवर्तित वस्तुगत अवस्थाओं के, परिवर्तित व्यवहार के, अनुरूप नई-नई धारणाओं का आकार ग्रहण करना—इसमे ही धारणाओं की सचलता और नमनशीलता अभिव्यजित होती है।

चिन्तन के अन्य रूप—निर्णय और निष्कर्ष—धारणाओं के आधार पर बनते हैं।

निर्णय चिन्तन का वह रूप है जिसमे कोई बात जोर देकर कही जाती है (उदाहरणार्थ, "समाजवाद शांति है"), या किसी बात का खडन किया जाता है (... मत नही है")। हम देख सकते हैं
ऊपर दी गयी मिसालों में ये
...वसंवाद," "कठमुल्ला मत"।
...के—जैसे, "समाजवाद

सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित सामाजिक व्यवस्था है"—समन्वता बन
है। अतः धारणाएं और निर्णय परस्पर सम्बद्ध होते हैं। निर्णय भी आपस
सम्बंधित होते हैं। उनका सम्बन्ध तार्किक चिन्तन का एक विशेष रूप है जि
निष्कर्ष कहते हैं। निष्कर्ष अन्य निर्णयों (पूर्वावयों) के आधार पर प्राप्त
निर्णय को कहते हैं। उपलब्ध ज्ञान से निकाले गये निष्कर्षों के जरिए हम न
ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यही वजह है कि संज्ञान की प्रक्रिया में वे इत
भारी महत्व रखते है।

अनुमान (हाइपोथीसिस) और थ्योरी जैसे ज्ञान के उच्चतर रूपों में धा
णाओं, निर्णयों और निष्कर्षों के जटिल योग निहित हुआ करते हैं। व्यापार
घटनाओं और नियमों सम्बधी किसी मान्यता को अनुमान कहते हैं। पृथ्वी प
जीवन की उत्पत्ति अथवा सौर-मंडल की उत्पत्ति सम्बंधी मान्यताएं अनुमा
के उदाहरण हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किन्ही निश्चित प्रक्रियाओं या कार्य
क्षेत्रों का गहन, सर्वतोमुखी ज्ञान निहित होता है। इस प्रकार का ज्ञान प्रयोग
एवं व्यवहार द्वारा आजमा लिया गया होता है। परमाण्विक नाभिक का
आधुनिक सिद्धान्त, भौतिकी मे सापेक्षवाद का सिद्धान्त—ये वैज्ञानिक सिद्धान्त
हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के विकास का वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

अतः हम देखते है कि ज्ञान अपने द्वन्द्वात्मक विकास में एक लम्बा रास्ता
तय करता है। वह सरलतम संवेदनाओं से जटिल वैज्ञानिक सिद्धान्तों तक की
यात्रा करता है।

ज्ञान में संवेदनात्मक और तार्किक एका

संवेदनात्मक ज्ञान और अविशिष्ट विचार मे एका है। दोनो एक ही भौतिक जगत् को प्रतिबिम्बित करते हैं। दोनो का समान आधार है—मानव जाति का
व्यावहारिक कार्यकलाप। दैहिक रूप से ये मनुष्य की स्नायविक प्रणाली के
जरिए सम्बद्ध हैं।

दुरूह विचार संवेदनात्मक ज्ञान के बिना असम्भव है, क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों
द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचना ही धारणाओं के निर्माण की एकमात्र सामग्री
हुआ करती है। विचार मे ऐसी कोई भी चीज नही हो सकती जिसे मनुष्य को
उसकी ज्ञानेन्द्रियों ने न प्रदान किया हो। पर अविशिष्ट विचार, संवेदनाओं के
आधार पर उदित होने के बाद, संवेदनात्मक ज्ञान से अधिक गहराई मे जाता है,
उसे समृद्ध करता और उसकी सीमाओं को विस्तारित करता है। संवेदनात्मक
छाप बुद्धि के प्रकाश से आलोकित होकर नई अन्तर्वस्तु प्राप्त करती है। उदा-
हरण के लिए, किसी आधुनिक बिजलीघर के कंट्रोल पैनेल के बारे में एक
इंजीनियर की अनुभूति की एक नये आदमी की अनुभूति से, जो पैनेल को पहली
बार देख रहा है, तुलना करने पर यह चीज बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

नये व्यक्ति के लिए उन यत्रो का कोई अर्थ नही है। पर विशेषज्ञ इन औजारों के डायलों, लीवरों और मुट्ठो को देखकर, उनके सकेतो से बिजलीघर की मशीनरी मे हो रही सारी बातो को जान लेता है।

सवेदनात्मक और तार्किक मे चूकि एका होता है, वे चूकि एक-दूसरे को समृद्ध करते तथा परस्पर पूरक का काम करते हैं, इसलिए सज्ञान की प्रक्रिया मे हमे न तो सवेदनाओ के सकेतो की उपेक्षा करनी चाहिए, न ही बुद्धि के निष्कर्षों की। लेकिन दर्शन मे ऐसे भी मत प्रकट हुए है जिन्होने सज्ञान की प्रक्रिया को *एकागी ढग से समझा है।*

अनुभूतिवाद (एम्पिरिसिज्म) के हिमायतियों ने ज्ञान मे अविशिष्ट विचार की भूमिका को घटा कर आका। उन्होने कहा कि ज्ञानेन्द्रियो की अनुभूति ही मनुष्य को विश्व का सच्चा चित्र प्रदान करती है। धारणाए ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अनुभूत नहीं की जा सकती हैं (उदाहरण के लिए, "अविशिष्ट मनुष्य" या "अविशिष्ट वृक्ष" की कल्पना करना असभव है)। अतः अनुभूतिवादी तर्क प्रस्तुत करते हैं कि वास्तव मे कोई भी चीज धारणाओ से नही मिलती, यह कि धारणाए तो मनुष्य की कल्पना की उपज हैं।

इसके विपरीत, हेतुवाद (रेशनलिज्म) के हिमायती बोधेन्द्रियो में विश्वास नही करते। वे शुद्ध बुद्धि अथवा अविशिष्ट विचार को सच्चे ज्ञान का एकमात्र स्रोत मानते हैं। हेतुवादी सवेदनात्मक ज्ञान की भूमिका को घटाकर आंकते हैं। उनकी मान्यता है कि मनुष्य विश्व का सज्ञान अन्तर्दृष्टि द्वारा, बिना अनुभव के प्राप्त कर सकता है। विचार के विभिन्न रूपों को सवेदनाओ और अनुभूतियों से अलग करके हेतुवादी अन्ततः भावनावाद के गड्ढे मे जा पड़ते हैं।

उपरोक्त बातों से यह प्रकट हो जाता है कि ज्ञान को सवेदनात्मक ज्ञान से विलग नहीं करना चाहिए, क्योकि इसका नतीजा लाजमी तौर पर यह होता है कि सज्ञान-प्रक्रिया विकृत होती है, विचार और यथार्थ मे विलगाव हो जाता है। भावनावाद की हर प्रवृति का यही खास लक्षण है। ज्ञान को एकांगी ढंग से अतिरजित करना, ज्ञान के एक पहलू को परम मान लेना और उसे यथार्थ से अलग कर देना—ये ही भावनावाद की एपिस्टेमालाजीय' (ज्ञान-शास्त्रीय) जड़ें हैं और उसकी जीवनक्षमता के कारण को स्पष्ट करते हैं।

...या पुष्प की सज्ञा दी थी। पर उन्होंने कहा था
...आधारहीन हो, बल्कि वह उर्वर एव शक्तिशाली
...आ फूल है। भावनावाद की ज्ञानशास्त्रीय

...) और लागास (शास्त्र) से
—अनुवादक

जड़ें स्वयं ज्ञान-प्रक्रिया के अन्दर निहित है जो, जैसा कि हम देख चुके है, असामान्य रूप से जटिल और अन्तर्विरोधयुक्त हैं।

ज्ञान में भटकाव की सम्भावना निहित होती है। संज्ञानित वस्तु से, यथार्थ से, विचार विलग हो जा सकता है। यह भटकाव उन सरल से सरल धारणाओं में देखा जा सकता है जिनका हम प्रायः हर समय उपयोग करते रहते हैं। जैसे, हम "अविशिष्ट मकान" या "अविशिष्ट मेज" की बात करते हैं। पर अविशिष्ट मकान और अविशिष्ट मेज जैसी कोई चीज नही होती, विशिष्ट मकान या विशिष्ट मेज ही होते है। जैसा कि हम देख चुके है, "मकान" या "मेज" जैसी धारणाए केवल उन सामान्य सारभूत विशेषताओ को छाट लेती हैं जो सभी मकानों और सभी मेजो मे विद्यमान हैं। जब हम यह भूल जाते हैं कि धारणाओं का उद्गम यथार्थ वस्तुओं से होता है और उन्हे यथार्थ से विलग कर देते हैं, तभी हम यह कल्पना करने लगते है कि वे वस्तु मे स्वतन्त्र, स्वयमेव उद्भूत और विद्यमान है। यह भावनावाद है।

वस्तुगत भावनावाद का उदय इसी प्रकार हुआ। उसके हिमायतियों का मत है कि धारणा का वस्तु से स्वतन्त्र अस्तित्व है। यही नही, वे यह भी मानते हैं कि धारणा वस्तु का "सृजन करती है"। दूसरी ओर, मनोगत भावनावादी संवेदनाओं को हमारे ज्ञान का प्रत्यक्ष स्रोत मान कर आगे बढ़ते हुए यह मत व्यक्त करते हैं कि केवल संवेदनाए ही अस्तित्वमान हैं। वस्तुओं और व्यापारों को वे सवेदनाओ का योग मानते हैं।

प्रगट है कि सीधी लकीर पीटना और एकांगीपन, मनोगतता और मनोगत अंधता भावनावाद के ज्ञानशास्त्रीय मूल हैं।

पर यहा यह भी उल्लेख कर देना चाहिए कि ज्ञानशास्त्रीय मूल भावनावाद के अस्तित्व की केवल पूर्वदशाओ और उसकी स्थापना की मात्र सभावना को ही प्रस्तुत करते हैं। इस सभावना को वास्तविकता मे परिवर्तित करती हैं निश्चित सामाजिक शक्तियां। ये शक्तियां हैं, प्रतिगामी वर्ग जिनके वर्ग-हित उन्हें ज्ञान के प्रति मनोवादी एकपक्षीय रुख और विचार के यथार्थ से विलगाव को कायम रखने के लिए प्रेरित करते हैं।

भावनावाद के प्रसार को मानसिक और शारीरिक श्रम की विभेदात्मकता भी आसान बनाती है। वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में ऐसी विभेदात्मकता मौजूद रहती है जिस कारण ऐसा भास होता है कि मनुष्य की चेतना उसके भौतिक, उत्पादक कार्यकलाप से स्वतन्त्र है। शोषक वर्गों के पास मानसिक श्रम का इजारा होता है। इसकी बदौलत वे हर तरीके से भावनावाद का प्रचार एव समर्थन करते हैं तथा अपने शासन को उचित ठहराने एव कायम रखने के लिए उसका इस्तेमाल करते हैं।

भाववाद की जड़ें सिर्फ ज्ञानशास्त्र में ही नहीं, बल्कि वर्ग व्यवस्था में भी हैं। ये जड़ें प्रतिगामी वर्गों के निहित स्वार्थों पर आधारित हैं।

इस प्रकार ज्ञान व्यवहार के जरिए संवेदनात्मक से तार्किक में विकसित होता है। स्वाभाविक है कि ज्ञान के परिणामों को जांचने की जरूरत पड़ती है यह जान लेना आवश्यक होता है कि वे परिणाम सच हैं या नहीं। सच्चा ज्ञान ही हमारे और आपके व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। इसलिए दूसरा कोई उपाय भी नहीं है।

ज्ञान के परिणामों की जांच कैसे की जाती है? सत्य पर कैसे पहुंचा जाता है? इसकी विवेचना करने से पहले हम देखेंगे कि सत्य होता क्या है।

४. सत्य के बारे में मार्क्सवादी समझ

सत्य की वस्तुगतता

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सत्य को किसी वस्तु का ऐसा ज्ञान समझता है जो उस वस्तु को सही-सही प्रतिबिम्बित करता हो, अर्थात् जो उस वस्तु के अनुरूप हो। उदाहरण के लिए, यह वैज्ञानिक प्रस्थापना कि "द्रव्य परमाणुओं से बने हैं," या "पृथ्वी मनुष्य से पहले से विद्यमान है," अथवा यह कि "जनता ही इतिहास की निर्माता है," सत्य है।

सत्य किस पर निर्भर करता है? क्या वह मनुष्य पर निर्भर करता है जिसके मस्तिष्क में सत्य का आविर्भाव होता है? या, वह उस वस्तु पर निर्भर करता है जिसे वह प्रतिबिम्बित करता है?

भाववादियों के मतानुसार सत्य मनोगत है, वह मनुष्य पर निर्भर करता है जो वस्तुस्थिति की परवाह किये बिना, स्वयं ही अपने ज्ञान की सत्यता निर्धारित करता है। प्राचीन काल में यूनानी दार्शनिक प्रोटगोरस ने सत्य की परिभाषा करते हुए कहा था: "मनुष्य ही सभी चीजों का मापदंड है।" यही सत्य की भाववादी व्याख्या है।

पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के मत से सत्य वस्तुगत है। सत्य वस्तुगत रूप में विद्यमान विश्व को प्रतिबिम्बित करता है, अतः उसकी अन्तर्वस्तु मनुष्य की चेतना पर नहीं निर्भर करती। लेनिन ने लिखा है कि वस्तुगत सत्य हमारे ज्ञान की अन्तर्वस्तु है जो न मनुष्य पर और न मनुष्य जाति पर निर्भर करती है। सत्य की अन्तर्वस्तु उन वस्तुगत प्रक्रियाओं द्वारा पूर्णतया निर्धारित होती है जिनको वह प्रतिबिम्बित करता है।

उदाहरण के लिए, इस उक्ति को ले लें: "पृथ्वी गोलाकार है।" यह उक्ति सत्य है क्योंकि यह यथार्थ से मेल खाती है। पर क्या पृथ्वी का आकार मनुष्य की चेतना पर निर्भर करता है? कदापि नहीं। पृथ्वी का अस्तित्व मनुष्य

से कहीं पहले से है और उसका गोल आकार प्राकृतिक शक्तियों ने बनाया है।
किसी अन्य सत्य की छानबीन करें, तो भी हम ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुंचेंगे।

सापेक्ष से परम सत्य की ओर

सत्य की वस्तुगतता को स्वीकार करते हुए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ज्ञान की एक और महत्वपूर्ण समस्या को हल करता है। वह है—मनुष्य सत्य का सज्ञान कैसे प्राप्त करता है? एकबारगी, पूर्णतया, बिना शर्त के, परम रूप मे? या, केवल लगभग, सापेक्ष रूप मे? इस प्रश्न का सम्बध परम और सापेक्ष सत्य के आपसी सम्बध से है।

मनुष्य का ज्ञान यथार्थ के साथ विभिन्न अंशों मे मेल खाता है। जिन अशो मे उसका मेल होता है, यही परम सत्य और सापेक्ष सत्य के विभेद को स्थिर करता है। कोई-कोई ज्ञान यथार्थ से पूर्णतया, परम सटीकता के साथ, मेल खाता है। अन्य ज्ञान यथार्थ के साथ केवल आशिक रूप मे मेल खाता है। परम सत्य समग्र वस्तुगत सत्य है। वह यथार्थ का परम सटीक प्रतिबिम्ब है।

क्या परम सत्य का समग्र सज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? सिद्धांत की दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर "हां" है, क्योंकि कोई भी चीज अज्ञेय नहीं और मानव मस्तिष्क की सज्ञान क्षमता निस्सीम है।

पर किसी व्यक्ति या किसी पीढ़ी का ज्ञान उसके समय की ऐतिहासिक अवस्थाओ से तथा उस काल के उत्पादन, विज्ञान और प्रायोगिक प्रविधियों के विकास-स्तर से परिवेष्टित रहता है। यही वजह है कि इतिहास की हर मंजिल मे मनुष्य का ज्ञान सापेक्ष होता है। वह अनिवार्यतया सापेक्ष सत्य का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। ज्ञान का यथार्थ से पूर्णतया मेल खाना—यह सापेक्ष सत्य है। लेनिन ने कहा था कि सापेक्ष सत्य वस्तु का, जो मनुष्य से स्वतन्त्र है, सापेक्ष रूप से सच्चा प्रतिबिम्ब है। यह ज्ञान मूलभूत रूप मे यथार्थ से मेल खाता है, पर उसे और ज्यादा विशिष्ट तथा गहन बनाने और प्रयोग द्वारा जांचने की जरूरत रहती है।

प्रश्न उठता है: यदि ऐसी बात है तो परम सत्य शायद सामान्यतया अज्ञेय है? परम सत्य तक एक बार मे ही तथा समग्र रूप में पहुंचना असम्भव है। उस तक ज्ञान की अनन्त प्रक्रिया से ही पहुंचा जा सकता है। विज्ञान की हर नई उपलब्धि के साथ मनुष्य परम सत्य के सज्ञान के निकटतर पहुंचता जाता है। वह उसके नये तत्त्वों, कड़ियों और पहलुओं को जानने के निकटतर आता जाता है। ज्ञान प्रगति करता जाता है, क्योंकि मनुष्य सापेक्ष सत्य का सज्ञान प्राप्त करके परम सत्य का भी सज्ञान प्राप्त करता है।

उदाहरण के लिए, परमाणु के आधुनिक सिद्धान्त को ले लें। मूलतया वह यथार्थ से मेल खाता है, किन्तु समग्रतर [illegible] ... ही बना हुआ है।

हम यह नहीं कह सकते कि मनुष्य परमाणु के बारे मे सब कुछ जान गया है। परमाणु के अन्दर अभी भी इतने रहस्य छिपे हैं कि उनका उद्घाटन करने के लिए वैज्ञानिकों की कई पीढ़ियां दरकार होंगी। विज्ञान को मौलिक कणों की, जिनसे परमाणु बनता है, आन्तरिक सरचना की समस्या हल करना बाकी है। उसे उनके परिवर्तनों और जाति परिवर्तनों के कारणों तथा अनेक अन्य गुत्थियों को सुलझाना बाकी है। साथ ही पारमाण्विक सिद्धान्त मे परम सत्य के, पूर्ण और परम सटीक ज्ञान के तत्व विद्यमान हैं। परमाणु के अस्तित्व के बारे में, उसके नाभिक के अस्तित्व के बारे मे जिसमे ऊर्जा की अपार राशि छिपी हुई है और अनेक सचल एव परिवर्तनीय कणो तथा ऐसी ही अन्य बातों के बारे में विज्ञान जो जानकारी हासिल कर चुका है, वह परम और अक्षणिक ज्ञान है।

इसका यह अर्थ होता है कि सापेक्ष सत्य मे भी परम सत्य के लघु कण मौजूद होने चाहिए। मनुष्य का ज्ञान परम और सापेक्ष दोनो है। सापेक्ष इसलिए है कि वह अक्षय नहो है और उसका विकास करना, उसे गहरा करते जाना, जिससे कि यथार्थ के नये-नये पहलुओं का पता लगता चले, एक अनन्त प्रक्रिया है। परम वह इसलिए है कि उसमे शाश्वत और परम सटीक ज्ञान के तत्व मौजूद होते हैं।

मनुष्य ने यथार्थ के अलग-अलग पहलुओ के बारे मे अनेक विचार ग्रहण किये है जो अक्षणिक और परम स्वरूप के हैं। उदाहरणार्थ, मार्क्सवादी दर्शन की ये प्रस्थापनाए कि "पदार्थ प्राथमिक और चेतना गौण है" और "चेतना मस्तिष्क का एक गुणधर्म है" तथा प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के अन्य नियम और निष्कर्ष, इसी कोटि मे आते है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की मूल प्रस्थापनाए जिनके सही होने की पुष्टि अमल द्वारा की जा चुकी है, परम सत्य हैं। मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त निरन्तर विकसित होता जाता है, किन्तु उसके मूल सिद्धान्त अकाट्य हैं।

लेनिन ने लिखा है: "मानव चिन्तन अपनी प्रकृति से ही परम सत्य प्रदान करने मे समर्थ होता है, और प्रदान भी करता है। यह परम सत्य सापेक्ष सत्यों के कुल योग से बना होता है। विज्ञान के विकास का हर पग परम सत्य के योग मे नये कण मिलाता है, पर हर वैज्ञानिक प्रस्थापना के सत्य की सीमाएं सापेक्ष होती हैं। वे ज्ञान की वृद्धि के साथ कभी बढ़ती और कभी घटती रहती है।"[1]

मानव ने परमाणु की अन्तर्तम गहराइयों मे प्रवेश पा लिया है और उसकी प्रबल एव निस्सीम शक्तियों को अपना सेवक बना लिया है। मानव के वश में

---

१. लेनिन, संगृहीत रचनाएं, खंड १४, पृष्ठ १३६।

आकर परमाणु बिजली पैदा करता है, पारमाण्विक जहाजों के लोह-दण्डों को घुमाता है, रोगों के इलाज में मदद देता है और अन्य बहुत से काम करता है।

मनुष्य विश्व के निस्सीम विस्तार पर धीरे-धीरे अपनी शक्ति का जाल फैला रहा है। अपनी बुद्धि के द्वारा वह पदार्थ की गहराइयों में प्रवेश करता है, उसके विस्तार पर काबू पाता है। वह बाह्य अन्तरिक्ष के नये-नये रहस्यों को ज्ञात करता है। कुछ ही वर्ष पहले तक ऐसा सोचा जाता था कि बाह्य अन्तरिक्ष दूरवर्ती तारों के क्षीण प्रकाश से आलोकित शून्य स्थान है जिसमे यदा-कदा कोई उल्कापिण्ड आ जाया करता है। पर अन्तरिक्ष अनुसधान के फलस्वरूप अब हम यह जान गये हैं कि पृथ्वी आवेशित कणों के कटिबन्धो से आवेष्ठित है। वायुमडल के ऊपरी तहों के बारे मे सूचना प्राप्त की गयी है। उनकी बनावट और उनके घनत्व, ब्रह्माण्डीय किरणों और सूक्ष्म उल्कापिण्डो, अन्तर्ग्रहीय द्रव्य के नन्हें कणों के बारे में हमे जानकारी मिली है।

मानव जाति ब्रह्माण्ड की खोज करने की आकाक्षा युग-युगो से अपने हृदय में संजोये हुए है। आज यह आकांक्षा पूरी हो रही है। वह दिन दूर नही जब मनुष्य चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहो की यात्रा करेगा और परम सत्य के अनन्त योग में ज्ञान के नये अमूल्य कण आ मिलेंगे।

सत्य विशिष्ट होता है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार, ज्ञान की प्रक्रिया मे प्राप्त सत्य सदा यथार्थ के किसी निश्चित, विशिष्ट क्षेत्र से सम्बंधित होता है। यथार्थ का यह क्षेत्र भी इसी तरह निश्चित अवस्थाओं के अन्तर्गत विकसित होता है। अविशिष्ट सत्य जैसी कोई चीज नही होती। सत्य सदा विशिष्ट होता है।

मिसाल के लिए, शास्त्रीय यांत्रिकी सत्य है, पर केवल यथार्थ के निश्चित, विशेष क्षेत्रों मे ही, सभी क्षेत्रो में नही। वह दूरवीक्ष्य (मैक्रोस्कोपिक) कार्यों की हरकत को सही-सही प्रतिबिम्बित करता है, पर सूक्ष्म जगत में अपना सच्चा स्वरूप खो बैठता है। इस जगह नयी क्वांटम यांत्रिकी सत्य है। यही बात अन्य किसी भी सत्य के साथ है। वह कुछ विशिष्ट व्यापारों को तो सही-सही प्रतिबिम्बित करता है, पर ऐसा करते हुए दूसरे व्यापारों को सही-सही प्रतिबिम्बित नही कर पाता है।

एक ही प्रक्रिया को ले ल, तो उसके लिए भी सत्य शाश्वत या सदा-सर्वदा के लिए स्थिर नही हो सकता। यह प्रक्रिया स्वयं विकसित होती है। जिन अवस्थाओं में वह होती है, वे बदल जाती हैं और स्वभावतः उसे प्रतिबिम्बित करने वाला सत्य भी परिवर्तित हो जाता है। जो चीज किन्हीं अवस्थाओं में सत्य थी, वह अन्य, परिवर्तित अवस्थाओं में असत्य बन जा सकती है।

यह सिद्धान्त कि सत्य विशिष्ट होता है, वर्तमान परिस्थिति में शान्ति, जनतंत्र और समाजवाद के लिए जनगण के संघर्ष के लिए खास तौर पर महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त क्योंकि इस चीज का तकाजा करता है कि वर्तमान युग की सही समझदारी उपलब्ध हो। हमारे युग की मुख्य अन्तर्वस्तु है पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण, जब कि विश्व समाजवादी व्यवस्था मानव जाति के विकास में निर्णायक उपादान बनती जा रही है। हमारे युग की इन मौलिक चारित्रिक विशिष्टताओं के जरिए ही मार्क्सवादी पार्टियां हमारे युग की प्रधान समस्याओं (युद्ध और शांति, भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों का शान्तिपूर्ण सहजीवन और समाजवाद के संघर्ष की संभावनाओं) का समाधान करने का प्रयास करती हैं।

यहां युद्ध और शान्ति का सवाल जैसी अपने युग की प्रमुख समस्या को ले लीजिए।

लेनिन ने साम्राज्यवाद के प्रतिगामी सार का विश्लेषण किया तो वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि साम्राज्यवाद में युद्धों का होना अनिवार्य है। उन्होंने तत्कालीन परिस्थिति पर अपना निष्कर्ष आधारित किया। परिस्थिति यह थी कि साम्राज्यवादी दुनिया पर शासन कर रहे थे। उन्होंने उसे आपस मे बांट लिया था और नये सिरे से उसके बटवारे के लिए जूझ रहे थे। लेनिन के जीवनकाल में विश्व समाजवादी व्यवस्था का अस्तित्व न था। फिर भी उन्होने कहा कि मानव जाति को अनिवार्यतया इस ऐतिहासिक कार्य का सामना करना पड़ेगा कि सर्वहारा एकाधिपत्य को केवल एक देश मे मौजूद राष्ट्रीय घटना से अन्तर्राष्ट्रीय घटना में परिवर्तित कर दिया जाय, कम से-कम कई देशो मे विद्यमान सर्वहारा एकाधिपत्य मे परिणत कर दिया जाय जो पूरे विश्व घटनाक्रम पर प्रभाव डाल सके।

लेनिन ने कहा कि हमे युद्ध के प्रश्न के प्रति द्वन्द्वात्मक रुख अपनाना चाहिए, अर्थात विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्था का, दुनिया के अन्दर शक्तियों के अन्तरसम्बंध के परिवर्तनों का मनोयोगपूर्वक लेखा लेना चाहिए। शक्तियो का यह अन्तरसम्बंध अब शान्ति और समाजवाद के पक्ष मे बिलकुल बदल चुका है। एक विश्व समाजवादी व्यवस्था प्रगट हो चुकी है और जोरदार ढग से विकसित हो रही है। शान्ति के लिए जनगण का एक व्यापक आन्दोलन शुरू हो चुका है जिसका नेता आक्रामक युद्धों का सबसे निर्मम शत्रु मजदूर वर्ग है। शान्तिप्रेमी गैर-समाजवादी देशों की सख्या बढ़ रही है।

इन सारी चीजों को मिलाकर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य मार्क्सवादी पार्टियों ने इस निष्कर्ष पर पहुचने का आधार पाया कि इस समय युद्ध अनिवार्य नहीं है और युद्ध को रोकने की अवस्थाएं मौजूद हैं।

कठमुल्ले और संकीर्णतावादी युद्ध और शान्ति की समस्या के प्रति इ
रचनात्मक और सच्चे मार्क्सवादी रुख पर आक्षेप करते हैं। वे नयी अवस्थाओं
को नजरअन्दाज करते हैं और पुराने पड़ गये निष्कर्षों एवं प्रस्थापनाओं में चिपके
हुए हैं। उन्होंने ठोस वास्तविकता को तिलांजलि दे दी है। वे दुनिया में
शक्तियों के नये अन्तस्सम्बंध को देखने से इनकार करते और यह घोषित करते
हैं कि युद्ध आज भी अनिवार्य है। नया विश्वयुद्ध न होने देने की संभावना से
इनकार करके ये कठमुल्ले मेहनतकश जनता को पस्तहिम्मत करते हैं। जिस
नवजीवन का हम निर्माण करते हैं, उसे यदि ऐटमी युद्ध की आग में स्वाहा
हो जाना है, तो ऐसे नवजीवन के निर्माण का लाभ क्या है?

मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियां कठमुल्लेपन और संकीर्णतावाद की निन्दा
करती हैं और सभी कार्य में यथार्थ के प्रति विशिष्ट और ऐतिहासिक रुख
अपनाने के सिद्धान्त का निरन्तर पालन करती हैं।

५. व्यवहार सत्य की कसौटी है

सत्य की कसौटी पाना वह वस्तुगत आधार पाना है जो मनुष्य पर नहीं
निर्भर करता और जो सत्य या सच्चे ज्ञान तथा भ्रम में अन्तर करना संभव
बनाता है।

व्यवहार ही सत्य की एकमात्र कसौटी है। किसी भावना या वैज्ञानिक
मत के सच्चे स्वरूप के बारे में हम चाहे जितनी बहस कर लें, पर विवाद का
निपटारा व्यवहार ही कर सकता है। अर्थात केवल आर्थिक उत्पादन, राज-
नीतिक जीवन या वैज्ञानिक प्रयोग से ही विवाद का निपटारा हो सकता है।
मार्क्स ने लिखा था: "यह प्रश्न कि वस्तुगत सत्य को मानव चिन्तन का
गुण माना जा सकता है या नहीं, सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है, यह तो व्यावहारिक
प्रश्न है। व्यवहार में मनुष्य के लिए सत्य को, अर्थात् यथार्थ और शक्ति को,
अपने चिन्तन की इहलौकिकता को, प्रमाणित करना अनिवार्य है।"[1]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की इस महत्वपूर्ण प्रस्थापना को भावनावादी नहीं
मानते। इन न मानने वालों में अनेक मतमतान्तर के भावनावादी हैं। वे ज्ञान
में व्यवहार के महत्व को अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि स्वयं मनुष्य,
और मनुष्य का चिन्तन सत्य की कसौटी है। जो उपयोगी है, जो लाभकर है, वही
सत्य है—यह विचार, उदाहरणतया, व्यवहारवादियों द्वारा प्रतिपादित किया
गया है। ये व्यवहारवादी भावनावादी दर्शन की एक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि हैं
जिसका अमरीका में खास तौर से बहुत प्रचलन है। सत्य की इस मनमदारी के

---

१. मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड २, मास्को, १९५८, पृष्ठ ४०३।

परिणामस्वरूप व्यवहारवादी समकालीन पूंजीवाद के प्रतिगामी कारनामों को उचित ठहराते हैं। मजदूरों का शोषण, साम्राज्यवादी युद्ध और अल्प-विकसित देशों की लूटना आदि लाभकर हैं, क्योंकि वे पूंजीपतियों को लाभ पहुंचाते हैं, इसलिए व्यवहारवादियों के दृष्टिकोण से ये चीजें सत्य और स्वाभाविक हैं।

पर उपयोगिता सत्य की कसौटी का काम नहीं कर सकती। इसके विपरीत, सच्चा ज्ञान ही मानव जाति को लाभ पहुंचाता है।

मनुष्य अपने व्यावहारिक कार्य में केवल सच्चे ज्ञान पर ही निर्भर कर सकता है। केवल सत्य ही वे नतीजे प्रदान कर सकता है जिनकी वह आशा करता है। इसलिए यदि मनुष्य प्राप्त ज्ञान के आधार पर काम करते हुए अपने व्यावहारिक कार्यकलाप के दौरान खुद अपने द्वारा सामने रखे गये लक्ष्य पर पहुंच जाता है, प्रत्याशित परिणाम उपलब्ध करता है, तो उसका मतलब है कि उसका ज्ञान यथार्थ से मेल खाता है, वह सत्य है।

एक मिसाल लीजिए। आधी शताब्दी से अधिक हुए जब रूसी वैज्ञानिक कोन्स्तान्तीन त्सिओल्कोव्स्की ने राकेटविद्या का वैज्ञानिक मत प्रतिपादित किया था। उन्होंने एक अत्यन्त साहसपूर्ण विचार, ऐसा विचार जो उस समय सर्वथा कल्पनाविलास ज्ञात होता था, प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य राकेटों की मदद से अन्य ग्रहों में पहुंच सकता है।

त्सिओल्कोव्स्की के विचार को यथार्थता में परिवर्तित करने के लिए भगीरथ प्रयास तथा विपुल ससाधनों की आवश्यकता थी। पर १४ सितम्बर १९५९ को द्वितीय सोवियत अन्तरिक्ष राकेट चन्द्रमा पर पहुंच गया। इस प्रकार पहली बार पृथ्वी से एक अन्य ग्रह की उड़ान की गयी और ऐसा करके त्सिओल्कोव्स्की के विचार की पुष्टि की गयी। त्सिओल्कोव्स्की ने आधी सदी पहले ही भविष्यवाणी की थी : "मनुष्य चन्द्रमा से पत्थर उठा लायेगा।" आज अन्तरिक्ष-नाविक बाह्य अन्तरिक्ष की यात्रा कर चुके हैं और वह दिन दूर नहीं जब उस महान वैज्ञानिक का स्वप्न साकार होगा।

सामाजिक सिद्धान्त और विचार भी व्यवहार की कसौटी पर परखे जाते हैं। वर्गों के क्रान्तिकारी संघर्ष में, राज्यों और विभिन्न पार्टियों के राजनीतिक कार्यकलाप में तथा शान्ति और प्रगति के लिए जनगण के संघर्ष में उनकी परीक्षा हो जाती है। स्वयं जीवन मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की सत्यता की पुष्टि कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के व्यावहारिक कार्य-कलाप उसकी सत्यता प्रमाणित कर रहे हैं। पूंजीवाद से कम्युनिज्म की ओर मानव जाति का प्रयाण, जिसे कोई शक्ति रोक नहीं पाती है, मार्क्सवाद लेनिन-वाद की जीवन्त शक्ति का, उसकी शिक्षा के महान् सत्य का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है।

अध्याय १०

ऐतिहासिक भौतिकवाद किस चीज का अध्ययन करता है

मार्क्स और एंगेल्स ने बतलाया कि समाज के विकास का स्वरूप भी द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी है। उन्होंने सामाजिक विकास के वैज्ञानिक सिद्धान्त का निरूपण किया जिसे हम ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जानते हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की विवेचना करने से पहले हम समाज सम्बंधी विचारों में मार्क्सवादी क्रान्ति का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

१. ऐतिहासिक भौतिकवाद का विकास—समाज सम्बंधी दृष्टिबिन्दुओं में क्रान्ति

महान विचारक मानव समाज की उत्पत्ति, उसके विकास को अधिशासित करनेवाले नियमों एवं इन नियमों के स्वरूप को—यह कि वे आकस्मिक हैं अथवा अनिवार्य, वस्तुगत नियम हैं—जानने के लिए सदा ही अत्यन्त उत्सुक रहे हैं। इन तथा इसी तरह के अनेक अन्य प्रश्नों का उठना स्वाभाविक था, क्योंकि मनुष्य समाज में रहता है और उसके साथ अगणित सूत्रों से बंधा हुआ है। समाज के इतिहास में, समाज किन मार्गों से विकास करता है इसमें, उसका दिलचस्पी लेना अनिवार्य है।

मार्क्सवाद के आविर्भाव से पहले अनेक विद्वानों द्वारा सामाजिक विकास के सम्बंध में अने
...प्रतिपादित किये जा चुके थे। उदाहरण के लिए,
...इयों ने कहा था कि मनुष्य, उसके विचार
...देश के प्रभाव का परिणाम होते हैं। फ्रांस
...समाज में विरोधी वर्गों के
...रात्रियों (ऐडम स्मिथ,
...का आधार ढूंढने की
...मन, गुइज़ो और थीयेर)
...की पूर्वकल्पना की थी।

बेलिंस्की, हर्जेन, चेर्नीशेव्स्की और १९वीं सदी के अन्य रूसी क्रान्तिकारी जनवादियों ने सामाजिक विकास सम्बंधी सिद्धान्त में बहुत बड़ा योगदान किया था। सामाजिक विकास में आर्थिक जीवन की भूमिका, जनता के इतिहास का निर्माता होना, शोषकों और शोषितों के वर्ग-हितों का सर्वथा बेमेल होना, दर्शन, साहित्य, कला आदि का वर्ग-स्वरूप, जैसे उनके विचार उनके युग के लिहाज से अत्यन्त गहन थे।

पर मार्क्सवाद से पूर्व का समाजशास्त्र वैज्ञानिक नहीं था। मार्क्स से पहले समाजशास्त्र में भावनावाद का बोलबाला था। फ्रांसीसी भौतिकवादियों ने मनुष्य पर सामाजिक परिवेश के प्रभाव को लक्ष्य तो किया, पर भूल से इस परिवेश को मानव-बुद्धि की उपज मान बैठे। समाज सम्बंधी उनके दृष्टिबिन्दु का निचोड़ इन शब्दों में निहित था—"भावनाएं ही विश्व पर शासन करती हैं।"

इसी तरह मार्क्सवाद से पूर्व के अन्य भौतिकवादियों का भी समाज के बारे में भावनावादी दृष्टिबिन्दु था। सामाजिक विकास के बारे में इन मतों का अवैज्ञानिक स्वरूप स्वत. स्पष्ट है। हेगेल ने ऐतिहासिक अनिवार्यता सम्बंधी अपने विचारों द्वारा दर्शन में मूल्यवान् योगदान किया और मानव-जाति के इतिहास को द्वन्द्वात्मक दृष्टि से देखने की चेष्टा की। पर अन्त में वह इस मिथ्या निष्कर्ष के दलदल में जा फंसे कि समाज दैवी इच्छा द्वारा शासित है। "ईश्वर विश्व पर शासन करता है। उसके शासन की अन्तर्वस्तु ही, उसकी योजनाओं की पूर्ति ही विश्व का इतिहास है"—इतिहास सम्बंधी हेगेलीय दर्शन का यही निचोड़ है।

मार्क्सवाद से पूर्व समाजशास्त्र की एक और त्रुटि की जड़ में भी समाज के प्रति भावनावादी रुख था। मार्क्सवाद से पूर्व के समाजशास्त्री यह मान कर आगे बढ़े कि विचार ही विश्व पर शासन करते हैं और इन विचारों के जनक विशिष्ट व्यक्ति—राजे-महाराजे, फौजी नेता, विद्वान आदि—होते हैं। उन्होंने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि महापुरुष ही इतिहास के निर्माता होते हैं। ऐतिहासिक विकास में जनता की निर्णायक भूमिका होती है, इस बात को उन्होंने नहीं देखा।

मार्क्सवाद से पहले का समाजशास्त्र ऐतिहासिक प्रक्रिया की द्वन्द्वात्मकता को प्रगट करने में असमर्थ सिद्ध हुआ। इन समाजशास्त्रियों ने इतिहास को जिस तरह से पेश किया, उसमें वह असम्बद्ध तथ्यों का एक समूह बन कर रह गया। भावनावादी होने के कारण वे सामाजिक जीवन की एकता और उसके पारस्परिक लगावों को नहीं पकड़ सके। ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे छिपी असल उत्प्रेरक शक्तियों और भौतिक स्रोतों को वे नहीं देख सके।

सर्वप्रथम मार्क्स और एंगेल्स ने समाज के स्वरूप के अन्तर में प्रवेश किया और उन्होंने उसके जटिल एवं अन्तर्विरोधयुक्त विकास का उद्घाटन किया। उन्होंने सामाजिक विकास का एक नया सिद्धान्त विकसित किया जो गुणात्मक रूप में सर्वथा नवीन है। उन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद की स्थापना की और ऐसा करके समाज सम्बंधी दृष्टिबिन्दु में क्रान्ति की।

मार्क्स और एंगेल्स ने सामाजिक विज्ञान से भावनावाद को दूर किया। उन्होंने समाज में प्रयुक्त दर्शन के बुनियादी सवाल का सही हल निकाला और ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य प्रस्थापना निरूपित की। यह प्रस्थापना है : सामाजिक अस्तित्व सामाजिक चेतना को तय करता है।

सामाजिक अस्तित्व के अन्तर्गत समाज का भौतिक जीवन, और सर्वोपरि भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में मनुष्यों की क्रियाशीलता तथा उत्पादन की प्रक्रिया के अन्दर उनके आपसी आर्थिक सम्बंध आते हैं। सामाजिक चेतना जनता का आत्मिक जीवन है, वे भावनाएं, मत और दृष्टिबिन्दु हैं जो उनके सारे कामों में उनका पथ प्रदर्शन करते हैं।

मार्क्स और एंगेल्स ने इस बात पर जोर दिया कि सामाजिक अस्तित्व प्राथमिक है और सामाजिक चेतना गौण है। ऐसा करते हुए वे इस मान्यता से अग्रसर हुए कि लोगों को इसके पहले कि वे विज्ञान, कला, दर्शन आदि में गति प्राप्त कर सकें, भोजन, वस्त्र और आवास की आवश्यकता होती है जिनके लिए उन्हें काम करना होता है, भौतिक सम्पदा उत्पादित करना होता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि "जीवन निर्वाह के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और परिणामतः उस जनगण का अथवा उस युग के अन्दर उपलब्ध आर्थिक विकास का स्तर वह आधार होता है जिस पर उस जनगण की राज्यीय संस्थाएं, कानूनी धारणाएं, कला और यहां तक कि उनके धर्म-सम्बंधी विचार विकसित हुए होते हैं। उसकी रोशनी में ही इनकी व्याख्या की जानी चाहिए, न कि इसके उल्टे तरीके से, जैसा कि अब तक होता आया है।"[1] ऐतिहासिक भौतिकवाद इतिहास की एक सच्ची वैज्ञानिक, भौतिकवादी धारणा है।

अनेकानेक सामाजिक सम्बंधों में से मार्क्स व एंगेल्स ने आर्थिक, उत्पादन सम्बंधों को छांट लिया और बताया कि ये ही मुख्य और निर्णायक सम्बंध हैं। इस तरह वे सामाजिक आर्थिक विरचना की धारणा पर पहुंचे जो ऐतिहासिक भौतिकवाद की एक बुनियादी धारणा है।

सामाजिक-आर्थिक विरचना (अर्थतंत्र, विचारधारा, परिवार, जीवन-विधि आदि से सम्बद्ध) सामाजिक व्यापारों और प्रतिक्रियाओं का कुल जोड़ है।

---

१. मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड २, मास्को, १९५८, पृष्ठ १६७।

यह लोगों के बीच एक प्रकार के उत्पादन सम्बंधों अथवा आर्थिक सम्बंधों पर आधारित होती है। एक सामाजिक-आर्थिक विरचना का स्थान दूसरी, पहली से उन्नत सामाजिक-आर्थिक विरचना ले लेती है। समाज इसी क्रम से विकास करता है। इतिहास आदिम-सामुदायिक विरचना से दास, दास से सामन्ती, सामन्ती से पूंजीवादी, और अन्त में कम्युनिस्ट (साम्यवादी) विरचना की ओर प्रगति करता है।

मार्क्स और एंगेल्स ने सिद्ध किया था कि सर्वसाधारण, मेहनतकश लोग ही इतिहास के सच्चे निर्माता हैं। जनता अपने श्रम द्वारा सारी भौतिक सम्पदा का सृजन करती है। करोड़ों-करोड़ साधारण नर-नारियों की मेहनत मानव जाति के जीवन और प्रगति की अनिवार्य नींव है।

मार्क्स और एंगेल्स ने सामाजिक विकास की वस्तुगत द्वन्द्वात्मकता को प्रगट किया। फलतः इतिहास असम्बद्ध तथ्यों का अस्त-व्यस्त समूह नहीं रह गया। वह द्वन्द्वात्मक नियमों द्वारा अधिशासित क्रमबद्ध एवं सामंजस्ययुक्त प्रक्रिया के रूप में सामने आया।

२. ऐतिहासिक भौतिकवाद की विषयवस्तु

ऐतिहासिक भौतिकवाद की विषयवस्तु है समाज और उसके विकास के नियमों का अध्ययन करना।

ये नियम उसी तरह वस्तुगत, अर्थात मानव चेतना से स्वतंत्र हैं जिस तरह प्रकृति के नियम हैं। वे भी प्रकृति के नियमों की भांति ज्ञेय हैं और मनुष्य द्वारा अपने व्यावहारिक कार्यकलाप में प्रयुक्त होते हैं। पर सामाजिक जीवन के नियमों और प्रकृति के नियमों में सारभूत अन्तर है। प्रकृति के नियम अंधी, स्वतःस्फूर्त शक्तियों की क्रिया को प्रतिबिम्बित करते हैं। पर सामाजिक जीवन के नियम सदा ऐसे बुद्धियुक्त व्यक्तियों की क्रियाशीलता के माध्यम से अभिव्यंजित होते हैं जो अपने सामने निश्चित लक्ष्य रखते हैं और इनकी सिद्धि के लिए कार्यरत होते हैं।

केवल ऐतिहासिक भौतिकवाद ही सामाजिक जीवन के नियमों का अध्ययन नहीं करता, बल्कि अन्य सामाजिक विज्ञान भी यह कार्य करते हैं। जैसे अर्थशास्त्र, इतिहास, कला-विज्ञान, शिक्षाशास्त्र, आदि। पर ये सारे विज्ञान सामाजिक व्यापारों के एक खास समूह का ही अध्ययन करते हैं। वे समाज की केवल एक कोण से विवेचना करते हैं। वे सामाजिक विकास की पूरी प्रक्रिया की धारणा नहीं प्रस्तुत करते। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र लोगों के आर्थिक सम्बंधों अथवा उत्पादन सम्बंधों का अध्ययन करता है। इतिहास का अध्ययन

विभिन्न युगों में और विभिन्न देशों में समाज के विकास से होता है। कला विज्ञान अपने को कला आदि के क्षेत्र तक ही सीमित रखता है।

किन्तु ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास के सर्वसामान्य नियमों का अध्ययन करता है। यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्व दृष्टिकोण का अभिन्न अंग है और इस हैसियत से सामाजिक जीवन के व्यापारों की वैज्ञानिक, द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह ऐतिहासिक विकास की महत्वपूर्ण आम समस्याओं को लेता है। जैसे, सामाजिक अस्तित्व और सामाजिक चेतना का सम्बन्ध, जनता के जीवन में भौतिक उत्पादन का महत्व, सामाजिक भावनाओं और तत्सम्बद्ध संस्थाओं की उत्पत्ति और भूमिका। ऐतिहासिक भौतिकवाद हमें यह समझने में समर्थ बनाता है कि इतिहास में जनगण एवं व्यक्ति क्या भूमिका अदा करते हैं, वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष का कैसे उदय हुआ, राज्य का कैसे आविर्भाव हुआ, सामाजिक क्रान्तियां क्यों होती हैं और ऐतिहासिक प्रक्रिया में उनका महत्व क्या है। इसी तरह वह सामाजिक विकास की अन्य अनेक समस्याओं को सुलझाता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद जिन नियमों का अध्ययन करता है, उन सभी का क्रिया-क्षेत्र एक नहीं है। कुछ नियम सभी दौरों में क्रियाशील रहते हैं और कुछ समाज के विकास के केवल खास दौरों में ही क्रियाशील रहते हैं। प्रथम कोटि में सामाजिक चेतना के संदर्भ में सामाजिक अस्तित्व की निर्धारक भूमिका का नियम और समाज के विकास में उत्पादन पद्धति की निर्धारक भूमिका का नियम है। दूसरी कोटि में वर्ग-संघर्ष का नियम है जो केवल विरोधी वर्गों में विभक्त समाजों में क्रियाशील होता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद उन तत्सम्बद्ध परिकल्पनाओं अथवा धारणाओं का भी विशदीकरण करता है जो सामाजिक विकास के सर्वसामान्य एवं सारभूत पहलुओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। इनमें आते हैं—"सामाजिक अस्तित्व," "सामाजिक चेतना," "उत्पादन-पद्धति", "आधार" और "ऊपरी ढांचा"। ऐतिहासिक भौतिकवाद के नियमों और परिकल्पनाओं का कुल जोड़ ही सामाजिक विकास की ऐक्यबद्ध एवं संगत तसवीर पेश करता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद पूरे इतिहास के दौरान जनता के व्यावहारिक अनुभवों तथा सामाजिक विज्ञानों की उपलब्धियों की उपज है। इनसे परे उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक भौतिकवाद के बिना, सामाजिक विकास के सामान्य नियमों के ज्ञान के बिना, कोई भी सामाजिक विज्ञान फलदायी ढंग से विकसित नहीं हो सकता। ऐतिहासिक भौतिकवाद सभी अन्य सामाजिक विज्ञानों की रीतिशास्त्रीय बुनियाद है। इससे इतिहासज्ञ, अर्थशास्त्री तथा अन्य विद्वान सामाजिक व्यापारों की भूलभुलैया में अपने लिए

मतानुसार, लोगों के आचरण अथवा कार्य न तो किसी चीज द्वारा निर्धारित होते हैं और न वे किसी चीज पर निर्भर करते हैं। साथ ही पूंजीवादी समाजशास्त्री मार्क्सवाद पर नियतिवादी होने का आरोप लगाते हैं। वे कहते हैं कि मार्क्सवाद तो ऐतिहासिक अनिवार्यता का उपासक है और उसके अनुसार मनुष्य सामाजिक नियमों के मुकाबले बिल्कुल अशक्त है।

अपनी वर्ग-सीमाओं के कारण पूंजीवाद के सिद्धान्तविद इस चीज को समझने से साफ इनकार करते हैं कि ऐतिहासिक अनिवार्यता जनता के सचेत कार्यकलाप को बिल्कुल बाद ही नहीं देती, बल्कि वह तो उसे शिरोधार्य करती है। मनुष्य सामाजिक विकास के नियमों को मिटा नहीं सकता या नये नियम बना नहीं सकता, पर वह इन नियमों को, इस ऐतिहासिक अनिवार्यता को समझने की सामर्थ्य रखता है और इनका बोध रखने की वजह से ऐतिहासिक प्रक्रिया में सक्रिय हस्तक्षेप कर सकता है। व्यावहारिक अनुभव ने निश्चयपूर्वक प्रमाणित किया है कि वस्तुगत अनिवार्यता को समझ कर हम प्रकृति के नियमों को तो अपनी इच्छा के अधीनस्थ कर ही सकते हैं (आधुनिक विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियां इस बात की साक्षी हैं कि हमने ऐसा किया है), सामाजिक घटनाओं के क्रम पर भी काबू हासिल कर सकते हैं। वस्तुगत अनिवार्यता का ज्ञान एवं मनुष्य के हित में उसका उपयोग ही मनुष्य की स्वतंत्रता में निहित होती है।

स्वतन्त्रता वस्तुगत अनिवार्यता को समाप्त नहीं कर देती। वह इस चीज की द्योतक है कि मनुष्य अनिवार्यता को समझता है और अनिवार्यता का अपनी कार्य-सिद्धि के लिए उपयोग करता है। मानव के कार्यकलाप तभी स्वतन्त्र होते हैं जब वे वस्तुगत अनिवार्यता से मेल खाते हों। मनुष्य की स्वतन्त्रता प्रकृति और समाज के नियमों से किसी काल्पनिक आजादी में निहित नहीं होती, बल्कि इन नियमों के ज्ञान में और इन्हें मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस्तेमाल में लाने की क्षमता में निहित होती है।

स्वतन्त्रता लम्बे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। ज्यों-ज्यों विज्ञान और उत्पादन ने प्रगति की, मनुष्य प्रकृति पर काबू पाने लगा। उसने प्रकृति के वस्तुगत नियमों को जान लिया और इस ज्ञान के द्वारा प्रकृति में क्रियाशील अनिवार्यता को अपनी इच्छा के वश में लाने लगा तथा प्रकृति के आगे स्वतन्त्र हो गया। किन्तु प्रकृति पर मनुष्य का प्रभुत्व उसे सामाजिक प्रक्रियाओं पर नियन्त्रण नहीं प्रदान करता। ऐतिहासिक अनिवार्यता, समाजवाद से पहले के समाजों का नियम अधिशासित विकास—ये स्वतःस्फूर्त शक्ति के रूप में काम करते थे। इन पर मनुष्य काबू नहीं कर पाया था। उदाहरण के लिए, पूंजीवाद में अराजकता और प्रतियोगिता का नियम मनुष्य को संयोग के हाथों

का खिलौना बना देता है और उसे अपने कार्यों को पहले से नियोजित करने का अवसर प्रदान नहीं करता।

समाजवाद ही यह संभव बनाता है कि ऐतिहासिक अनिवार्यता पर काबू पाया जाय और सच्ची स्वतंत्रता हासिल की जा सके। समाजवादी क्रांति सार्वजनिक स्वामित्व को प्राधान्य प्रदान करती है और वर्ग विरोध मिटा देती है। इसके फलस्वरूप मनुष्य समाज के जीवन को सचेत होकर निर्देशित करने में समर्थ होता है। समाजवाद की विजय के साथ समाज अनिवार्यता के राज्य से स्वतन्त्रता के राज्य में भारी छलांग लगाता है। इसके अलावा, ज्यों-ज्यों समाज कम्युनिज्म में अग्रसर होता है, त्यों-त्यों मनुष्य की स्वतंत्रता अधिक विस्तीर्ण और अधिक विविधतापूर्ण होती जाती है, प्रकृति और सामाजिक प्रक्रियाओं पर उसकी प्रभुता बढ़ती है और वह अपने वैयक्तिक हितों एवं आकांक्षाओं को समाज के उदात्त आदर्शों के साथ समंजित करना सीखता है।

समाज मे वास्तविक स्वतंत्रता की वृद्धि की एक अनिवार्य शर्त जनता के सचेत उत्पादक एव राजनीतिक कार्यकलाप होते हैं, ऐसे कार्यकलाप जो मार्क्स-वादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के ज्ञान एवं कुशल उपयोग पर आधारित हों।

अनिवार्यता और स्वतंत्रता का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों में प्रयुक्त हुआ है। वहां सच्ची स्वतंत्रता ने जड़ें जमा ली हैं और अब इन्हे कोई उखाड़ नही सकता। यह विजयी समाज-वादी क्रान्ति के द्वारा उपलब्ध हुआ है। जनगण के वीरत्वपूर्ण श्रम एवं निस्स्वार्थ प्रयास ने इसे हासिल कराया है।

पर समाजवाद में स्वतन्त्रता उपलब्ध हो जाने का यह अर्थ नहीं कि ऐतिहासिक अनिवार्यता कार्यशील नहीं रह गयी, वस्तुगत नियमों ने काम करना बन्द कर दिया। समाजवाद में भी अनिवार्यता मनुष्य को स्वतन्त्र गतिविधियों का वस्तुगत आधार रहती है और वस्तुगत नियम अपना कार्य करते रहते हैं। लेकिन जनता इन नियमों का सचेत ढंग से इस्तेमाल करती है।

४. समकालीन पूंजीवादी समाजशास्त्र का अवैज्ञानिक स्वरूप

ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास का वैज्ञानिक सिद्धान्त है जो मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का सही रास्ता बतलाता है। इस कारण प्रतिक्रिया-वादी पूंजीपतियों और उनके सिद्धान्तवेत्ताओं को यह फूटी आंख नहीं सुहाता। कम्युनिज्म की ओर मानव जाति की प्रगति को रोकने में पूंजीवादी सर्वथा असमर्थ हैं। इस बेबसी के कारण वे चाहते हैं कि जैसे बने वैसे ऐतिहासिक प्रगति में रोड़े अटकाएं और पूंजीवादी व्यवस्था की जिन्दगी लम्बी करें। इसके

लिए वे हर तरह के उपायों का सहारा लेते हैं—आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक। समकालीन पूंजीवादी समाजशास्त्र उनके बौद्धिक तरकस का महत्त्वपूर्ण तीर है।

इस समाजशास्त्र में नाना पथ और नाना प्रवृत्तियां हैं। पर सब की जड़ में भाववाद और अधिभौतिकता है।

सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों का परित्याग

समकालीन पूंजीवादी समाजशास्त्र की सबसे लाक्षणिक विशेषता यह है कि वह सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों को अस्वीकार करता है। विभिन्न समाजशास्त्रीय प्रवृत्तियों में यह अस्वीकृति भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होती है।

जो खुले भाववादी हैं, वे साफ-साफ कहते हैं कि ऐतिहासिक नियम जैसी कोई चीज है ही नहीं, यह कि इतिहास तो विशृंखलता और संयोग का एक अज्ञात क्षेत्र है।

मनोवैज्ञानिक मत के हामी कहते हैं कि सामाजिक विकास का आधार मनोवैज्ञानिक तत्वों में निहित है—मनुष्य की इच्छाओं, अभिलाषाओं और सहजवृत्तियों में। उनके मतानुसार सामाजिक अराजकता और पूंजीवादी समाज में मेहनतकशों के कष्ट का मूल कारण पूंजीवाद के वस्तुगत नियम नहीं हैं, वैयक्तिक पूंजीवादी स्वामित्व उनकी जड़ नहीं है, उनकी जड़ तो है मजदूरों की मनोवृत्ति की खामी। फलतः प्रमुख सामाजिक बुराइयों के इलाज के लिए यह नुस्खा पेश किया जाता है कि लोगों की मनोवृत्ति को दोषहीन बनाया जाये, न कि पूंजीवाद का उन्मूलन किया जाये।

एक और मत है—जैविकीय मत। मुंह से तो वह वैज्ञानिक समाजशास्त्र का समर्थक है। पर वस्तुतः वह सामाजिक विकास के असल नियमों के स्थान पर जैविकी के नियमों को स्थापित करता है। वह मनुष्य को अस्तित्व के लिए अन्ध-संघर्ष करने वाले पशुओं की श्रेणी में ला बिठाता है। "प्राकृतिक" नियमों का इस्तेमाल शोषण, आक्रामक युद्धों, उपनिवेशवाद, नस्लवाद तथा पूंजीवाद के अन्य कुत्सित लक्षणों को उचित ठहराने के लिए किया जाता है।

जैविकी समाजशास्त्री यह समझने से इनकार करते हैं कि सामाजिक विकास के नियमों को मात्र जैविकीय नियम नहीं माना जा सकता, क्योंकि समाज अपने विशिष्ट नियमों के अनुसार विकास करता है जो पशुओं और पौधों के विकास के नियमों से गुणात्मक रूप में भिन्न है। सामाजिक विकास के नियमों को प्रकृति के नियमों के साथ एकाकार करने की चेष्टा के विषय में लेनिन ने कहा था कि यह है तो बहुत आसान, पर यह नितान्त निष्फल, बाल की खाल निकालने जैसी व्यर्थ चेष्टा है।*

का खिलौना बना देता है और उसे अपने कार्यों को पहले से निर्धारित कर
का अवसर प्रदान नहीं करता।

समाजवाद ही यह संभव बनाता है कि ऐतिहासिक अनिवार्यता पर क
पाया जाय और सच्ची स्वतन्त्रता हासिल की जा सके। समाजवादी क
सार्वजनिक स्वामित्व को प्राधान्य प्रदान करती है और वर्ग विरोध मिटा दे
है। इसके फलस्वरूप मनुष्य समाज के जीवन को सचेत होकर निर्देशित क
में समर्थ होता है। समाजवाद की विजय के साथ समाज अनिवार्यता के राज
स्वतंत्रता के राज्य में भारी छलांग लगाता है। इसके अलावा, ज्यों-ज्यों सम
कम्युनिज्म में अग्रसर होता है, त्यों-त्यों मनुष्य की स्वतंत्रता अधिक विस्
और अधिक विविधतापूर्ण होती जाती है, प्रकृति और सामाजिक प्रक्रियाओं
उसकी प्रभुता बढ़ती है और वह अपने वैयक्तिक हितों एवं आकांक्षाओं
समाज के उदात्त आदर्शों के साथ समंजित करना सीखता है।

समाज में वास्तविक स्वतंत्रता की वृद्धि की एक अनिवार्य शर्त जनता
सचेत उत्पादक एवं राजनीतिक कार्यकलाप होते हैं, ऐसे कार्यकलाप जो मार
वादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के ज्ञान एवं कुशल उपयोग पर आधारित हों।

अनिवार्यता और स्वतंत्रता का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त सोवि
संघ और अन्य समाजवादी देशों में प्रयुक्त हुआ है। यहां सच्ची स्वतंत्रता
जड़ें जमा ली हैं और अब इन्हे कोई उखाड़ नहीं सकता। यह विजयी सम
वादी क्रान्ति के द्वारा उपलब्ध हुआ है। जनगण के वीरतापूर्ण श्रम
निस्स्वार्थ प्रयास ने इसे हासिल कराया है।

पर समाजवाद में स्वतंत्रता उपलब्ध हो जाने का यह अर्थ नहीं
ऐतिहासिक अनिवार्यता कार्यशील नहीं रह गयी, वस्तुगत नियमों ने काम
बन्द कर दिया। समाजवाद में भी अनिवार्यता मनुष्य की स्वतंत्र गति
का वस्तुगत आधार रहती है और वस्तुगत नियम अपना कार्य करते र
लेकिन जनता इन नियमों का सचेत ढंग से इस्तेमाल करती है।

४. समकालीन पूंजीवादी समाजशास्त्र का अवैज्ञानिक स्वरूप

ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास का वैज्ञानिक सिद्धा
मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का सही रास्ता बतलाता है। इस कारण
वादी पूंजीपतियों और उनके सिद्धान्तवेत्ताओं को वह फूटी आंख नहीं
कम्युनिज्म की ओर मानव और
असमर्थ हैं।
प्रगति में रो

यह है कि भविष्य से उन्हें भय लगता है, क्योंकि उसमे पूंजीवाद के लिए "लीला समाप्त" की तख्ती लगी हुई है। उन्हें नये कम्युनिस्ट जगत का भय सता रहा है।

"प्रगति" और "विकास" जैसी धारणाओं के मुकाबले मे आज के पूंजीवादी समाजशास्त्री "सामाजिक परिवर्तन" शब्द का इस्तेमाल करते हैं और इसका प्रयोग वे समाज मे होनेवाली उन अनेकानेक गौण प्रक्रियाओ के लिए करते हैं जिनका इतिहास की धारा पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा करके वे उन आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तनों की ओर से ध्यान फेरना चाहते हैं जो इस समय समाज मे हो रहे हैं। वे इनके महत्व को घटाना चाहते हैं और हमारे युग की ज्वलन्त सामाजिक समस्याओ के समाधान से भी कतराना और बचना चाहते हैं।

पूंजीवादी समाजशास्त्री समाज के "भवर" में पड़ जाने, "अवरुद्ध" हो जाने और "पीछे की दिशा मे हटने" आदि के अनेक सिद्धान्तों का भी प्रचार कर रहे हैं। यह भी उनके द्वारा सामाजिक प्रगति के विचार के परित्याग कर दिये जाने को प्रगट करता है।

तीसरे दशक मे जर्मन साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने "भंवर" सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। "प्राची का ह्रास" नामक अपनी पुस्तक मे उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि समाज एक असाध्य "भवर" मे फस गया है जिससे वह निकल नही सकता। इस भवर के अन्दर तीन दौरों की बारम्बार पुनरावृति होती है। ये हैं—उदय, शिखर और ह्रास। स्पेंगलर के मतानुसार पूंजीवाद सभ्यता और संस्कृति का शिखर है। उसके ह्रास के साथ मानव जाति अनिवार्यतया फिर बबरता के दौर में जा पड़ेगी। इससे निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीवाद से लड़ना व्यर्थ है (सर्वोत्तम को बदल कर भला रही को क्यो हासिल किया जाय ?) और सर्वहारा क्रान्ति तथा समाजवाद की कोई जरूरत नही है। वस्तुत ये तो असम्भव चीजें हैं, क्योंकि समाज असाध्य भवर से बाहर निकल ही नही सकता।

आर्नल्ड टायनबी ने "ऐतिहासिक भवर" के सिद्धान्त को पुनरुज्जीवित किया है। वह समाज के सार्वत्रिक प्रगतिशील विकास को नहीं मानते। उनके कथनानुसार यह "प्रगति का भ्रम मात्र है"।

अत. कोई भी हथकडा ऐसा नही बचा जिसका इस्तेमाल पूंजीवादियों के चाकरों ने पूंजीवादी व्यवस्था को उचित ठहराने के लिए न किया हो। उनके पास समाजवाद और मार्क्सवाद लेनिनवाद के विरुद्ध एक से एक जहरीले तीर हैं, पूंजीवाद की भूरी-भूरी प्रशसा है और "जनता का पूंजीवाद" और "कल्याण-राज्य" जैसी अनेकानेक मिथ्या उक्तियां हैं। लेकिन साम्राज्यवाद के हिमायती चाहे जितनी कलाबाजियां दिखायें, इतिहास मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सत्य को निरन्तर सिद्ध करता जाता है।

सूक्ष्म समाजशास्त्र भी (जिसे अक्सर व्यवहारवादी समाजशास्त्र भी कहते हैं) सामाजिक विकास के प्रमुख नियमों को अस्वीकार करता है। सूक्ष्म समाजशास्त्री सामाजिक जीवन के ज्ञान को खुलकर तो अस्वीकार नहीं करते। पर वे सामाजिक व्यापारों की जटिल शृंखला के अन्दर केवल पूंजीवादी यथार्थ के छोटे-मोटे तथ्यों का ही अध्ययन करते हैं। वे उनके पीछे छिपे समाज के विकास के आन्तरिक नियमों को देखना नहीं चाहते हैं। व्यवहारतः इसका अर्थ विज्ञान से मुंह मोड़ना है—हमारे युग की बुनियादी सामाजिक समस्याओं के समाधान से कतराना है।

सामाजिक विकास के नियमों को मानने से इनकार करना सामाजिक जीवन में धार्मिक आस्था के लिए मार्ग प्रशस्त करने की चेष्टा है। यह कोरे संयोग की बात नहीं है कि अनेक पूंजीवादी समाजशास्त्री मानते हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रिया ईश्वर द्वारा पूर्वनिर्दिष्ट है। अंग्रेज इतिहासज्ञ आर्नल्ड टायनबी ने लिखा है कि इतिहास का लक्ष्य ईश्वर का राज्य स्थापित करना है और स्वयं इतिहास "ईश्वर का स्वप्रगटीकरण है।"

सामाजिक विकास के नियम-अधिशासित स्वरूप को ठुकरा कर अनेक पूंजीवादी सिद्धान्तविद् इतिहास के वास्तविक पथ को विकृत करते हैं, पूंजीवाद को चमका-दमका कर पेश करते हैं और उसकी प्रतिगामी गृह और वैदेशिक नीतियों को उचित ठहराने की कोशिश करते हैं।

सामाजिक प्रगति की अस्वीकृति

समकालीन पूंजीवादी समाजशास्त्र का अवैज्ञानिक स्वरूप इस चीज से भी प्रगट हो जाता है कि वह ऐतिहासिक प्रगति और समाज की अग्रगति को नहीं मानता।

इस सम्बंध में यह चीज उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया के स्वरूप के बारे में समाजशास्त्रियों के मत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। जब नवोदित पूंजीपति वर्ग सत्ता के लिए संघर्ष कर रहा था, उस समय प्रगतिशील पूंजीवादी लोग सामाजिक प्रगति की बहुत बातें करते थे। प्रगति का विचार उनके हाथ में पुरानी सामन्ती व्यवस्था को तोड़ने और अधिक प्रगतिशील पूंजीवादी समाज की स्थापना करने का एक हथियार था। पर जब पूंजीपति वर्ग के हाथ में सत्ता आ गयी तो यह अद्भुत व्यापार देखने में आया कि सामाजिक प्रगति की उसकी धारणा नितांत एकपक्षीय बन गयी। पूंजीपति वर्ग के सिद्धान्तवेत्ता पूंजीवादी समाज की तारीफ करने लगे, उसे स्वतन्त्रता एवं न्याय की शाश्वत व्यवस्था, प्रगति के आदर्शों का मूर्त रूप, बतलाने लगे। पूंजीवादी समाजशास्त्री अब कहते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्रगति के शिखर पर पहुंच चुका है और आगे सड़क बन्द है। आगे भी प्रगति हो सकती है, इससे उनके इनकार का कारण

यह है कि क्रान्ति से उन्हें भय लगता है, क्योंकि उसमें पूंजीवाद के लिए "लीला समाप्ति' की घण्टी लगी हुई है। उन्हें नये कम्युनिस्ट जगत का भय सता रहा है।

"प्रगति" और "विकास" जैसी धारणाओं के मुकाबले मे आज के पूंजीवादी समाजशास्त्री "सामाजिक परिवर्तन" शब्द का इस्तेमाल करते हैं और इसका प्रयोग वे समाज मे होनेवाली उन अनेकानेक गौण प्रक्रियाओं के लिए करते हैं जिनका इतिहास की धारा पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा करके वे उन आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तनों की ओर से ध्यान फेरना चाहते हैं जो इस समय समाज में हो रहे हैं। वे इनके महत्व को घटाना चाहते हैं और हमारे युग की ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं के समाधान से भी कतराना और बचना चाहते हैं।

पूंजीवादी समाजशास्त्री समाज के "भंवर" मे पड जाने, "अवरुद्ध" हो जाने और "पीछे की दिशा में हटने" आदि के अनेक सिद्धान्तो का भी प्रचार कर रहे हैं। यह भी उनके द्वारा सामाजिक प्रगति के विचार के परित्याग कर दिये जाने को प्रगट करना है।

तीसरे दशक मे जर्मन साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने "भंवर" सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। "प्राची का ह्रास" नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि समाज एक असाध्य "भवर" मे फस गया है जिससे वह निकल नही सकता। इस भवर के अन्दर तीन दौरो की बारम्बार पुनरावृत्ति होती है। ये हैं—उदय, शिखर और ह्रास। स्पेंगलर के मतानुसार पूंजीवाद सभ्यता और संस्कृति का शिखर है। उसके ह्रास के साथ मानव जाति अनिवार्यतया फिर बबरता के दौर मे जा पडेगी। इससे निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीवाद से लड़ना व्यर्थ है (सर्वोत्तम को बदल कर सबसे रद्दी को क्यों हासिल किया जाय ?) और सर्वहारा क्रान्ति तथा समाजवाद की कोई जरूरत नही है। वस्तुत ये तो असभव चीजें हैं, क्योंकि समाज असाध्य भवर से बाहर निकल ही नही सकता !

आर्नल्ड टायनबी ने "ऐतिहासिक भवर" के सिद्धान्त को पुनरुज्जीवित किया है। वह समाज के सार्वत्रिक प्रगतिशील विकास को नही मानते। उनके कथनानुसार यह "प्रगति का भ्रम मात्र है"।

अत. कोई भी हथकडा ऐसा नही बचता जिसका इस्तेमाल पूंजीवादियों के चाकरो ने पूंजीवादी व्यवस्था को उचित ठहराने के लिए न किया हो। उनके पास समाजवाद और मार्क्सवाद लेनिनवाद के विरुद्ध एक से एक जहरीले तीर हैं, पूंजीवाद की भूरी-भूरी प्रशंसा है और "जनता का पूंजीवाद" और "कल्याण-राज्य" जैसी अनेकानेक मिथ्या उक्तियां हैं। लेकिन साम्राज्यवाद के हिमायती चाहे जितनी कलाबाजियां दिखायें, इतिहास मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सत्य को निरन्तर सिद्ध करता जाता है।

विज्ञान एवं समाज का अनुभव पूरे इतिहास के अन्दर पूंजीवादी समाजशास्त्रियों के मतों का खंडन करते हैं और सिद्ध करते हैं कि समाज का विकास एक अग्रगामी, प्राकृतिक, ऐतिहासिक प्रक्रिया है जो मनुष्य से स्वतंत्र वस्तुगत नियमों का अनुसरण करती है। समाज का इतिहास विकास की सरलतर, निम्नतर विरचनाओं से जटिलतर, उच्चतर विरचनाओं में क्रान्तिकारी रूपान्तरणों की एक अनन्त कड़ी है। सामाजिक प्रगति भौतिक उत्पादन के विकास और उन्नति पर निर्भर करती है। उत्पादन का विकास मनुष्य द्वारा जीवन संघर्ष में प्रयुक्त सामान्यतम औजारों (डण्डों और पत्थरों) से लेकर विद्युत और ऐटमी शक्ति द्वारा चालित नवीनतम आटोमैटिक मशीनों और साज-सामान तक हुआ है। उत्पादन की प्रगति के साथ-साथ सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्र भी विकास करते हैं।

अध्याय ११

उत्पादन की पद्धति — समाज के जीवन की भौतिक बुनियाद

ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य विशेषता यह स्थापना है कि उत्पादन पद्धति समाज के विकास में निर्णायक भूमिका अदा करती है।

लोग भोजन, वस्त्र, आवास और जीवन की अन्य आवश्यकताओं के बिना नहीं रह सकते। पर प्रकृति इन्हें खुद बना कर हमारे हवाले नहीं करती। इन्हें पैदा करने के लिए मनुष्य को काम करना पड़ता है। अतः श्रम सामाजिक जीवन का आधार है, मनुष्य के लिए प्राकृतिक आवश्यकता है। श्रम के बिना, उत्पादक कार्यकलाप के बिना, मानव जीवन ही असम्भव हो जायेगा। अतः भौतिक सम्पदा का उत्पादन सामाजिक विकास का मुख्य निर्धारक उपादान है।

उत्पादन पद्धति उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बधों का, जो उत्पादन के दो पहलू हैं, सम्पूर्ण योग है।

१. उत्पादन पद्धति। उत्पादक शक्तियां और उत्पादन सम्बंध

उत्पादन की शक्तियां

श्रम की प्रक्रिया में लोग प्राकृतिक वस्तुओं को अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए रूपान्तरित करते हैं। उदाहरण के लिए, मशीन बनाने के लिए खनिज लोहा निकालते हैं, उसे गलाते हैं, गला कर इस्पात बनाते हैं और तब आवश्यकतानुसार उसे मशीन में परिणत करते हैं।

भौतिक उत्पादन श्रम की वस्तुओं और साधनों के बिना असंभव है।

श्रम की वस्तुएं वे चीजें हैं जिन पर मानव श्रम लगाया जाता है। श्रम का साधन हैं मशीनें, साज-सामान, औजार, उत्पादन के लिए काम आनेवाली इमारतें, परिवहन, आदि। श्रम की वस्तुएं और साधन—ये ही हैं उत्पादन के साधन।

उत्पादन के औजार वे होते हैं जिन्हें लेकर मनुष्य श्रम की वस्तुओं पर क्रियाशील होता है और इन वस्तुओं को गढ़ता है। ये श्रम का सबसे महत्वपूर्ण साधन होते है। बिना श्रम के औजारों के उत्पादन की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रकृति अपनी दौलत अपनी इच्छा से हमारे हवाले नहीं करती और इस दौलत को अकेले शरीर-बल से ही हासिल नही किया जा सकता। मनुष्य इन औजारों की मदद से ही जीवन-निर्वाह के साधन हासिल कर सकता है, और ये औजार जितने ही उत्तम होते हैं उतनी ही विपुल मात्रा में मनुष्य जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त करता है।

पर श्रम के औजार स्वयमेव भौतिक साधन नही पैदा कर देते। उन्हें बनाना होता है और इन्हें इस्तेमाल में लाना होता है। अगर मनुष्य हाथ न लगाये तो बढ़िया से बढ़िया मशीन भी धातु का व्यर्थ अम्बार मात्र बन कर रह जायेगी। मनुष्य में ही औजार को चालू करने और भौतिक उत्पादन का संगठन करने की क्षमता है। इसीलिए मनुष्य उत्पादन का असली उपादान है।

उत्पादन की शक्तियां अथवा उत्पादक शक्तियां उत्पादन के साधनों, और सर्वोपरि श्रम के सभी औजारों, जिन्हें मनुष्य ने तैयार किया है, और उन लोगों का जो भौतिक सम्पदा पैदा करते हैं, कुल योग होती हैं। उत्पादक शक्तियां प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्बन्ध को और प्रकृति पर मनुष्य की सत्ता को निर्धारित करती हैं—मेहनतकश इंसान उत्पादक शक्तियों का मुख्य अंग है। इंसानों का रचनात्मक श्रम उनके द्वारा निर्मित औजारों को चालू करता है और इन औजारों से जीवन-निर्वाह के आवश्यक साधनों की अपरिमित मात्राएं तैयार करके उन्हें मानव जाति के हवाले करता है।

उत्पादन सम्बन्ध

उत्पादक शक्तियां भौतिक उत्पादन का एकमात्र उपादान नहीं हैं। उत्पादन हम समाज में संगठित होकर और मिलजुलकर ही कर सकते हैं, क्योंकि श्रम का स्वरूप सामाजिक है और सदा ऐसा ही रहा है। मार्क्स ने लिखा है: "उत्पादन के लिए मनुष्य एक-दूसरे के साथ निश्चित सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित करते हैं और इन सामाजिक सम्बन्धों के दायरे में ही प्रकृति पर उनकी क्रिया होती है, उत्पादन होता है।"[1]

उत्पादन की प्रक्रिया में लोगों में जो सम्बन्ध होता है, वही उत्पादन सम्बन्ध है। यह उत्पादन सम्बन्ध भौतिक उत्पादन का अभिन्न अंग है। इस तरह सारी उत्पादन पद्धति उत्पादक शक्तियों और तदनुरूप उत्पादन सम्बन्धों के मध्य अटूट एकता के रूप में प्रकट होती है।

---

१. मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खंड १, मास्को, १९५८, पृष्ठ ८९।

आदिम समाज के आरम्भ काल मे लोगो में श्रम के द्वारा संसर्ग था। उदाहरणतया, घुमक्कड शिकारी कबीलो मे यह संसर्ग साथ मिलकर शिकार करने में प्रकट होता था। उत्पादक शक्तियों के बढने तथा श्रम-विभाजन की वृद्धि के साथ लोगों के मध्य संसर्ग अधिकाधिक विविधतापूर्ण होते गये। फसल पैदा करनेवालो और ढोर रखनेवालो के, किसानों और कारीगरो के, कारीगरो और सौदागरो के तथा ऐसे ही अन्य प्रकार के संसर्ग बने। मशीन उद्योग के विकास के साथ उत्पादको के संसर्ग खास तौर से विविधतापूर्ण और बहुपक्षीय बन गये।

उत्पादन सम्बंध स्वामित्व के रूप पर आधारित होते है। स्वामित्व का रूप हुआ उत्पादन के साधनो—भूमि, खनिज संसाधन, वन, जल, कच्चे माल, कारखाने की इमारत, श्रम के औजार आदि—के साथ लोगो के सम्बंध। स्वामित्व के रूप पर उत्पादन मे विभिन्न सामाजिक समूहों की स्थिति का प्रभुत्वशील अथवा अधीनस्थ होना, उत्पादन प्रक्रिया मे उनका आपसी सम्बंध, अथवा, मार्क्स के कथनानुसार, उनके कार्यकलाप का परस्पर आदान-प्रदान, निर्भर करता है। यदि सम्पत्ति का सार्वजनिक स्वामित्व हुआ (यानी उत्पादन के साधनो की स्वामी जनता हुई), तो उत्पादन सम्बंध शोषणमुक्त जनगण के मध्य सहयोग और परस्पर सहायता का रूप ग्रहण कर लेते हैं। समाजवाद मे यही होता है। यदि सम्पत्ति का स्वामित्व निजी हुआ (उत्पादन के साधन शोषक अल्पसंख्या की मिलकियत हुए), तो उत्पादन सम्बंध प्रभुता और अधीनता के सम्बंध होते हैं। पूंजीवाद मे यही खास चीज होती है। अन्य कुछ हो भी नही सकता है, क्योंकि वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज मे मेहनत करनेवाले उत्पादन के साधनो से वंचित और इन साधनों के मालिक शोषकों के लिए काम करने को मजबूर होते हैं।

वितरण का रूप भी उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के स्वरूप पर निर्भर करता है। निजी पूंजीवादी स्वामित्व पूंजीवाद के अन्तर्गत समाज की भौतिक सम्पदा के बहुत ही अन्यायपूर्ण वितरण को निर्धारित करता है। पैदा की गयी दौलत का काफी बड़ा हिस्सा उत्पादन के साधनो का स्वामी प्राप्त करता है, यद्यपि वह उत्पादन मे प्रत्यक्ष भाग नही लेता। समाजवाद मे सार्वजनिक स्वामित्व काम के मुताबिक वितरण का सिद्धान्त सुनिश्चित करता है जो सभी मेहनतकशो के हितो के अनुरूप होता है। समाजवाद मे समस्त उत्पादित दौलत जनता की होती है।

उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के रूप और उनके फलस्वरूप उत्पादन में विभिन्न [illegible] की स्थिति तथा भौतिक सम्पदा के वितरण के रूप—ये [illegible] सम्बंधो के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

उत्पादन सम्बंध वास्तुगत रूप से, लोगों की इच्छा और अभिलाषा से स्वतंत्र बनते हैं। उत्पादन प्रक्रिया में लोगों के बीच निश्चित सम्बंध तभी प्रकट होते हैं जब उत्पादक शक्तियां—ये सम्बंध इन शक्तियों के अनुरूप होते हैं—परिपक्व हो जाती हैं।

उत्पादन पद्धति अपने ही हेतुओं के बल से, अपनी खास द्वन्द्वात्मकता से विकसित होती है।

२. उत्पादक शक्तियों की द्वन्द्वात्मकता और उत्पादन सम्बंध

उत्पादन कभी स्थिर नहीं रहता, वह निरन्तर बढ़ता रहता है, विकसित होता और सुधरता-संवरता रहता है। अन्य कुछ हो भी नहीं सकता, क्योंकि जिन्दगी के लिए भौतिक सम्पदा का उत्पादन करते रहना आवश्यक है, और बढ़ते हुए पैमाने पर उत्पादन करना आवश्यक है। यह आवश्यक है, क्योंकि धरती-वासियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है और उनकी आवश्यकताएं भी निरन्तर बढ़ती जाती हैं। आदिम मनुष्य की आवश्यकताएं बिलकुल अल्प थी। मोटा-झोटा आहार, जानवर की एक खाल, धूप-बरसात से बचने के लिए सिर के ऊपर एक छत, और एक अलाव, बस। किन्तु आज के मानव की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताएं विशाल हैं।

निरन्तर बढ़ती हुई संख्या की बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति का एकमात्र उपाय यही है कि उत्पादन को सतत विकसित और उन्नत किया जाय। उत्पादन का विकास एक वस्तुगत आवश्यकता है, सामाजिक जीवन का एक नियम है। समाज का इतिहास सामाजिक उत्पादन का नियम अधिशासित विकास है। वह एक उत्पादन पद्धति का, जो निम्नतर है, स्थान दूसरी, उच्चतर, उत्पादन-पद्धति द्वारा लिये जाने की अनिवार्य प्रक्रिया है।

उत्पादन कैसे विकसित होता है?

उत्पादन का विकास उत्पादक शक्तियों में परिवर्तन के साथ आरम्भ होता है। पर जैसा कि हम देख चुके हैं, उत्पादक शक्तियां उत्पादन के औजार और इन औजारों का इस्तेमाल करनेवाले, इन दोनों का योग हैं। उत्पादक शक्तियों के इन दो तत्वों में से कौन पहले विकास करता है? इतिहास बतलाता है कि उत्पादक शक्तियों के ढांचे के अन्दर उत्पादन के औजार पहले विकसित होते हैं। मेहनत हलकी करने के लिए, कम से कम श्रम व्यय करके और अधिक भौतिक सम्पदा पैदा करने के लिए हम मौजूदा औजारों को लगातार सुधारते-संवारते हैं और नये-नये तथा अधिक कार्यकुशल औजार निकालते रहते हैं।

उत्पादन के औजारों का विकास और सुधार, अर्थात तकनीकी प्रगति उत्पादन में लगे लोगों के काम का नतीजा होती है। पर श्रम के औजारों के सुधार के साथ-साथ लोग खुद भी विकास करते हैं। उत्पादन सम्बंधी उनका प्राविधिक ज्ञान और दक्षता बढ़ते जाते हैं और नये-नये धंधे पैदा होते हैं। अन्ततोगत्वा श्रम के औजारों के सुधार तथा लोगों के विकास के साथ उत्पादन प्रक्रिया मे लोगों के सम्बध—उत्पादन सम्बध—भी बदल जाते हैं।[1]

उत्पादक शक्तियां उत्पादन सम्बधों को उत्पन्न और निर्धारित करती हैं। पर किसी खास समय की उत्पादक शक्तियां केवल निश्चित उत्पादन सम्बधो को ही पैदा करती हैं, जो इन शक्तियों की आन्तरिक प्रकृति से मेल खाते हैं। सामन्तवाद के अन्दर उत्पन्न पूंजीवादी कारखाना-उत्पादन ने पूंजीवादी उत्पादन सम्बधों को जन्म दिया, किसी अन्य उत्पादन सम्बध को नहीं।

उत्पादन सम्बध उत्पादक शक्तियों पर आधारित होते हैं, पर वे स्वय भी निष्क्रिय नही रहते। वे उत्पादन शक्तियों पर सक्रिय प्रभाव डालते हैं और ऐसा करते हुए उनके विकास को तेज या मन्द करते हैं। उत्पादन शक्तियों की प्रकृति से मेल खानेवाले प्रगतिशील, नये उत्पादन सम्बध सामाजिक उत्पादन के विस्तार को तेज करते और उत्पादक शक्तियों के विकास में प्राथमिक उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। दूसरी ओर, उत्पादक शक्तियों के विकास से पिछड़े हुए पुराने उत्पादन सम्बध उनकी अग्रगति में रुकावट डालते हैं।

उत्पादन के विकास के लिए आवश्यक है कि उत्पादन सम्बध उत्पादक शक्तियों की प्रकृति के साथ मेल खायें। सभी सामाजिक-आर्थिक विरचनाओं मे एक-न-एक रूप में, यह चीज होती रही है। पर समाजवाद से पूर्व की विरचनाओं मे जो निजी सम्पत्ति एव शोषण पर आधारित थी, उत्पादन सम्बध विकासशील उत्पादन शक्तियों के साथ स्थायी तौर पर मेल नहीं खा सकते। किसी उत्पादन पद्धति की आरम्भिक मंजिल मे ही उत्पादन सम्बध उत्पादक शक्तियों के स्वरूप के साथ मेल खाते हैं और फलत उत्पादन के विकास में प्राथमिक उत्प्रेरक का काम करते हैं। इसके बाद उत्पादन सम्बध धीरे-धीरे अप्रचल और उत्पादक शक्तियों के विकास से पीछे पड़ जाते हैं और फलत नई उत्पादक शक्तियों और पुराने उत्पादन सम्बधो मे अन्तर्विरोध पैदा हो जाता है।

यह अन्तर्विरोध आकस्मिक नही है। इसके पीछे सामाजिक उत्पादन के विभिन्न पक्षों का अन्तरान्तरिक स्वरूप होता है। उत्पादक शक्तियां उत्पादन का सबसे सचल उपादान हैं। वे सदा बदलती रहती हैं, और उस समय उत्पादन पद्धति की चारदीवारी के अन्दर भी ऐसे परिवर्तन काफी बड़े हो सकते हैं।

---

१. विस्तृत विवरण के लिए पृष्ठ १९८-२०२ देखिए।

उत्पादन सम्बधों में भी कुछ तब्दीलियां आती हैं, पर उस खास उत्पादन पद्धति की चारदीवारी में मूलतः वे अपरिवर्तित ही रहते हैं। उदाहरण के लिए, जब से पूंजीवाद आया है, उसकी उत्पादक शक्तियों में गहरे परिवर्तन हो चुके हैं, पर उत्पादन सम्बंध पहले की भांति आज भी निजी पूंजीवादी स्वामित्व पर आधारित हैं।

उत्पादन सम्बंध कम गतिमान होने के कारण उत्पादन शक्तियों के विकास के साथ कदम मिला कर नहीं चलते, वे पीछे पड़ जाते हैं और पीछे पड़कर उत्पादक शक्तियों की प्रगति में रुकावट डालने लगते और उनके साथ टकराने लगते हैं। उत्पादक शक्तियां ज्यों-ज्यों और विकसित होती हैं, उत्पादन सम्बधों की बाधक भूमिका अधिकाधिक महसूस होने लगती है, और दोनों का अन्तर्विरोध अधिक तीव्र हो जाता है। अन्ततः यह संघर्ष बन जाता है। पुराने उत्पादन सम्बधों को नष्ट करने और नये उत्पादन सम्बंधों की स्थापना के लिए सामाजिक क्रान्ति आवश्यक हो जाती है।

वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बधों की यही वस्तुगत द्वन्द्वात्मकता है। अब हम यह देखेंगे कि मानव समाज के विकास में यह द्वन्द्वात्मकता किस तरह कार्य करती है।

३. उत्पादन पद्धतियों के विकास एवं नियम अधिशासित क्रमों के रूप में समाज का इतिहास

उत्पादन पद्धति सामाजिक जीवन का भौतिक आधार है जो उसकी अन्य सभी विशेषताओं को निर्धारित करती है। इसलिए समाज के इतिहास को सर्वोपरि उत्पादन पद्धतियों के विकास एवं नियम-अधिशासित क्रम का इतिहास मानना होगा।

इतिहास हमें पांच उत्पादन पद्धतियों के क्रम के बारे में बताता है। आदिम सामुदायिक, दास, सामन्ती, पूंजीवादी और समाजवादी। हम इसी क्रम से इन पर विचार करेंगे।

आदिम समाज समाज का इतिहास मानव के उदय के साथ आरम्भ होता है जो श्रम के औजार बनाने और प्रयोग करने की अपनी क्षमता के कारण अन्य पशुओं से बिलकुल भिन्न है। मानव के उदय एवं विकास में श्रम का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। श्रम की प्रक्रिया में मनुष्य स्वयं भी ढला और सामाजिक संगठन के उसके रूप पैदा और विकसित हुए।

लोगों के संगठन की प्रथम और निम्नतम अवस्था थी आदिम सामुदायिक व्यवस्था। यह लाखों बरस कायम रही। इस लम्बे अरसे में मनुष्य, जो पहले

प्रकृति प्रदत्त वस्तु (डण्डा और पत्थर) इस्तेमाल करता था, आगे बढ़कर आदिम औजारों के निर्माण तक पहुंचा। ये औजार शुरू में बिल्कुल भोंडे थे पत्थर, लकड़ी, सींग या हड्डी के बने औजार थे—जैसे कुल्हाड़ी, चाकू, छेनी, बर्छी और भाला, मछली पकड़ने का कांटा, आदि। धीरे-धीरे ये औजार सुधारे-सवारे गये। फिर नये औजारों का इस्तेमाल शुरू हुआ—तीर-कमान, नावें, मिट्टी-हांडियां, आदि। मनुष्य ने आग जलाना सीख लिया। यह मानव जाति की प्रगति के लिए बहुत ही बड़े महत्व की बात हुई।

औजारों को सुधारने के साथ साथ मनुष्य अपने काम को भी विकसित और सुधारता गया। पहले कन्द-मूल ही जमा किये जाते थे, आगे चलकर पौधे लगाये जाने लगे और खेती शुरू हुई। जंगली जानवरों का शिकार करने से आगे बढ़कर उन्हें पालना आरम्भ किया गया — पशुपालन शुरू हुआ।

आदिम साम्यवाद में उत्पादक शक्तियों का स्तर अत्यन्त नीचा था, अतः उत्पादन सम्बंध भी तदनुरूप ही थे। वे उत्पादन के साधनों के समान स्वामित्व पर आधारित थे और इसलिए लोगों में सहयोग एवं पारस्परिक सहायता के सम्बंध थे। इन सम्बंधों के पीछे यह तथ्य था कि आदिम औजारों से युक्त मानव प्रकृति की प्रबल शक्तियों के आगे एक साथ रह कर ही, सामूहिक रूप से ही, टिक सकता था। आदिम समाज में लोग समूहों में रहते थे। ये समूह थे—रक्त-सम्बंध पर आधारित कबीले। सामूहिक भूमि पर वे सम्मिलित औजारों से साथ-साथ काम करते थे, उनके आवास सम्मिलित थे जिससे आंधी तूफान और जंगली जानवरों से उनकी रक्षा होती थी। मेहनत का फल वे बराबर-बराबर बांट लेते थे।

आदिम समाज में भी उत्पादक शक्तियां निरन्तर विकसित होती रहीं, गोकि विकास की गति बहुत ही मन्द थी। श्रम के औजार सुधारे-सवारे जाते रहे और दक्षता धीरे-धीरे सचित होती गयी। पत्थर के औजारों से धातु के औजारों में सक्रमण उत्पादन क्षेत्र में बहुत बड़ी छलांग थी। नये औजारों, अर्थात लकड़ी के हल और धातु के फाल, कांसे या लोहे की कुल्हाड़ी आदि ने श्रम को अधिक उत्पादक बना दिया। अधिक बड़े पैमाने पर फसलें उगाना और पशु-धन पैदा करना सभव हो गया। पहला बड़ा सामाजिक श्रम-विभाजन उस समय हुआ जब पशुपालन का धधा खेती-बारी से पृथक हो गया। इसके कुछ समय बाद दस्तकारियां (औजार, हथियार, वस्त्र, जूते आदि बनाना) उत्पादन की अलग शाखा के रूप में सामने आयीं। उत्पादित सामानों का आदान-प्रदान विकसित होने लगा।

श्रम उत्पादकता की वृद्धि के साथ कबीले कुटुम्बों में बटने लगे। निजी सम्पत्ति का आविर्भाव हुआ और कुटुम्ब उत्पादन के साधनों का स्वामी बन

गया। पर उत्पादन के मुख्य साधन मुख्यतया कबीले के भूतपूर्व कुलीन कुटुम्बों के हाथों में केन्द्रित रहे। उत्पादक अपने खुद के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सामान से अधिक सामान पैदा करने लगा, अतः अतिरिक्त उपज के हड़पने और परिणामस्वरूप समाज के कुछ सदस्यों के दूसरों के मत्थे धनिक बनने की संभावना उत्पन्न हुई। निजी सम्पत्ति और माल विनिमय के प्रसार ने कबीले के टूटने की प्रक्रिया तेज कर दी। आदिम समता की जगह सामाजिक असमता ने ले ली। *प्रथम वैमनस्यपूर्ण वर्ग—दास और दास स्वामी—प्रकट हुए।*

इसी तरह उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप आदिम समाज का स्थान दास समाज ने ग्रहण किया।

दास समाज

आदिम समाज से विरासत में मिली उत्पादक शक्तियाँ दास समाज में और विकसित हुईं। लकड़ी और पत्थर के औजारों का स्थान पहले तो कांसे के औजारों ने और उसके बाद लोहे के औजारों ने ले लिया। लकड़ी का हल और धातु का फाल और उसके बाद लकड़ी का हल और लोहे का फाल, धातु की हंसिया और अन्य औजारों ने कृषि में श्रम उत्पादकता को बढ़ा दिया। फसलों के उत्पादन के साथ-साथ फलों और सब्जियों का उत्पादन भी किया जाने लगा। खेतों की सिंचाई के लिए नहरें और आहर बनाये गये। अनाज को पीसने के लिए चक्कियाँ आयीं। खानों से धातु निकालने और गलाने का विकास हुआ। खानों से धातु निकालने के लिए कुदाल और फावड़े जैसे सामान्यतम औजारों से काम लिया जाता था और कच्चे धातु साधारण ओखलों में कूटे जाते थे और आदिम भट्ठियों के अन्दर गलाये जाते थे।

श्रम-विभाजन और तीव्र हुआ। उद्योगों में अनेक शाखाएं फूटीं—धातु गलाना, तपाना और पीटना, औजार, वस्त्र और जूते बनाना, बुनना, चमड़ा कमाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, आदि धंधे शुरू हुए। कारीगर अधिकाधिक विशेष प्रकार के औजारों का इस्तेमाल करने लगे। आदिम सुनारों और धौंकनियों का भी आविष्कार हुआ।

घर बनाना, जहाज बनाना, हथियार बनाना आदि का व्यापक विकास हुआ। शहर बसे और तिजारत का प्रसार हुआ।

दास समाज में उत्पादक शक्तियों के विकास को तदनुरूप उत्पादन सम्बन्धों ने बल प्रदान किया। इन सम्बन्धों का आधार यह था कि दास स्वामी उत्पादन के साधनों का और स्वयं दास एवं उनके द्वारा उत्पादित हर चीज का पूर्ण स्वामी था। स्वामी दास के हाथ में वे न्यूनतम चीजें ही छोड़ता था जिनसे वह तन और प्राण साथ रख सके।

दास समाज में प्रभुत्व और अधीनता का रिश्ता था। मुट्ठीभर दास-स्वामी दास अवाम का, जो सभी अधिकारों से वंचित थे, क्रूरता के साथ शोषण करते थे। कुछ समय तक तो इन सम्बन्धों ने उत्पादक शक्तियों के विकास को बढ़ावा दिया। लेकिन फिर उनकी ये सम्भावनाएं समाप्त हो गयीं और वे सामाजिक उत्पादन के विस्तार में बाधक होने लगे। उत्पादन का तकाजा था कि औजारों में सतत सुधार किया जाय, उच्चतर श्रम-उत्पादकता हो। पर दास की इसमें कोई दिलचस्पी न थी, क्योंकि इससे उसकी स्थिति में तनिक भी सुधार नहीं होता। इसके अलावा, दास स्वयं—जो उस समय मुख्य उत्पादक शक्ति था—अमानवीय शोषण के कारण शरीर और मन दोनों ही में हीन स्थिति में पहुंच गया।

वक्त गुजरने के साथ दास समाज में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों का अन्तर्विरोध अत्यन्त तीव्र हो गया। यह अन्तर्विरोध दासों के विद्रोहों के रूप में अभिव्यक्त हुआ। निर्ममता के साथ शोषित और चारों ओर से निराश दासों ने अपने मालिकों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहों ने, और साथ ही पड़ोसी कबीलों के आक्रमणों ने दास समाज की नींव को ध्वस्त कर दिया। उसके खंडहरों पर एक नया, सामन्ती समाज खड़ा हुआ।

सामन्ती समाज

उत्पादक शक्तियों का प्रगतिशील विकास सामन्तवाद में भी होता रहा। इसी काल में लोगों ने अपनी शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त जल और वायु की शक्ति का इस्तेमाल करना आरम्भ कर दिया। वे पन-चक्की और हवा-चक्की का इस्तेमाल करने लगे, पालदार जहाज चलाने लगे, आदि। लोहा पीटना सीख लिया गया, कागज, बारूद और पुस्तक मुद्रण का आविष्कार हुआ। और भी कई खोजें की गयीं जिन्होंने मानव जाति के इतिहास में बड़ी भूमिका अदा की।

शिल्प ने और तरक्की की। नये औजारों और मशीनों का ईजाद हुआ, पुरानों को बेहतर बनाया गया। वस्त्र उत्पादन में विशेष प्रगति देखी गयी। उसमें स्पिनिंग ह्वील, रिबन लूम, ट्विस्टिंग मशीन आदि का इस्तेमाल शुरू किया गया। शिल्पियों का श्रम विशेषज्ञतायुक्त बन गया जिससे उत्पादकता में बड़ी वृद्धि हुई। शिल्प और व्यापार के विकास के साथ नगरों की वृद्धि हुई। कुछ नगर तो विश्व के प्रमुख शिल्प और व्यापार केन्द्र बन गये।

नये-नये अनाजों, फलों और सब्जियों की खेती के साथ कृषि ने प्रगति की। जमीन और अच्छी तरह जोती जाने लगी। खादों का प्रयोग शुरू हुआ। पशु-पालन का विस्तार हुआ। हल खींचने और बोझ ढोनेवाले पशुओं का अधिक बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाने लगा और पशुजनित वस्तुओं का उत्पादन भी व्यापक रूप में बढ़ने लगा।

सामन्तवाद में उत्पादक शक्तियों का विकास उत्पादन के सामन्ती सम्बंधों के कारण सुगम बना। इन सम्बधों का आधार यह था कि उत्पादन के साधन (मुख्यतया भूमि) सामन्ती मालिक की मिलकियत थे जो अंशत: भू-दासों का भी स्वामी था। भू-दासों को सामन्ती मालिकों के लिए काम करना पड़ता था और तरह-तरह की बेगार देनी पड़ती थी। सामन्ती मालिक भू दासों को खरीद और बेच सकते थे, पर भू-दासों के जीवन के वे मालिक नहीं थे।

दास समाज की ही तरह सामन्तवाद में भी उत्पादन सम्बंध प्रभुत्व और अधीनता के सम्बध थे, सामन्ती सरदारों द्वारा भू-दासों के शोषण के सम्बध थे। फिर भी ये सम्बध दास समाज के मुकाबले में अधिक प्रगतिशील थे, क्योंकि वे एक हद तक उत्पादकों के अन्दर अपने श्रम के प्रति दिलचस्पी पैदा करते थे। किसानों और दस्तकारों के पास अपनी निजी सम्पत्ति थी (किसान जमीन का एक टुकड़ा, घोड़ा और अन्य जानवर तथा खेती के औजार रख सकता था। दस्तकार के पास अपने औजार या सामान्य यत्र होते थे)। वे सामन्ती चाकरी को अजाम देने के बाद अपने हित के लिए काम कर सकते थे। किसानों और दस्तकारों के औजारों और विधियों को सुधारने में उन्हें दिलचस्पी थी।

समय बीतने के साथ उत्पादक शक्तिया विकसित होती चली गयीं। १६वीं सदी के आरम्भ मे जो बड़ी-बड़ी भौगोलिक खोजें हुई (अमरीका की खोज, भारत के मार्ग का पता लगाया जाना, आदि), उनसे इन शक्तियों की प्रगति को खास तौर से बहुत बढ़ावा मिला। एक अन्तर्राष्ट्रीय मंडी खड़ी होने लगी और विभिन्न मालों की माग बढ़ गयी। दस्तकारी उत्पादन इस माग को पूरा करने मे अब असमर्थ था। दस्तकारी की दूकानों की जगह, जहा दस्तकार माल तैयार करते थे, कारखानों के उत्पादन ने ले ली।

कारखाना उत्पादन से मजदूरों की एक खासी सख्या एक ही छत के नीचे एकत्र हुई। उनमे व्यापक श्रम-विभाजन हुआ और इस प्रकार उनकी श्रम उत्पादकता मे भारी वृद्धि हुई। कारखाना उत्पादन के उदय का अर्थ था कि सामन्ती समाज के भीतर ही नये, पूजीवादी उत्पादन तथा नये, विरोधी वर्ग—पूंजीपति और सर्वहारा, जो इस उत्पादन पद्धति के वर्ग हैं—जन्म ले चुके थे।

कारखाना उत्पादन के आरम्भ के साथ उत्पादक शक्तियां सामन्ती उत्पादन सम्बधो से टकराने लगीं। कारखाना उत्पादन में जरूरत थी मुक्त मजदूर की। मगर सामन्तवाद ने अर्धदासों को भूमि का बंधुआ बना रखा था। कारखाना उत्पादन को व्यापक, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार चाहिए था, पर सकीर्ण सामन्ती अर्थतत्र, उसका अलगाव और प्राकृतिक अर्थव्यवस्था इस बाजार के बनने की राह में रोड़ा अटका रहे थे। यह आवश्यक हो गया कि सामन्ती उत्पादन सम्बंधों की जगह नये, पूजीवादी सम्बंध [illegible]ें। यह काम कई पूंजीवादी

क्रान्तियों द्वारा पूरा किया गया जिनके अन्दर मुख्य लड़ाकू शक्ति भू-दास और पूंजीवादियों के नेतृत्व मे चलनेवाले शहरी आबादी के निचले हिस्से थे ।

पूंजीवादी समाज

पूंजीवाद की उत्पादक शक्तियो की खास विशेषता है मशीनो द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन । दस्तकारो की दूकानो और दस्तकारी के कारखानों का स्थान विशाल फैक्टरियो और खदानों ने ग्रहण किया । कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र मे मार्क्स और एगेल्स ने पूंजीवादी उत्पादक शक्तियों का इन शब्दो मे वर्णन किया है "प्रकृति की शक्तियों का मनुष्य के अधीनस्थ होना, मशीनें, उद्योग और कृषि मे रसायन का प्रयोग, भाप से चलनेवाले जहाज, रेल्वे, बिजली से तार भेजा जाना, पूरे के पूरे महादेशों का खेती के लिए साफ किया जाना नदियो से नहरें निकालना, पूरी की पूरी आबादियों का मानो जादू के जोर से पैदा होना ।" पूंजीवाद ने उत्पादक शक्तियो को विकसित करने मे दो सदियो के अन्दर जो काम किया, वह मानव इतिहास के पहले के सभी युगों से अधिक था ।

उत्पादक शक्तियों की यह जोरदार वृद्धि उत्पादन के पूंजीवादी सम्बधो द्वारा सुगम हुई जो निजी पूंजीवादी स्वामित्व पर आधारित थे और जिन्होंने धीरे-धीरे किन्तु निर्मम गति से सामन्ती स्वामित्व को निकाल बाहर किया ।

पूंजीवाद मे उत्पादक, अर्थात् मजदूर कानूनन आजाद होता है । वह न तो जमीन से बधा होता है और न किसी खास कारखाने से । वह आजाद इस अर्थ मे होता है कि चाहे जिस पूंजीपति के यहा काम करे । पर पूरे पूंजीपति वर्ग से वह आजाद नही होता । उत्पादन का कोई साधन अपने पास न होने के कारण वह अपनी श्रम शक्ति बेचने के लिए मजबूर होता है और इस तरह शोषण के शिकजे मे गिरफ्तार हो जाता है ।

पूंजीवादी उत्पादन सम्बधो से पूंजीवादी मुनाफा प्रकट हुआ जो उत्पादन के विकास को भारी प्रोत्साहन प्रदान करता है । मुनाफे के पीछे भागते हुए ही पूंजीपति उत्पादन का विस्तार करता है, मशीनो को तथा कृषि और उद्योग मे उत्पादन विधियो को सुधारता है । किन्तु ये सम्बध उत्पादन की अभूतपूर्व वृद्धि को ही निर्धारित नही करते, बल्कि उन उत्पादक शक्तियों को भी जन्म देते है जो पूरी पूंजीवादी व्यवस्था को मृत्यु के कगार पर ला खड़ा करती है । मार्क्स और एगेल्स ने पूंजी की उपमा उस जादूगर से दी थी जो अपने मत्रबल से इतनी प्रबल शक्तियो को सक्रिय कर देता है जिन पर वह खुद ही नियत्रण नहीं रख पाता है ।

उत्पादक शक्तियों मे भारी वृद्धि होने के साथ पूंजीवादी उत्पादन सम्बध उनके अनुरूप नहीं रह जाते और वे उनके विकास के पाव की बेडी बन जाते हैं । पूंजीवादी उत्पादन विधि का सबसे गहरा अन्तर्विरोध है उत्पादन के

सामाजिक स्वरूप और हस्तगतकरण के निजी पूंजीवादी रूप का अन्तर्विरोध। पूंजीवादी समाज में उत्पादन का स्वरूप अत्यधिक सामाजिक होता है। बड़े-बड़े कारखानों में करोड़ों मजदूर एकत्रित रहते हैं और उत्पादन में भाग लेते हैं, पर मजदूरों के श्रम के फल को उत्पादन के साधनों के स्वामियों का एक छोटा-सा दल हस्तगत कर लेता है। यही पूंजीवाद का मौलिक अन्तर्विरोध है।

पिछली सदी के अन्त में पूंजीवाद साम्राज्यवाद बना, जो उसकी उच्चतम और अन्तिम मंजिल है। साम्राज्यवाद का मूल तत्व है इजारेशाहियों का प्रभुत्व। यह प्रभुत्व मुक्त प्रतियोगिता का स्थान ग्रहण कर लेता है। इजारेदारियां पूंजीपतियों के विशाल संघ हैं जो कतिपय मालों के मुख्य अंश के उत्पादन और विक्रय को अपने हाथों में केन्द्रित कर लेती हैं।

इजारेदारियों का लक्ष्य अधिक से अधिक मुनाफा बटोरना होता है। इसके लिए साम्राज्यवादी खुद अपने देश के अन्दर तथा उपनिवेशों और परतंत्र देशों के श्रमजीवियों का शोषण तेज करते हैं। साम्राज्यवादियों ने दुनिया का आपस में बन्दरबांट कर लिया और फिर नये सिरे से उसके बंटवारे के लिए लड़ने-झगड़ने लगे।

साम्राज्यवाद पूंजीवाद के सभी अन्तर्विरोधों को चरम सीमा तक तीव्र कर देता है। उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा हस्तगतकरण के निजी रूप के अन्तर्विरोध को वह खास तौर पर तीव्रता की चरम सीमा पर पहुंचा देता है। इस अन्तर्विरोध के फलस्वरूप संकट पैदा होते हैं और बेरोजगारी फैलती है, पूंजीपति और मजदूर के बीच घनघोर वर्ग युद्ध उभरता है। यही समाजवादी क्रान्ति का आर्थिक आधार होता है। विजयी समाजवादी क्रान्ति पूंजीवादी उत्पादन सम्बंधों का खात्मा करती है और समाजवादी उत्पादन पद्धति लागू करती है।

अध्याय १२

समाजवादी उत्पादन पद्धति
समाजवाद का कम्युनिज्म में विकास

हमने सामाजिक उत्पादन के विकास की छानबीन की और इस नतीजे पर पहुंचे कि वर्गों के वैमनस्य पर आधारित प्रत्येक नई उत्पादन पद्धति अपने पहले की व्यवस्था में ही अकुरित होती है। अब हम यह पता लगायेंगे कि समाजवादी उत्पादन पद्धति कैसे उदित होती है और उसके जन्म और विकास के कौन से विशिष्ट पहलू हैं ?

१. समाजवादी उत्पादन पद्धति के उदय के विशिष्ट पहलू

समाजवादी उत्पादन पद्धति सामाजिक स्वामित्व पर आधारित होती है और शोषण के साथ उसका मेल नही बैठता है। पूंजीवादी उत्पादन से उसकी स्थिति पूरी तरह भिन्न होती है। इसका मतलब होता है कि सामन्ती समाज के गर्भ मे ही अकुरित हुई पूंजीवादी व्यवस्था की भांति समाजवादी व्यवस्था पूंजीवादी समाज के गर्भ मे अकुरित नहीं हो सकती।

लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं होता कि समाजवाद यकायक आसमान से टपक पडता है। समाजवाद के लिए पूर्व परिस्थितियां पूंजीवाद के अन्तर्गत ही निर्मित होती हैं, यानी बड़े पैमाने के मशीन उत्पादन, उच्च दर्जे के सकेन्द्रण, श्रम के समाजीकरण और उच्च स्तर की वैज्ञानिक व प्राविधिक उन्नति की स्थिति मे ही निर्मित होती हैं। समाजवाद का निर्माण करने वाली शक्ति का, यानी मजदूर वर्ग का उदय भी पूंजीवाद मे ही होता है। मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग के खिलाफ कठिन संघर्ष की पाठशाला मे दीक्षित होता है, अपनी अलग पार्टी बनाता है और प्रगतिशील व वैज्ञानिक विचारधारा में पारंगत होता है।

लेकिन ये पूर्व-परिस्थितियां ही समाजवादी उत्पादन पद्धति के निर्माण के लिए काफी नहीं होतीं, उसी तरह जैसे कि पूंजीवाद के गर्भ में समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध अकुरित नहीं हो सकते। समाजवाद व्यक्तिगत सम्पत्ति का पूरी तरह खात्मा कर देता है, शोषण और उत्पीडन के दूसरे रूपों को सदा के लिए समाप्त कर देता है। लेकिन इसके लिए समाजवादी क्रान्ति की और

पूंजीवाद से समाजवाद मे संतरण के लिए एक पूरी अवधि की आवश्यकता होती है। इस अवधि में मजदूर वर्ग, जो अब सत्ता मे होता है, दूसरी सभी श्रमिक जनता के साथ मिलकर सजग और नियोजित ढंग से नई, समाजवादी उत्पादन पद्धति का निर्माण करता है। समाजवादी राज्य और कम्युनिस्ट पार्टी इस प्रक्रिया मे महती भूमिका अदा करते हैं।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के बाद रूस का मजदूर वर्ग समाजवादी उत्पादन सम्बधों की स्थापना के लिए परिस्थितियां तैयार करने मे जुट गया। सबसे पहले बड़े पैमाने के पूंजीवादी उत्पादन का—बडे पैमाने के उद्योग-धंधों, बैंकों, परिवहन व्यवस्था और संचार साधनो का—राष्ट्रीकरण किया गया। इससे राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मुख्य क्षेत्र, उद्योग-धंधों के क्षेत्र में समाजवादी उत्पादन सम्बध कायम हुए। इसके साथ भू सम्पत्ति का उन्मूलन किया गया। इन निर्णायक कदमों ने पूंजीपति वर्ग की आर्थिक शक्ति को कमजोर कर दिया, भू-स्वामियों के प्रतिक्रियावादी वर्ग को समाप्त कर दिया और मजदूर वर्ग तथा आम किसानों की मैत्री को और भी मजबूत कर दिया।

अर्थतन्त्र के मुख्य स्थानों पर एक बार अधिकार जमा लेने के बाद मजदूर वर्ग लेनिन द्वारा तैयार की गयी योजना के मुताबिक समाजवाद का निर्माण करने के काम मे जुट पडा। देश का औद्योगीकरण और कृषि का समूहीकरण इस योजना का मुख्य तत्व था। औद्योगीकरण की नीति की विजय के कारण उद्योग-धंधों में समाजवादी उत्पादन शक्तियो का निर्माण करना, कृषि के समाजवादी रूपान्तरण के लिए जमीन तैयार करना और उसे आधुनिक मशीनों से लैस करना संभव हुआ। लेनिन की सहकारी योजना के लागू किये जाने के फलस्वरूप बडे पैमाने की यन्त्रीकृत और समाजवादी कृषि का जन्म हुआ। यह इस बात का संकेत था कि समाजवादी उत्पादन सम्बधो का प्रवेश अर्थतन्त्र की अत्यन्त पिछडी शाखा में भी हो गया।

औद्योगीकरण और समूहीकरण के फलस्वरूप १९३०-४० के अन्त में समाजवादी उत्पादन पद्धति के पाव सोवियत सघ मे मजबूती से जम गये।

अब कई दूसरे देश भी समाजवादी रास्ते पर चल रहे हैं। सम्पूर्ण समाजवादी प्रणाली के आम नियमो के मुताबिक ही इन देशों मे समाजवादी उत्पादन पद्धति की स्थापना हुई है। लेकिन समाजवादी निर्माण के तौर-तरीके और रफ्तार प्रत्येक देश मे अलग-अलग हैं। मिसाल के लिए, पूंजीवादी उद्योग से समाजवादी उद्योग में संतरण के तौर-तरीको और औद्योगीकरण की रफ्तार के सिलसिले मे उनमें भिन्नता पायी जाती है। जिन देशों मे उद्योग-धधे पिछडी अवस्था में थे, वहां औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों [illegible] में ज्यादा

क्षेत्रों में औद्योगीकरण हो रहा है। कृषि सहकारिता के तौर-तरीकों के मामले में भी उनमें विविधता पायी जाती है।

लेकिन तौर-तरीकों की इन स्थानीय विभिन्नताओं के बावजूद इन परिवर्तनों का सारतत्व सब जगह एक सा ही बना रहता है – यानी व्यक्तिगत पूंजीवादी स्वामित्व का खात्मा किया जाता है और समाजवाद के आर्थिक आधार सामाजिक, समाजवादी स्वामित्व की स्थापना की जाती है।

७ समाजवाद में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बंधों का द्वन्द्व

समाजवाद में उत्पादक शक्तियां और उत्पादन सम्बंध

समाजवादी समाज की उत्पादक शक्तियां होती हैं: समाजवादी उद्योग और कृषि, परिवहन और संचार के साधन, निर्माण उद्योग और अर्थतंत्र की इन शाखाओं में लगे लोग। सोवियत संघ में २ लाख से ज्यादा बड़े कल-कारखाने हैं। यहीं ज्यादातर औद्योगिक उत्पादन होते हैं। सोवियत संघ में दसियों हजार स्थानीय कल-कारखाने हैं, लगभग ८००० राज्य फार्म और दसियों हजार सामूहिक फार्म हैं, रेल लाइनों, सड़कों, नदियों और सागरों में जल-मार्गों का व्यापक जाल बिछा हुआ है, तार, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन आदि संचार के साधन बहुत विकसित अवस्था में हैं।

बड़े पैमाने का और निरन्तर फैलता हुआ मशीन निर्माण उद्योग समाजवादी अर्थतंत्र का प्राविधिक आधार है। इस उद्योग में व्यापक पैमाने पर विद्युत और रसायन का और कुछ शाखाओं में परमाण्विक शक्ति का भी उपयोग होता है। यह उद्योग पूर्ण रूप से यन्त्रीकृत और स्वचालित है।

भारी उद्योग सोवियत संघ के सम्पूर्ण अर्थतंत्र की आधारशिला, उसकी शक्ति और सम्पदा के स्रोत हैं।

जनता—मजदूर, सामूहिक किसान, टेक्निशियन और इंजीनियर समाजवादी उत्पादक शक्तियों के मुख्य तत्व हैं। सोवियत काल में उन्होंने बहुत ज्यादा उत्पादन कौशल हासिल किया है। वे तरह-तरह की जटिल मशीनें सफलता से चलाने लगे हैं, लगातार प्राविधिक प्रगति कर रहे हैं और श्रम-उत्पादकता को निरन्तर बढ़ा रहे हैं।

उत्पादक शक्तियों का विकास—उत्पादन साधनों और जनता के कौशल में निरन्तर सुधार—समाजवादी अर्थतंत्र की प्रगति की एक आवश्यक शर्त है।

समाजवा... ...शक्तियो... ...धार पर समाजवादी उत्पादन सम्बंध ...। ये सम्बंध उत्पादन साधनों के ...न हैं। समाजवादी सम्पत्ति के

दो प्रकार हैं : राजकीय मालकियत यानी वह मालकियत जिस पर समाजवादी राज्य के माध्यम से समस्त जनता का अधिकार है; और सहकारी व सामूहिक फार्मों की मालकियत, यानी अलग-अलग सामूहिक फार्मों और सहकारी समितियों की मालकियत। मालकियत के दोनों प्रकार मूल में समाजवादी हैं और कम्युनिस्ट निर्माण के कामों की पूर्ति को सुनिश्चित बनाते हैं। समाजवादी समाज में मालकियत का राजकीय रूप ही सर्वप्रधान होता है।

समाजवादी स्वामित्व के कारण उत्पादन सम्बन्ध इस प्रकार के होते हैं जिनमें मजदूरों के बीच बंधुत्वपूर्ण सहयोग होता है और वे एक-दूसरे की सहायता करते हैं। समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों का सबसे बड़ा लाभ और विग्रहपूर्ण वर्ग समाजों के उत्पादन सम्बन्धों से उनकी मौलिक विशेषता यह है कि वे मनुष्य द्वारा मनुष्य के हर प्रकार के शोषण से सर्वदा मुक्त होते हैं।

किये गये काम के मुताबिक वितरण का समाजवादी सिद्धान्त समाजवादी स्वामित्व के आधार पर लागू किया जाता है। इसका मतलब यह होता है कि समाज के प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह काम करे और अपने काम की मात्रा और गुण के मुताबिक समाज से भौतिक सम्पदा हासिल करे।

समाजवादी उत्पादन सम्बंध उत्पादक शक्तियों के अनुकूल होते हैं

समाजवादी समाज ने उस विग्रहपूर्ण विरोध को सदा के लिए समाप्त कर दिया है जो पूंजीवाद में उत्पादन के सामाजिक स्वरूप और उत्पादन को हड़प लेने के व्यक्तिगत रूप के बीच स्वभावगत रूप से पाया जाता है। समाजवाद में उत्पादन पर सामाजिक स्वरूप की बहुत स्पष्ट छाप होती है। करोड़ों मजदूर और किसान उद्योग-धंधों और कृषि-कार्य में लगे होते हैं। लेकिन पूंजीवाद के विपरीत, जहां करोड़ों लोगों के श्रम के फलों को शोषकों का एक दल हथिया लेता है, समाजवादी समाज में श्रम के फल पर उत्पादकों का, स्वयं श्रमिक जनता का अधिकार होता है। समाजवादी उत्पादन सम्बंधों में चूंकि सामाजिक स्वामित्व का बोलबाला रहता है और यही उनका आधार होता है, अतएव वितरण के सामाजिक स्वरूप को भी वही निर्धारित करता है।

समाजवादी समाज में उत्पादन सम्बंध उत्पादक शक्तियों के स्वरूप के अनुरूप होते हैं। यह खास तौर से ध्यान में रखने की बात है कि यह अनुरूपता अस्थायी और अल्पकालिक किस्म की नहीं होती। न ही वह औद्योगिक विकास की केवल प्रारम्भिक अवधि में, जैसा कि पूंजीवाद में होता है, बल्कि समाजवादी उत्पादन पद्धति के अस्तित्व और विकास के पूरे दौर में कायम रहती है। ऐसा इसलिए होता है कि समाजवाद में उत्पादक शक्तियों का सामाजिक स्वरूप उत्पादन साधनों के सामाजिक स्वामित्व के अनुरूप होता है।

समाजवादी उत्पादन सम्बधो के उत्पादक शक्तियों के अनुरूप होने के कारण प्रगति के लिए असाधारण अवसर उपस्थित होता है। इस प्रकार के सम्बंध उत्पादन के विस्तार के लिए शक्तिशाली साधन का काम देते हैं। समाजवादी अर्थतंत्र के विकास की प्रेरक शक्ति मुनाफे की लालसा नहीं होती, बल्कि उत्पादन की प्रगति मे समस्त श्रमिक जनता की दिलचस्पी होती है।

सहयोग और पारस्परिक सहायता के समाजवादी सम्बधों की झलक समाजवादी प्रतियोगिता मे अत्यन्त स्पष्टता से दिखाई देती है। श्रमिक जनता इस प्रतियोगिता के जरिए अपने काम की खामियो को दूर करने, पिछडे मजदूरो की सहायता करने और उन्हे अग्रणी मजदूरो के स्तर पर पहुचाने का प्रयास करती है।

समाजवादी उत्पादन सम्बध श्रम के फल के प्रति मजदूरों के भौतिक लगाव के रूप मे आर्थिक प्रगति को भी शक्तिशाली प्रोत्साहन प्रदान करता है। कोई मजदूर, सामूहिक किसान या बुद्धिजीवी जितने अच्छे तरीके और ज्यादा दक्षता से अपना काम करता है, उसे उतना ही ज्यादा पारिश्रमिक मिलता है। इससे समाज का भी लाभ होता है। समाजवादी समाज मे वैयक्तिक और सामाजिक हितों का समन्वय आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण तत्व होता है।

समाजवादी उत्पादन सम्बधो की बदौलत ही सोवियत जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे पिछडे रूस को एक शक्तिशाली औद्योगिक और खेतिहर समाजवादी राज्य बना दिया है।

१९६३ मे सोवियत सघ मे खनिज लोह का उत्पादन १९१३ के जारशाही रूस की तुलना मे लगभग १४ गुना अधिक था, इसी तरह इस्पात का उत्पादन १८६ गुना, तेल का २० गुना और कोयले का १८ से भी अधिक गुना ज्यादा था।

सोवियत उद्योग अब केवल एक सप्ताह मे उतना उत्पादन कर लेते हैं जितना जारशाही रूस साल भर मे किया करता था। इजीनियरिंग उद्योग का मौजूदा दैनिक उत्पादन पुराने रूस के वार्षिक उत्पादन के बराबर है। समाजवादी कृषि ने उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। इस समय उसके पास देश की कच्चे माल और खाद्य सामग्री की बढ़ती आवश्यकताओं को तुष्ट करने के सभी उपादान मौजूद हैं।

समाजवादी उत्पादन सम्बध सभी समाजवादी देशो मे तीव्र आर्थिक विकास को सुनिश्चित बनाते हैं। १९६२ मे सभी समाजवादी देशों का कुल औद्योगिक उत्पादन १९५७ की तुलना मे ७० प्रतिशत अधिक था, जबकि पूजीवादी देशो मे इसमे केवल २५ प्रतिशत की बढ़ती हुई थी।

समाजवादी उत्पादन पद्धति के अन्तर्विरोध

समाजवाद में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बंधों की अनुरूपता का मतलब यह नहीं होता कि उनके बीच थोड़ा भी अन्तर्विरोध न हो। समाजवादी समाज में भी उत्पादक शक्तियां सामाजिक उत्पादन की अन्तर्वस्तु का प्रतिनिधित्व करती और उसका अत्यंत गतिशील और क्रान्तिकारी पहलू होती हैं। लेकिन किसी अन्य ढांचे की भांति उसका ढांचा भी, यानी उत्पादन सम्बंध, अन्तर्वस्तु के विकास से पीछे पड़ जाता है। यही कारण है कि समाजवाद में भी कुछ हद तक उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बंधों के बीच अन्तर्विरोध मौजूद रहता है।

इन अन्तर्विरोधों का मूल तत्व क्या होता है?

हम पहले ही बता चुके हैं कि समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन साधनों के सामाजिक स्वामित्व के आधार पर जनता के बीच सहयोग और पारस्परिक सहायता के समाजवादी सम्बंध कायम होते हैं। औद्योगिक और खेतिहर मज़दूरों के बीच, उद्योग और कृषि की विभिन्न शाखाओं के बीच, शहरों तथा गांवों के बीच सम्बंधों की एक पेचीदी शृंखला कायम हो जाती है।

सोवियत जनता के बीच कायम और एक-दूसरे को प्रभावित करनेवाले सम्बंधों की यह शृंखला और उनके आर्थिक रिश्ते कुल मिलाकर उत्पादक शक्तियों के चरित्र के अनुरूप होते हैं और उनके तीव्र चतुर्दिक विकास को सुनिश्चित बनाते हैं। लेकिन यह शृंखला चाहे कितनी भी सुघड़ क्यों न हो, उसकी कुछ कड़ियां उत्पादक शक्तियों के तीव्र विकास के साथ हमेशा कदम मिलाकर आगे नहीं बढ़ पाती हैं। नतीजा यह होता है कि आर्थिक सम्बंधों का उत्पादक शक्तियों के साथ अन्तर्विरोध उठ खड़ा होता है और वे आर्थिक प्रगति के मार्ग में बाधक बन जाते हैं। अतएव जर्जर कड़ियों के स्थान पर नई कड़ियां बैठाना और उत्पादन के अबाध विकास को सुनिश्चित बनाना जरूरी हो जाता है। सुनियोजित समाजवादी अर्थतंत्र, वैमनस्यपूर्ण वर्गों की अनुपस्थिति, उत्पादन के विकास की बाधाओं को दूर करने में समस्त जनता की दिलचस्पी —ये बातें कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार को उत्पादन के समाजवादी सम्बंधों को सुधारने, इन सम्बंधों की जर्जर कड़ियों को ठीक समय पर बदलने और उसके स्थान पर नई प्रगतिशील कड़ियां लगाने, और इस प्रकार समाजवादी उत्पादन पद्धति के अन्तर्विरोधों को हल करने में समर्थ बनाती है।

यहां दो उदाहरण देखिए।

जिस समय सोवियत कृषि में यंत्रीकरण का स्तर काफी ऊंचा नहीं था, उस समय जमीन के छोटे रकबों पर ही सामूहिक फार्मों की स्थापना की गयी। समय के साथ-साथ कृषि-प्रविधि में काफी उन्नति हुई, लेकिन सामूहिक फार्मों

ा छोटा आकार उपलब्ध मशीनों के प्रभावशाली उपयोग के रास्ते में बाधक बनने लगा। नतीजा यह हुआ कि कृषि उत्पादन मे कुछ हद तक अन्तर्विरोध पैदा हो गया। सामूहिक किसानों की पूर्ण रजामन्दी और समर्थन से कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार ने कई सामूहिक फार्मों को एक में मिलाकर जमीन के रकबे को बड़ा किया और इस अन्तर्विरोध को दूर किया। इस प्रकार कृषि उत्पादन की वृद्धि को सुनिश्चित किया गया।

बाद मे कृषि क्षेत्र की उत्पादक शक्तियों के विकास का मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों के जरिए सामूहिक फार्मों को दी जाने वाली प्राविधिक सहायता के पुराने तरीकों के साथ अन्तर्विरोध पैदा हुआ। इन स्टेशनों ने सामूहिक फार्म व्यवस्था को संगठित करने मे महती भूमिका अदा की थी। लेकिन सामूहिक फार्म जब शक्तिशाली बन गये, तो एक ही भूमि पर दो स्वामियो (मशीन और ट्रैक्टर स्टेशन तथा सामूहिक फार्म) की मौजूदगी मशीनों और श्रम शक्ति के प्रभावशाली उपयोग में बाधक बनने लगी।

१९५८ मे मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों को पुनर्गठित करके और मशीनों को सामूहिक फार्मों के हाथों में बेचकर इस अन्तर्विरोध को हल किया गया। समाजवादी उत्पादन सम्बधो के विकास के लिए यह तरीका महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ। इसने उद्योग और कृषि के सम्बधों को मजबूत किया और सामूहिक फार्म व्यवस्था को बलशाली बनाया। सामूहिक फार्म सदा के उपयोग के लिए प्राप्त राज्य भूमि के एकमात्र स्वामी और अपने श्रम साधनो तथा अपनी मशीनों के पूर्ण व्यवस्थापक बन गये।

इन बातों से यह सिद्ध होता है कि समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादक शक्तियो और उत्पादन सम्बधों की अनुरूपता कोई ऐसी कडी या स्थिर चीज नही होती जो हमेशा एक जैसी बनी रहती हो। यह अनुरूपता सतत विकसित और उन्नत होती रहती है और इसमें कुछ अन्तर्विरोध भी पैदा हो सकते हैं। लेकिन पूंजीवाद के विपरीत, जहा कुल उत्पादन सम्बधों का उत्पादक शक्तियों के साथ विग्रहपूर्ण अन्तर्विरोध होता है, समाजवादी समाज में इन सम्बधों का केवल कोई खास अग या पहलू उत्पादक शक्तियों के विकास से पीछे रहता है। पूंजीवादी उत्पादन के अन्तर्विरोध अन्त में समाजवादी क्रान्ति को जन्म देते हैं, पूंजीवादी उत्पादन सम्बधों के स्थान पर समाजवादी उत्पादन सम्बधों को प्रतिष्ठित करते हैं। लेकिन समाजवादी उत्पादन पद्धति के अन्तर्विरोध विग्रहपूर्ण नही होते और उत्पादन सम्बधों के केवल कुछ पुराने पड गये पहलुओं को बदल कर उन्हें दूर कर दिया जाता है। समाजवाद में उत्पादन सम्बध कुल मिलाकर और अधिक विकसित और उन्नत होते हैं।

३. कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार का निर्माण और समाजवादी उत्पादन सम्बंधों का कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बंधों में संतरण

सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों मे प्राप्त उपलब्धियों और समाजवाद की सफलताओं के कारण सोवियत सघ अपने विकास के नये युग में, पूरे पैमाने पर कम्युनिज्म के निर्माण के युग मे, कदम रखने मे समर्थ हुआ है। कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार का निर्माण ही इस युग मे उसका मुख्य आर्थिक कर्तव्य बन गया है। यहां हम इस पर विचार करेंगे कि यह आधार क्या है, यह कैसे निर्मित होता है और किस प्रकार वह समाजवादी उत्पादन सम्बंधों को कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बंधों मे बदलने के लिए आधार का काम करता है।

कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार का निर्माण

समाजवादी उद्योग की सफलताओं के बावजूद सोवियत सघ के पास अभी तक इतनी प्रचुर मात्रा मे भौतिक और सांस्कृतिक निधि सचित नहीं हो सकी है जिससे कि वह जनता की दिनोंदिन बढती सभी आवश्यकताओं को पूरी तरह तुष्ट कर सके और चतुर्दिक व सर्वांग विकास को सुनिश्चित बना सके। इसके बिना कम्युनिज्म का निर्माण असभव है। कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि सामाजिक उत्पादन को और ज्यादा बढ़ाया जाय, दूसरे शब्दों में, यह जरूरी है कि कम्युनिज्म का भौतिक और प्राविधिक आधार निर्मित किया जाय।

सोवियत सघ के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कर्तव्यों की शृंखला मे यह निर्णायक कडी है और सोवियत सघ के विकास की आतरिक और बाह्य परिस्थितियों का भी यही तकाजा है। कम्युनिज्म का भौतिक और प्राविधिक आधार निर्मित होने से सोवियत सघ कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के अनेक महत्वपूर्ण कर्तव्यों को पूरा करने मे समर्थ होगा। ये कर्तव्य हैं :

अभूतपूर्व शक्तिशाली उत्पादक शक्तियों का निर्माण करना, प्रति व्यक्ति उत्पादन के मामले मे विश्व मे सर्वप्रथम स्थान पर पहुचना और इस प्रकार पूजीवाद के साथ आर्थिक प्रतियोगिता मे जीत हासिल करना;

सोवियत जनता की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भौतिक सम्पदा के उत्पादन को बढाना, समस्त आबादी के लिए विश्व मे सबसे उच्च जीवन स्तर को सुनिश्चित करना और उसके बाद आवश्यकता के मुताबिक वितरण की मजिल मे प्रवेश करने के लिए सभी पूर्व-परिस्थितियों का निर्माण करना;

विश्व में सर्वोच्च श्रम-उत्पादकता प्राप्त करना जो अन्तिम विश्लेषण में बहुत ही महत्वपूर्ण और नई कम्युनिस्ट व्यवस्था की विजय का सबसे मुख्य तत्व है; सोवियत जनता को अत्यंत उन्नत प्रविधि से लैस करना और इस प्रकार श्रम को आनन्द, उत्साह और रचनात्मक प्रयास का स्रोत बना देना;

समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों को क्रमशः कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बन्धों में बदलना, वर्ग-रहित समाज की रचना करना, शहरों और गांवों के और उसके बाद मानसिक और शारीरिक श्रम के मूलभूत अन्तर को दूर करना;

देश की सुरक्षा शक्ति को इतने उच्च स्तर पर बनाये रखना जिससे कि सोवियत संघ या किसी भी समाजवादी देश पर हमला करने की हिम्मत करने वाले किसी भी आक्रामक का मुंह तोड़ा जा सके।

कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के विशिष्ट पहलुओं का, उसके निर्माण के तरीकों और उसके लिए आवश्यक कालावधि का ब्यौरा सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नये कार्यक्रम में दिया गया है।

कार्यक्रम में इस बात पर जोर दिया गया है कि कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार को निर्मित करना उत्पादन क्षमता में केवल परिमाणात्मक वृद्धि करना, केवल विस्तार करना नहीं है। इसके लिए सबसे पहले उत्पादन प्रक्रिया में ही गहन गुणात्मक परिवर्तन लाना जरूरी है। कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार की गुणात्मक विशेषताएं होंगी : देश का पूर्ण विद्युतीकरण और इसके आधार पर अर्थतन्त्र की सभी शाखाओं में यन्त्र-सम्बन्धी, प्राविधिक और सामाजिक उत्पादन के संगठन में सुधार, प्राकृतिक, भौतिक और श्रम साधनों का बहुमुखी और बुद्धिसंगत उपयोग, उत्पादन के साथ विज्ञान का समन्वय और वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगति की तेज रफ्तार, मेहनतकश जनता के सांस्कृतिक और प्राविधिक स्तर का ऊंचा होना, श्रम उत्पादकता के मामले में सबसे उन्नत पूंजीवादी देशों से भी काफी बेहतर स्थिति प्राप्त करना।

विद्युतीकरण कम्युनिस्ट अर्थतंत्र की धुरी है। यह अर्थतन्त्र की सभी शाखाओं के विकास और सभी क्षेत्रों की प्राविधिक प्रगति में सर्वप्रमुख भूमिका अदा करता है। यही कारण है कि पार्टी के नये कार्यक्रम में अर्थतन्त्र की अन्य सभी शाखाओं की तुलना में विद्युत उद्योग को ज्यादा तेजी से बढ़ाने की व्यवस्था की गई है। बीस-वर्षीय अवधि के अन्त (१९८०) तक सोवियत संघ में विद्युत शक्ति का वार्षिक उत्पादन लगभग ३,००,००० करोड़ किलोवाट-घंटा तक पहुंच जायगा जो विश्व के अन्य सभी विद्युत केन्द्रों के वर्तमान वार्षिक उत्पादन से लगभग ५० प्रतिशत अधिक होगा। इतनी मात्रा में विद्युत शक्ति का उत्पादन लेनिन के इस प्रसिद्ध नारे को चरितार्थ करेगा - "सोवियत सत्ता और सम्पूर्ण देश के विद्युतीकरण का योग ही कम्युनिज्म है।"

पूर्ण विद्युतीकरण वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति की रफ्तार को बहुत तेज बना देगा। दूसरे शब्दों में यह कि नवीनतम वैज्ञानिक और प्राविधिक उपलब्धियों के आधार पर मशीनों, प्राविधिक प्रक्रियाओं और उत्पादन साधन में निरंतर विकास और सुधार होता रहेगा। इससे उत्पादन को सम्पूर्ण रूप में से यंत्रीकृत और स्वचालित बनाना संभव होगा। इससे श्रम की उत्पादकता में बहुत अधिक वृद्धि होगी और साथ ही शारीरिक श्रम का काम काफी हल्का हो जायगा। स्वचालित यन्त्र और विद्युत मनुष्य के कठोर, हानिकारक और शारीरिक श्रम के बोझ को हल्का कर देंगे और इस प्रकार उसका काम रोचक और रचनात्मक बन जायेगा, वह शरीर को थकानेवाला नहीं रह जायेगा। श्रम को जीवन की प्राथमिक आवश्यकता में बदलने की यह एक अनिवार्य शर्त है।

कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के निर्माण में धातु और ईंधन के उत्पादन को तेजी से बढ़ाने, इंजीनियरिंग, निर्माण, तथा परिवहन और संचार के समस्त साधनों को विकसित करने का प्राथमिक महत्व होता है। पार्टी कार्यक्रम में १९८० तक २५ करोड़ टन इस्पात और ६९-७१ करोड़ टन तेल उत्पादित करने की व्यवस्था की गयी है। २० साल के अरसे में इंजीनियरिंग और धातु उद्योग का उत्पादन १०-११ गुना और सीमेन्ट का उत्पादन पांच गुना से भी अधिक बढ़ जायेगा।

रसायन उद्योग की प्रगति असाधारण रूप से तेज रफ्तार से होगी। मिसाल के तौर पर, कृत्रिम राल और प्लास्टिक का उत्पादन २० वर्षों में ६० गुना बढ़ जायेगा। और ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि ऐसे नये कृत्रिम पदार्थों, ईंधनों और कच्चे मालों के बिना, जो अब तक ज्ञात मालों से गुण में कहीं ज्यादा बेहतर हों, अभूतपूर्व गति, भारी दबाव और अत्यन्त उच्च तापमान वाले आधुनिक औद्योगिक उत्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कृत्रिम पदार्थों का व्यापक उपयोग विज्ञान और प्रविधि के विकास के लिए असीम संभावनाओं के द्वार खोलेगा, प्रकृति को वशीभूत करने की मनुष्य की शक्ति बढ़ा देगा और उसके जीवन को ज्यादा आनन्दमय बना देगा।

रसायन उद्योग के तीव्र विकास के लिए, प्राविधिक प्रगति को तेज करने और कृषि पैदावार तथा उपभोग्य मालों के उत्पादन को बढ़ाने लिए रसायन का बड़े पैमाने पर उपयोग किये जाने के सम्बन्ध में एक व्यापक कार्यक्रम

का अर्थतंत्र भी बड़े पैमाने पर विकसित होता रहेगा। उत्पादक शक्तियों का बुद्धिसंगत वितरण श्रम में बचत, सभी इलाकों के विकास, उनके अर्थतंत्र के विशेषीकरण को सुनिश्चित बनायेगा और शहरों में आबादी का बहुत अधिक बढ़ना रुक जायगा। इससे विभिन्न इलाकों के आर्थिक विकास के स्तर को समतल बनाने में भी सहायता मिलेगी।

कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार का निर्माण करने में विज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। कम्युनिज्म का निर्माण जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा, वैसे-वैसे विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियां दिनोदिन बड़े पैमाने पर लागू की जायगी।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौर में उत्पादन के उपकरणों और साधनों के विकास के साथ-साथ समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति भी, यानी जनता भी बदलती जायगी। उत्पादन के साधनों के विकास और सुधार में यह बात पूर्वमान्य होती है कि जनता प्राविधिक प्रगति को और आगे बढ़ाने में सक्षम होगी और उसके साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ेगी और जटिल प्रविधि के भारी तकाजों को पूरा करेगी। ये सभी लोग—मजदूर, टेक्निशियन, इंजीनियर और वैज्ञानिक जिन पर कम्युनिज्म की प्रविधि को सचालित करने, उसमें जीवन डालने की जिम्मेदारी होती है —कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के निर्माण की प्रक्रिया में प्रशिक्षित होते हैं।

प्राविधिक प्रगति उत्पादन कौशल, विशेष प्रशिक्षण और समस्त श्रमिक जनता की आम शिक्षा की जरूरत को बहुत अधिक बढ़ावा देती है। यही कारण है कि जैसे-जैसे प्रविधि विकसित और उन्नत होती है, वैसे-वैसे उत्पादन में समस्त मजदूरों का सांस्कृतिक और प्राविधिक स्तर भी ऊंचा होता जाता है। हल्के काम की परिस्थितियां, कम घंटों का काम और उन्नत जीवन-स्तर, जो प्राविधिक प्रगति के साथ अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं, इस बात को बहुत हद तक सुगम बना देते हैं।

इसके अलावा, विविधतापूर्ण और बहुत ज्यादा उत्पादक कृषि का विकास कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के निर्माण की एक अपरिहार्य शर्त है। कृषि की उत्पादक शक्तियों में बहुत अधिक वृद्धि होने से समाज आबादी को भरपूर मात्रा में भोजन और उद्योग-धन्धों को प्रचुर मात्रा में कच्चे माल दे सकेगा। इससे सोवियत गांवों के सम्बधों का धीरे-धीरे कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बधों में बदलना भी सुनिश्चित हो जायगा।

कम्युनिज्म का भौतिक और प्राविधिक आधार दो क्रमानुगत मंजिलों में निर्मित होगा।

वर्तमान दशक (१९६१-७०) में सोवियत संघ अपने औद्योगिक और कृषि, दोनों उत्पादनों को बढ़ायेगा। फलस्वरूप समस्त सोवियत जनता भौतिक प्रचुरता का उपभोग करने लगेगी और उसे मुख्य रूप में रिहाइशी मकानों की अच्छी सुविधा प्राप्त होगी।

दूसरे दशक (१९७१-८०) के दौर में सोवियत संघ में कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार का निर्माण किया जायगा। १९६१ से १९८० तक के २० वर्षों में सोवियत संघ में इतनी अधिक प्रगति होगी जिसकी तुलना वर्तमान सोवियत संघ की बराबरी के पांच औद्योगिक देशों और दो से अधिक कृषि देशों से की जा सकेगी। इससे समस्त आबादी के लिए भौतिक और सांस्कृतिक मूल्यों तथा अन्य सुविधाओं की प्रचुरता का ऐसा आधार निर्मित हो जायगा जिससे सोवियत संघ आवश्यकताओं के अनुसार वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धांत को लागू करने की स्थिति के निकट पहुंच जायेगा।

समाजवादी उत्पादन सम्बधों का कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बंधों में रूपान्तरण

कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार का निर्माण समाजवादी उत्पादन सम्बधों के और अधिक विकास और उन्हें क्रमशः कम्युनिस्ट सम्बधों में रूपान्तरित करने के लिए आधारशिला का काम देगा है। इस प्रकार के सम्बंध ऊंची बौद्धिक क्षमता वाले सर्वतोमुखी विकासमान स्वतंत्र लोगों के बीच अत्यन्त परिपूर्ण सम्बंध होंगे।

समाजवादी और कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बंध, दोनों ही उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित होते हैं। लेकिन कम्युनिज्म के अन्तर्गत, समाजवाद मे विद्यमान सम्पत्ति के दो रूपों—राजकीय और सहकारी—की बजाय केवल एक रूप होगा, यानी केवल कम्युनिस्ट सम्पत्ति होगी जिस पर समाज के सभी सदस्यों का अधिकार होगा।

समाजवादी सम्पत्ति के दोनो रूपों के विकास और सुधार के जरिए कम्युनिज्म की प्राप्ति होगी। उत्पादन के संकेन्द्रन और श्रम के समाजीकरण में दिनोंदिन वृद्धि होने से राजकीय सम्पत्ति और भी ज्यादा परिपक्व होगी। सहकारी और सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति में विशेष रूप से बहुत गहरा परिवर्तन होगा। सामूहिक फार्मों की उत्पादक शक्तियों का निरन्तर विकास सामूहिक फार्म उत्पादन के समाजीकरण के स्तर को धीरे-धीरे उन्नत करने और सहकारी सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति को दिनोंदिन राजकीय सम्पत्ति के निकट लाने और अन्त में दोनों के मिल कर एक कम्युनिस्ट सम्पत्ति में बदल जाने के लिए आधार प्रदान करेगा। यह प्रक्रिया अभी ही आरम्भ हो चुकी है। सामू-

हिक फार्मों की गैर-वितरणीय सम्पत्ति[1] दिनोदिन बढ़ रही है जो उत्पादन के और अधिक विकास का आर्थिक आधार है। फार्मों के पारस्परिक सम्पर्क बढ रहे हैं। आगे ये और ज्यादा व्यापक होते जायेंगे। कई सामूहिक फार्म मिल-जुलकर और व्यापक पैमाने पर विद्युत स्टेशनों और कृषि उत्पादनो के शोध प्रतिष्ठानों, आदि का निर्माण करेंगे। गावो मे विद्युतीकरण और कृषि उत्पादन मे यन्त्रीकरण और स्वचालन का जैसे-जैसे विकास होगा, वैसे-वैसे सामूहिक फार्मों और राजकीय स्वामित्व के उत्पादन साधनो के समागम का काम ज्यादा व्यापक पैमाने पर सम्पन्न होता चलेगा। सामूहिक फार्मों के विकास के साथ-साथ सामूहिक फार्म अपने सदस्यो की फार्म उत्पादन सम्बधी आवश्यकताओं को अधिकाधिक मात्रा मे पूरा करते चलेंगे। सदस्य अपने घर से लगी जमीन के टुकडों के उत्पादन पर निर्भर करना दिनोदिन कम करते जायेंगे, क्योकि वे ज्यादा उत्पादक नही रह जायेंगे।

सहकारी सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति और राजकीय सम्पत्ति को धीरे-धीरे एक मे मिलाने की आवश्यकता का तात्पर्य यह कदापि नही है कि सामूहिक फार्मों की सम्पत्ति का वर्तमान रूप पूरी तरह निरर्थक हो गया है। सच तो यह है कि ग्रामीण क्षेत्र की आधुनिक उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर और उसकी आवश्यकताओ के साथ इस रूप का अभी भी पूरी तरह मेल बैठता है। सामूहिक फार्म किसानो के लिए कम्युनिज्म की पाठशालाएं हैं। अतएव ग्रामीण क्षेत्रो मे कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बधो को आगे बढाने का रास्ता यही है कि सामूहिक फार्म व्यवस्था को हर तरीके से मजबूत और विकसित किया जाय।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि समाजवादी उत्पादन सम्बध समाज के सभी सदस्यो के बीच सहयोग, मैत्री और परस्पर सहायता के सम्बध होते हैं। कम्युनिज्म के निर्माण के दौर मे ये सम्बध, जो कम्युनिस्ट समाज मे भी मौजूद रहते हैं, बहुत ऊचे दर्जे की पूर्णता पर पहुच जायेंगे। देश के आर्थिक क्षेत्रों के बीच उत्पादन सहयोग के रूप, सम्बधित क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के बीच आर्थिक सम्बध और साथ ही अलग-अलग कारखानों के मजदूरों के आपसी सम्बध और अधिक विकसित होंगे। फलस्वरूप, अत्यंत सगठित और चुस्ती से काम करने वाले श्रमिक जनता के एक कम्युनिस्ट राष्ट्र-मंडल का उदय

---

१. सामूहिक फार्मों की सयुक्त सम्पत्ति गैर-वितरणीय सम्पत्ति कहलाती है। यह सम्पत्ति व्यक्तिगत आय के रूप में सदस्यो मे वितरित नही की जाती। मशीनें, मोटरें, फार्म, भवन, पशु-धन और सामूहिक फार्मो मे विनियोग के लिए निर्धारित धन इस सम्पत्ति मे शामिल होते हैं।

होगा। समाज का प्रत्येक सदस्य अपने श्रम-कर्तव्यों को निष्ठा और उत्साह के साथ पूरा करेगा और सार्वजनिक जीवन में सक्रियता से भाग लेगा। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है : "कम्युनिज्म सार्वजनिक जीवन के संगठन के उच्चतम स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें सभी उत्पादन इकाइयां और स्वायत्तशासी समितियां एक समान, नियोजित अर्थतंत्र में और सामान्य सामाजिक श्रम में सामंजस्यपूर्ण ढंग से एकताबद्ध होंगी।"

मजदूरों की टोलियों और पूरी की पूरी फैक्टरियों के मजदूरों ने कम्युनिस्ट श्रम का जो आंदोलन शुरू किया है, वह समाजवादी उत्पादन सम्बंधों के विकास और सुधार के लिए तथा कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बंधों के बीजारोपण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये मजदूर अभी ही अपने कामों के प्रति नये कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का उदाहरण प्रस्तुत करने लगे हैं। इन टोलियों और प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों ने नवीन प्रविधि में पारंगत होने, अपने उत्पादन कौशल को धीरे-धीरे बढ़ाने और अपने सांस्कृतिक स्तर को ऊपर उठाने का लक्ष्य अपने सामने रखा है।

मजदूरों की ये टोलियां अपने को कम्युनिस्ट श्रम टोलियां कहलाने का अधिकार प्राप्त करने के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता कर रही हैं। प्रतियोगिता के इन तरीकों से जनता में नये प्रकार के सम्बंध उदित हो रहे हैं, सामूहिकता और पारस्परिक सहायता का एक उन्नत तरीका आकार धारण कर रहा है। यह प्रतियोगिता ज्ञान अर्जित करने के कामों और अनुसंधानात्मक तथा रचनात्मक प्रयासों में लगने के लिए, दूसरों की नुकसानदेह आदतों और परम्पराओं को दूर करने में उनकी सहायता करने के लिए जनता को प्रोत्साहित करती है।

जैसे-जैसे उत्पादक शक्तियों में वृद्धि होगी और भौतिक तथा आत्मिक सम्पदा का उत्पादन बढ़ेगा, वैसे-वैसे भौतिक मूल्यों के वितरण में सुधार होता जायेगा। फलस्वरूप जनता की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की अधिकाधिक पैमाने पर पूर्ति होती जायेगी।

पार्टी कार्यक्रम में कहा गया है कि सोवियत जनता के वीरतापूर्ण श्रम ने एक शक्तिशाली और सम्यक रूप से विकसित अर्थतंत्र को जन्म दिया है। अब सम्पूर्ण आबादी के जीवन-स्तर को तेजी से ऊपर उठाने की सभी पूर्व-परिस्थितियां मौजूद हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐतिहासिक महत्व का लक्ष्य अपने सामने रखा है : सोवियत संघ में ऐसा जीवन-स्तर प्राप्त करना जो किसी भी पूंजीवादी देश से ऊंचा हो। कार्यक्रम में उपभोक्ता मालों के उत्पादन को तेजी से बढ़ाने की बात कही गयी है। इसके मुताबिक सोवियत जनता की आवश्यकताओं की सर्वांगीण पूर्ति के [illegible]ंस्कृतिक और उपभोक्ता-सेवा

प्रतिष्ठानों के निर्माण और उन्हें साजो-सामान से लैस बनाने के लिए उद्योग के बढ़ते साधनों का अधिकाधिक उपयोग किया जायेगा।

वर्तमान दशक (१९६१-१९७०) में राष्ट्रीय आय में तकरीबन २.५ गुनी बढ़ती होगी और २० वर्षों में (१९६१-१९८०) में वह लगभग ५ गुनी बढ़ जायेगी। प्रति व्यक्ति की वास्तविक आय २० वर्षों में ३.५ गुनी बढ़ेगी। इसके अलावा, वास्तविक आय में निरन्तर बढ़ती के साथ-साथ काम के घंटों में लगातार कमी होती जायगी और काम की परिस्थितियां सुधरती जायेंगी।

जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने का मुख्य तरीका यह है कि काम की मात्रा और गुण के मुताबिक तनखाहें बढ़ायी जायें और खुदरा कीमतें कम की जायें और टैक्स समाप्त किये जायें।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत ने १९६४ में शिक्षा प्रतिष्ठानों, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा, गृह निर्माण और सार्वजनिक उपभोग के कामों, व्यापार, सार्वजनिक भोजनालय सेवा और आबादी की प्रत्यक्ष सेवा करनेवाली अन्य शाखाओं में लगे लोगों की तनखाहें बढ़ाने का जो कानून स्वीकार किया, वह दरअसल जीवन स्तर को ऊंचा उठाने की दिशा में एक कदम था।

हम पहले ही बता चुके हैं कि समाजवादी समाज अभी भी अपने नागरिकों की सभी आवश्यकताओं को पूरी तरह सन्तुष्ट करने की स्थिति में नहीं है। यही कारण है कि कम्युनिस्ट पार्टी काम के मुताबिक वितरण के समाजवादी सिद्धान्त का सख्ती से पालन करने, उसे सुधारने और उसके साथ भौतिक और नैतिक प्रोत्साहन का तालमेल बैठाने पर जोर देती है। इस सम्बंध में तनखाहों का मौजूदा पुनर्व्यवस्थापन बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका मकसद है राष्ट्रीय अर्थतंत्र की प्रत्येक शाखा में मजदूर की आय को किये गये काम की मात्रा और गुण के और ज्यादा अनुरूप बनाना और उसके और ज्यादा निकट ले जाना। ऐसा करते समय ऊंची और नीची तनखाहें पानेवाले मजदूरों की आय के अन्तर को धीरे-धीरे कम करने की जरूरत को ध्यान में रखा जाता है।

सामूहिक फार्मों में भी पारिश्रमिक देने के तरीकों में सुधार किया जा रहा है और धीरे-धीरे उन्हें राजकीय उद्योग धन्धों के अनुरूप बनाया जा रहा है। सामूहिक किसानों को भी राजकीय और सामूहिक फार्मों के कोष से हर प्रकार की सामाजिक सुविधाएं (सवेतन छुट्टी, पेंशन आदि) देने की व्यवस्था की जा रही है।

१९६४ में लागू किया गया सामूहिक किसानों के पेंशन और भत्ते का कानून इस कार्यक्रम को लागू करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

श्रमिक जनता की व्यक्तिगत आय को बढ़ाने के साथ-साथ संसार में सबसे ऊंचा जीवन-स्तर प्राप्त करने का एक और तरीका है। वह तरीका यह है कि काम की मात्रा और गुण का खयाल रखे बिना समाज के सदस्यों में वितरित होनेवाले सार्वजनिक कोष को बहुत अधिक बढ़ा दिया जाय, यानी शिक्षा, स्वास्थ सेवा, शिशु-गृहों और बाल-गृहों में बच्चों के लालन-पालन तथा अन्य मदों पर काफी बड़ी रकम खर्च की जाय।

सोवियत समाज के कम्युनिज्म की दिशा में आगे बढ़ने के साथ-साथ व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करनेवाले सार्वजनिक कोष व्यक्तिगत तनखाहों की तुलना में बहुत तेजी से बढ़ते जायेंगे। इससे समाज शिशु-गृहों, बाल-गृहों और छात्रावास विद्यालयों में बच्चों को निःशुल्क रख सकेगा, सभी शिक्षा संस्थाओं में निःशुल्क पढ़ाई की व्यवस्था होगी, सभी नागरिकों के लिए पूरी तरह निःशुल्क स्वास्थ-सेवा की व्यवस्था होगी और उन्हें औषधियां तथा सैनिटोरियम उपचार भी बिना पैसे के मिलने लगेंगे। इसी तरह नागरिकों को बिना किराये के घरों, सार्वजनिक उपयोग के साधनों के निःशुल्क इस्तेमाल, शहरों में मुफ्त परिवहन तथा अन्य सुविधाएं भी मिलने लगेंगी। अवकाश-गृहों और यात्रा केन्द्रों का खर्च धीरे-धीरे कम होता जायगा और आंशिक रूप में वे निःशुल्क बना दिये जायेंगे। फैक्टरियों, दफ्तरों और सामूहिक फार्मों में क्रमशः मुफ्त भोजन की व्यवस्था लागू की जायगी। आबादी को बड़े पैमाने पर भत्ते, सुविधाएं और छात्रवृत्तियां दी जायेंगी। असहाय लोगों की आर्थिक देख-भाल का जिम्मा समाज लेगा।

काम के मुताबिक वितरण के समाजवादी सिद्धान्त को इसी तरह से, यानी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सार्वजनिक कोष में निरन्तर वृद्धि करके और उसका काम के मुताबिक वितरण के साथ ताल-मेल बैठाकर, आवश्यकता के मुताबिक वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त में रूपान्तरित किया जायगा। लेकिन वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त में अन्तिम रूप से यह संक्रमण तभी किया जायेगा जब कि वितरण के समाजवादी सिद्धान्त की सभी संभावनाएं पूर्ण हो जायेंगी, यानी जब सभी चीजें प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होंगी और श्रम समाज के सभी सदस्यों के लिए जीवन की प्राथमिक आवश्यकता बन जायगा। उत्पादक शक्तियां जितनी तेजी से विकसित होंगी, श्रम उत्पादकता जितनी तेजी से बढ़ेगी और सोवियत जनता अपने कार्यों को जितने अधिक लगन से पूरा करेगी, उतनी ही तेजी से वह दिन निकट आयेगा।

सोवियत संघ में कम्युनिस्ट निर्माण के यही मुख्य कार्य हैं। इनकी पूर्ति समस्त मानव जाति के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है : "... अतएव जब कम्युनिज्म

के वरदानों का आनन्द उठाने लगेंगे, तो धरती के दसियों करोड़ जनगण कह उठेंगे : 'हम भी कम्युनिज्म के पक्ष मे हैं।' दूसरे देशों के साथ युद्ध करके नहीं, वरन समाज के अधिक सर्वांगपूर्ण संगठन की मिसाल पेश करके, उत्पादक शक्तियों के विकास में तेजी से प्रगति दिखाकर, मानव के सुख और कल्याण की सभी परिस्थितियों का सृजन करके कम्युनिज्म के विचार आम जनता के हृदय और मस्तिष्क को जीत लेते हैं।"

कम्युनिज्म सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत जनता का महान ध्येय है। कम्युनिज्म क्या है और मानव जाति के लिए वह किन संभावनाओं के द्वार खोलता है?

४. कम्युनिज्म—समस्त मानव जाति का उज्ज्वल भविष्य

मानव जाति युग-युग से कम्युनिज्म का सपना देखती आयी है। १६वीं शताब्दी के आरम्भ मे ही अंग्रेज विद्वान और मानवताप्रेमी सर थोमस मूर ने अपनी पुस्तक कल्पना जगत मे एक ऐसे समाज का चित्रण किया था जिसमे मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नही होगा, जनता जीवन-निर्वाह के साधनों का प्रचुर मात्रा मे निर्माण करेगी और प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के लिए जरूरी सभी चीजें आवश्यकतानुसार मिला करेंगी। इटली के दार्शनिक तोम्मासो काम्पानेल्ला, फ्रांस के काल्पनिक समाजवादी फूरिए और सेन्ट साइमन, रूसी लेखक और दार्शनिक चेर्नीशेव्स्की तथा बहुत से दूसरे महान विचारकों ने इस प्रकार के अद्भुत समाज का सपना देखा था। काल्पनिक समाजवादियों ने तीखे शब्दों मे पूंजीवाद की आलोचना की थी। उन्होने कम्युनिस्ट समाज के कुछ ऐसे पहलुओं की कल्पना की थी जिन्हें जरूरी तौर पर पूंजीवादी के स्थान पर प्रतिष्ठित होना था। लेकिन वे इस प्रकार के समाज के निर्माण का वास्तविक रास्ता बता नही सके थे। कम्युनिज्म के सम्बध मे उनका सपना काल्पनिक और अवास्तविक था, क्योकि उस समय सामाजिक सम्बध इसके लिए परिपक्व नहीं हुए थे। उस काल मे कम्युनिस्ट निर्माण के लिए न तो उत्पादन का यथोचित विकास हो पाया था और न ही अन्य सामाजिक परिस्थितियां उत्पन्न हो पायी थी।

मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिज्म को काल्पनिकता से बदल कर एक विज्ञान का रूप प्रदान किया। मानव जाति के इतिहास के नियमों का पता लगाकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कम्युनिज्म एक खोखला सपना नहीं, बल्कि सामाजिक विकास का एक अनिवार्य फल है। उन्होने न सिर्फ कम्युनिज्म के अत्यंत विशिष्ट पहलुओं का खाका पेश किया, बल्कि उसे हासिल करने का रास्ता भी बताया। उन्होंने पूंजीवाद के गहरे अन्तर्विरोध को स्पष्ट किया और

यह सिद्ध किया कि समाजवादी क्रान्ति ही इन अन्तर्विरोधों को हल करने का एकमात्र रास्ता है। उन्होंने यह भी बताया कि मजदूर वर्ग ही वह क्रान्तिकारी शक्ति है जो पुरानी दुनिया को ध्वस्त करके नयी दुनिया का निर्माण कर सकता है। पूंजीपति वर्ग के शासन को समाप्त कर मजदूर वर्ग अपनी सत्ता, मजदूर वर्ग का अधिनायकत्व, स्थापित करता है और श्रमिक जनता को संगठित कर समाजवाद की विजय को सुनिश्चित बनाता है।

लेनिन ने कम्युनिज्म सम्बधी मार्क्सवादी शिक्षा को एक कदम और आगे बढ़ाया। उन्होंने कम्युनिस्ट समाज की उन दो मंजिलों का ब्यौरेवार और गहन विश्लेषण किया जिनका उल्लेख मार्क्स और एंगेल्स ने किया था। उन्होंने समाजवाद के निर्माण की एक योजना तैयार की और समाजवाद के क्रमशः कम्युनिज्म में विकसित होने के नियमों को स्पष्ट किया।

कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे सोवियत जनता ने, नये रास्तों का अनुसरण करते हुए और भारी कठिनाइयों और अभावों का सामना करते हुए, समाजवाद के निर्माण की लेनिन की योजना को कार्यान्वित किया। इस प्रकार सोवियत सघ मे समाजवाद पूर्ण और अन्तिम रूप से विजयी हुआ। अब कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना सोवियत जनता का प्रत्यक्ष व्यावहारिक कार्य बन गया है।

विश्व मे कम्युनिज्म की स्थापना मानव जाति के सुदीर्घ इतिहास की सबसे बड़ी क्रान्ति होगी। इससे जीवन के सभी क्षेत्रों में—उत्पादन, श्रम के स्वरूप और श्रम की परिस्थितियो, सामाजिक सम्बधों, संस्कृति और जीवन प्रणाली, जनता के विचारों और दृष्टिकोणों मे गहरे परिवर्तन होंगे। कम्युनिज्म समाज के सभी सदस्यों के लिए जीवन की ऐसी परिस्थितियां उपलब्ध करेगा जो मनुष्य की सबसे प्रिय आकांक्षाओं और सबसे पुनीत मानवीय आदर्शों के पूर्णतया अनुरूप होंगी।

कम्युनिस्ट समाज की सर्वोपरि विशिष्टता यह होगी कि उसमे तीव्र वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के फलस्वरूप उत्पादन का स्तर बहुत ऊंचा होगा और वह निरन्तर विकसित होता जायगा तथा श्रम उत्पादकता का स्तर भी अभूतपूर्व रूप से बहुत ऊंचा होगा। कम्युनिस्ट समाज में नियोजित अर्थतन्त्र उच्चतम मंजिल पर पहुंच जायगा और भौतिक सम्पदा और प्राकृतिक साधनों का अत्यंत सोद्देश्य और बुद्धिसंगत उपयोग होने लगेगा। जनता सर्वोत्तम और सर्वाधिक शक्तिशाली प्रविधि से लैस होगी और प्रकृति पर मनुष्य का अधिकार बहुत अधिक बढ़ जायेगा जिससे कि वह उसकी स्वतःस्फूर्त शक्तियों को और भी बड़े पैमाने पर नियंत्रित करने और उनका अपने लाभ के लिए उपयोग करने मे समर्थ होगा। कम्युनिस्ट उत्पादन का लक्ष्य होगा : निर्बाध

सामाजिक प्रगति को सुनिश्चित बनाना और समाज के प्रत्येक सदस्य की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करना, उसे सुख सुविधा प्रदान करना, उसकी निरन्तर बढ़ती हुई जरूरतो, दिलचस्पियों और अभिरुचियों को तुष्ट करना।

कम्युनिज्म क्या है ?

पार्टी कार्यक्रम के शब्दों में "कम्युनिज्म उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व के एक स्वरूप वाली और समाज के समस्त सदस्यों की पूर्ण सामाजिक समानता वाली एक वर्ग-विहीन सामाजिक व्यवस्था है। उसके अन्दर, विज्ञान और टेकनोलोजी में अनवरत प्रगति के द्वारा उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ ही साथ जनता का सर्वतोमुखी विकास होता है; सहकारी सम्पत्ति के समस्त स्रोत और भी प्रचुरता के साथ प्रवाहित होंगे, और हरएक से उसके योग्यतानुसार, हरएक को उसकी आवश्यकता के अनुसार का महान सिद्धान्त लागू कर दिया जायगा। कम्युनिज्म स्वतंत्र, सामाजिक रूप से सचेत मेहनतकश जनता का अत्यन्त सगठित समाज होता है जिसमें सार्वजनिक स्वायत्त शासन स्थापित हो जाता है। यह ऐसा समाज होगा जिसमें समाज की भलाई के लिए श्रम करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन की प्रमुख आवश्यकता बन जायेगी—ऐसी आवश्यकता जिसे सबके सब स्वीकार करेंगे; और प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता जनता के अधिकतम लाभ के लिए इस्तेमाल की जायेगी।"

कम्युनिज्म समस्त मानवों को सामाजिक असमता से, हर प्रकार के अत्याचार तथा शोषण से, युद्ध की विभीषिकाओं से मुक्ति दिलाने के ऐतिहासिक ध्येय की सिद्धि करता है तथा धरती पर रहनेवाले समस्त जनगण के लिए शांति, श्रम, स्वाधीनता, समता, बन्धुत्व तथा सुख की उद्घोषणा करता है।

लेकिन कम्युनिज्म अराजकता, आलस्य और निष्क्रियता का समाज नहीं होगा। श्रम करना कम्युनिस्ट समाज मे भौतिक और आत्मिक सम्पदा का मुख्य स्रोत होगा। कम्युनिज्म मे प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार स्वेच्छा से काम करेगा और समाज के धन तथा समाज की शक्ति को बढ़ायेगा। काम की प्रकृति ही बदल जायगी। श्रम केवल आजीविका का साधन नहीं रह जायगा, बल्कि वह जीवन की प्राथमिक आवश्यकता, सच्चा रचनात्मक प्रयास, सुख और आनन्द का स्रोत बन जायगा।

कम्युनिज्म वर्गों और सामाजिक श्रेणियो मे समाज के विभाजन को समाप्त कर देगा। सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्रों मे तथा जीवन-प्रणाली के मामले मे शहरो और गावो के बीच का अन्तर जैसे-जैसे समाप्त होता जायगा, और समाजवादी सम्पत्ति के दो रूप जैसे-जैसे एक में मिलकर

कम्युनिस्ट सम्पत्ति के रूप में बदलते जायेंगे, वैसे-वैसे वर्गों के रूप में मजदूरों और किसानों का अस्तित्व भी समाप्त होता जायगा। शारीरिक श्रम करने वालों का सांस्कृतिक और प्राविधिक स्तर बुद्धिजीवियों जितना ही ऊंचा हो जायगा। अतएव कम्युनिज्म में बुद्धिजीवी वर्ग एक विशिष्ट सामाजिक श्रेणी नहीं रह जायगा। समाज का प्रत्येक सदस्य मानसिक और शारीरिक श्रम करेगा और कार्यकलाप में मानसिक और शारीरिक प्रयास आंगिक रूप से घुलमिल जायेंगे।

कम्युनिस्ट समाज के सभी सदस्यों की उत्पादन साधनों के मामले में एक जैसी स्थिति होगी। अतएव समाज में भी सबों का समान दर्जा होगा। काम, वितरण और सामाजिक मामलों के प्रबंध में सक्रिय रूप से भाग लेने के मामले में वे एक जैसी परिस्थितियों का उपभोग करेंगे। व्यक्ति और समाज के बीच सामजस्यपूर्ण सम्बन्ध एक आम नियम बन जायगा, क्योंकि सामाजिक और व्यक्तिगत हित पूरी तरह से एकाकार हो जायेंगे।

कम्युनिज्म मे मानव संस्कृति अद्भुत शिखर पर पहुंच जायेगी। विश्व संस्कृति की समस्त श्रेष्ठतम उपलब्धियों को आत्मसात और विकसित करने वाली कम्युनिस्ट समाज की संस्कृति मानव जाति की सांस्कृतिक प्रगति की एक नई और उच्चतर मंजिल होगी। इस संस्कृति में समाज के आत्मिक जीवन की सम्पूर्ण विविधता और समृद्धि का, नये समाज के उदात्त आदर्शों और मानवतावाद का समागम होगा। यह समस्त मनुष्य जाति की वर्गविहीन, अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति होगी।

कम्युनिज्म ऐसे नये मनुष्य का सृजन करेगा जिसमें आत्मिक समृद्धि, नैतिक निर्मलता और सुन्दर स्वस्थ शरीर का सामंजस्य होगा, जो परिश्रमी, अनुशासित और सामाजिक हितों के प्रति निष्ठावान होगा। इन सभी गुणों के सामंजस्य को ही कम्युनिस्ट चेतना कहा जाता है। कम्युनिस्ट उत्पादन मनुष्य से जिस महती संगठन और यथातथ्यता की अपेक्षा करता है, उसे जोर-जबर्दस्ती से नहीं, बल्कि सार्वजनिक कर्तव्य की गहरी चेतना से सुनिश्चित बनाया जायगा। कम्युनिज्म मे मनुष्य का सर्वांग और सामंजस्यपूर्ण विकास होगा उसकी योग्यताओं और प्रतिभाओं को पल्लवित होने का पूर्ण अवसर मिलेगा, उसके आत्मिक और शारीरिक गुण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होंगे।

कम्युनिज्म का निर्माण इस बात का संकेत होगा कि ऐसे समाज के निर्माण का कम्युनिस्ट पार्टी का सर्वोच्च लक्ष्य पूरा हो गया है जिसके फरहरे पर यह अंकित होता है: "हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार और हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।" "सब कुछ मानव के लिए, मानव के लाभ के लिए"—पार्टी का यह नारा पूरी तरह अमल मे आने लगेगा।

अध्याय १२

आधार और ऊपर का ठाट

हम बता चुके है कि भौतिक सम्पदा के उत्पादन की विधि ही सामाजिक विकास की मुख्य और निर्णायक शक्ति है। उत्पादन विधि और उत्पादन-सम्बध अन्य सभी सामाजिक सम्बधो (राजनीतिक, कानूनी, नैतिक, आदि सम्बधों) को किस प्रकार ढालते है और फिर ये सामाजिक सम्बध किस प्रकार समाज के आर्थिक विकास को प्रभावित करते है? मार्क्सवाद-लेनिनवाद का आधार और ऊपर का ठाट सम्बधी सिद्धान्त इन प्रश्नो के उत्तर प्रदान करता है।

१. आधार तथा ऊपर के ठाट का परस्पर प्रभाव और उनके विकास की खास विशेषताएं

आधार और ऊपर का ठाट क्या होते हैं?

सामाजिक सम्बध अनेक प्रकार के होते हैं। पर ऐतिहासिक भौतिकवाद इनमे से भौतिक और उत्पादन सम्बंधों को प्रमुख और निर्णायक मानता है। इन उत्पादन-सम्बधो का कुल जोड ही समाज का आर्थिक ठाट है, उसका आधार है। उत्पादन-सम्बधो के कुल जोड से तात्पर्य है—सम्पत्ति के रूप, और उनसे ही उद्भूत, उत्पादन की प्रक्रिया मे उत्पन्न लोगो के आपसी सम्बध तथा साथ ही भौतिक सम्पदा के वितरण का तरीका।

हर समाज का अपना आधार होता है। उत्पादन-सम्बधों के कुल जोड की हैसियत से आधार का प्रकार उत्पादक शक्तियो की अवस्था पर निर्भर करता है। उस समय तक कोई आधार प्रकट नही हो सकता जब तक कि पुराने समाज के अन्दर तदनुरूप भौतिक अवस्थाए और उस आधार के जन्म के लिए आवश्यक उत्पादक शक्तिया उत्पन्न न हों।

एक बार जब आधार का आविर्भाव हो जाता है, तो वह समाज के जीवन मे जबर्दस्त भूमिका अदा करता है। उसकी बदौलत लोग भौतिक सम्पदा का उत्पादन और वितरण संगठित करते है। बिना परस्पर आर्थिक सम्बध कायम किये लोग उत्पादन नही कर सकते और फलस्वरूप जीवन-निर्वाह के साधनों का वितरण नही कर सकते।

आधार इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह ऊपर के ढांचे—यानी समाज के राजनीतिक, कानूनी, दार्शनिक, नैतिक, सौन्दर्य बोधात्मक एवं धार्मिक विचारों और उनके समनुरूप रिश्तों, संस्थाओं एवं संगठनों—की नींव का काम करता है। यही वजह है कि आधार उत्पादन-विधि का वह पहलू है जो प्रधान रूप से समाज के स्वरूप, उसके विचारों तथा संस्थाओं को निर्धारित करता है।

ऊपर का ढांचा भी सामाजिक विकास में बड़ी भूमिका अदा करता है। उसका आविर्भाव निश्चित आर्थिक आधार पर होता है, और वह अन्ततोगत्वा इस आधार के प्रति लोगों के रुख को अभिव्यक्त करता है। विभिन्न विचार लोगों के लिए प्रस्तुत आधार को सुदृढ़ बनाने अथवा उसे नष्ट कर देने की आवश्यकता को उचित ठहराने के काम आते हैं। संस्थाएं एवं संगठन (राज्य, राजनीतिक पार्टियां, आदि) उन्हें इन विचारों को लागू करने में समर्थ बनाते हैं। ऊपर का ढांचा आधार के माध्यम से ही उत्पादक शक्तियों के विकास पर प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए, सभी जानते हैं कि कम्युनिस्ट पार्टी, सोवियत राज्य और पूरा का पूरा समाजवादी ऊपरी ढांचा कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण करते हैं, कम्युनिज्म उत्पादक शक्तियों को

पूंजीपति और मजदूर के अतिरिक्त अन्य वर्ग और सामाजिक समूह भी होते है, जैसे मेहनतकश किसान, दस्तकार और नगरों और देहातो के निम्न-पूंजीवादी। इनके हित इजारेदार पूंजीपतियों के हितो से टकराते हैं।

वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज मे ऊपरी ढांचा चूंकि आधार के अन्तर्विरोध को प्रतिबिम्बित करता है, इसलिए उसमे भी अन्तर्विरोध होता है। इसमे विभिन्न वर्गों और समूहो के विचार और संस्थाएं शामिल होती हैं, किन्तु बोलबाला आर्थिक दृष्टि से हावी वर्ग के विचारो और उसकी संस्थाओ का ही होता है। मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा था. "...वह वर्ग जो समाज की शासक भौतिक शक्ति होता है, वही शासक बौद्धिक शक्ति भी हुआ करता है।"[1]

पूंजीवाद मे आर्थिक दृष्टि से पूंजीपति हावी होते हैं, इसलिए बोलबाला पूंजीवादी विचारों और संस्थाओ का रहता है और पूंजीपति उनका इस्तेमाल अपना शासन कायम रखने और मजदूर वर्ग से लडने के लिए करते है।

पर पूंजीवादी समाज मे पूंजीपतियो का विरोध सर्वहारा वर्ग करता है जो अपने विचार स्वयं संस्थापित करता है और अपनी अलग संस्थाएं खड़ी करता है। धीरे-धीरे मजदूर पूंजीवाद की अन्तर्वस्तु को समझने लगते हैं और उसका खात्मा करने की आवश्यकता का अहसास करने लगते हैं। वे पूंजी-पतियों से लड़ने के लिए अपने अलग संगठन—राजनीतिक पार्टी, ट्रेड यूनियनें, सहकारिताएं, आदि—बनाते हैं। क्रान्तिकारी संघर्ष के दौरान सर्वहारा मार्क्स-वादी सिद्धांत को अच्छी तरह समझने लगता है तथा अपनी नैतिकता एवं अपने राजनीतिक, कानूनी और सौन्दर्य विषयक मत तैयार करता है।

आधार ऊपरी ढांचे के लिए निर्णायक केवल इसलिए ही नहीं है कि वह ऊपरी ढांचे को जन्म देता है, बल्कि इसलिए भी है कि आर्थिक व्यवस्था मे होने वाले परिवर्तनो के परिणामस्वरूप ऊपरी ढांचे मे भी अनिवार्यतया परिवर्तन हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, इजारेदार पूंजीवाद से पूर्व की अवस्था से साम्राज्य-वाद मे संतरण के दौरान पूंजीवादी अर्थतंत्र मे महत्वपूर्ण तबदीली हुई। मुक्त प्रतियोगिता का स्थान इजारेदारी ने ग्रहण किया। पूंजीवादी ऊपरी ढांचे मे भी तदनुसार परिवर्तन हुए। कई देशो मे पूंजीपति वर्ग ने पूंजीवादी जन-तांत्रिक रूपो की जगह प्रतिक्रियावादी—फासिस्ट अथवा अर्धफासिस्ट—रूप अपना लिये और अपना रहा है। श्रमजीवी जनता के अधिकारों पर अधिकाधिक कुठाराघात किया जा रहा है तथा कम्युनिस्ट पार्टियों एवं प्रगतिशील संगठनों को दमन का शिकार बनाया जा रहा है। पूंजीवादी कला और दर्शन ह्रासोन्मुख हैं तथा भाववाद के घोर प्रतिगामी रूपों को तूती बोलने लगी है।

---

[1] मार्क्स-एंगेल्स दी जर्मन आइडियालाजी मास्को १९६४, पृष्ठ ६०।

ऊपरी ठाट की तब्दीलियां उस समय खास तौर पर गहरी हो जाती हैं जब कोई आर्थिक आधार सामाजिक क्रान्ति के फलस्वरूप किसी अन्य आधार को स्थानच्युत करता है। क्रान्ति के दौरान पुराने वर्ग के राजनीतिक शासन के स्थान पर नये वर्ग का राजनीतिक शासन कायम होता है। पुराने राज्य यंत्र (राजनीतिक और कानूनी संस्थाओं की व्यवस्था) की जगह एक नये राज्य यंत्र का निर्माण किया जाता है। सामाजिक चेतना बदल जाती है: पुरानी विचारधारा का स्थान एक नयी विचारधारा ग्रहण करती है जो नये आधार के अनुरूप होती है। लेनिन ने लिखा है: "पुराना 'ऊपरी ठाट' भहरा कर गिर पड़ता है और नाना प्रकार की सामाजिक शक्तियों की स्वतन्त्र क्रिया द्वारा एक नया 'ऊपरी ठाट' निर्मित होता है।"[1]

आधार द्वारा जनित ऊपरी ठाट मे सापेक्षिक स्वतंत्रता भी होती है जो उसके विकास की निरन्तरता में अभिव्यक्त होती है। पुराने आधार के स्थान पर नये आधार के आने के साथ ऊपरी ठाट मे जो क्रान्ति होती है, उसका अर्थ यह नही होता कि पुराने ऊपरी ठाट की सभी विशेषताएं स्वयमेव समाप्त हो जायेंगी। पुराने आधार के नष्ट होने के साथ समग्रतः पुराने ठाट का भी, पुराने समाज के मतों और संस्थाओं की एक व्यवस्था के रूप मे, अस्तित्व समाप्त हो जाता है। किन्तु उसकी विशेषताएं आधार के नष्ट हो जाने के बाद भी वैयक्तिक रूप में बनी रहती हैं। वे नये समाज के ऊपरी ठाट में प्रविष्ट हो जाती हैं, इस नये समाज के वर्गों की सेवा करती हैं और उनके हितों की सिद्धि करती हैं। उदाहरणार्थ, दास समाज में जन्म लेने वाला ईसाई धर्म सामन्ती प्रभुओं की वफादारी के साथ सेवकाई करता रहा और अब पूंजीपतियों की खिदमत बजा रहा है।

ऊपरी ठाट की सापेक्षिक स्वतंत्रता एवं सक्रिय भूमिका

किसी समाज के ऊपरी ठाट में कुछ ऐसी विशेषताएं भी होती हैं जो अस्थायी नहीं होती और पूरी मानवजाति के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। इनमें मनुष्य के आम नैतिक मानदण्ड एवं साहित्य और कला की सर्वोत्तम कृतियां सम्मिलित होते हैं।

निरन्तरता के कारण हर समाज का ऊपरी ठाट अत्यन्त जटिल हुआ करता है। पुराने समाज से विरासत में मिले विचार और संस्थाएं तथा समाज के चालू आर्थिक आधार पर विकसित विचार और संस्थाएं—ये दोनों ही इसमें शामिल होते हैं।

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड ९, पृष्ठ १४१।

ऊपरी ठाट की सापेक्षिक स्वतन्त्रता उस सक्रिय भूमिका में भी देखी जाती है जो वह उस आधार के विकास में अदा करता है जिसने उसे जन्म दिया। वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में प्रचलित विचार और संस्थाएं उस समाज के आधार की रक्षा करने तथा उसे सुदृढ़ करने के काम आती हैं। उनका मकसद उस वर्ग के शासन को उचित ठहराना होता है जिसने उन्हें जन्म दिया है और जिसके हितों की वे हिफाजत करते हैं। वैमनस्यपूर्ण समाजों में ये विचार एवं संस्थाएं अन्य वर्गों के विरुद्ध—सबसे अधिक श्रमजीवी वर्गों के विरुद्ध—शासक वर्ग के संघर्ष को पुनीत ठहराने और संगठित करने के बौद्धिक साधन होते हैं। वे शोषण, औपनिवेशिक उत्पीड़न तथा अन्य प्रकार के उत्पीड़नों से मुक्ति पाने की अन्य वर्गों की उत्कंठा का दमन करते हैं।

जब पूंजीवादी आधार जड़ पकड़ रहा था, उस समय पूंजीवादियों के विचारों और संस्थाओं ने उसके विकास एवं सुदृढ़ीकरण में सक्रिय योग दिया और वे सामन्ती वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में शक्तिशाली हथियार बने। आज पूंजीवादी विचारों और संस्थाओं का इस्तेमाल सभी प्रगतिशील शक्तियों का दमन करने के लिए किया जाता है ताकि पूंजीवादी आधार जिस कीमत पर भी हो, बरकरार रखा जा सके, पूंजीवाद के अन्त को रोका जा सके, या कम से कम उसे टाला जा सके। आजकल पूंजीवाद सर्वोपरि इसीलिए कायम है कि पूंजीवादी राज्य और कानून उसके हितों के पहरेदार हैं, बौद्धिक प्रभाव के सभी साधन, जो पूंजीवाद की हिफाजत में बड़ी भूमिका अदा करते हैं, उसके हितों के सन्तरी बने हुए हैं।

२. समाजवादी समाज का आधार और ऊपरी ठाट

पिछले अध्याय में हमने समाजवादी-उत्पादन पद्धति के उदय की विशेषताओं का अध्ययन किया और यह बताया कि समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध, अर्थात समाजवाद का आर्थिक आधार, कैसे बनते हैं। समाजवादी आधार पूंजीवाद के भीतर जन्म नहीं लेता। पूंजीवाद में तो उसके जन्म की पूर्वदशाएं मात्र पैदा होती हैं।

समाजवादी आधार आपसे आप नहीं निर्मित होता, जैसा कि पहले के वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाजों में हुआ करता था। वह समाजवादी राज्य के कार्यों द्वारा बनता है। *श्रमजीवी जनता की, जिसका अगुआ सर्वहारा एवं उसकी* मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी होते हैं, जोशीली और सामाजिक चेतना से युक्त कार्रवाइयां इस आधार के सृजन में निर्णायक भूमिका अदा करती हैं।

सर्वहारा अधिनायकत्व अर्थात् मजदूर वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता की विजय समाजवाद के आर्थिक आधार के निर्माण की अनिवार्य पूर्वदशा है। सर्वहारा

राज्य उत्पादन के मौलिक साधनों को अपने हाथ में केन्द्रित करता है और नगर तथा देहात में योजनापूर्ण ढंग से समाजवादी उत्पादन को संगठित करता है। औद्योगीकरण और कृषि का समूहीकरण समाजवाद के आर्थिक आधार के निर्माण की प्रमुख सीढ़ियां हैं।

समाजवादी आधार के सुदृढ़ होने के साथ ऊपरी ठाट में भी मजबूती आती जाती है। राज्ययंत्र विकसित और उन्नत होता है, और विज्ञान एवं कला उच्च विकास प्राप्त करते हैं। लोगों की सामाजिक चेतना नवनिर्मित होती है और कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धांत जड़ पकड़ते हैं। समाजवाद की विजय और समाजवादी आधार के सुदृढ़ हो जाने के साथ समाजवादी ऊपरी ठाट कायम करने की प्रक्रिया का भी अन्त हो जाता है।

आधार की नहीं, किन्तु समाजवादी ऊपरी ठाट की वैयक्तिक विशेषताएं पूंजीवाद के अन्दर प्रकट होती हैं। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत, मजदूर वर्ग की पार्टी, ट्रेड यूनियनें, सर्वहारा नैतिकता, साहित्य और कला—ये पूंजीवादी आधार के हावी रहते हुए ही प्रकट हो जाते हैं। इसके बाद वे समाजवादी समाज के ऊपरी ठाट में प्रवेश करते हैं जो पहले के समस्त युगों की विज्ञान, संस्कृति और दर्शन की सर्वोत्तम उपलब्धियों को आत्मसात करता है। किन्तु विचारों, संस्थाओं और संगठनों के कुल जोड़ के रूप में पूरा का पूरा समाजवादी ऊपरी ठाट केवल इन विशेषताओं से ही गठित नहीं होता। वह सम्पूर्णतया तो समाजवादी आधार के निर्माण के साथ ही निर्मित होता है।

अब आइए देखें कि सोवियत समाजवादी समाज का ऊपरी ठाट कैसे बना। समाजवादी आधार के मुख्य आधार स्तम्भ सोवियत सत्ता के प्रथम कुछ महीनों में ही निर्मित हो गये जब कि उत्पादन के मुख्य साधनों का राष्ट्रीकरण कर दिया गया। लगभग उसी समय पुराना राज्ययंत्र पूर्णतया तोड़ दिया गया और सर्वहारा राज्य—यह समाजवादी ऊपरी ठाट की एक प्राथमिक वस्तु है—खड़ा किया गया। २६ अक्तूबर १९१७ को जन-कमिसार परिषद गठित की गयी। दिसम्बर १९१७ में अखिल रूस असाधारण आयोग गठित किया गया। यह संस्था प्रतिक्रांति और तोड़फोड़ का मुकाबला करने के लिए बनायी गयी थी। १५ जनवरी १९१८ को लाल फौज की स्थापना के फरमान पर और १४ फरवरी को लाल नौसेना की स्थापना के फरमान पर दस्तखत हुए। केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारी संस्थाएं भी उसी समय स्थापित की गयीं।

समाजवादी ऊपरी ठाट में समाजवादी विचारधारा और तदनुरूप संस्थाओं—समाजवादी राज्य, कम्युनिस्ट पार्टी, ट्रेड यूनियनें, तरुण कम्युनिस्ट लीग, सहकारी, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, मेहनतकश जनता की, शिक्षा एवं अन्य संस्थाओं—का कुल जोड़ शामिल है।

समाजवादी समाज का ऊपरी ठाट वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाजों के—विशेषकर आज के पूंजीवाद के—ऊपरी ठाट से मौलिक रूप में भिन्न होता है।

प्रगतिशील समाजवादी आधार समाजवादी ऊपरी ठाट के स्वरूप को, उसके कारगर, क्रान्तिकारी, कायापलटकारी स्वरूप को भी, निर्धारित करता है। वह इतिहास—पूंजीवाद से कम्युनिज्म में मानव जाति के नियम-अधिशासित विकास—की वास्तविक धारा को प्रतिबिम्बित करता है, इस विकास को हर प्रकार से सुगम बनाता है, और समाजवादी आधार को सुदृढ़ और विकसित करता है।

समाजवादी समाज के ऊपरी ठाट में कोई वैमनस्यपूर्ण अन्तर्विरोध नहीं होता। यह चीज समाजवादी आधार की ऐक्यबद्धता तथा उसके तालमेल से तय होती है। समाजवादी समाज मे ऐसे वर्ग नही है जो प्रतिगामी विचारों के वाहक बनें। सारी श्रमजीवी जनता का हित इसमे है कि समाजवादी समाज विकास करे और कम्युनिज्म की ओर आगे बढ़े। सभी लोग समाजवाद के आधार को मजबूत करने की कोशिश करते हैं। सभी उसके ऊपरी ठाट को विकसित और उन्नत बनाना चाहते हैं।

समाजवादी समाज मे भी पिछड़े हुए विचारों के अवशेष मिलते हैं। पर वे समाजवादी ऊपरी ठाट का अग नहीं होते, क्योंकि वे पूंजीवाद की विरासत हैं और समाजवादी आधार से उनका उद्‌भव नही होता।

समाजवादी ऊपरी ठाट का स्वरूप सच्चा जनवादी होता है। वह श्रमजीवी जनता के हितों को अभिव्यक्त करता और उन्हें बुलन्द रखता है। बदले मे श्रमजीवी जनता उसका निरन्तर समर्थन करती है। यही समाजवादी ऊपरी ठाट की सक्रियता का कारण है, उस भारी प्रभाव का कारण है जो वह आधार के विकास तथा समाजवादी समाज की समूची प्रगति पर डालता है। सोवियत समाज के कम्युनिज्म की ओर बढ़ने के साथ ऊपरी ठाट का महत्व तथा आधार एव समग्र समाज के विकास पर उसका प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। समाजवादी ऊपरी ठाट, और सर्वोपरि उसके प्राथमिक सघटक तत्व—सोवियत राज्य तथा कम्युनिस्ट पार्टी जो देश के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन को संगठित करते हैं—कम्युनिज्म के सफल निर्माण के एक महत्वपूर्ण उपादान हैं।

जनता—सामाजिक विकास की निर्णायक शक्ति
इतिहास में व्यक्ति की भूमिका

हम पहले बता चुके हैं कि समाज अपने ही नियमों और ऐतिहासिक अनिवार्यता के आधार पर विकसित होता है। पर सामाजिक नियम सदा जनता के, जो अपना इतिहास स्वय बनाती है, कार्यों के जरिये अभिव्यक्त होते हैं।

ऐतिहासिक प्रक्रिया में जनता का क्या महत्व है, और इतिहास में व्यक्ति एवं जनता की भूमिका क्या है ?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस पूर्व-स्थापना से आरम्भ करता है कि जनता इतिहास की निर्माता है।

१. जनता इतिहास की असली निर्माता और सामाजिक विकास की निर्णायक शक्ति है

जनता से हमारा अभिप्राय क्या है

इतिहास निर्माता के रूप में जनता की भूमिका की व्याख्या करने के लिए सर्वप्रथम हमें इस चीज के बारे में सुस्पष्ट हो जाना चाहिए कि जनता से हमारा अभिप्राय क्या है।

जनता से हमारा अभिप्राय सर्वोपरि उन लोगों से है जो काम करते हैं। वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाज में वे ही शोषित होते हैं। दास समाज में यह मुख्यतया दास लोगों की जमात थी और सामन्ती समाज में भूदासों और दस्तकारों की। पूंजीवादी समाज मे जनता में मजदूर वर्ग, किसान, मेहनतकश बुद्धिजीवी और अन्य समूह, जो सामाजिक प्रगति में योगदान करते हैं, शामिल होते हैं।

वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में आबादी का अधिकांश जनता होती है, पर पूरी आबादी जनता नहीं है। उदाहरण के लिए, आज के पूंजीवादी समाज में जनता के विरुद्ध प्रतिगामी साम्राज्यवादी शासक वर्ग खड़ा है।

समाजवादी समाज में पूरी आबादी—मजदूर, किसान और बुद्धिजीवी—जनता होती है।

जनता इतिहास की निर्माता है

इतिहास में जनता का निर्णायक महत्व समाज के विकास में उत्पादन पद्धति की निर्धारक भूमिका से उद्भूत होता है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, भौतिक उत्पादन सामाजिक जीवन का आधार है, और श्रमजीवी जनता ही मुख्य उत्पादक शक्ति है। फलतः जनता सामाजिक विकास की निर्णायक शक्ति है, इतिहास की असली निर्माता है।

श्रमजीवी जनता प्रथमतया अपने उत्पादक श्रम द्वारा इतिहास का निर्माण करती है। वह सारी भौतिक सम्पदा का उत्पादन करती है। नगर और ग्राम, फैक्टरियां, सड़कें, पुल, मोटर और मशीनें, कपड़े और जूते, भोजन और घर के बर्तन—संक्षेप में वह सब कुछ जिसके बिना हम रह नहीं सकते, श्रमजीवी जनता द्वारा उत्पादित होता है।

जनता तकनीकी प्रगति की मुख्य प्रेरक शक्ति है। रोज-ब-रोज, साल-ब-साल और सदी-ब-सदी मेहनत से लगे रह कर उसने श्रम के नये-नये औजार गढ़े और उन्हें निरन्तर सवारा-सुधारा है। यह काम अक्सर उसने अपने तईं अनजाने ही किया है। उसके इस कार्य के अन्तिम परिणामस्वरूप मौलिक तकनीकी क्रान्तियां हुई हैं, उत्पादन शक्तियों में तबदीली आयी है। फिर उत्पादक शक्तियों के विकास का यह नतीजा हुआ कि कुल मिलाकर उत्पादन पद्धति मे परिवर्तन आया। घोर से घोर उत्पीड़न का शिकार रहते हुए भी शोषण पर आधारित समाज की साधारण जनता की मेहनत ने सदैव मानव-जाति की प्रगति की, नयी सामाजिक व्यवस्था मे सन्तरण की भौतिक पूर्वदशाएं तैयार कीं।

पर इतिहास मे जनता की भूमिका उत्पादक शक्तियों का विकास करने और ऐसा करके नयी समाज-व्यवस्था में सन्तरण के लिए भौतिक अवस्थाएं तैयार करने तक ही सीमित नहीं है। जनता सामाजिक-क्रान्तियों तथा राजनीतिक और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की किस्मत का फैसला करनेवाली मुख्य शक्ति भी है। वर्ग संघर्ष, अपने उत्पीड़कों के विरुद्ध श्रमजीवी जनता का संघर्ष, जिसका सर्वोच्च रूप सामाजिक क्रान्ति है, वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज के विकास मे प्रेरक शक्ति का काम करता है। दासों के विद्रोहों ने दास समाज की जड़ें काटीं और वे सामन्तवाद मे सन्तरण का प्रधान कारण बने। पूंजीवादी क्रान्तियों की महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति अर्ध-दास और शहरों के गरीब लोग थे, और इस क्रांति ने ही सामन्तवाद को हटने और अधिक प्रगतिशील, पूंजीवादी व्यवस्था के लिए स्थान त्यागने को मजबूर किया।

समाजवाद से पहले के समाजों मे जनता अपने श्रम के फलों का उपभोग नहीं करती थी, किन्तु कार्य और संघर्ष ही वे मुख्य उपकरण थे, जिन्होंने

मेहनतकश जनता को अन्ततः मुक्ति दिलाने तथा उन्नत, समाजवादी व्यवस्था को जन्म दिलाने का काम किया।

मानवजाति की आत्मिक संस्कृति के विकास में जनता ने प्रबल योगदान किया है। मैक्सिम गोर्की ने लिखा है : "जनता सभी भौतिक मूल्यों का सृजन करनेवाली शक्ति मात्र नहीं है। वह आत्मिक मूल्यों की एकमात्र एवं अक्षय खान है। वह इतिहास का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख दार्शनिक और कवि, सौन्दर्य और प्रतिभा की मूर्ति, आज तक की सभी महान कविताओं तथा ट्रैजेडियों की तथा इनमें से भी सबसे महान ट्रैजेडी—विश्व संस्कृति के इतिहास—की रचयिता है।

जनता का श्रम और उसके सृजनात्मक प्रयास विज्ञान और संस्कृति के पोषक का काम करने वाले स्रोत हैं। अनेक प्रमुख वैज्ञानिक और लेखक, कलाकार एवं संस्कृति क्षेत्र के अन्य प्रमुख महारथी जिनकी कृतियों ने मानवजाति को समृद्धि प्रदान की है, साधारण जनता से आये थे। उदाहरण के लिए, लोमोनोसोव उत्तर के एक मछुवारे के बेटे थे। न्यूटन एक मामूली किसान के पुत्र थे। रूस में प्रथम रेलवे इंजन तैयार करने वाले चेरेपानोव और उनके पुत्र भू-दास थे। जनता असाधारण महाकाव्यों और किस्से-कहानियों, गीतों और नृत्यों की सृजनकर्त्री है। नामी कलाकारों ने अपनी सर्वोत्तम कृतियों की रचना करते हुए लोककला के अनन्त भण्डार से अनुकरणीय आदर्श ढूंढे थे।

ऐतिहासिक विकास में जनता की बढ़ती हुई भूमिका

जनता इतिहास का निर्माण करती है। यह निर्माण कार्य वह अपनी मनमानी इच्छा से नहीं करती, बल्कि वस्तुगत अवस्थाओं के अनुरूप ही और सर्वोपरि इतिहास द्वारा निर्दिष्ट उत्पादन-विधि के अनुसार ही करती है। भौतिक उत्पादन चूंकि निरन्तर निम्नस्तर से उच्चस्तर की ओर विकास करता है, इसलिए ऐतिहासिक प्रक्रिया में जनता की भूमिका भी बदलती रहती है। इसके अतिरिक्त मानवजाति चूंकि निरन्तर आगे की दिशा में विकास करती जाती है, इस इतिहास में जनता की भूमिका भी बढ़ती रहती है। मार्क्सवाद ने प्र[illegible] किया है कि सामाजिक कायापलट जितना ही अधिक गहरा होता है और [illegible] के सम्मुख जितने ही अधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य पेश होते हैं, उतनी ही [illegible] संख्या में जनता ऐतिहासिक प्रक्रिया में भाग लेती है और जनता उतनी ज्यादा सक्रिय होती है। मार्क्स ने लिखा है : "ऐतिहासिक क्रिया की सम्पूर्णता के साथ साथ उस जन-समूह का [illegible]।"[1]

---

1. मार्क्स-एंगेल्स, पवित्र परिव

दास एवं सामन्ती समाजो मे मेहनतकश लोग सामान्यतम मानवीय अधिकारो मे भी वंचित थे और वे अपनी सृजनात्मक शक्तियो का विकास नही कर सकते थे। राज्य प्रशासन, राजनीति, विज्ञान और कला पर दास-स्वामियो और सामन्ती प्रभुओ का एकाधिकार था। वे जनता को अज्ञान के अन्धकार में रखते थे और उससे कमरतोड़ मेहनत कराते थे। उन दिनो जनता की सक्रियता अपेक्षाकृत सकुचित थी और शोषको के विरुद्ध उसके आन्दोलनों की असफलता निश्चित रहती थी। उस जमाने मे इतिहास कच्छप गति से ही आगे बढ़ सकता था।

शोषण से श्रमजीवी जनता की मुक्ति की भौतिक पूर्वदशाए पूजीवाद मे तैयार होती हैं। बड़े पैमाने का मशीनी उत्पादन प्रगट होता है और उसके साथ ही प्रगट होता है सर्वहारा वर्ग जो पूजीवाद के विरुद्ध लड़ाई मे जनता का नेतृत्व करने तथा समाजवाद की विजय हासिल करने की क्षमता रखता है। सर्वहारा वर्ग कम्युनिस्ट पार्टी को पैदा करता है जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त को अपना मार्ग दर्शक बनाती है और श्रमजीवी जनता के क्रान्तिकारी सघर्ष का नेता बनती है। इन्ही कारणो से जनता पूजीवाद के अन्तर्गत जीवन मे ज्यादा बड़ी भूमिका अदा करती है। श्रमजीवी [illegible] सख्या में सक्रिय राजनीतिक सघर्ष मे [illegible] र में बड़ी [illegible]

समाजवाद की अवस्थाओं में जनता की भूमिका बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसका कारण मुख्यतया समाजवादी व्यवस्था का स्वरूप और समाजवादी उत्पादन सम्बंधों का बोलबाला होता है। समाजवादी स्वामित्व जो अब सोवियत संघ में मजबूती से अपने कदम जमा चुका है, श्रमजीवी जनता के सभी हिस्सों को एकताबद्ध करता है। उससे यह चीज भी सुनिश्चित हो जाती है कि कम्युनिज्म के निर्माण में वह सक्रिय होकर भाग लेगी।

सामाजिक और वैयक्तिक हितों का सुन्दर समन्वय, अपने श्रम के फलों में श्रमजीवी जनता की भौतिक दिलचस्पी केवल समाजवाद में ही हासिल होती है। पूंजीवादी समाज में श्रमजीवी जनता ही महान भौतिक और आत्मिक मूल्यों का सृजन करती है; सभी प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलनों में मुख्य भाग लेने वाली श्रमजीवी जनता ही होती है; पर उसके श्रम और संघर्ष के फलों को मुट्ठीभर शोषक हड़प लेते हैं। समाजवादी समाज में स्थिति भिन्न है: उसमें समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ़ तथा विकसित करने में मजदूरों की मौलिक दिलचस्पी रहती है, क्योंकि वही उनकी राजनीतिक आजादी, भौतिक खुशहाली और सांस्कृतिक प्रगति का आधार है। लेनिन ने लिखा था: "सदियों तक दूसरों के वास्ते काम करने के बाद, शोषकों के लिए बेगार करने के बाद, आज पहली बार यह सम्भव हुआ है कि अपने वास्ते काम किया जाये, और इसके अलावा यह कि अपने काम के अन्दर आधुनिक प्रविधि एवं संस्कृति की सभी उपलब्धियों का उपयोग किया जाये।"[1] लोगों को अब यह अहसास है कि अब वे अपने लिए, अपने समाज के लिए काम करते हैं और यह काम के प्रति उनके उत्साह का स्रोत है। यह उनकी पहलकदमी, आगे बढ़ कर प्रयास करने की प्रवृत्ति तथा समाजवादी प्रतियोगिता को जाग्रत करता है।

समाजवाद में जनता की भूमिका इस वजह से भी बढ़ जाती है कि कम्युनिज्म का निर्माण करने में उसके सामने बहुत बड़े-बड़े कार्य पेश हैं। कम्युनिज्म की विजय विकास में एक जबर्दस्त छलांग का परिचायक होगी। वह जीवन के हर क्षेत्र में विराट एवं अपूर्व परिवर्तनों का परिणाम होगी। और इन सारी चीजों की कल्पना भी नहीं की जा सकती यदि करोड़ों करोड़ श्रमजीवी जन-उत्साह के साथ काम में कन्धा न लगायें।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व समाजवादी समाज में जनता की भूमिका को बढ़ाने का मुख्य उपकरण है। पार्टी सोवियत जनता को वस्तुगत नियमों पर आधारित तथा समाज के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं का लेखा लेने वाली एक वैज्ञानिक नीति प्रदान करती है। मौजूदा उत्पादन-स्तर

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड २६, पृष्ठ ४०७।

और वास्तविक सम्भावनाओं के आधार पर पार्टी जनता के सामने आगे के कार्य पेश करती है और इन्हें पूरा करने के मार्गों का निर्देश करती है। पार्टी जनता को शिक्षित करती है, उसकी सक्रियता को तेज करती है और नये समाज का निर्माण करने के कार्य में उसे निरन्तर व्यापकतर पैमाने पर जुटाने की कोशिश करती है।

२. इतिहास मे व्यक्ति की भूमिका

मार्क्सवादी ऐतिहासिक अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। इसलिए पूंजीवादी विचारक अक्सर उन पर यह आरोप लगाते हैं कि मार्क्सवादी तो इतिहास में महान विभूतियों की भूमिका को, नेताओं की भूमिका को मानते ही नहीं। यह आरोप निराधार है, क्योंकि मार्क्सवाद निश्चय ही व्यक्ति की भूमिका को घटा कर नहीं आंकता। मार्क्सवादी कहते हैं कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार इतिहास की वस्तुगत धारा को बदल नहीं सकता, पर वे स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति सामाजिक विकास में मामूली भूमिका नहीं अदा करता। लेनिन ने लिखा है: "ऐतिहासिक अनिवार्यता की धारणा से इतिहास में व्यक्ति की भूमिका बिल्कुल ही समाप्त नहीं होती सारा का सारा इतिहास व्यक्तियों के कार्यों से ही बना हुआ है जो असन्दिग्ध रूप से सक्रिय व्यक्ति हैं।"[१] मार्क्सवाद ने सामाजिक विकास मे व्यक्ति के असल महत्व को सिद्ध किया है और उन अवस्थाओं का भी संकेत दिया है जिनमे व्यक्ति इतिहास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

हम जानते हैं कि जनगण ही, सर्वसाधारण ही इतिहास का निर्माण करते हैं। जनगण वर्गों मे विभक्त हैं जो वर्ग संघर्ष के दौरान अपनी राजनीतिक पार्टियां संगठित करते हैं जिनके अन्दर से नेता निकलते हैं, सबसे अनुभवी, प्रशिक्षित एवं सक्रिय सदस्य निकलते हैं। इन नेताओं की इतिहास में भूमिका यह होती है कि वे जनता को संगठित करते हैं, उन्हें संघर्ष के लिए उभारते हैं, उनके सामने निश्चित कार्य पेश करते हैं और इन कार्यों को पूरा करने के लिए उन्हें मैदान मे उतारते हैं।

इतिहास में नेताओं की भूमिका

सर्वसाधारण जितना ही अधिक सक्रिय होते हैं और इतिहास रचनेवालों की मण्डली जितनी ही विस्तृत होती है, उतनी ही अधिक जरूरत अनुभवी और परिपक्व नेताओं की होती है। नेताओं के बिना अग्रगामी वर्ग राजनीतिक सत्ता हासिल करने, अपनी हुकूमत कायम रखने और उसे सुदृढ़ बनाने, अपने राज्य का निर्माण करने और सफलता के साथ अपने राजनीतिक शत्रुओं से लड़ने में

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड १, पृष्ठ १५९।

समाजवाद की अवस्थाओ में जनता की भूमिका बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसका कारण मुख्यतया समाजवादी व्यवस्था का स्वरूप और समाजवादी उत्पादन सम्बंधों का बोलबाला होता है। समाजवादी स्वामित्व जो अब सोवियत संघ मे मजबूती से अपने कदम जमा चुका है, श्रमजीवी जनता के सभी हिस्सों को एकताबद्ध करता है। उससे यह चीज भी सुनिश्चित हो जाती है कि कम्युनिज्म के निर्माण मे वह सक्रिय होकर भाग लेगी।

सामाजिक और वैयक्तिक हितो का सुन्दर समन्वय, अपने श्रम के फलो मे श्रमजीवी जनता की भौतिक दिलचस्पी केवल समाजवाद में ही हासिल होती है। पूजीवादी समाज में श्रमजीवी जनता ही महान भौतिक और आत्मिक मूल्यों का सृजन करती है, सभी प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलनो मे मुख्य भाग लेने वाली श्रमजीवी जनता ही होती है; पर उसके श्रम और संघर्ष के फलों को मुट्ठीभर शोषक हड़प लेते हैं। समाजवादी समाज मे स्थिति भिन्न है: उसमें समाजवादी व्यवस्था को सुदृढ तथा विकसित करने में मजदूरों की मौलिक दिलचस्पी रहती है, क्योंकि यही उनकी राजनीतिक आजादी, भौतिक खुशहाली और सांस्कृतिक प्रगति का आधार है। लेनिन ने लिखा था: "सदियों तक दूसरों के वास्ते काम करने के बाद, शोषकों के लिए बेगार करने के बाद, आज पहली बार यह सम्भव हुआ है कि अपने वास्ते काम किया जाये, और इसके अलावा यह कि अपने काम के अन्दर आधुनिक प्रविधि एव संस्कृति की सभी उपलब्धियो का उपयोग किया जाये।"[1] लोगो को अब यह अहसास है कि अब वे अपने लिए, अपने समाज के लिए काम करते हैं और यह काम के प्रति उनके उत्साह का स्रोत है। यह उनकी पहलकदमी, आगे बढ़ कर प्रयास करने की प्रवृति तथा समाजवादी प्रतियोगिता को जाग्रत करता है।

समाजवाद में जनता की भूमिका इस वजह से भी बढ़ जाती है कि कम्युनिज्म का निर्माण करने मे उसके सामने बहुत बड़े-बड़े कार्य पेश हैं। कम्युनिज्म की विजय विकास में एक जबर्दस्त छलांग का परिचायक होगी। वह जीवन के हर क्षेत्र में विराट एवं अपूर्व परिवर्तनों का परिणाम होगी। और इन सारी चीजों की कल्पना भी नही की जा सकती यदि करोड़ों करोड़ श्रमजीवी जन-उत्साह के साथ काम मे कन्धा न लगायें।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व समाजवादी समाज में जनता की भूमिका को बढ़ाने का मुख्य उपकरण है। पार्टी सोवियत जनता को वस्तुगत नियमों पर आधारित तथा समाज के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं का लेखा लेने वाली एक वैज्ञानिक नीति प्रदान करती है। मौजूदा उत्पादन-स्तर

1. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड २९

उसके अवतरण की आर्थिक पूर्वदशाएं तथा तदनुकूल आर्थिक और राजनीतिक अवस्थाएं परिपक्व होती हैं।

इतिहास में अनेक नाम मौजूद हैं, पर वे सभी के सभी महान व्यक्ति नहीं । ऐसे भी व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने ऐतिहासिक अनिवार्यता के प्रतिकूल काम किया और काल-चक्र को पीछे घुमाने की कोशिश की। इन व्यक्तियों ने प्रतिगामी वर्गों के हितों को अभिव्यक्त करके, उस पूरे ध्येय के साथ ही साथ जिसकी उन्होंने हिमायत की, शिकस्त खायी।

व्यक्ति सचमुच महान तभी बन सकता है जब वह अपनी सारी जिन्दगी और सारी शक्ति समाज की प्रगति को अर्पित कर दे, जब वह नूतन के लिए बना कोई जोरदार रचो काम करे और समाज के आगे बढ़े हुए वर्गों को प्रगतिशील समाज व्यवस्था की स्थापना करने में अथक रूप से मदद दे।

कोई विभूति इतना महान् और मुश्किल कार्य पूरा करने में क्यों समर्थ होती है ? उसकी शक्ति का स्रोत क्या है ?

किसी विभूति की शक्ति सर्वोपरि उस प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन की शक्ति में निहित होती है जिसका वह समर्थक और कर्णधार बनता है। महान व्यक्ति महान इसलिए होता है कि वह इतिहास की वस्तुगत धारा को समझता है, समाज के विकास की आवश्यकताओं को देखता है और जानता है कि इन आवश्यकताओं की कैसे पूर्ति की जानी चाहिए, सामाजिक जीवन को किस तरह उन्नत करना चाहिए। असाधारण व्यक्ति इसीलिए ताकतवर होता है कि वह आगे बढ़े हुए वर्गों और जनता के हितों की सेवा करता है, और इस वजह से उनका एतबार और समर्थन पाता है।

महापुरुष के वैयक्तिक गुण साधारण महत्व नहीं रखते। असाधारण क्षमताओं और वैयक्तिक गुणों—महान मेधा, अक्षय स्फूर्ति, संकल्प और वीरता—से युक्त व्यक्ति ही इतिहास द्वारा अपने लिए निर्धारित कामों की पूर्ति कर सकता है। किसी महापुरुष के वैयक्तिक गुण सामाजिक आवश्यकताओं से जितना अधिक मेल खाते हैं, उतनी ही उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण इतिहास में उसकी भूमिका होती है।

सर्वहारा और समूची श्रमजीवी जनता के नेता मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन असाधारण व्यक्ति थे जिन्होंने इतिहास पर गहरी छाप छोड़ी है। वे गुणात्मक रूप से बिल्कुल नये प्रकार के नेता थे—जनता के महानतम आन्दोलन, सर्वहारा के क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिद्धान्तवेत्ता और संगठनकर्ता थे। उनमें दृढ़ता और वीरता थी, कम्युनिज्म की व्याख्यता के प्रति अविचल आन्तरिक आस्था थी, जनता के प्रति प्यार और शत्रुओं के प्रति घृणा थी। वे जनता के साथ घनिष्ठ

असमर्थ रहता है। लेनिन के शब्दों में: "इतिहास में ऐसा कोई वर्ग नहीं हुआ जिसने अपने राजनीतिक नेता पैदा किये बिना, एक आन्दोलन खड़ा करने तथा उसका नेतृत्व करने की क्षमता रखने वाले अपने प्रमुख प्रतिनिधि पैदा किये बिना, सत्ता प्राप्त की हो।"[1]

नेता की भूमिका, सिद्धान्तकार की भूमिका सर्वहारा के क्रान्तिकारी आन्दोलन में खास तौर से बहुत बड़ी होती है। यह इसलिए कि संगठन और लौह अनुशासन मजदूर वर्ग के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन हैं। अनुभवी तथा संघर्ष में तपेतपाये नेताओं के बिना संगठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। धाक रखने वाले नेताओं, निर्भीक संगठनकर्ताओं और बुद्धिमान सिद्धान्तकारों के बिना मजदूर वर्ग का आन्दोलन शोषकों से लड़ने के सही मार्ग और साधन हरगिज नहीं पा सकता था।

महान व्यक्ति किसी संयोग से नहीं पैदा होते, बल्कि ऐतिहासिक अनिवार्यता उन्हें उत्पन्न करती है। वे तब पैदा होते हैं जब तत्सम्बंधित वस्तुगत अवस्थाएं परिपक्व होती हैं। असाधारण राजनीतिक विभूतियां, जनता के नेता, समाज में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तनों, बहुत बड़े राजनीतिक संघर्षों और जन-विप्लवों के काल में सामने आते हैं। विज्ञान में असाधारण प्रतिभा वाले व्यक्ति प्रायः उस समय प्रगट होते हैं जब उत्पादन को किसी महती वैज्ञानिक खोज की आवश्यकता होती है। आम तौर से महान कलाकार इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण मोड़ों पर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करते हैं। इसके अलावा, प्रतिभावान व्यक्ति इतिहास में स्थान तभी प्राप्त करता है जब कि समाज को अपने विकास की उस खास मंजिल में उस व्यक्ति की क्षमताओं, चरित्र एवं बुद्धि की आवश्यकता होती है।

विभूतियां क्यों पैदा होती हैं और उनकी शक्ति का स्रोत क्या है

किसी विभूति का उस समय जब कि उसकी जरूरत है, अवतरण अनिवार्यता है; किन्तु यह चीज कि उन खास अवस्थाओं के अन्दर यह खास व्यक्ति ही उदित हुआ, आकस्मिकता की बात है। एंगेल्स ने लिखा है: "अमुक व्यक्ति, और अमुक व्यक्ति ही, कोई और नहीं, किसी खास देश में किसी खास वक्त पर अवतरित हुआ—यह निस्सन्देह कोरी आकस्मिकता है। लेकिन इस को निकाल दीजिए तो उसकी जगह आने वाले किसी अन्य की आवश्यकता होगी, और उसकी जगह आने वाला यह व्यक्ति अच्छा या बुरा मिलेगा ही, अन्ततः उसका पाया जाना अनिवार्य है।"[2] वह तभी

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खण्ड ४, पृष्ठ ३७० ।

२. मार्क्स-एंगेल्स, संकलित पत्र-व्यवहार, मास्को, १९५५,

व्यापक रूप से भाग लेने की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं और जनता की पहल का महत्व घटा कर आंका जाता है। किन्तु कम्युनिज्म का निर्माण तो जनता के अधिक से अधिक सक्रिय होकर भाग लेने से ही हो सकता है। इसीलिए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने स्तालिन की व्यक्ति-पूजा और उसके परिणामों की इतनी तीव्र निन्दा की है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २०वीं कांग्रेस ने स्तालिन की व्यक्ति-पूजा को मार्क्सवाद-लेनिनवाद तथा समाजवादी व्यवस्था के लिए विजातीय बतलाया और उसने पार्टी का आह्वान किया कि उसके परिणामों को जड़ से साफ करे। पार्टी ने अपनी पांतों को और दृढ़ता से गोलबन्द किया, जनता के साथ अपने सम्पर्कों को मजबूत बनाया और अपनी आम लाइन को क्रियान्वित करने के लिए समूची ताकतों को मैदान में उतारा।

पार्टी पूरी सोवियत जनता की मदद से व्यक्ति-पूजा के विरुद्ध जिस दृढ़ता और संकल्प के साथ लड़ी, उसने सोवियत समाजवादी व्यवस्था की शक्ति और प्राणवानता तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विचारों की अजेयता का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद व्यक्ति-पूजा की दृढ़तापूर्वक निन्दा करता है, किन्तु उसका मत है कि व्यक्ति-पूजा और नेताओं की प्रतिष्ठा को अगर हम एक ही चीज समझ लें, तो यह गलत और नुकसानदेह होगा। लेनिन ने लिखा है "मजदूर वर्ग को, जो समूची दुनिया में पूर्ण मुक्ति के लिए अनवरत कठिन संघर्ष कर रहा है, प्रतिष्ठाधारियों की आवश्यकता पड़ती है।"[1] हमें जनता एवं पार्टी के प्रति निष्ठावान नेताओं की, जिन्होंने अपना सारा ज्ञान और सारी शक्ति तथा अपना गहन अनुभव कम्युनिज्म के महान ध्येय के प्रति अर्पित कर रखा है, प्रतिष्ठा की हिफाजत करनी चाहिए।

समूचा इतिहास हमें बतलाता है कि व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो, वह इतिहास की गति को निर्धारित नहीं कर सकता। इतिहास का निर्माण तथा मानवजाति की सारी भौतिक और आत्मिक सम्पदा का उत्पादन जनता ही करती है।

---

१. लेनिन, संकलित रचनाएं, खंड ११, पृष्ठ ४०२।

सम्पर्क रखते थे, जनता को सिखाते और उससे सीखते थे, और अपने गहरे क्रान्तिकारी अनुभव का सामान्यीकरण करते थे।

इन महापुरुषों ने जिस महान आन्दोलन को जन्म दिया, उसे उनके शिष्य और अनुयायी सफलतापूर्वक आगे बढ़ा रहे हैं। ये हैं: सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य बन्धु कम्युनिस्ट एवं मजदूर पार्टियों के प्रमुख नेता जो हमारे युग के सबसे शक्तिशाली आन्दोलन—कम्युनिज्म की ओर जनता के आन्दोलन—के अगुआ हैं।

मार्क्सवाद इतिहास में महापुरुषों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करता है और जनता, आगे बढ़े हुए वर्गों और राजनीतिक पार्टियों के कार्यों से जुड़ी पृष्ठभूमि में इन लोगों के कार्यों की जांच-परख करता है। मार्क्सवाद का व्यक्ति-पूजा के सिद्धान्त के साथ बिल्कुल कोई मेल नहीं है जो अपनी इच्छा के अनुसार इतिहास रचने की तथाकथित अतिमानवीय क्षमता रखने वाले किसी महापुरुष की अन्धभक्ति का सिद्धान्त है। व्यक्ति पूजा का सिद्धान्त समाजवादी विचारधारा के विपरीत है और कम्युनिस्ट आन्दोलन को भारी नुकसान पहुंचाता है। मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने व्यक्ति-पूजा का हमेशा विरोध किया। उन्होंने व्यक्तिगत नेताओं की भूमिका को अतिरंजित करने, उनका गुणगान तथा चाटुकारी करने की प्रवृत्ति की भर्त्सना की। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों का मत था कि सामूहिक नेतृत्व ही क्रान्तिकारी आन्दोलन की सफलता को सुनिश्चित कर सकता है।

मार्क्सवाद और व्यक्ति पूजा में कोई मेल नहीं है

व्यक्ति-पूजा का सिद्धान्त इसलिए नुकसानदेह है कि वह इतिहास का निर्माण करने वाले की हैसियत से जनता की भूमिका को घटाता है और साथ ही जनता के सामूहिक नेता के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी तथा उसकी केन्द्रीय संस्थाओं की भूमिका को भी कम करता है। वह पार्टी के बौद्धिक जीवन और जनता की सृजनात्मक शक्ति के विकास को अवरुद्ध करता है। जनता को निश्चेष्ट रह कर ऊपर के हुक्म का इन्तजार करने का आदी बनाता है। व्यक्ति-पूजा का सिद्धान्त और इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप सामूहिक नेतृत्व, पार्टी के भीतरी जनवाद तथा समाजवादी कानूनों का उल्लंघन समाजवाद के जनवादी स्वरूप के सर्वथा विपरीत है, क्योंकि जनता की प्रभुसत्ता है: की सर्व-शक्तिमत्ता नहीं—समाजवाद की विशेषता है।

व्यक्ति-पूजा कुर्सी पर बैठे हुए नौकरशाही नेतृत्व तथा इन्तजाम चलाने के तरीकों का समावेश करती है। वह आत्मालोचना का गला घोटती है। इससे कम्युनिस्ट

करता है और वही यह भी निर्धारित करता है कि यह वर्ग किस ढंग से आमदनी करता है और कितनी आमदनी करता है।

वर्ग सदा ही नहीं रहे हैं। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, आदिम समाज में वर्ग नहीं थे। उत्पादन का स्तर इतना कम था कि उससे जीवन-निर्वाह का साधन बस इतना ही प्राप्त होता था कि लोग भूखों मरने से बचे रहें। भौतिक सम्पदा संचित करने, निजी सम्पत्ति, वर्ग और शोषण के पैदा होने की कोई संभावना न थी।

पर बाद में उत्पादन शक्तियां जैसे-जैसे विकसित हुई और श्रम उत्पादकता बढ़ी, लोग उपभोग से अधिक उत्पादन करने लगे। भौतिक सम्पदा संचित करना और उत्पादन के साधनों को हस्तगत करना सम्भव हुआ। निजी सम्पत्ति प्रगट हुई। बढ़ते हुए श्रम-विभाजन और व्यापार में हुई वृद्धि ने इसे सुगम बनाया था।

सामुदायिक सम्पत्ति के स्थान पर निजी सम्पत्ति के विकास से आर्थिक असमानता बढ़ी। कुछ लोग, खास कर कबीले के सरदार, धनी बन गये और उत्पादन के सामुदायिक साधनों पर कब्जा कर लिया। अन्य लोग जो उत्पादन के साधनों से वंचित हो गये, इन साधनों का स्वामी बन जाने वालों के लिए काम करने को मजबूर हुए। आदिम समुदाय का इसी प्रकार विघटन तथा उसमें वर्ग-स्तरों का उदय हुआ। इस प्रक्रिया ने विरोधी वर्गों के उदय और शोषण के साथ पूर्णता प्राप्त की।

वर्ग उस समय पैदा हुए जब आदिम-सामुदायिक व्यवस्था विघटित हो रही थी और दास-व्यवस्था का उदय हो रहा था। समाज में वर्गों की प्रतिद्वन्द्वात्मक स्थिति घोर संघर्ष का स्रोत थी। वर्ग संघर्ष सदियों से मानव जाति के विकास में प्राथमिक विशेषता बना हुआ है।

२. वर्ग संघर्ष

वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाजों के विकास के स्रोत के रूप में

वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। "आजाद नागरिक और दास, पैट्रीशियन (कुलीन) और प्लेबियन (साधारण), भूस्वामी और भूदास, व्यवसाय संघ के उस्ताद (गिल्डमास्टर) और शागिर्द (जर्नीमैन), तात्पर्य यह कि उत्पीड़क और उत्पीड़ित (जालिम और मजलूम)—ये एक-दूसरे के आमने-सामने सतत विरोधी के रूप में खड़े हुए। उनमें लगातार लड़ा-

अध्याय १५

वर्ग और वर्ग संघर्ष

पिछले अध्याय मे हमने बताया कि जनता ही समाज के विकास मे मुख्य और निर्णायक शक्ति है। समाज निश्चित वर्गों, सामाजिक समूहों और सामाजिक अंगों को लेकर गठित होता है।

वर्गों और वर्ग सघर्ष का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त हमें बतलाता है कि वर्ग क्या हैं और वे क्या भूमिका अदा करते हैं।

१. वर्गों का सार-तत्व एवं उनकी उत्पत्ति

मार्क्सवाद से पहले भी विद्वान् लोग अनुभव करते थे कि जनता वर्गों में बंटी हुई है और समाज मे वर्ग-सघर्ष का अस्तित्व है। किन्तु वे समाज के वर्ग-विभाजन का वस्तुगत आधार ढूढ निकालने मे असमर्थ रहे। वे यह नहीं देख सके कि समाज के वर्ग-विभाजन का कारण भौतिक उत्पादन मे खोजना चाहिए जो मानव सम्बधो का प्रधान क्षेत्र है।

वर्ग की एक व्यापक परिभाषा लेनिन ने अपनी पुस्तक महान् आरम्भ में दी। उन्होने लिखा : "वर्ग जनता के बड़े समूह हैं जिनमे सामाजिक उत्पादन की इतिहास द्वारा निर्दिष्ट किसी व्यवस्था मे अपने विशिष्ट स्थान द्वारा, उत्पादन के साधनो के प्रति अपने सम्बंध द्वारा (यह अधिकतर मामलो में नियम द्वारा स्थिर एवं निरूपित होता है), श्रम के सामाजिक सगठन मे अपनी भूमिका द्वारा, और परिणामस्वरूप, इस चीज द्वारा कि वह सामाजिक सम्पदा का कितना बड़ा भाग अर्जित करते हैं और किस तरीके से अर्जित करते हैं, एक-दूसरे से भिन्नता होती है। वर्ग जनता के ऐसे समूह होते हैं जिनमें से एक इस चीज की बदौलत कि वे सामाजिक अर्थव्यवस्था की किसी खास प्रणाली में भिन्न-भिन्न स्थान रखते हैं, दूसरो के श्रम को हड़प सकता है।"[1]

उत्पादन के साधनों के प्रति किसी वर्ग का सम्बंध वह मुख्य विशेषता है जो सामाजिक उत्पादन मे उसके स्थान और उसकी भूमिका को निर्धारित

१. लेनिन, संकलित रचनाएं, खण्ड ३, पृष्ठ २४८।

करता है और वही यह भी निर्धारित करता है कि यह वर्ग किस ढंग से आमदनी करता है और कितनी आमदनी करता है।

वर्ग सदा ही नहीं रहे हैं। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, आदिम समाज में वर्ग नहीं थे। उत्पादन का स्तर इतना कम था कि उससे जीवन-निर्वाह का साधन बस इतना ही प्राप्त होता था कि लोग भूखों मरने से बचे रहें। भौतिक सम्पदा संचित करने, निजी सम्पत्ति, वर्ग और शोषण के पैदा होने की कोई संभावना न थी।

पर बाद में उत्पादन शक्तियां जैसे-जैसे विकसित हुई और श्रम उत्पादकता बढ़ी, लोग उपभोग से अधिक उत्पादन करने लगे। भौतिक सम्पदा संचित करना और उत्पादन के साधनों को हस्तगत करना सम्भव हुआ। निजी सम्पत्ति प्रगट हुई। बढ़ते हुए श्रम-विभाजन और व्यापार में हुई वृद्धि ने इसे सुगम बनाया था।

सामुदायिक सम्पत्ति के स्थान पर निजी सम्पत्ति के विकास से आर्थिक असमानता बढ़ी। कुछ लोग, खास कर कबीले के सरदार, धनी बन गये और उत्पादन के सामुदायिक साधनों पर कब्जा कर लिया। अन्य लोग जो उत्पादन के साधनों से वंचित हो गये, इन साधनों का स्वामी बन जाने वालों के लिए काम करने को मजबूर हुए। आदिम समुदाय का इसी प्रकार विघटन तथा उसमें वर्ग-स्तरों का उदय हुआ। इस प्रक्रिया ने विरोधी वर्गों के उदय और शोषण के साथ पूर्णता प्राप्त की।

वर्ग उस समय पैदा हुए जब आदिम-सामुदायिक व्यवस्था विघटित हो रही थी और दास-व्यवस्था का उदय हो रहा था। समाज में वर्गों की प्रति-द्वन्द्वात्मक स्थिति घोर संघर्ष का स्रोत थी। वर्ग संघर्ष सदियों से मानव जाति के विकास में प्राथमिक विशेषता बना हुआ है।

२. वर्ग संघर्ष वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाजों के विकास के स्रोत के रूप में

वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। "आजाद नागरिक और दास, पैट्रीशियन (कुलीन) और प्लेबियन (साधारण), भूस्वामी और भूदास, व्यवसाय संघ के उस्ताद (गिल्डमास्टर) और शागिर्द (जर्नीमैन), तात्पर्य यह कि उत्पीड़क और उत्पीड़ित (जालिम और मजलूम)—ये एक-दूसरे के आमने-सामने सतत विरोधी के रूप में खड़े हुए। उनमें लगातार लड़ा-

इया चलती रही जो कभी गुप्त और कभी खुली हो जाती थी। और इन लड़ाइयों का अन्त हर बार यों हुआ कि या तो समाज का क्रान्तिकारी पुनर्गठन हुआ या दोनों के दोनों युद्धरत वर्ग बरबाद हो गये।"[1]

वैमनस्यपूर्ण वर्गों का संघर्ष समझौताहीन होता है क्योंकि समाज में उनकी आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में बुनियादी भेद रहता है। न जाने कितनी सदियों से मेहनतकश लोगों का—वे दास हों, किसान हों या औद्योगिक मजदूर हों—शासक वर्गों ने निर्ममता से शोषण किया है और यह स्वाभाविक है कि वे उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करें और स्वतंत्र तथा सुखी जीवन के लिए सचेष्ट हों।

वर्ग समाज में बुनियादी वर्ग होते हैं और गैर-बुनियादी वर्ग भी होते हैं। **बुनियादी वर्ग** वे होते हैं जो समाज में प्रचलित उत्पादन पद्धति से सम्बन्धित रहते हैं। वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में वे हैं: एक ओर उत्पादन के साधनों का मालिक वर्ग, और दूसरी ओर उसके विरोध में खड़ा उत्पीड़ित वर्ग। दास समाज में दास और दास-स्वामी, सामन्तवाद में किसान और सामन्ती सरदार, पूंजीवाद में सर्वहारा और पूंजीपति—ये ही वैमनस्यपूर्ण समाजों के बुनियादी वर्ग हैं।

*वैमनस्यपूर्ण समाजों में **गैर बुनियादी वर्ग** भी हुआ करते हैं।* उनका प्रचलित उत्पादन-पद्धति से प्रत्यक्ष लगाव नहीं होता *(यथा दास समाज में स्वतंत्र* दस्तकार, पूंजीवादी समाज में किसान और अन्य), और विभिन्न सामाजिक समूह भी होते हैं *(यथा बुद्धिजीवी, पादरी और अन्य)*।

वैमनस्यपूर्ण समाज में वर्ग संघर्ष प्रथमतया बुनियादी सामाजिक वर्गों के बीच चलता है। गैर-बुनियादी वर्गों और सामाजिक समूहों की इस संघर्ष में आम तौर से अपनी कोई नीति नहीं होती और वे किसी एक बुनियादी वैमनस्यपूर्ण वर्ग का पक्ष ग्रहण करते और उसके हितों की रक्षा करते हैं।

वर्ग संघर्ष वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज की प्रेरक शक्ति होता है, उसके विकास का स्रोत होता है। *यह संघर्ष वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज के विकास को निर्धारित करता है। ऐसा वह अपेक्षाकृत "शान्तिपूर्ण" दौरों में भी करता है और क्रान्तिकारी तूफानों और संकटों के दौर में भी—क्रान्तिकारी तूफानी दौरों में खास कर।*

पूंजीवादी परिस्थितियों में वर्ग संघर्ष उत्पादक शक्तियों के विकास में महत्वपूर्ण तत्व होता है। काम के घंटे बढ़ाने या मजूरी घटाने की हर कोशिश का

---

१. मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएं, खण्ड १, मास्को, १९५८, पृष्ठ ३४।

मजदूर विरोध करते है। इस विरोध का सामना होने के कारण पूंजीपति नयी-नयी मशीनों और उन्नत प्रविधि का समावेश करने को बाध्य होते हैं ताकि उनके उद्यमों मे मुनाफे का स्तर कायम रहे।

वर्ग संघर्ष वैमनस्यपूर्ण समाज के राजनीतिक जीवन के लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, वर्तमान युग मे मजदूर वर्ग का संघर्ष नया विश्व युद्ध छेड़ने, राष्ट्रीय स्वतंत्रता की लड़ाई को कुचल डालने, जनतांत्रिक स्वातन्त्र्य के अवशेषों का अन्त कर देने और इस तरह समाज के प्रगतिशील विकास को अवरुद्ध करने के साम्राज्यवाद के कुचक्रों की राह का महत्वपूर्ण रोड़ा है।

सामाजिक क्रान्ति जो वर्ग संघर्ष का उच्चतम रूप है, सामाजिक प्रगति मे खास तौर से बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है और उसके फलस्वरूप पुरानी समाज व्यवस्था नष्ट होती है और नयी तथा अधिक प्रगतिशील समाज व्यवस्था कायम होती है।

दास समाज मे दासों और दास स्वामियों मे घोर संघर्ष चलता था। यह नाना रूप धारण करता था—औजारों की तोड़फोड़ से लेकर आम बगावत तक। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे ऐसी ही बगावत स्पार्टाकस के नेतृत्व मे हुई थी जिसमे एक लाख से अधिक दासों ने भाग लिया था।

सामन्तवाद मे वर्ग संघर्ष और तीव्र हो गया। इसमे लड़ने वाले मुख्य विरोधी वर्ग किसान और सामन्ती प्रभु थे। शहरी मेहनतकश, खास कर दस्तकार लोग, इस संघर्ष मे अक्सर किसानों का साथ देते थे। बहुतसे किसान युद्धों मे परिणत हो जाती थी जिनमे लाखों लोग शामिल होते थे। ये युद्ध अक्सर विशाल भू-क्षेत्रों पर फैल जाते थे और वर्षों चलते थे। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड मे वाट टाइलर का विद्रोह (१४ वीं सदी), फ्रांस में जाकरी (१४-१५वीं सदी), जर्मनी का किसान युद्ध (१६ वी सदी), रूस मे बोलोत्निकोव और रजिन के नेतृत्व मे विद्रोह (१७ वी सदी) और पुगाचोव के नेतृत्व मे हुआ विद्रोह (१८ वीं सदी), चीन मे ताईपिंग विद्रोह (१९ वीं सदी), आदि को ले लीजिए।

पर दास और सामन्ती समाजों के अन्दर उत्पीड़ितों के विद्रोह शोषण का अन्त नहीं कर सकते थे क्योंकि अभी इसके लिए आवश्यक परिस्थितियाँ नहीं पैदा हुई थी। उत्पादन का स्तर ऐसा था कि कोई ऐसी व्यवस्था जो शोषण और उत्पीड़न से रहित हो, अभी अपनायी नहीं जा सकती थी। ये विद्रोह [illegible] थे। विद्रोहियों के दिमाग इस चीज के बारे मे स्पष्ट न थे कि उनके संघर्ष का उद्देश्य क्या है। न ही वे इन संघर्षों को चलाने के तरीकों के बारे मे स्पष्ट थे।

उनके पास ऐसा कोई क्रान्तिकारी सिद्धान्त न था जो उनके मार्ग को [illegible] किल करता। न ही उनकी अपनी पार्टी थी। जैसा कि हम बारे [illegible] ऐसी अवस्थाएं तो पूंजीवाद में ही उत्पन्न होती हैं।

फिर भी दासों और किसानों के विद्रोहों ने इतिहास में बड़ी तथा [illegible] शील भूमिका अदा की। दासों ने दास-समाज के खम्भों को खोखला किया। भू-दास उन प्रधान शक्तियों में से थे जिन्होंने सामन्तवाद को समाप्त करके समाज को अधिक प्रगतिशील, पूंजीवादी व्यवस्था में प्रवेश कराया।

३. पूंजीवादी समाज में वर्ग संघर्ष

पूंजीपति और सर्वहारा पूंजीवादी समाज के बुनियादी वर्ग हैं। [illegible] का स्वरूप, जो मजदूर को उसके श्रम के फल से वंचित करता है, तथा [illegible] में मजदूर की स्थिति उसे पूंजीपतियों से लड़ने को प्रेरित करते हैं। [illegible]

पूंजीपति और सर्वहारा का संघर्ष पूंजीवादी विकास का नियम है

पूंजीवादी समाज का इतिहास पूंजीपति और सर्वहारा के संघर्ष का इतिहास है। यह संघर्ष सार्वत्रिक है क्योंकि यह पूंजीवादी विकास का [illegible] और साम्राज्यवाद के युग में यह खास तौर से [illegible] हो जाता है जब कि पूंजीवाद के आर्थिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध [illegible] तीव्र हो जाते हैं।

सर्वहारा का ध्येय और कर्तव्य पूंजीवादी समाज को समाप्त करके [illegible] वर्ग विहीन कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना है, क्योंकि वही [illegible] सुसंगत क्रान्तिकारी वर्ग है।

पूंजीपति उस वक्त क्रान्तिकारी थे जब वे समाज में [illegible] इसके लिए सामन्ती प्रभुओं से लड़ रहे थे। पर सत्ता प्राप्त कर चुकने के [illegible] वे अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी होते गये, और अब उनका एकमात्र [illegible] को बरकरार रखना बन गया है।

दर्म्यानी तबके, खास कर, किसान और दस्तकार—पूंजीवादी [illegible] इनकी संख्या काफी है—अन्त तक क्रान्तिकारी नहीं बने रहते। [illegible] उनकी कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं है, और पूंजीवाद का विकास होने के [illegible] अन्दर स्तर पर स्तर उत्पन्न हो जाते हैं। किसानों और दस्तकारों [illegible] कांश बरबाद हो जाता है और वह सर्वहारा की मंडली में शामिल हो [illegible] है। इनकी एक नगण्य संख्या ही पूंजीपति वर्ग में प्रवेश कर [illegible] वर्ग संघर्ष में किसान आगापीछा करने लगते हैं। अतः सर्वहारा [illegible] है कि उन्हें अपने साथ करे और उन्हें अपना विश्वस्त सहयोगी [illegible]

बुद्धिजीवी (इंजीनियर और प्रविधिज्ञ, डाक्टर, अध्यापक, वैज्ञानिक और अन्य लोग) भी सतत रूप से क्रान्तिकारी बने नहीं रह सकते। बुद्धिजीवियों का विशाल बहुमत शोषक वर्गों की सेवा करने को मजबूर होता है।

पूंजीवादी समाज का एकमात्र सतत क्रान्तिकारी वर्ग सर्वहारा वर्ग है। वह उत्पादन के सबसे प्रगतिशील रूप, मशीन-उद्योग से सम्बद्ध है और निरंतर बढ़ता और विकास करता रहता है। पूंजीवादी उत्पादन का स्वरूप ही ऐसा है कि यह मजदूर वर्ग को एकताबद्ध, सगठित और शिक्षित होने में सहायक होता है। मजदूर सम्पत्ति-विहीन होते हैं और उनके पास ऐसा कुछ नहीं है जिसे संघर्ष मे गवाना पड़े। अपनी मुक्ति के लिए लड़ते हुए सर्वहारा वर्ग सभी अन्य मेहनतकशों को जो उसकी भांति पूंजीवादी व्यवस्था से नफरत करते हैं, सगठित करने और उनका नेतृत्व करने मे समर्थ होता है। अपने को आजाद करके वह सभी अन्य मेहनतकशों को आजाद करता है और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का सदा के लिए अन्त करता है। विजय प्राप्त करने पर वह मेहनतकशों का वह सब कुछ लौटा देता है जो वे उत्पादित करते हैं। इस प्रकार वह सबसे बड़े सामाजिक अन्याय का खात्मा करता है। उस समाज व्यवस्था को समाप्त करता है जिसमे मुट्ठी भर उत्पीड़क करोड़ों जनता की मेहनत के फल को हड़प कर लेते हैं।

सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के रूप

पूंजीवाद के विकास करने के साथ सर्वहारा भी विकास करता है और पूंजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष के रूप अधिकाधिक विविधतापूर्ण और तीव्र होते जाते हैं। सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के तीन मुख्य रूप हैं—आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक।

आर्थिक संघर्ष भौतिक एवं कार्य की अवस्थाओं को बेहतर बनाने का सर्वहारा का प्रयास है। यह सबसे सरल रूप है जो मजदूरों के लिए सबसे सुगम है। वे मालिकों से उच्चतर मजूरी, काम के कम घंटे आदि की मांग करते हैं और जब मांगें नहीं मिलतीं तो हड़ताल करते हैं।

आर्थिक संघर्ष ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का प्रथम रूप है। यह क्रान्तिकारी आन्दोलन के विकास मे बड़ी भूमिका अदा करता है। यह मजदूरों के जन-समुदाय को वर्ग संघर्ष में खींचने मे सहायक होता है और उनके लिए सगठन के उत्तम विद्यालय का काम देता है। मजदूरों की वर्ग चेतना और उनकी वर्ग एकजुटता संघर्ष के दौरान बढ़ती है और सर्वप्रथम मजदूर सगठनों—ट्रेड यूनियनों, सहकारों, परस्पर लाभप्रद सोसाइटियों—का उदय होता है।

साथ ही आर्थिक संघर्ष का स्वरूप संकुचित हुआ करता है। यह संघर्ष एक वर्ग की हैसियत से सभी पूंजीपतियों के खिलाफ पूरे मजदूर वर्ग के संघर्ष का

रूप धारण नहो करता है। यह एक पूजीपति के खिलाफ एक कारखाने में, किसी खास इलाके के अन्दर मजदूरों के एक समूह का संघर्ष होता है। इसके अलावा (यही चीज मुख्य है) इससे पूंजीवाद के आधार, निजी सम्पत्ति पर आंच नही आती, और इसका लक्ष्य पूंजीपतियों के राजनीतिक शासन को उलटना नही होता। इस संघर्ष का प्रयोजन शोषण को समाप्त करना नहीं, बल्कि उसे केवल संकुचित करना और उसकी कठोरता घटाना होता है।

सर्वहारा के विकास करने के साथ अलग-अलग कारखानो और इलाकों के मजदूरों के आर्थिक संघर्ष पूरे पूजीपति वर्ग के विरुद्ध मजदूर वर्ग के समान संघर्ष मे मिल कर एकाकार हो जाते है। वर्ग संघर्ष अपने उच्चतर रूप—राजनीतिक रूप—मे प्रवेश कर जाता है।

राजनीतिक संघर्ष पूजीवादी व्यवस्था के खम्भो को नष्ट करने के लिए, राजसत्ता की प्राप्ति के लिए और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना के लिए किया जाता है।

सर्वहारा वर्ग अपने आर्थिक संघर्षों के जरिये अपनी माली हालतों में कुछ हद तक सुधार कर सकता है और पूजीपतियो से कुछ आर्थिक सुविधाएं हासिल कर सकता है। लेकिन पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक शासन को नष्ट करके और अपनी सत्ता, सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करके ही वह अपने बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक हितों की सिद्धि कर सकता है और शोषण को सदा के लिए समाप्त कर सकता है।

इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वहारा राजनीतिक संघर्ष करता है जिसमें वह नाना विधियों का प्रयोग करता है: राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन, शान्तिपूर्ण संसदीय संघर्ष तथा सशस्त्र संघर्ष। किन्तु इन सभी साधनों का मूल अभिप्राय अन्ततः समाजवादी क्रान्ति की तैयारी करना और उसे सम्पन्न करना होता है। समाजवादी, सर्वहारा क्रान्ति मजदूर वर्ग के वर्ग संघर्ष की उच्चतम मंजिल है। यह पूंजीवाद का खात्मा करने और राजनीतिक सत्ता पर कब्जा जमाने का सर्वहारा के हाथ मे निर्णायक तथा एकमात्र हथियार है।

सर्वहारा के क्रान्तिकारी आन्दोलन में विचारधारात्मक संघर्ष का बड़ा बड़ा महत्व है। यह पूंजीवादी समाज मे हावी पूंजीवादी विचारधारा के विरुद्ध संघर्ष है जो समाजवादी, सर्वहारा विचारधारा की विजय के लिए किया जाता है।

पूंजीवाद के विकास का अनिवार्य फल होता है सर्वहारा का एकजुट और संगठित होना। पर पूंजीवादी व्यवस्था का अन्त करने के लिए सर्वहारा को केवल वर्ग की हैसियत से अपने को संगठित ही नहीं करना चाहिए, बल्कि अपने वर्ग-हितों और अपने महान ऐतिहासिक [illegible] और समाज-परिवर्तन की

बनना चाहिए। इसके लिए क्रान्तिकारी सिद्धान्त की जरूरत होती है। सर्वहारा वर्ग के पास फुरसत, साधन तथा शिक्षा न थी जिससे वह इस सिद्धान्त का सृजन कर सकता। नये क्रान्तिकारी सिद्धान्त का सृजन सर्वहारा का पक्ष ग्रहण करने वाले बुद्धिजीवी मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने किया।

पर काम इतना ही न था कि एक प्रगतिशील क्रान्तिकारी सिद्धान्त तैयार किया जाये, यह भी आवश्यक था कि इस सिद्धान्त का मजदूरों में प्रचार किया जाये। फलतः विचारधारात्मक संघर्ष मजदूर आन्दोलन में स्वतःस्फूर्तता के खिलाफ संघर्ष है। यह मेहनतकश अवाम द्वारा उन्नत मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा में पारंगति प्राप्त करने का संघर्ष है।

पूंजीपतियों के सिद्धान्तकार तथा सुधारवादी और संशोधनवादी मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त पर निरन्तर प्रहार करते रहते हैं। अतः बौद्धिक संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पहलू इस चेष्टा में निहित है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को शुद्ध रखा जाये और उसे सभी शत्रुओं से—सर्वोपरि साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद की विचारधारा से—बचाया जाये।

आर्थिक संघर्ष की ही भांति विचारधारा के क्षेत्र का संघर्ष भी स्वयमेव लक्ष्य नहीं है। वह राजनीतिक कर्तव्यों—पूंजीपतियों की सत्ता का खात्मा और सर्वहारा द्वारा सत्ता की प्राप्ति—के अधीनस्थ है।

मार्क्सवादी पार्टी सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का नेता और संगठनकर्ता है

सर्वहारा की राजनीतिक पार्टी ही मेहनतकश जनता के संघर्ष को सुयोग्य नेतृत्व प्रदान करने और उसके सभी रूपों को समुचित ढंग से समन्वित करने की क्षमता रखती है। पार्टी की भूमिका साम्राज्यवाद के युग में खास तौर से बहुत बड़ी होती है। इस युग में पूंजीवादी अन्तर्विरोधों के चरम रूप से तीव्र हो जाने के कारण समाजवादी क्रान्ति प्रत्यक्ष और व्यावहारिक कर्तव्य बन गयी होती है।

द्वितीय इन्टरनेशनल की पार्टियां जो (सुधारों और पूंजीपतियों के साथ समझौतों के पक्ष में थीं) नई ऐतिहासिक परिस्थितियों में सर्वहारा आन्दोलन को समुचित नेतृत्व प्रदान नहीं कर सकीं। एक नये प्रकार की पार्टी की, एक क्रान्तिकारी, मार्क्सवादी पार्टी की आवश्यकता थी। और लेनिन ने पहलेपहल रूस में ऐसी पार्टी खड़ी की।

मार्क्सवादी पार्टी सर्वहारा का आगे बढ़ा हुआ क्रान्तिकारी सैनिक-दस्ता है, वह सर्वहारा का हिरावल है। सर्वहारा के संगठन का सर्वोच्च रूप होने के नाते वह सर्वहारा के बाकी सभी संगठनों (ट्रेड यूनियनों, कोआपरेटिवों, आदि) को एकत्र करती है, उन्हें राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करती है और पूंजीवाद का खात्मा करने तथा समाजवादी समाज का निर्माण करने के एकनिष्ठ लक्ष्य

पर उनके प्रयासों को केंद्रित करती है। लेनिन ने लिखा—"मजदूरों की पार्टी को शिक्षित करके मार्क्सवाद सर्वहारा के हिरावल को शिक्षित करता है जिसमें सत्ता ग्रहण करने और समूची जनता का नेतृत्व करने की, नई व्यवस्था का निर्देशन और संगठन करने की, पूंजीपतियों के बिना ही और पूंजीपतियों के मुकाबले में अपने सामाजिक जीवन को संगठित करने में सभी मेहनतकशों और शोषितों का शिक्षक, पथ-प्रदर्शक और नेता होने की क्षमता होती है।"[1]

मार्क्सवादी पार्टी मजदूर वर्ग के हिरावल, उसके आगे बढ़े हुए सैनिक दस्ते तथा पूरी जनता के नेता के अपने दायित्व को पूरा करने की सामर्थ्य इसीलिए रखती है कि वह वैज्ञानिक मार्क्सवादी सिद्धान्त से लैस होती है। उसके पास सामाजिक विकास के नियमों का ज्ञान होता है तथा समाज के क्रान्तिकारी कायापलट के लिए इन नियमों को लागू करने की उसमें क्षमता होती है।

सर्वहारा वर्ग के आगे बढ़े हुए, राजनीतिक दृष्टि से सचेत सैनिक दस्ते की हैसियत से पार्टी जनता की समाजवादी चेतना को निरन्तर विकसित करती है और पतित करनेवाली पूंजीवादी विचारधारा के प्रभाव से मजदूर वर्ग की रक्षा करती है। पार्टी मार्क्सवाद का कोई नकली रूप गढ़ने या उसे "संशोधित" करने की हर चेष्टा के विरुद्ध निर्मम होकर संघर्ष करती है और नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं समाज के व्यावहारिक अनुभव की रोशनी में मार्क्सवादी सिद्धान्त का विकास करती है।

मार्क्सवादी पार्टी मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रान्तिकारी विचारों को व्यवहृत करने की समान इच्छा से सम्बद्ध मजदूर वर्ग का आगे बढ़ा हुआ, सचेत और संगठित दस्ता है। पार्टी हर तरह के अवसरवादियों का तिरस्कार करती है, क्योंकि वे उसकी एकता को नष्ट करने, उसे भीतर से खोखला करने और सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का नेतृत्व करने के अयोग्य बना देने की कोशिश करते हैं।

मार्क्सवादी पार्टी जनता की असली पार्टी है। वह जनता के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधियों को एकताबद्ध करती है और मेहनतकश जनता के साथ अगणित सूत्रों से बंधी होती है। जनता के अन्तर्तम की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करके तथा उनके जीवन्त हितों की निस्वार्थ भावना से रक्षा करके पार्टी उसका अगाध विश्वास एवं समर्थन प्राप्त करती है। मार्क्सवादी पार्टी जनता के साथ अपने घनिष्ठ सम्पर्क से ही अजेय शक्ति और अवलम्ब प्राप्त करती है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और अन्य समाजवादी देशों की कम्युनिस्ट तथा मजदूर पार्टियां जो समाजवाद एवं कम्युनिज्म के निर्माण का संगठन कर रही हैं,

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, २५ पृष्ठ ४०४।

तथा पूंजीवादी देशों की मार्क्सवादी पार्टियां जो साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध शान्ति, जनवाद और समाजवाद के लिए जनता के संघर्ष को प्रेरणा एवं नेतृत्व प्रदान करती हैं, वास्तव में क्रान्तिकारी जनता की पार्टी हैं।

वर्गों और वर्ग संघर्ष के पूंजीवादी और संशोधनवादी सिद्धान्तों का दिवालियापन

वर्ग और वर्ग संघर्ष के मार्क्सवादी सिद्धान्त के विपरीत पूंजीवादी विचारक पूंजीवाद में वर्ग शान्ति का उपदेश देते हैं। वे खास तौर से यह आग्रह करते हैं कि समकालीन पूंजीवादी समाज में वर्गों और वर्ग संघर्ष का कोई अस्तित्व नहीं है।

कुछ समाजशास्त्री सीधे-सीधे यह तर्क पेश करते हैं कि आज के पूंजीवादी समाज में न शोषण है और न शत्रुतापूर्ण वर्ग हैं। वे कहते हैं कि इस समाज में पेशे, शिक्षा, आय, उम्र, आर्थिक और राजनीतिक मतों तथा अनेक अन्य विशेषताओं पर आधारित केवल कुछ सामाजिक समूह हैं। उनके तर्क के अनुसार, कोई साम्पत्तिक सम्बंध इन समूहों के सदस्यों को आपस में नहीं बांधते, उनके पारस्परिक सम्बंधों में तालमेल रहता है तथा कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार आसानी से एक से दूसरे समूह में आ-जा सकता है।

कुछ अन्य समाजशास्त्री हैं जो स्वीकार करते हैं कि वर्ग तो हैं, किन्तु उनके मतानुसार आज के पूंजीवादी वर्ग समाज में वर्ग-विभेद मिट रहे हैं और वर्ग धीरे-धीरे एक विराट "मध्यम" वर्ग में सिमटते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, उनका कहना है कि अमरीका में जल्द ही सब लोग 'मध्यम' वर्गी बन जायेंगे। अमरीकी समाजशास्त्री स्ट्रास्ज हूप ने ज़ोन आफ इंडिफरेंस नामक अपनी पुस्तक (१९५२) में लिखा है कि आज अमरीका में शोषकों और शोषितों में कोई अन्तर पाना कठिन है। उनके कथनानुसार गरीबी लुप्त होती जा रही है और ऊपरी वर्ग की धारणा जमाने के प्रतिकूल बनती जा रही है।

पूंजीपतियों के सिद्धान्तवेत्ताओं का कहना है कि अमरीका का मजदूर सर्वहारा नहीं रह गया है, उसका जीवन-मान अब ऊंचा है, वह पैसे बचाता है, शेयर खरीदता है और इस प्रकार फैक्टरियों के मालिकों की तरह वह भी मुनाफे में हिस्सा पाता है। दूसरी ओर, उनके कथनानुसार, मालिकों के अधिकारों पर राज्य द्वारा अधिकाधिक अंकुश लगाये जा रहे हैं, वे उत्पादन में न्यूनतर भूमिका अदा करते हैं।

पूंजीवाद के वकील आज के समाज में वर्गों और वर्ग संघर्ष के न होने की इन्हीं काल्पनिक धारणाओं का प्रचार करते हैं और सुधारवादी तथा संशोधनवादी बड़े उत्साह से उनका समर्थन करते हैं। अमरीकी ट्रेड यूनियन संगठन सी. आई. ओ. के नेता फिलिप मुरे ने लिखा है कि अमरीका में वर्ग नहीं रहे,

यहां "सभी मजदूर हैं", और वस्तुतः किसानों, औद्योगिक मजदूरों, व्यवसायियों, दफ्तर-कर्मचारियों और बुद्धिजीवियों के हित एक हो गये हैं।

मुरे की प्रतिध्वनि हमें संशोधनवादियों में मिलती है जो यह कहते हैं कि लेनिन की वर्गों की परिभाषा अब पुरानी और बेकार हो चुकी है और उसकी जगह पर "समूह" की धारणा पेश करते हैं। उनका कहना है कि लोग समूहों मे उत्पादन के साधनों के साथ अपने सम्बंध के आधार पर नहीं, बल्कि अन्य गौण चीजों के आधार पर एकत्र होते हैं। चूंकि संशोधनवादी यह नहीं मानते कि वर्गों का अस्तित्व है, इसलिए वे वर्ग-संघर्ष को भी स्वीकार नहीं करते। उदाहरणार्थ, इटली के संशोधनवादी एंटोनियो गियोलित्ती का तर्क है कि मजदूरों का काम आज पूंजीपतियों से लड़ना नहीं, बल्कि तकनीकी प्रगति को आगे बढ़ाना है। इस मत के अनुसार, ऐसा करने से बिना वर्ग संघर्ष अथवा क्रान्ति के ही सत्ता अपने-आप जनता के हाथ में आ जायेगी।

पूंजीपतियों के वकील और उनके संशोधनवादी जी-हुजूर वर्तमान पूंजीवादी समाज में वर्गों और वर्ग संघर्ष के न होने के मिथ्या सिद्धान्तों का प्रचार कर तथा "मजदूर और पूंजीपति के हितों के मेल" का युग आया हुआ बता कर मजदूर वर्ग को ठगते हैं। वे मजदूरों के दिल में यह बैठाते हैं कि पूंजीपतियों के विरुद्ध वर्ग संघर्ष व्यर्थ है और मजदूर वर्ग के आन्दोलन को सुधारवादी मार्ग पर मोड़ते हैं।

यह बिलकुल सही है कि कुछ अमरीकी मजदूरों का, सर्वोपरि उनके ऊपरी तबके का जीवनमान ऊंचा है, विशेषकर अन्य पूंजीवादी देशों के मजदूर वर्ग के जीवनमान की तुलना में। किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि सभी अमरीकी मजदूर इस उच्च जीवनमान का उपभोग नहीं करते। वस्तुस्थिति इससे कहीं दूर है। लाखों लोग बेरोजगार हैं। काले अमरीकी और मेक्सिको वासी मजदूर न्यूनतम जीवन-निर्वाह भर की भी आय नहीं पाते। दूसरी ओर, अमरीकी आबादी का एक प्रतिशत, अर्थात वहां के इजारेदार पूंजीपति, देश की सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय के प्रायः ६० प्रतिशत के मालिक हैं। कोई १५० पूंजीपति सेठिये ऐसे हैं जिनकी वार्षिक आय दस लाख डालर से भी अधिक है।

कुछ अमरीकी मजदूर धन बचा भी पाते हैं। पर उनकी बचत कुल बचत का कौन सा भाग है? देश की आधी आबादी कुल बचत के केवल एक प्रतिशत की स्वामिनी है। *शेष ९९ प्रतिशत बाकी आधी आबादी के हिस्से में है।*

कुछ अमरीकी मजदूरों ने शेयर भी खरीद रखे हैं। पर उनके सारे शेयरों का बाजार-मूल्य अमरीका के कुल शेयरों के मूल्य का ०.२ प्रतिशत मात्र है। यह महासेठों के केवल एक परिवार [illegible] रवार—के शेयरों की कीमत का दसवां अंश [illegible]।

इन तथ्यों के आगे वर्गों के लुप्त हो जाने की बात, "महान अमरीकी मध्यम वर्ग" की बात क्या कोरी बकवास नहीं है? संयुक्त राज्य अमरीका गहरी सामाजिक विषमताओं और गहरे सामाजिक अन्तर्विरोधों का देश है। ब्रिटेन में भी भारी सामाजिक विषमता तथा गहरे सामाजिक अन्तर्विरोध हैं। राष्ट्रीय धन का लगभग आधा आबादी के २ प्रतिशत लोगों के हाथों में है। दूसरी ओर ७५ प्रतिशत लोगों के पास राष्ट्रीय धन का केवल ५ प्रतिशत है। ४० लाख से अधिक बूढ़े नाममात्र की पेंशनों पर गुजारा करते हैं और शिक्षा, चिकित्सा और आवास की समस्याएं अनसुलझी पड़ी हैं। अधिकतर पूंजीवादी देशों में मेहनतकश लोग अमरीका की तुलना में कहीं बुरी अवस्था में हैं और पूंजीपतियों एवं मजदूरों के अन्तर्विरोध अधिक गहरे और तीव्र हैं।

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि वर्तमान पूंजीवादी समाज में पूंजीवादी स्वामित्व का बोलबाला है। फलत वहां वैमनस्यपूर्ण वर्गों का—पूंजीपतियों और सर्वहारा का—अस्तित्व है, और उनका भीषण संघर्ष जारी है।

वर्तमान पूंजीवादी समाज में वर्ग संघर्ष

पूंजीवादी देशों में पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वहारा का वर्ग संघर्ष आज पूंजीवाद के आम संकट के विकास के एक नये दौर में चल रहा है। यह संकट १९१७ में अक्तूबर क्रान्ति की विजय और उस विशाल देश के साम्राज्यवाद के हाथ से निकल जाने के साथ आरम्भ हुआ था। नयी मंजिल की विशेषता है विश्व समाजवादी व्यवस्था का अस्तित्व जो विश्व घटनाक्रम का निर्णायक तत्व बनता जा रहा है। अब स्थिति मजदूर वर्ग आन्दोलन के लिए—सोवियत संघ और पूरी विश्व समाजवादी व्यवस्था की सफलताओं, जनता के बीच कम्युनिस्ट पार्टियों के प्रभाव के विस्तार और सुधारवाद के बौद्धिक दिवालियापन के कारण—अधिक अनुकूल हो गयी है। मजदूर वर्ग आन्दोलन के सामने मौजूद सम्भावनाएं इस कारण और भी अधिक विस्तृत हो गयी हैं कि साम्राज्यवादियों की नीति से, खास कर उनकी जंगबाजी की मनोवृत्ति और हथियारबन्दी की होड़ से जिसका मुख्य भार जनता को वहन करना पड़ता है, जनता में असन्तोष पैदा हो गया है। अधिकाधिक लोगों को यह विश्वास होता जाता है कि इस विपदा से निकलने का एकमात्र रास्ता समाजवाद है। और इससे पूंजीपतियों के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष में उन्हें लाने के लिए अनुकूल अवस्थाएं बनती हैं। सर्वहारा आन्दोलन की ताकत समाजवादी व्यवस्था की उपलब्धियों से कई गुनी बढ़ जाती है, क्योंकि ये उपलब्धियां साफ बतलाती हैं कि समाजवाद पूंजीवाद से अधिक लाभकर है। ये उपलब्धियां पूंजीवादी देशों में मजदूरों को अपने संघर्ष में अनुप्राणित करती हैं और उन्हें समाजवाद के विजयी होने का दिलाती हैं।

समाजवाद के लिए सर्वहारा का संघर्ष अब शान्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता और जनतंत्र के लिए जनगण के आन्दोलन के साथ मिल गया है और यही आज मजदूर वर्ग आन्दोलन का प्रधान एवं विशिष्ट गुण है। अनुकूल स्थिति से फायदा उठा कर मजदूर वर्ग अनेक देशों में पूंजीवाद का तख्त उलटने से पहले ही शासक क्षेत्रों को नये युद्ध की तैयारियां बन्द करने, स्थानीय युद्ध छेड़ने से बाज आने और शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए आर्थिक संसाधनों का उपयोग करने को मजबूर करने मे सफल होता है। वह फासिस्ट प्रतिक्रियाशाही के हमले का मुंह मोड़ने और ऐसे राष्ट्रीय कार्यक्रम मनवाने मे सफल होता है जो शान्ति, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, जनवादी अधिकारों तथा जनता की रहन-सहन की हालतो मे कुछ सुधार लाने का आवाहन करते हैं।

उपरोक्त पगों का सीधा लक्ष्य समाजवाद नहीं है, पर जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है, वे मामूली सुधारों की सीमा से बाहर जाते हैं और उनका क्रान्ति की विजय के हेतु मजदूर वर्ग के संघर्ष के लिए, समाजवाद के लिए और राष्ट्र के बहुमत के लिए बुनियादी महत्व है। ये पग वस्तुगत रूप में समाजवाद की ओर प्रगति को बढ़ावा देते हैं क्योंकि उनसे पूंजीवादी इजारेशाहो के शासन की जड़ कटती है। ये पूंजीवादी इजारेशाह ही मजदूर वर्ग और समूची जनता के सबसे बड़े शत्रु हैं।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के समान मंच पर ही समाजवादी और जनतांत्रिक ताकतें एक होती हैं। समाजवाद और जनवाद को एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता। अबाध जनवाद केवल समाजवाद से ही आता है। यही कारण है कि समाजवाद के लिए लड़ने वाला सर्वहारा साथ ही जनवाद का भी पक्का हिमायती है। मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी हमारे युग के जनतान्त्रिक आन्दोलन मे सबसे आगे की पांत मे खड़े है। जनता के अन्य हिस्सों के साथ-साथ मजदूर वर्ग जनवादी अधिकारों को समाप्त कर देने, पार्लियामेंट की ताकत संकुचित कर देने और इजारेशाहों के प्रतिनिधियों का वैयक्तिक शासन लागू करने तथा संसदीय व्यवस्था के स्थान पर एक तरह का फासिस्ट एकाधिपत्य स्थापित करने के लिए संविधान को बदल डालने की वित्तीय तानाशाहों की कोशिशों का मुकाबला कर रहा है।

सर्वहारा अपने अधिकारों और जनवादी एवं समाजवाद के लिए अपने संघर्ष में तरह-तरह की विधियो का इस्तेमाल करता है। जैसे हड़तालें, प्रदर्शन, सभाएं, सम्मेलन आदि। वह संसदीय संघर्ष का भी इस्तेमाल करता है।

संघर्ष का परम्परागत रूप है हड़ताल। आज की परिस्थितियां में इसका सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल हो रहा है। पूंजीवादी देशों मे हड़ताल आन्दोलन अधिकाधिक व्यापक और तीव्र होता जा रहा है। यह चीज ही पूंजीवादी और

सुधारवादी कलमघिस्सुओं के इस तर्क की धज्जियां उड़ा देने के लिए काफी है कि पूंजीपति और मजदूर के हितों में साम्य है।

१९५८ में २ करोड़ ७० लाख मजदूरों ने हड़ताल की थी और १९६२ में हड़ताल करने वालों की संख्या ६ करोड़ हो गयी। इन दिनों की हड़तालें दूसरे विश्व युद्ध से पहले की हड़तालों से अधिक संगठित होती हैं और उनमें अधिक संख्या में लोग भाग लेते हैं। मजदूर वर्ग आम हड़तालों का अधिकाधिक उपभोग कर रहा है। १९५८ और १९६२ के बीच करीब ८० आम हड़तालें हुई। ये आम हड़तालें करीब ४० पूंजीवादी देशों में हुई।

ध्यान रहे कि मजदूरों की मांगें विशुद्ध आर्थिक सीमाओं से बाहर निकल जाती हैं और राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। १९५८ में हड़तालियों के लगभग ४४ प्रतिशत ने राजनीतिक हड़तालों में हिस्सा लिया था १९६२ में यह संख्या ६४ प्रतिशत हो गयी। शान्ति की रक्षा करो, हथियारबन्दी की होड़ का खात्मा करो और नाभिकीय हथियारों पर रोक लगाओ—ये मांगें मजदूर वर्ग आन्दोलन का मुख्य स्वर बनती जा रही हैं। मजदूर वर्ग और उसकी क्रान्तिकारी हिरावल मार्क्सवादी पार्टियां पूंजीवादी इजारे-शाहियों को अपने प्रहार का मुख्य निशाना बनाती हैं। वे ही प्रतिक्रिया और युद्धशीलता के गढ़ हैं और हथियारबन्दी की होड़ तथा मेहनतकश जनता की तकलीफों के लिए मुख्यतया जिम्मेदार हैं।

प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष में मजदूर वर्ग का साथ करोड़ों-करोड़ किसान, बुद्धिजीवियों के आगे बढ़े हुए हिस्से तथा अन्य प्रगतिशील शक्तियां देते हैं।

आज के मजदूर वर्ग आन्दोलन का दायरा असाधारण रूप से व्यापक है और साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध तथा शांति, जनवाद और समाजवाद के लिए संघर्ष में उसकी राजनीतिक सक्रियता बहुत बढ़ गयी है। यह आज के मजदूर वर्ग आन्दोलन की खास पहचान बन गया है।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों का विकास मेहनतकश जनता की राजनीतिक चेतना में हुए गहरे परिवर्तनों को स्पष्ट तथा प्रकट करता है। दूसरे विश्वयुद्ध से ठीक पूर्व पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के मेम्बरों की संख्या साढ़े छै लाख से सात लाख तक थी। पर आज उनके ५२ लाख से भी अधिक सदस्य हो गये हैं।

प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी क्षेत्र कम्युनिस्ट और जनवादी आन्दोलन के विरुद्ध क्रूर से क्रूर कार्रवाइयां करते हैं। इजारेशाह पूंजीपतियों की नग्न तानाशाही, जनवाद के बचेखुचे तत्वों का सफाया और जनता को कुचलने का पुराना हथकण्डा, "लौह शासन" चलाना—इन विधियों का वे अधिकाधिक

इस्तेमाल करते हैं। फासिज्म के भयानक आसार कुछ पूंजीवादी देशों में दिखाई पड़ने लगे है, खासकर पश्चिम जर्मनी में।

ऐसी परिस्थिति मे शांति, जनतंत्र और समाजवाद के संघर्ष में मजदूर वर्ग एवं सभी प्रगतिशील और शांतिकामी शक्तियों की एकता का जबर्दस्त महत्व हो जाता है। समाजवादी देशों की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के प्रतिनिधियों की बैठक के ऐलान में बताया गया है कि महान ऐतिहासिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए "आवश्यक है कि न केवल कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों में घनिष्ठतर एकता हो, बल्कि समूचा मजदूर वर्ग और किसान समुदाय घनिष्ठ रूप से ऐक्यबद्ध हो। यह आवश्यक है कि मेहनतकश जनता और प्रगतिशील मानवजाति को, दुनिया की स्वाधीनता और शांतिप्रेमी शक्तियों को एकत्रित किया जाये।"

साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद और मजदूर आन्दोलन के अन्दर उसके गुर्गे, कम्युनिस्ट-विरोधी मनोवृत्ति के सोशल-डिमोक्रैटिक नेता तथा हर रंग और रूप के अवसरवादी मजदूर वर्ग की एकता में बाधा डालते हैं, उसमें फूट डालने की नीति पर चलते हैं, मार्क्सवाद-लेनिनवाद को विकृत करते हैं और कम्युनिस्ट आन्दोलन को बदनाम करने की कोशिश मे लगे रहते हैं। इस कारण आज के दौर में यह बहुत महत्वपूर्ण हो गया है कि मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट आन्दोलन के अन्दर अवसरवादी प्रवृत्तियों से लड़ा जाये और संशोधनवाद तथा कठमुल्लेपन पर दृढता के साथ काबू पाया जाये।

कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपने अन्दर संशोधनवाद को विचारधारा के क्षेत्र में शिकस्त दी है। इससे हर कम्युनिस्ट पार्टी और पूरे अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन मे और भी ज्यादा वैचारिक एवं सांगठनिक मजबूती आयी है। पर कम्युनिस्ट और मजदूर वर्ग आन्दोलन के विकास का अब भी यह तकाजा है कि संशोधनवाद के खिलाफ (यह मुख्य खतरा बना हुआ है) और साथ ही कठमुल्लेपन और संकीर्णतावाद के भी खिलाफ संघर्ष किया जाये।

संशोधनवाद, अथवा दक्षिणपंथ अवसरवाद, मार्क्सवाद को विकृत करता है और उसकी क्रान्तिकारी भावना को समाप्त कर देता है। वह मजदूर वर्ग पर पूंजीवादी प्रभाव को प्रतिबिम्बित करता है। वह सर्वहारा तथा समूची मेहनतकश जनता के क्रान्तिकारी संकल्प को कुंठित करता है और साम्राज्यवादी उत्पीड़न के विरुद्ध, शांति, जनवाद एवं समाजवाद के लिए संघर्ष में उन्हें निहत्था करता है।

कठमुल्लापन और संकीर्णतावाद मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सृजनात्मक विकास के सीधे सीधे विरुद्ध है। इनके असर ठोस परिस्थिति का अन्दाज

करने के बदले पुराने सूत्रों और कठमुल्ला स्थापनाओं को तोते की तरह दुहराते हैं। इस तरह वे कम्युनिस्टों को जनता से अलग-थलग कर देते हैं।

राष्ट्रीय स्वाधीनता, जनवाद और शान्ति के लिए, समाजवादी क्रान्ति के लक्ष्यों—समाजवाद और कम्युनिस्ट निर्माण की सफलता के साथ पूर्ति के लिए संघर्ष में विजय प्राप्त करने के हेतु यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की एकता का निरन्तर बचाव किया जाये और ऐसा हर काम रोका जाये जो इस एकता को कमजोर कर सकता हो।

४. वर्ग और वर्ग संघर्ष

पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के युग में

हम जानते हैं कि जिस दिन उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व तथा वैमनस्यपूर्ण वर्गों का आविर्भाव हुआ, उसी दिन से शोषकों और शोषितों में निर्मम संघर्ष चलता आ रहा है। इस संघर्ष का अन्तिम परिणाम समाजवादी क्रान्ति है जिसके फलस्वरूप पूंजीपतियों के शासन के स्थान पर मेहनतकश जनता का शासन कायम होता है, सर्वहारा-अधिनायकत्व की स्थापना होती है। यह पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के युग का सूत्रपात करता है।

पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के दौरान वर्ग संघर्ष

पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के युग में वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। सत्ताच्युत पूंजीपति इसे कभी सहन नहीं करेंगे कि श्रमजीवी, जिनका उन्होंने सदियों से शोषण किया है, सत्ता पर काबिज हो जायें। ये लोग उनकी आराध्य देवी—निजी सम्पत्ति—के मन्दिर का अतिक्रमण करें, इसे वे कभी माफ नहीं करेंगे। पूंजीपति वर्ग कभी यह स्वीकार कर लेने को तैयार नहीं होगा कि उसकी जीवन-विधि का, जिसे वह शाश्वत और अक्षुण्ण समझता था, अन्त आ गया। उसके ऐश्वर्य, विशेषाधिकार और निस्सीम शासन का अन्त हो गया। इसीलिए वह नयी सर्वहारा सत्ता का इतना डटकर विरोध करता है।

सर्वहारा के विरुद्ध संघर्ष में पूंजीपति हर तरह के उपायों से काम लेते हैं। वे अपनी आर्थिक स्थिति तथा उच्चतम बुद्धिजीवियों, सरकारी अधिकारियों और सेनानायकों के साथ अपने पहले के सम्पर्कों का इस्तेमाल करते हैं और देश के अर्थतन्त्र, राजकीय संस्थाओं के कार्य को अस्त-व्यस्त करने और प्रतिरक्षा में व्याघात डालने की कोशिश करते हैं। वे जनता के मस्तिष्क पर भी प्रभाव डालने की कोशिश करते हैं। इसके अलावा, पूंजीवाद को पुनर्स्थापित करने

के लिए वे मेहनतकशों के खिलाफ नग्न सशस्त्र संघर्ष छेड देते हैं। इसमें वे अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी की मदद को अपना मुख्य अवलम्बन मानते हैं। इतिहास बताता है कि विजयी सर्वहारा को केवल अपने देश के पूंजीपतियों से ही नहीं लड़ना पड़ता, बल्कि प्रतिक्रियावादी अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीपतियों से भी डटकर लोहा लेना होता है।

दूसरे शब्दों में, सर्वहारा अधिनायकत्व वर्ग-संघर्ष का अन्त नहीं करता। वह सन्तरण काल में भी जारी रहता है। पर अब यह नया संघर्ष तब चल रहा होता है जब सर्वहारा वर्ग के हाथ मे राजनीतिक सत्ता होती है और अर्थतंत्र के बुनियादी नाके उसके हाथ में होते हैं। वर्ग-संघर्ष के रूपों मे भी तदनुसार तब्दीली हो जाती है। लेनिन ने लिखा है: "सर्वहारा अधिनायकत्व वर्ग-संघर्ष का अन्त नहीं, बल्कि नये रूपों में उसका जारी रहना है। सर्वहारा अधिनायकत्व ऐसे सर्वहारा द्वारा चलाया जा रहा वर्ग संघर्ष है जिसने विजय प्राप्त की है और पूंजीपतियों के विरुद्ध सत्ता अपने हाथ मे कर ली है। ये पूजीपति पराजित हुए हैं, पर नष्ट नही हुए हैं, उनका लोप नहीं हुआ है, उन्होने मुकाबला करना बन्द नही किया है बल्कि उसे तीव्र कर दिया है।"[1]

पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के काल मे वर्ग संघर्ष के नये रूप ये होते हैं. शोषकों के प्रतिरोध को कुचलना (इसमें बल-प्रयोग को बाद नहीं दिया जा सकता), किसानो को पूंजीपतियों के प्रभाव से मुक्त करने और उन्हें समाजवादी निर्माण-कार्य में लगाने का संघर्ष, अर्थतंत्र के कार्य में पूंजीवादी विशेषज्ञों को भरती करना, जनता में समाजवादी अनुशासन की भावना भरना।[2]

बल-प्रयोग के बारे में सर्वहारा का रुख

हारे किन्तु अब भी मुकाबला कर रहे पूंजीपतियों के विरुद्ध मजदूर वर्ग और किसानों का निर्मम संघर्ष पूंजीवाद से समाजवाद मे सन्तरण के काल में सामाजिक विकास का एक प्रमुख तत्व होता है। इस संघर्ष की चरम परिणति वर्ग के रूप में पूंजीपतियों के पूर्ण उन्मूलन तथा मानव द्वारा मानव के शोषण से मुक्त समाज की स्थापना मे होती है।

पूंजीवादी विचारक सर्वहारा अधिनायकत्व को यों चित्रित करते हैं मानो वह निर्बाध आतंक और विनाश की हुकूमत हो। वे कहते हैं कि पूंजीपतियों से लडने के लिए सर्वहारा बस एक हथियार का इस्तेमाल करता है और वह हथियार है बल-प्रयोग या सशस्त्र संघर्ष। पर वास्तव में मार्क्सवाद-लेनिनवाद सिद्धान्त और अमल दोनों ही इस उसूल पर आधारित हैं कि

१ लेनिन, मजदूर वर्ग और किसानों का सहयोग, १९५९, पृष्ठ १०२।
२ अध्याय १७ मे इस विषय की और विशद विवेचना की गयी है।

पूंजीपतियों का प्रतिरोध तरह-तरह के उपायों का इस्तेमाल करके समाप्त किया जा सकता है। इसमें बल-प्रयोग भी शामिल है और शान्तिपूर्ण विधियां भी।

मजदूर वर्ग हमारे युग का सबसे मानवीयतापूर्ण वर्ग है। वह मानव संस्कृति की निधियों को सुरक्षित रखना और उन्हें बढ़ाना चाहता है। वह उत्पादन-स्तर को उन्नत करना और प्रधान उत्पादक शक्ति को—मनुष्य को, श्रमजीवी जनता को—रक्षा करना चाहता है। इसीलिए पूंजीवाद से समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण उसकी मौलिक दिलचस्पी का विषय होता है। शान्तिपूर्ण पथ से विपुल भौतिक निधियों की रक्षा होती है, अनेक मानवों की प्राणरक्षा होती है और इसीलिए जैसा कि लेनिन ने लिखा है, वह जनता के लिए सबसे कम दर्दीला, आसान और सुविधाजनक पथ है।

क्रान्ति कौन-सी राह पकड़ेगी—शान्तिपूर्ण या अशान्तिपूर्ण—यह मजदूर वर्ग पर उतना नहीं निर्भर करता जितना इस पर कि पूंजीपति कितने जोर-शोर से प्रतिरोध करते हैं और वे किस हद तक झुकने को तैयार होते हैं।

समाजवादी क्रान्ति के प्रथम देश सोवियत संघ में पूंजीपतियों ने खोयी हुई सत्ता, सम्पत्ति और विशेषाधिकारों को बलपूर्वक वापस लेना चाहा और इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीशाही के साथ सशस्त्र सांठगांठ की। ऐसी परि-स्थिति में मजदूर वर्ग के सामने इसके सिवा और कोई चारा नहीं रह गया कि पूंजीपतियों को कुचलने के लिए शस्त्रबल का, गृह-युद्ध का, जो संक्रमण काल में सोवियत जनतंत्र में वर्ग-संघर्ष का विशिष्ट रूप था, सहारा ले। कुलकों, अर्थात् धनी किसानों के विरुद्ध संघर्ष में भी दमन के लिए बल-प्रयोग के साधन अपनाये गये।

पर यूरोप के लोक जनतंत्रों का अनुभव बताता है कि बल पूर्वक पूंजी-पतियों का दमन संक्रमण-काल में वर्ग संघर्ष का कोई अनिवार्य रूप नहीं है। इन देशों में गृह-युद्ध नहीं हुआ, क्योंकि वास्तविक सत्ता सर्वहारा के पक्ष में थी। इन देशों में प्रतिक्रियावादी ताकतों के मुख्य नाके जर्मन फासिज्म के विरुद्ध मुक्ति-संघर्ष के दौरान ही नष्ट किये जा चुके थे और पूंजीपतियों का जो अंश बच रहा था, उसके पास काफी शक्ति न थी। अतः उसने जनता की सरकार का सशस्त्र प्रतिरोध करने की हिम्मत ही नहीं की। साथ ही इन देशों को नाजियों के चंगुल से छुड़ाने वाली सोवियत सेना चूंकि वहां मौजूद थी, इसलिए विश्व साम्राज्यवादी प्रतिक्रियाशाही उनके खिलाफ फौजी दखलन्दाजी भी नहीं कर सकी।

संक्रमण काल में वर्ग संघर्ष की तीव्रता देश-देश में भिन्न तो होती ही है वह किसी एक देश के अन्दर उसके विकास के विभिन्न कालों में भी भिन्न-भिन्न हुआ करती है। सोवियत संघ और लोक जनतंत्रों के अनुभव ने बताया है

कि सर्वहारा-अधिनायकत्व के सुदृढ़ होते जाने और समाजवादी निर्माण के निरन्तर आगे बढ़ने के साथ वर्ग-शक्तियों का अन्तस्सम्बंध लगातार समाजवाद के पक्ष में बढ़ता जाता है। फलतः शत्रु वर्गों के अवशेषों का प्रतिरोध कमजोर पड़ता जाता है। किसी देश के अन्दर पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण काल में वर्ग संघर्ष के विकास की यही आम प्रवृत्ति होती है।

स्तालिन ने १९३७ में यह विचार प्रस्तुत किया था कि समाजवाद की ताकतों के अधिकाधिक शक्तिशाली होने के साथ वर्ग संघर्ष तीव्रतर होता जाता है। यह गलत था। यह विचार उस समय प्रतिपादित किया गया था जब कि सोवियत संघ में शोषक वर्गों का उन्मूलन हो चुका था और समाजवाद का निर्माण किया जा चुका था। और इस विचार का उपयोग पार्टी और राजकीय जीवन, समाजवादी जनवाद और वैधता के लेनिनवादी प्रतिमानों के नग्नतम उल्लंघनों को उचित ठहराने के लिए किया गया।

सर्वहारा और मार्क्सवादी पार्टियां इस सिद्धान्त पर अमल करती हैं कि वर्ग संघर्ष सन्तरण काल में नाना प्रकार के रूप ग्रहण कर सकता है। इस आधार पर वे वर्ग संघर्ष के सभी रूपों में कुशलता प्राप्त करने और उनमें जो ठोस परिस्थिति तथा वर्ग शक्तियों के वस्तुगत अन्तस्सम्बंध से सबसे अधिक मेल खाते हों, उनका उपयोग करने का लक्ष्य अपने सामने रखती हैं।

५. समाजवादी समाज की वर्ग बनावट

सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण होने से सोवियत समाज की वर्ग-बनावट में आमूल परिवर्तन हो गया। उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और मानव द्वारा मानव का शोषण सदा के लिए खत्म कर दिये गये। शोषक वर्गों का नगर और देहात, दोनों ही जगह अन्त कर दिया गया। वहां दो मैत्रीपूर्ण वर्ग रह गये—मजदूर वर्ग और सामूहिक फार्म का कृषक समुदाय और इनके अलावा मेहनतकश बुद्धिजीवी रहे जिनका सोवियत काल में कायापलट हो गया है।

मजदूर वर्ग वह सर्वहारा नहीं रहा जो पूंजीवाद के जमाने में शोषित और सभी अधिकारों से वंचित था। वह और बाकी सारी जनता उत्पादन के साधनों के मालिक हैं तथा देश के सच्चे स्वामी हैं। मजदूर वर्ग सबसे संगठित और सामाजिक दृष्टि से सचेत वर्ग है और अपने स्वभाव से ही मैत्रीपूर्ण व्यवहार तथा पारस्परिक सहायता को बढ़ावा देता है। अतः वह समाज में अग्रणी भूमिका अदा करता है। समाजवाद में भी और पूरे पैमाने पर कम्युनिज्म के निर्माण के काल में भी।

कृषि के समूहीकरण और सांस्कृतिक क्रान्ति ने भी सोवियत किसानों की स्थिति सोल्हों आना बदल डाली। पहले वे एक विगठित और पददलित वर्ग थे जिसका जमींदार और कुलक शोषण किया करते थे। अब वे वास्तव में आजाद एक वर्ग थे जो बड़े पैमाने पर यंत्रीकृत कृषि में लगा हुआ है।

सामूहिक श्रम ने किसानों के सदियों से चले आये अलग-थलगपन को मिटा दिया, निजी स्वामित्व की मनोवृत्ति पर काबू पाने में उन्हें मदद दी, और उनके अन्दर सामूहिकता, मित्रता और सहयोग की भावना भरी। आधुनिक मशीनों का व्यापक उपयोग होने से यह आवश्यक हो गया कि कृषि-मशीनों को चलाने वालों के दस्ते के दस्ते तैयार किये जायें, ऐसे दस्ते जिनका श्रम कारखाना मजदूरों के श्रम से भिन्न नहीं है। इसके अलावा और इसके नतीजे के तौर पर किसानों ने उच्चतर सांस्कृतिक स्तर हासिल किया है।

बुद्धिजीवी समुदाय भी बहुत बदल गया है। सोवियत बुद्धिजीवियों का अधिकांश मजदूर वर्ग और किसानों से आता है। वे जनता के अभिन्न अंग हैं और वफादारी एवं निस्स्वार्थ भावना से जनता की सेवा करते हैं।

सोवियत सत्ता-काल में बुद्धिजीवियों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। १९१३ में उच्चतर, अपूर्ण उच्चतर और विशेष माध्यमिक शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या मात्र २,९०,००० थी। पर १९५९ में यह संख्या बढ़कर १,३४,००,००० हो चुकी थी। इस समय २० लाख अध्यापक, लाखों वैज्ञानिक, डाक्टर, इंजीनियर और टेक्नीशियन, वकील तथा वित्त और अन्य विषयों के विशेषज्ञ सोवियत समाज के कल्याणार्थ काम कर रहे हैं।

प्रभुता और अधीनता के वर्ग-सम्बंध सोवियत संघ में सदा के लिए समाप्त कर दिये गये हैं। अब वहां कोई विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग अथवा समूह नहीं है और समाज के हर सदस्य का उत्पादन के साधनों के प्रति समानतापूर्ण सम्बंध है। अतः शोषण असम्भव है। यह मुमकिन ही नहीं है कि कोई किसी और की मेहनत को हड़प सके। समाजवादी समाज मेहनतकश जनता का समाज है।

चूंकि समाजवादी समाज में शोषक और शोषित नहीं है, बल्कि केवल मेहनतकश वर्ग और सामाजिक समूह हैं, इसलिए वर्ग संघर्ष नहीं है।

समाजवादी समाज में सोवियत संघ की सामाजिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक एकता निर्मित हुई है। इस एकता का स्रोत मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों के बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यों के साम्य में निहित है। यह कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करने के उनके संयुक्त प्रयास में निहित है जिससे कि उन्हें भारी भौतिक और सांस्कृतिक लाभ प्राप्त होंगे। इसी हित-साम्य की बदौलत सोवियत जनता मिलकर और समन्वित होकर काम करती है जिससे कि भारी कठिनाइयों पर काबू पाया जा सके और

महान् ऐतिहासिक महत्व के कार्य पूरे किये जा सकें। हित-साम्य द्वारा बाद्ध, कार्यक्षेत्र में एकता द्वारा एकजुट और कम्युनिज्म के महान विचारों द्वारा अनुप्राणित करोड़ों-करोड़ जनता की ताकत एक महतीशक्ति है जिसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता।

६. वर्ग विभेद को समाप्त करने के उपाय

समाजवादी समाज में दो मैत्रीपूर्ण वर्ग हैं—मजदूर वर्ग और किसान इसका कारण यह है कि समाजवाद में समाजवादी सम्पत्ति के दो रूप सुरक्षित रखे गये हैं—राज्यीय और सहकारी सामूहिक फार्म सम्पत्ति। इसके फलस्वरूप नगर और देहात में मूलभूत अन्तर बने रहते हैं। समाजवाद मे बुद्धिजीवी समुदाय भी है। यह वह सामाजिक समूह है जिसका अस्तित्व शारीरिक और मानसिक श्रम में मूलभूत अन्तर के कारण रहता है।

इसीलिए वर्ग-विभेदों को मिटाने और बुद्धिजीवियों तथा मजदूर-किसानों के बीच के विभेदों को मिटाने के लिए नगर और देहात के, मानसिक और शारीरिक श्रम के विभेदों को मिटाना आवश्यक है। लेनिन ने कहा था कि वर्गों का पूर्णतया उन्मूलन करने के लिए केवल शोषक वर्गों को ही मिटाना आवश्यक नही है, बल्कि "नगर और देहात के अन्तर को तथा साथ ही शारीरिक और दिमागी मजदूरो के बीच के अन्तर को मिटा देना आवश्यक है।"[1]

सोवियत समाज में सामाजिक विभेदो को उत्पादक शक्तियो तथा समाजवादी उत्पादन सम्बधों का निरन्तर विकास करके एवं उनको कम्युनिस्ट सम्बंधों मे परिणत करके धीरे-धीरे दूर किया जा रहा है।

पूजीवाद में नगर देहात का निर्मम शोषण करता है। फलत: हितों की ऐसी प्रतिपक्षिता (एंटियीसिस) उपस्थित होती है जो समन्वित नही हो सकती।

नगर और देहात के सारभूत विभेद कैसे खत्म होंगे

समाजवाद नगर और देहात की प्रतिपक्षिता को दूर करता है, पर उनमें अर्थतंत्र, संस्कृति और रहन-सहन सम्बधी सारभूत विभेद बने रहते हैं। पहली बात तो यह कि शहरी उद्योग-धधो मे सम्पत्ति राज्य की होती है, पूरी जनता की होती है। और सामूहिक फार्मों में सहकारी सामूहिक फार्म सम्पत्ति का चलन है। इसके अलावा, देहात न केवल सांस्कृतिक स्तर मे नगर से कुछ पीछे रहता है, बल्कि वहां का रहन-सहन भी भिन्न होता है।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान सामूहिक-फार्म सम्पत्ति जैसे-जैसे और सुदृढ़ एवं विकसित होती जाती है, वैसे-वैसे यह क्रमशः राज्यीय सम्पत्ति के

---

१. लेनिन, संकलित रचना ... पृष्ठ २४८।

निकटतर पहुंचती जाती है। यह प्रक्रिया सामूहिक फार्म की तकनीकी सुविधाओं के बढ़ने के साथ-साथ चलती है। इसके फलस्वरूप खेतिहर श्रम धीरे-धीरे औद्योगिक श्रम की ही एक किस्म बन जाता है।

अधिक व्यापक यंत्रीकरण से श्रम-उत्पादकता और कृषि-कार्यकुशलता मे लगातार वृद्धि होती है। इससे सामूहिक फार्मों और कृषकों की आयो मे और भी वृद्धि होती है। कृषकों द्वारा प्राप्त श्रम-पारितोषिक कारखानो मे काम करने वाले शहर और कारखाना-मजदूरों के श्रम-पारितोषिक के अधिकाधिक करीब आता जाता है।

कृषि उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन देहात की शक्ल को तब्दील कर देता है। उससे किसानो के रहन-सहन का ढग बेहतर होता है और उनका सांस्कृतिक स्तर ऊचा उठता है।

देहातों मे बड़े पैमाने पर निर्माण-कार्य चल रहा है। सामूहिक फार्म गराज, मशीन-मरम्मत के खाते, माल-गोदाम, पशुशालाए, कृषि जनित कच्चे मालों और खाद्य-पदार्थों के डब्बाबन्दी के कारखाने तथा इमारती सामानों, कैंटीनो, किंडरगार्डनो, नर्सरियो, बेकरियो, दूकानो और अन्य सेवा-सस्थानों को तैयार करने के प्रतिष्ठान बनवा रहे हैं। बड़ी सख्या मे रिहायशी घर बन रहे है, खास कर शहरों जैसे घर जो केन्द्रीय ताप व्यवस्था और अन्य सुविधाओं से लैस होते हैं। सामूहिक फार्म के गांव धीरे-धीरे सुविकसित शहरी इलाकों जैसे बन जायेंगे।

फार्म सांस्कृतिक केन्द्रों, क्लबों, पुस्तकालयों, स्कूलो, खेलकूद के स्टेडियमों और मैदानो के विकास पर बड़ी-बड़ी रकमे खर्च कर रहे हैं। पुस्तकें और रेडियो, टेलीफोन और टेलीविजन सामूहिक फार्म के जीवन का स्थायी अग बनते जा रहे हैं। सास्कृति-विश्वविद्यालय, लोक-रगमच, सगीतशालाए और शौकिया कलाए देहातो मे अधिकाधिक फैलते जा रहे हैं। ये शहर और देहात को निकटतर लाते जा रहे हैं।

सोवियत सघ ज्यो-ज्यो कम्युनिज्म के निकट पहुचता जायेगा, त्यो-त्यों शहरी आबादी के रहन-सहन की अवस्थाओ मे भारी सुधार होगा। रिहायशी इलाकों की भीड़भाड़ मिटेगी और लोगो को अधिक हवा, रोशनी तथा हरियाली मिलेगी। इस मामले मे उनके कामकाज तथा रिहायश की अवस्थाए देहात की अवस्थाओ के निकटतर आयेंगी।

शहर और देहात का सारभूत विभेद इसी प्रकार हटेगा। यह विभेद एक बार मिट गया, तो समाज का मजदूर और किसान वर्गों मे विभाजन भी सदा के लिए मिट जायेगा।

बुद्धिजीवियों के बहुत बड़े अंश ने सदियों शोषक वर्गों की सेवा की और मेहनतकश जनता अथवा शारीरिक श्रमजीवियों का उत्पीड़न करने में मदद की। शारीरिक और मानसिक श्रम की सदियों से चली आती प्रतिपक्षिता का यही कारण है। समाजवाद ने इस प्रतिपक्षिता को भी समाप्त कर दिया है। सोवियत बुद्धिजीवी शारीरिक श्रमजीवियों—मजदूरों और किसानों—के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर अपने समाजवादी देश के विकास को आगे की ओर बढ़ा रहे हैं। पर समाजवाद में शारीरिक और मानसिक श्रमजीवियों के बीच सारभूत विभेद फिर भी कायम रहते हैं: मजदूरों और किसानों का सांस्कृतिक एवं तकनीकी स्तर बुद्धिजीवियों के सांस्कृतिक स्तर एवं तकनीकी ज्ञान से अब भी पीछे है। इस विभेद को मिटाने के लिए मजदूरों और किसानों की संस्कृति एवं तकनीकी शिक्षा को बुद्धिजीवियों के स्तर तक उठाना आवश्यक है। यह कार्य भरपूर कम्युनिस्ट निर्माण के काल में पूरा किया जा रहा है।

शारीरिक और मानसिक श्रमजीवियों के सारभूत विभेद कैसे खत्म होंगे

इस समस्या को हल करने का मुख्य उपाय है तकनीकी प्रगति और उसके साथ-साथ स्वयं श्रम के स्वरूप में होने वाला परिवर्तन। प्राविधिक प्रगति, नयी-नयी, जटिल और अति कार्यकुशल मशीनों का उपयोग, स्वचलन और उत्पादन का पूर्ण विद्युतीकरण, पारमाणविक ऊर्जा का इस्तेमाल और रसायन एवं अन्य विज्ञानों की उपलब्धियों का व्यापक प्रयोग—ये चीजें न केवल विशेष तकनीकी दक्षता का तकाजा करती हैं बल्कि यह मांग भी करती हैं कि उन्नत आम शिक्षा हो तथा विज्ञान की मूलभूत बातों की जानकारी हो। तकनीकी प्रगति का मजदूरों और किसानों की आम सांस्कृतिक एवं तकनीकी उन्नति के साथ अभिन्न सम्बध है। मानव-कार्यकलाप के मुख्य क्षेत्र—श्रम की प्रक्रिया में ही तो कम्युस्टि समाज का नया मानव—सर्वतोमुखी विकास से युक्त मानव—प्रथमतया नये साँचे में ढलेगा।

कम्युनिस्ट श्रम आन्दोलन शारीरिक और मानसिक श्रम के मुख्य भेदों को समाप्त करने में सहायता प्रदान करता है। इस आन्दोलन में जो लोग भाग लेते हैं, उनका मुख्य उद्देश्य है: तकनीकी प्रगति के आधार पर श्रम उत्पादकता को बढ़ाना, निरन्तर और श्रमसाध्य अध्ययन के जरिए अपने उद्देश्य की प्राप्ति करना, कुशलता और आम शिक्षा के स्तर को उन्नत बनाना।

शैक्षणिक प्रणाली विकसित की जा रही है और उसे संवारा जा रहा है ताकि छात्रों की पढ़ाई और उत्पादन-कार्य को और घनिष्ठता के साथ परस्पर सम्बद्ध किया जा सके जिससे कि नयी पीढ़ी की शिक्षा बेहतर हो और साथ ही हर क्षेत्र के विशेषज्ञ प्रशिक्षित हों। शिक्षा में आवश्यक सुधार लाने के लिए

सोवियत संघ प्राविधिक, कृषि शास्त्रीय और पशुपालन विज्ञान के पाठ्यक्रमो, आम स्कूलो, पत्र-व्यवहार पाठ्यक्रमो और सायंकालीन विद्यालयों का, जो उच्चतर अथवा विशेष माध्यमिक शिक्षा प्रदान करते हैं, सर्वत्र विस्तार कर रहा है।

कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार ने इस बात का ध्यान रखा है कि जनता को ज्ञान बढाने और सास्कृतिक स्तर ऊचा करने के लिए फुरसत का काफी वक्त मिले। कार्य-दिवस घटाने के सम्बध मे पग उठाये गये हैं। कुछ ही वर्षों मे कारखानों और दफतरो मे काम करनेवाले दिन मे छ या सात घंटे ही काम करेंगे और सप्ताह मे दो दिन की छुट्टी पायेंगे। सोवियत जनता को दुनिया का सबसे अल्प एव सबसे अधिक वेतन युक्त कार्य दिवस प्राप्त होगा।

कम्युनिज्म का निर्माण हो जाने पर मानसिक और शारीरिक श्रम में सारभूत विभेद नही रह जायेगा। सकुचित और विशेषीकृत मानसिक श्रम कम्युनिस्ट समाज मे लुप्त हो जायेगा और विशुद्ध शारीरिक श्रम भी। गुणात्मक रूप से भिन्न प्रकार के श्रम का आविर्भाव होगा जिसमे कम्युनिस्ट समाज के सदस्यो के—सर्वतोमुखी विकास से युक्त मानवो के—शारीरिक एव मानसिक प्रयास सामजस्यपूर्ण ढग से घुलमिल जायेंगे।

अध्याय १९

राष्ट्र और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन

जैसाकि हम देख चुके हैं, वर्गों का संघर्ष सम्पूर्ण वर्ग समाज के विकास में एक मुख्य तत्व है। हमारे युग में वर्गों के संघर्ष के अतिरिक्त राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने मानवजाति के विकास में बड़ा महत्व प्राप्त कर लिया है। अब हम राष्ट्रों और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की विवेचना करेंगे। आइये, सबसे पहले हम यह ज्ञात करें कि राष्ट्र क्या है और उनकी उत्पत्ति कैसे हुई।

१. राष्ट्र क्या है ?

समकालीन समाज में वर्गों के अलावा जनता के राष्ट्रीय समुदाय, यानी राष्ट्र भी होते हैं। राष्ट्रों का उदय वर्गों के बहुत बाद में हुआ। वर्ग दास-समाज के उदय के दौरान बन गये, जब कि राष्ट्र पूंजीवाद के विकास की उपज हैं। इतिहास में राष्ट्र से पहले गोत्र, कबीला और जाति जैसे जनता के समुदायों का उदय हुआ था।

गोत्र रक्त एवं आर्थिक सम्बन्धों से जुड़ा जन-समुदाय है। उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व और उपयोग गोत्र का आधार बना। कई गोत्र मिलकर कबीला बने। गोत्र और कबीले का आदिम सामुदायिक समाज में अस्तित्व था।

दास और सामन्ती समाजों में एक नये प्रकार के जन-समुदाय—जाति—अस्तित्व में आया। गोत्र रक्त-सम्बन्धों पर आधारित था, पर जाति का आधार रक्त-सम्बन्ध नहीं, बल्कि समान भूखण्ड, भाषा और संस्कृति था। जाति पर्याप्त स्थायी जन-समुदाय नहीं थी, क्योंकि दास-व्यवस्था और सामन्तवाद समूचे देश में व्याप्त आर्थिक समुदाय पैदा नहीं कर सकते थे। और जब यह सम्भव न हो, तो जनता के अन्दर घनिष्ठ, स्थायी सम्बन्ध भी सम्भव नहीं हो पाता। यह सही है कि दास-समाज और सामन्तवाद में भी बाजार और मालों के विनिमय का अस्तित्व था, पर ये बहुत सीमित एवं मात्र स्थानीय महत्व के थे और इनमें आर्थिक तथा राजनीतिक विलगाव को दूर करने की क्षमता नहीं थी।

पूंजीवाद के विकास के साथ आर्थिक अलगाव धीरे-धीरे मिट गया और एक ऐक्यबद्ध बाजार पैदा हुआ जिसके फलस्वरूप जातियां राष्ट्रों में परिवर्तित हुई। लेनिन ने लिखा है : "राष्ट्र सामाजिक विकास के पूंजीवादी युग की एक अनिवार्य उपज और उसका एक अनिवार्य रूप हैं।"[1]

जाति की ही भांति राष्ट्र में भी समान भूखंड, भाषा और संस्कृति आदि की विशेषताएं होती हैं। पर जाति के विपरीत राष्ट्र एक स्थिर जन-समुदाय हुआ करता है। लेनिन ने कहा था कि "गहनतम आर्थिक तत्व" उसे स्थिरता प्रदान करते हैं। कीव रूस के स्लाव कबीले एक भाषा और एक भूखंड वाली एक जाति तो थे, पर अभी राष्ट्र नहीं बने थे। उनमें राष्ट्रीय सम्बंध रूसी इतिहास के नये युग (लगभग १७वीं सदी) में पैदा हुए जब देश का आर्थिक अलगाव समाप्त किया गया, माल-संचार विकसित हुआ और छोटे-छोटे स्थानीय बाजार एक अखिल रूसी बाजार में एकाकार हुए। अतः आर्थिक जीवन का साम्य राष्ट्र की एक प्रमुख विशेषता है। अर्थतंत्र और आर्थिक सम्बंध ही एक भूखंड पर बसने और एक भाषा बोलनेवाले जनगण को एक सम्पूर्ण इकाई—एक राष्ट्र—में आबद्ध करते हैं। आर्थिक और राजनीतिक विकास के दौरान एक समान मन स्थिति तैयार होती है जो किसी राष्ट्र की ऐतिहासिक परम्पराओं में और उसकी संस्कृति एवं जीवन-विधि की विशिष्ट विशेषताओं में अभिव्यक्त हुआ करती है।

राष्ट्र और नस्ल को एक चीज नहीं समझ लेना चाहिए। कतिपय जैविकीय विशेषताओं (रंग, आंखों की बनावट, आदि) के अनुसार जनगण का नाक-नक्शा—यह है नस्ली विशिष्टता। इस नाक-नक्शे के आधार पर तीन बुनियादी नस्लें हैं—यूरोपीय, मंगोली और हब्शी।

कुछ पूंजीवादी विद्वान किसी जनगण के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर की और समाज में किसी मनुष्य की स्थिति की नस्ली विभेद के आधार पर व्याख्या करने की कोशिश करते हैं। वे गोरी जाति की श्रेष्ठता का बखान करते हैं। उनके मत से श्वेत नस्ल द्वारा काली नस्लों पर प्रभुत्व पूर्वनिर्दिष्ट विधान है। पर इतिहास एवं वैज्ञानिक तथ्य बताते हैं कि सभी नस्लों के लोगों की योग्यता समान है। यदि अश्वेत नस्लों के कुछ लोग पिछड़े हुए हैं, तो इसका कारण उनकी चमड़ी या केश का रंग नहीं, बल्कि यह है कि श्वेत शोषकों ने सदियों से उनका औपनिवेशिक उत्पीड़न किया है। इस समय भूतपूर्व उपनिवेशों और परतंत्र देशों के लोग, जिन्होंने उपनिवेशवाद का जुआ अपने कंधों से उतार फेंका है, अपने अर्थतंत्र और संस्कृति का सफलतापूर्वक विकास

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड २१, पृष्ठ ७२।

कर रहे है। समाजवादी मार्ग पर चल रहे देशों (चीन, उत्तर कोरिया और उ
वियतनाम) में लोग बड़ी तेजी से प्रगति कर रहे हैं।

२. राष्ट्रीय औपनिवेशिक प्रश्न पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद का मत

पूंजीवाद के अन्तर्गत निर्मित राष्ट्र पूंजीवादी राष्ट्र हैं। इन राष्ट्रों की आबादी में मजदूर वर्ग और मेहनतकशों के अन्य हिस्सों का ही बोलबाला रहता है, पर प्रभुत्वशील भूमिका पूंजीपति अदा करते हैं जिनके हाथ मे उत्पादन के सभी साधन रहते हैं और जो राज्यसत्ता एव आम प्रचार-साधनो का उपभोग करते हैं। इसीलिए पूंजीवादी राष्ट्र का चेहरा मुख्यतया पूंजीवादी अर्थतंत्र, राजनीति और विचारधारा द्वारा निर्धारित होता है। कमजोर राष्ट्रों का आर्थिक और सैनिक दृष्टि से मजबूत राष्ट्रों द्वारा उत्पीड़न और शासन—यह पूंजीवादी राष्ट्रों के विकास को अधिशासित करने वाला एक नियम है। अतः पूंजीवाद मे राष्ट्रों के विकास का अपनी मुक्ति के लिए उत्पीड़ितो के तीव्र संघर्ष के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होना स्वाभाविक है। राष्ट्रीय प्रश्न, अर्थात् यह प्रश्न कि उत्पीड़ित राष्ट्र किस तरह आजादी हासिल करें, राष्ट्रीय उत्पीड़न का अन्त करें और जनगण में समानतापूर्ण सम्बंध विकसित करें, पूंजीवाद में खास तौर से टेढ़ा बन जाता है। यह प्रश्न सामाजिक विकास की प्राथमिक समस्याओं में से है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद राष्ट्रीय प्रश्न के महत्व की पूरी तरह पुष्टि करता है और यह मांग करता है कि उन्हें ठोस ऐतिहासिक अवस्थाओं के अनुसार हल करना चाहिए। इस प्रश्न का समुचित हल निकालने के लिए विभिन्न युगों मे समाज के विकास, हर देश के विकास की विशिष्टताओं, दुनिया के अन्दर और खास उस देश के अन्दर वर्ग-शक्तियों के सतुलन, विभिन्न राष्ट्रों की मेहनतकश जनता की सक्रियता, उनकी सामाजिक चेतना के स्तर, सगठन, आदि का लेखा लेना जरूरी होता है।

राष्ट्रीय प्रश्न का विषयतत्व पूंजीवाद के विकास की भिन्न-भिन्न मंजिलों में एक ही नही रहा है। जब पूंजीवादी समाज उन्नतिमान था, उस समय यह प्रश्न आम तौर पर व्यक्तिगत देशो की सीमा-रेखाओं से परे नही गया। रूस, आस्ट्रो-हंगरी और अन्य बहु-राष्ट्रीय राज्य, जिनमें उत्पीड़क और उत्पीड़ित दोनो ही राष्ट्र थे, राष्ट्रीय उत्पीड़न और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के मुख्य अखाड़े थे। राष्ट्रीय प्रश्न कार्यत. अपने अर्थतंत्र और संस्कृति का विकास करने के अधिकार के लिए राष्ट्रीय अल्पसंख्यको के संघर्ष का, उनके मुक्ति संघर्ष का
ना प्रश्न हुआ था।

वे विकृत रूप ग्रहण कर लिया करती हैं, ऐसे रूप ले लेती हैं जो उनके वस्तुतः प्रगतिशील विषयतत्व के साथ मेल नहीं खाते । साम्राज्यवाद विराट अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों और ट्रस्टों को जन्म देता है । वह एक सर्वग्राही विश्व अर्थतंत्र का सृजन करता है । समाज के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का अधिकाधिक एकीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीयकरण करता है । पर एकीकरण की यह प्रक्रिया, पूंजीपति इजारेशाहियों के प्रभुत्व के मातहत राष्ट्रों की यह "एकसूत्रता" केवल हिंसा के द्वारा, एक राष्ट्र द्वारा जो अधिक मजबूत और विकसित है, दूसरे राष्ट्र की औपनिवेशिक लूट और उत्पीड़न के जरिए ही आ सकती है । साम्राज्यवाद में पूरे के पूरे, बड़े अथवा छोटे राष्ट्र, विशाल महादेश तक साम्राज्यवादी डाकुओं के औपनिवेशिक विस्तार का शिकार बन गये और इन डकैतों ने उत्पीड़ित जनगण की आजाद होने की हर कोशिश का निर्ममतापूर्वक दमन किया । एक करने की, राष्ट्रों को एक सूत्र में बांधने की प्रवृत्ति का राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय राज्य के निर्माण की प्रवृत्ति से घोर टकराव होता है ऐसा टकराव जो मिटाया नहीं जा सकता ।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन मे राष्ट्रीय पूंजीपतियों की इतिहास की दृष्टि से प्रगतिशील भूमिका का स्वरूप क्षणिक होता है। इसीलिए उत्पीड़ित राष्ट्रो के राष्ट्रवाद मे प्रगतिशील प्रवृत्ति भी स्थायी नही रहती। इसी कारण मार्क्सवादी पार्टी उत्पीडित जनगण के मुक्ति सघर्ष का समर्थन करते हुए मेहनतकश जनता को पूंजीवादी राष्ट्रवाद के प्रभाव से मुक्त करने की कोशिश करती है, क्योंकि इस राष्ट्रवाद का दुनिया की मेहनतकश जनता की एकजुटता का उद्घोष करने वाले सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के साथ कोई मेल नही है। मार्क्सवादी पार्टी हर सामाजिक आन्दोलन मे वर्ग सघर्ष की निर्णायक भूमिका को सिद्ध करके और सभी देशो के सर्वहारा की एकता का आह्वान करके पूंजीवादी राष्ट्रवाद की विचारधारा से लडती है। इस तरह वह मेहनतकश जनता के दिमाग में सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भावना भरती है।

३. राष्ट्रीय मुक्ति के लिए जनता के आन्दोलन की प्रगति और साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था का टूटना

उपनिवेशवाद का टूटना हमारे युग की एक विशेषता है

साम्राज्यवादियो द्वारा उपनिवेशो और परतन्त्र देशो के निर्मम एव अमानवीय शोषण ने औपनिवेशिक उत्पीडन के विरुद्ध, स्वाधीनता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए मुक्ति सघर्ष को जन्म दिया।

महान् अक्तूबर समाजवादी क्रांति ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को प्रबल प्रेरणा प्रदान की। उसने पूरब के देशो को जगा दिया और औपनिवेशिक जनगण को विश्व क्रांतिकारी आन्दोलन की समान धारा मे खीच लायी। सोवियत सघ उत्पीडितों के लिए राजनीतिक और नैतिक समर्थन का अक्षय स्रोत बन गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद दुनिया में शक्तियों का नया अन्तस्सम्बंध पैदा हुआ। अनेक यूरोपीय और एशियाई देशो में समाजवादी क्रान्ति विजयी हुई और विश्व समाजवादी व्यवस्था का निर्माण हुआ। इससे राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष के लिए खास तौर पर अनुकूल अवस्थाएं उत्पन्न हुई। साम्राज्यवाद ने अधिकतर जनगण की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का अपहरण किया था और उन्हें क्रूर औपनिवेशिक दासता की बेडियो में जकड रखा था। पर समाजवाद के उदय से, जैसा कि सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है, उत्पीड़ित जनगण की मुक्ति के युग का श्रीगणेश हुआ। राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियो का एक प्रबल ज्वार औपनिवेशिक व्यवस्था को चकनाचूर कर रहा है और साम्राज्यवाद की नीवो को खोखला कर रहा है। जो पहले उपनिवेश या अर्ध-उपनिवेश थे, वहा नये स्वाधीन राज्य स्थापित हुए हैं।

औपनिवेशिक व्यवस्था का टूटना विशेष कारण से महत्वपूर्ण बन जाता है इस कारण से कि वह करोड़ों-करोड़ लोगों को इतिहास के निर्माण में खींच लाता है। औपनिवेशिक साम्राज्यों के खण्डहर पर बने नये स्वाधीन राज्यों के जनगण नये जीवन के निर्माता और विश्व राजनीति में सक्रिय भाग लेने वालों की हैसियत से मैदान में आये हैं। वे साम्राज्यवाद को नष्ट करने वाली क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में सामने आये हैं। औपनिवेशिक व्यवस्था का चकनाचूर होना और मिटना मानव जाति के विकास में एक नये युग के अवतरण का द्योतक है।

उपनिवेशवाद का जुआ उतार फेंकने वाले जनगण हमारे युग के सर्वोपरि प्रश्न—दूसरा विश्व युद्ध न होने देना, शान्ति कायम रखना और उसे सुदृढ़ करना—को हल करने में विशिष्ट भूमिका अदा करेंगे। वे और समाजवादी देशों के जनगण मिल कर दुनिया की आबादी का दो-तिहाई हो जाते हैं। यह एक प्रचण्ड शक्ति है, ऐसी शक्ति है जो साम्राज्यवादी जंगबाजों को पीछे हटने को मजबूर कर सकती है।

मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी उपनिवेशवाद के सबसे कट्टर दुश्मन और राष्ट्रीय समता एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता के पक्के हिमायती हैं। वे राष्ट्रीय, साम्राज्यवाद-विरोधी और जनवादी क्रान्ति के कर्त्तव्यों को पूरा

---

१. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के प्रतिनिधियों की बैठक का वक्तव्य १९६०, पृष्ठ ३५।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का सामाजिक सारतत्व और उसके कार्य

और सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध करने वाली प्रतिक्रियावादी ताकतों के प्रयासों का मुकाबला करते हैं। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का स्वरूप न तो सर्वहारा है और न ही समाजवादी। उसका लक्ष्य पूंजीवाद को मिटा कर नया समाजवादी समाज स्थापित करना भी नहीं है। इसीलिए हमें इस आन्दोलन के महत्व को अतिरंजित नहीं करना चाहिए और न ही इसे अपने युग की मुख्य क्रांतिकारी ताकत मान लेना चाहिए।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में मुख्य क्रांतिकारी ताकत मान लेना मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका के सम्बंध में मार्क्सवाद की शिक्षा को विकृत करना है। यह विकसित पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग आन्दोलन के महत्व को घटाता है और विश्व घटनाक्रम में विश्व समाजवादी व्यवस्था की बढ़ती हुई निर्णायक भूमिका को अस्वीकार करता है।

विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की भूमिका को अतिरंजित करना एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण को सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों से और पूंजीवादी राज्यों के मजदूर वर्ग से अलग-थलग करता है। वह राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग से अलग-थलग करता है। ऐसी नीति समाजवादी व्यवस्था को भी गहरा नुकसान पहुंचा सकती है और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को भी। यह विश्व मजदूर वर्ग के ध्येय को धक्का लगायेगी। उत्पीड़ित राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग आन्दोलन और समाजवाद एवं कम्युनिज्म का निर्माण कर रहे जनगण के साथ एकताबद्ध होकर ही अपनी मुक्ति एवं सुखी भविष्य के लिए सफलतापूर्वक संघर्ष कर सकते हैं।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का सारतत्व यद्यपि समाजवादी नहीं होता, तब भी वह महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं को—जैसे सामन्ती व्यवस्था और उसके अवशेषों का खात्मा, उपनिवेशवाद और उसके साम्राज्यवादी शासन के पश्चात-प्रभाव [illegible] करना, विदेशी इजारेदारियों पर पाबन्दियां [illegible] [illegible], राष्ट्रीय उद्योग का विकास करना, [illegible] [illegible] करना, विदेशी [illegible] [illegible]

आक्रामक नीति के कुचक्र में घसीटना चाहती हैं। अतः साम्राज्यवाद के विरुद्ध सतत संघर्ष, सर्वोपरि अमरीकी साम्राज्यवाद के, जो कि उपनिवेशवाद का मुख्य आधार-स्तम्भ है, विरुद्ध सतत संघर्ष राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्ति की सफलता की एक बुनियादी शर्त है।

उपनिवेशों में देश की सभी प्रगतिशील शक्तियां राष्ट्रीय जनवादी कार्यों की पूर्ति के लिए एक हो सकती हैं और वे होती भी हैं। इस संघर्ष में मजदूर वर्ग के साथ किसानों के व्यापक हिस्से, बिचले समूह तथा राष्ट्रीय पूंजीपतियों का वह हिस्सा भी होता है जिसे साम्राज्य-विरोधी, सामन्त-विरोधी क्रांति के मुख्य कार्यों की पूर्ति मे, अर्थात् स्थानीय अर्थतंत्र और बाजार का निर्माण करने तथा विदेशी साम्राज्यवादियो के अतिक्रमणों से इनकी रक्षा करने मे, वस्तुगत दिलचस्पी होती है। पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता, व्यापक जनवाद और राष्ट्रीय मुक्ति क्रांति की चरम पूर्ति के लिए संघर्षरत देशो की इन सभी प्रगतिशील देशप्रेमी शक्तियों का मोर्चा राष्ट्रीय जनतंत्र के राजनीतिक आधार का काम कर सकता है। राष्ट्रीय जनतंत्र की स्थापना एव विकास आर्थिक तौर पर अल्पविकसित देशों के जनगण के लिए बहुत बडी सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन मे राष्ट्रीय पूंजीपतियो के शामिल होने से संघर्ष का प्रगतिशील स्वरूप बदल नही जाता। पर उत्पीड़ित देशो के मजदूर वर्ग को पूंजीपतियों एव अन्य सामाजिक शक्तियों के साथ मिलकर काम करते हुए, पूंजीपतियो की असगति, उनके ढुलमुलपन और साम्राज्यवाद एव सामन्तवाद के साथ समझौता करने की उनकी प्रवृत्ति का लेखा अवश्य लेना चाहिए।

मजदूर वर्ग और किसानों की मैत्री राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है। इस मैत्री के बिना राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, गहन जनवादी सुधार और सामाजिक प्रगति हासिल करना और इनकी रक्षा करना असम्भव है।

उपनिवेशों में जनगण की स्वाधीनता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को अपने संघर्ष का चरम लक्ष्य नहीं मानती। इतिहास बतलाता है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद जनता के सामने अनेक महत्वपूर्ण समस्याएं पेश होती हैं। इनमें सबसे बडी समस्या होती है—विकास का कौन-सा मार्ग अपनाया जाये, पूंजीवादी या गैर-पूंजीवादी मार्ग।

भिन्न-भिन्न वर्ग और पार्टियां इस समस्या के लिए भिन्न भिन्न हल पेश करती हैं। पूंजीपति चाहते हैं कि राष्ट्रीय विकास को पूंजीवादी दिशा में मोड़ा जाये, निजी सम्पत्ति और शोषण को बरकरार रखा जाये। वे आन्तरिक वर्ग-विरोधों को जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद अधिकाधिक तीव्र हो जाते हैं, घटा कर पेश करने की कोशिश करते हैं। इन अन्तर्विरोधों के बारे में

आन्तरिक प्रतिक्रियावादियों और बाहरी साम्राज्यवादी ताकतों के साथ पूंजीपतियों के समझौता करने की अधिकाधिक सम्भावना होती है।

मेहनतकश जनता की स्थिति कुछ और ही होती है। वह अपने अनुभव से सीखती है कि पूंजीवादी मार्ग में उसके लिए लाभ की कोई आशा नहीं है और पूंजीवाद जनता को मुसीबतों का मार्ग है। जनगण यह महसूस करने लगे हैं कि समाजवाद ही आज़ादी और सुख का एकमात्र मार्ग है। केवल समाजवाद ही भूतपूर्व उपनिवेशों और परतन्त्र देशों के युग-युगों के पिछड़ेपन को दूर कर सकता है, तेज गति से उनकी आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति को सुनिश्चित कर सकता है, जनता की भौतिक और आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है और उसे शोषण दरिद्रता और भुखमरी तथा नये विश्व युद्ध के खतरे से सदा के लिए मुक्त कर सकता है।

कौन-सा रास्ता चुना जाये, यह हर राष्ट्र का अपना मामला है। दुनिया के मौजूदा शक्तियों के अन्तस्सम्बन्ध ` ज्बकि उपनिवेशवाद से मुक्त जनगण को विश्व समाजवादी व्यवस्था से भारी समर्थन प्राप्त करने का अवसर है, वे अपने हित के अनुसार स्वयं निर्णय कर सकते हैं, अर्थात् गैर पूंजीवादी मार्ग चुन सकते हैं। मजदूर वर्ग का सक्रिय संघर्ष, सर्व-साधारण सभी राष्ट्रीय जनवादी साम्राज्य-विरोधी शक्तियां—ये किसी देश को इस मार्ग का अनुसरण करने में समर्थ बनाते हैं। इस तरह राष्ट्र के अत्यधिक बहुमत के हितों की सिद्धि होती है। अतः समाजवादी परिवर्तनों के लिए पूर्वदशाएं राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष के दौरान ही उत्पन्न होती हैं।

४. समाजवाद और राष्ट्र

सोवियत संघ में जातीय प्रश्न का हल

निजी सम्पत्ति और शोषण पर आधारित तथा राष्ट्रों में फूट और शत्रुता पैदा करने वाला पूंजीवादी समाज राष्ट्रीय प्रश्न को हल करने की क्षमता नहीं रखता। केवल समाजवाद ही शोषण और वर्ग-वैमनस्य को मिटा कर राष्ट्रीय कलह को खत्म करता है और वास्तविक प्रगति, परस्पर विश्वास और राष्ट्रों की आपसी सन्निकटता को सुनिश्चित बनाता है। मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में लिखा है: "जिस अनुपात में एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण मिटाया जाता अनुपात में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे
राष्ट्रों के अन्दर वर्गों का वैमनस्य
समाप्त होगा।"

म तैयार किया

का आह्वान किया गया था। इस कार्यक्रम के बुनियादी सिद्धान्त ये थे : समाजवादी आधार पर जीवन का पूर्ण जनवादी पुनर्निर्माण, सभी नस्लों और राष्ट्रों की सच्ची एकता की स्थापना, राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का—अलग होकर स्वतंत्र राज्य बनाने तक का—अधिकार प्रदान करना और देश के अन्दर सभी जातियों के मजदूर वर्ग की अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता। सभी राष्ट्रों के—वे बड़े हों या छोटे—प्रति आदर तथा उनकी मौलिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति चिन्ता पर आधारित इस राष्ट्रीय कार्यक्रम ने रूस के अनेकानेक जातियों के मजदूरों और किसानों को एकता के एक अटूट सूत्र में पिरोने में मदद की। इस एकता का अगुवा मजदूर वर्ग था। महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय को सुनिश्चित बनाने वाले प्राथमिक तत्वों में यह एका भी एक तत्व था।

रूस में समाजवादी क्रान्ति ने राष्ट्रीय उत्पीड़न की जंजीरों को चकनाचूर कर दिया, जनगण के पुराने आपसी बैर को मिटा दिया और उनके सर्वतोमुखी सहयोग एवं पारस्परिक सन्निकटता का मार्ग प्रशस्त किया। इसने उन्हें अपने भाग्य का फैसला करने, अपने राष्ट्रीय राज्य, अर्थतंत्र और संस्कृति को विकसित करने का अधिकार प्रदान किया।

सोवियत सत्ता की स्थापना के आरम्भिक दिनों से ही सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी एवं समाजवादी राज्य ने राष्ट्रीय समस्या पर अधिक से अधिक ध्यान दिया है। १५ नवम्बर १९१७ को ही सोवियत सरकार ने रूस के जनगण के अधिकारों की घोषणा को स्वीकार किया जिसमें देश के सभी जनगण की समता और प्रभुसत्ता का, अलग होकर अपना स्वतंत्र राज्य कायम करने की हद तक आत्मनिर्णय के उनके अबाध अधिकार का, सभी राष्ट्रीय विशेषाधिकारों और प्रतिबन्धों को समाप्त करने का तथा जातीय अल्पसंख्यकों और नृवंशीय समूहों के मुक्त विकास का ऐलान किया गया।

इस घोषणा ने राष्ट्रीय उत्पीड़न का अन्त कर दिया और देश के विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के लिए राजनीतिक और कानूनी समता की स्थापना की। साथ ही इससे सभी राष्ट्रों और जातियों के एक राज्य में स्वैच्छिक एकीकरण की ठोस नींव पड़ी। यह एकीकरण सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की (३० दिसम्बर, १९२२ को) स्थापना करके किया गया। यह राष्ट्रीय समता और स्वैच्छिक एकीकरण पर आधारित दुनिया का प्रथम बहुजातीय राज्य था। सोवियत संघ की स्थापना ने सोवियत जनतंत्रों के आर्थिक और सैनिक बल को बढ़ाया, उनकी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ की, इस बात के लिए आवश्यक पूर्वदशाएं उत्पन्न की कि जनगण एक-दूसरे के और सन्निकट आयें और मिल-जुलकर समाजवाद का निर्माण करें।

समाजवादी राष्ट्र बन गयी हैं। उनमें से अनेक अन्य अधिक विकसित जनगण की मदद से पूंजीवादी मंजिल को लांघ कर उन्नत राष्ट्रों के स्तर पर पहुंच गयी हैं।

पूंजीवाद में राष्ट्र ऊंचे-ऊंचे राष्ट्रीय बाड़े खड़े कर और राष्ट्रीय पृथकता एवं स्वार्थपरता को तेज करके विकास करते हैं। पर सोवियत संघ में राष्ट्र परस्पर समीप आकर, अपनी भ्रातृत्वपूर्ण पारस्परिक सहायता और मित्रता को मजबूत बनाकर विकसित हुए हैं। एक ओर हर राष्ट्र का जोरदार तथा सर्वतोमुखी विकास और दूसरी ओर सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों के आधार पर समाजवादी राष्ट्रों का निरन्तर एक-दूसरे के निकट आना—ये समाजवाद में राष्ट्रीय प्रश्न की दो परस्पर सम्बद्ध प्रगतिशील प्रवृत्तियां होती हैं। इसके फलस्वरूप सोवियत संघ में विभिन्न जातियों का समान विशेषताएं रखने वाला एक नया ऐतिहासिक समुदाय प्रगट हुआ है। इसे हम सोवियत जनगण कहते हैं। इनकी एक समाजवादी मातृभूमि—सोवियत संघ—है, एक समाजवादी अर्थतंत्र है, एक समान सामाजिक वर्गढांचा है, एक समान विश्व-दर्शन—मार्क्सवाद-लेनिनवाद—है और एक समान लक्ष्य है—कम्युनिज्म का निर्माण करना, और इनके आत्मिक गठन में, मानस में, कई समान विशेषताएं हैं।

राष्ट्रीय प्रश्न सम्बन्धी मार्क्सवादी कार्यक्रम जिसे लेनिन ने तैयार किया था, सोवियत संघ में बिलकुल पूरा किया जा चुका है। सोवियत संघ में समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों के एकछत्र राज ने जनगण में अद्वितीय सम्बंधों की—बन्धुत्वपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता के सम्बंधों की स्थापना के लिए आधार का काम किया है और यह उसकी शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। राष्ट्रीय प्रश्न जो विकास के सबसे जटिल एवं सबसे टेढे सवालों में से है, सोवियत संघ में पूरी तरह हल किया जा चुका है। यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद की भारी जीत है, सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयता के विचारों की ज्वलन्त विजय है।

राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में सोवियत संघ के अनुभव ने भलीभांति प्रमाणित कर दिया है कि समाजवादी क्रान्ति ही राष्ट्रीय उत्पीड़न की पूर्ण समाप्ति, मुक्त और समतापूर्ण जनगण का एक राज्य में स्वेच्छापूर्वक एकीकरण, सच्ची प्रगति और राष्ट्रों के एक-दूसरे के समीप आने की अवस्थाएं तैयार करती है। इस अनुभव का इस्तेमाल अब विश्व समाजवादी व्यवस्था के राज्यों द्वारा हर देश के अन्दर और साथ ही समाजवादी राष्ट्र-मण्डल के देशों के मध्य, राष्ट्रीय समस्या को हल करने के लिए किया जा रहा है। यह मूल्यवान अनुभव औपनिवेशिक जञ्जीरें तोड़ फेंकनेवाले नये स्वाधीन राष्ट्रीय राज्यों के लिए और उपनिवेशवाद से आजादी के लिए लड़ रहे जनगण के लिए भी भारी महत्व

विरुद्ध घमासान संघर्ष में उन देशों के जनगण के लिए प्रेरणा और शक्ति का स्रोत हैं। समाजवादी राष्ट्रों का वर्तमान उनके सामने उन देशों के भविष्य के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण है।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान राष्ट्रों का और भी ऐक्यबद्ध होना

पूरे पैमाने पर कम्युनिज्म का निर्माण, कम्युनिज्म के भौतिक तथा प्राविधिक आधार को तैयार करना सोवियत सघ मे राष्ट्रीय सम्बंधों के विकास मे एक नयी मजिल है। इस मजिल की विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न राष्ट्र एक-दूसरे के और अधिक निकट आते हैं और उनमे पूर्ण एकता की स्थापना होती है।

इसके फलस्वरूप सघ जनतंत्रों का सर्वतोमुखी आर्थिक विकास और आगे बढ़ना है, उनके बीच श्रम-विभाजन निरन्तर बेहतर होता जाता है, मौजूदा आर्थिक सम्बधो का विस्तार होता है और नये आर्थिक सम्बध कायम होते हैं। कम्युनिस्ट अर्थतत्र का यह तकाजा है कि सोवियत जनतत्रो के बीच घनिष्ठतम पारस्परिक सम्बध बनें। अत जैसे-जैसे सोवियत सघ कम्युनिज्म की दिशा में आगे बढेगा, वैसे-वैसे हर जनतत्र देश की उत्पादक शक्तियो को विकसित करने के समान ध्येय में अधिकाधिक बडा योग देगा तथा समाजवादी राष्ट्र आर्थिक रूप से परस्पर अधिक सन्निकट होते जायेंगे। नये-नये औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना, प्राकृतिक ससाधनो की खोज एव उनका उपयोग, अछूती भूमियो तथा सुदूर क्षेत्रो में प्रवेश तथा परिवहन के सभी साधनो के विकास से यह कार्य सुगम होता जायेगा। इन चीजो से विभिन्न राष्ट्रो के सम्पर्कों का विस्तार होगा, उत्पादन सम्बधी ज्ञान एव सास्कृतिक उपलब्धियो का आदान-प्रदान होगा।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान विभिन्न राष्ट्रो के सन्निकट आने का अर्थ यह होगा कि सघ जनतत्रों के बीच की सरहदो का पहले का महत्व समाप्त हो जायेगा। यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि सोवियत देश की सभी जातियो को समान अधिकार प्राप्त हैं, सबों का जीवन एक आधार पर—समाजवादी आधार पर—स्थित है तथा प्रत्येक राष्ट्र की भौतिक एव आत्मिक आवश्यकताओं की समान मात्रा में पूर्ति होती है। सभी समान और जीवन्त हितों से परस्पर सम्बद्ध हैं। वे एक परिवार के सदस्य हैं तथा कधे से कधा मिलाकर एक ही लक्ष्य की ओर बढ रहे हैं।

हर सोवियत जनतत्र आबादी की बनावट के लिहाज से अधिकाधिक बहु-जातीय बनता जा रहा है। यह भी सोवियत सघ की जातियों के परस्पर निकट होते जाने का प्रमाण है। सभी जनतंत्रो में अनेकानेक जातियो के लोग बसते और साथ काम करते हैं। समाजवादी फैक्टरियों में भी अनेक जातियों के औरत-मर्द साथ काम करते हैं।

समाजवादी राष्ट्र बन गयी हैं। उनमें से अनेक अन्य अधिक विकसित जन
की मदद से पूंजीवादी मंजिल को लांघ कर उन्नत राष्ट्रों के स्तर पर प
गयी हैं।

पूंजीवाद में राष्ट्र ऊंचे-ऊंचे राष्ट्रीय बाड़े खड़े कर और राष्ट्रीय पृथक्
एवं स्वार्थपरता को तेज करके विकास करते हैं। पर सोवियत संघ में राष्ट्र
परस्पर समीप आकर, अपनी भ्रातृत्वपूर्ण पारस्परिक सहायता और मित्रता को
मजबूत बनाकर विकसित हुए हैं। एक ओर हर राष्ट्र का जोरदार तथा सर्व-
तोमुखी विकास और दूसरी ओर सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों के आधार
पर समाजवादी राष्ट्रों का निरन्तर एक-दूसरे के निकट आना—ये समाजवाद
में राष्ट्रीय प्रश्न की दो परस्पर सम्बद्ध प्रगतिशील प्रवृत्तियां होती हैं। इसके
फलस्वरूप सोवियत संघ में विभिन्न जातियों का समान विशेषताएं रखने वाला
एक नया ऐतिहासिक समुदाय प्रगट हुआ है। इसे हम सोवियत जनगण कहते
हैं। इनकी एक समाजवादी मातृभूमि—सोवियत संघ—है, एक समाजवादी अर्थ-
तंत्र है, एक समान सामाजिक वर्गढांचा है, एक समान विश्व-दर्शन—मार्क्सवाद-
लेनिनवाद—है और एक समान लक्ष्य है—कम्युनिज्म का निर्माण करना, और
इनके आत्मिक गठन में, मानस में, कई समान विशेषताएं हैं।

राष्ट्रीय प्रश्न सम्बधी मार्क्सवादी कार्यक्रम जिसे लेनिन ने तैयार किया था,
सोवियत संघ में बिलकुल पूरा किया जा चुका है। सोवियत संघ में समाजवादी
उत्पादन सम्बंधों के एकछत्र राज ने जनगण में अद्वितीय सम्बधों की—बन्धुत्व-
पूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता के सम्बंधों की स्थापना के लिए आधार
का काम किया है और यह उसकी शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। राष्ट्रीय
प्रश्न जो विकास के सबसे जटिल एवं सबसे टेढ़े सवालों में से है, सोवियत संघ
में पूरी तरह हल किया जा चुका है। यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद की भारी जीत
है, सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयता के विचारों की ज्वलन्त विजय है।

राष्ट्रीय सम्बधों के क्षेत्र में सोवियत संघ के अनुभव ने भलीभांति प्रमाणित
कर दिया है कि समाजवादी क्रान्ति ही राष्ट्रीय उत्पीड़न की पूर्ण समाप्ति, मुक्त
और समतापूर्ण जनगण का एक राज्य में स्वेच्छापूर्वक एकीकरण, सच्ची प्रगति
और राष्ट्रों के एक-दूसरे के समीप आने की अवस्थाएं तैयार करती है। इस
अनुभव का इस्तेमाल अब विश्व समाजवादी व्यवस्था के राज्यों द्वारा हर देश
के अन्दर और साथ ही समाजवादी राष्ट्र-मण्डल के देशों के मध्य, राष्ट्रीय
समस्या को हल करने के लिए किया जा रहा है। यह मूल्यवान अनुभव औप-
निवेशिक जंजीरें तोड़ फेंकनेवाले नये स्वाधीन राष्ट्रीय राज्यों के लिए और
उपनिवेशवाद से आजादी के लिए लड़ रहे जनगण के लिए भी भारी महत्व
रखता है। सोवियत जनगण की सफलताएं साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के

विराट् सफलताएं उन देशों के कल्याण के लिए प्रेरणा और शक्ति का स्रोत है। समाजवादी राष्ट्रों का सर्वांगीण उत्कर्ष उनके सामने उन देशों के भविष्य के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण है।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान राष्ट्रों का और भी निकट होना

पूरे पैमाने पर कम्युनिज्म का निर्माण, कम्युनिज्म के भौतिक तथा तकनीकी आधार को तैयार करना सोवियत संघ में राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास में एक नयी मंजिल है। इस मंजिल की विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न राष्ट्र एक-दूसरे के और अधिक निकट आते हैं और उनमें पूर्ण एकता की स्थापना होती है।

इसके फलस्वरूप सब जनतन्त्रों का सर्वतोमुखी आर्थिक विकास और आगे बढ़ता है, उनके बीच श्रम-विभाजन निरन्तर बेहतर होता जाता है, मौजूदा आर्थिक सम्बन्धों का विस्तार होता है और नये आर्थिक सम्बन्ध कायम होते हैं। कम्युनिस्ट पार्टी का यह प्रयास है कि सोवियत जनतन्त्रों के बीच घनिष्ठतम पारस्परिक सम्बन्ध बनें। ज्यों ज्यों सोवियत संघ कम्युनिज्म की दिशा में आगे बढ़ेगा, वैसे वैसे हर जनतन्त्र देश की उत्पादक शक्तियों को विकसित करने के समान ध्येय में अधिकाधिक बड़ा योग देगा तथा समाजवादी राष्ट्र आर्थिक रूप से परस्पर अधिक सन्निकट होते जायेंगे। नये-नये औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना, प्राकृतिक साधनों की खोज एव उनका उपयोग, अछूती भूमियों तथा सुदूर क्षेत्रों में प्रवेश तथा परिवहन के सभी साधनों के विकास से यह कार्य सुगम होता जायगा। इन चीजों से विभिन्न राष्ट्रों के सम्पर्कों का विस्तार होगा, उत्पादन सम्बन्धी ज्ञान एव सांस्कृतिक उपलब्धियों का आदान-प्रदान होगा।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान विभिन्न राष्ट्रों के सन्निकट आने का अर्थ यह होगा कि संघ जनतन्त्रों के बीच की सरहदों का पहले का महत्व समाप्त हो जायेगा। यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि सोवियत देश की सभी जातियों को समान अधिकार प्राप्त है, सबों का जीवन एक आधार पर—समाजवादी आधार पर—स्थित है तथा प्रत्येक राष्ट्र की भौतिक एव आत्मिक आवश्यकताओं की समान मात्रा में पूर्ति होती है। सभी समान और जीवन्त हितों से परस्पर सम्बद्ध हैं। वे एक परिवार के सदस्य हैं तथा कधे से कधा मिलाकर एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं।

हर सोवियत जनतन्त्र आबादी की बनावट के लिहाज से अधिकाधिक बहु-जातीय बनता जा रहा है। यह भी सोवियत संघ की जातियों के परस्पर निकट होते जाने का प्रमाण है। सभी जनतन्त्रों में अनेकानेक जातियों के लोग बसते और साथ काम करते हैं। समाजवादी फैक्टरियों में भी अनेक जातियों के औरत-मर्द साथ काम करते हैं।

कम्युनिज्म के निर्माण में प्राप्त सफलताएं, वर्ग-विभेदों का उन्मूलन और कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बंधों का विकास राष्ट्रों की सामाजिक एकरूपता को बढ़ाने, उनकी संस्कृति, आचार-नीति और जीवन-विधि में सामान कम्युनिस्ट विशेषताओं को विकसित करने में मदद देते हैं। इससे उनमें एक-दूसरे पर भरोसा बढ़ता है और दोस्ती गाढ़ी होती है। राष्ट्रों की आत्मिक एकता और अधिक दृढ़ होती है। एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति का उदय होता है जो मानवजाति की सर्वश्रेष्ठ सांस्कृतिक उपलब्धियों को ग्रहण करती है और सभी राष्ट्रों के लिए समान होती है। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति ऐसे सृजनों से सम्पन्न होती है जिनका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय है। इस प्रक्रिया द्वारा मानवजाति की समान कम्युनिस्ट संस्कृति का साकार होना आरम्भ हो जाता है।

कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान राष्ट्रों का ऐक्यबद्ध होते जाना एक वस्तुगत प्रक्रिया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसा आप ही आप, सुगमता से और बिना किसी कठिनाई के होता है। समाजवादी राष्ट्रों के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास तथा उन्हें धीरे-धीरे ऐक्यबद्ध करने के लिए राष्ट्रवाद और अंध-राष्ट्रीयता की अभिव्यक्तियों और अवशेषों के विरुद्ध, राष्ट्रीय अलगाव और एकान्तता की प्रवृत्तियों के विरुद्ध, अतीत के स्वर्णिम चित्र खींचने और अपने इतिहास के सामाजिक अन्तर्विरोधों को नजरअन्दाज करने के विरुद्ध, पुराने तथा रद्दी हो गये रीति-रिवाजों और आदतों के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाने की जरूरत होती है।

सोवियत संघ में कम्युनिज्म की विजय से विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक और वैचारिक समवेतता बढ़ेगी, उनकी संस्कृति अपूर्व शिखरों को चूमने लगेगी और उनके आत्मिक गठन की कम्युनिस्ट विशेषताएं पूरी तौर पर विकसित होंगी।

विभिन्न राष्ट्र अन्ततः एकाकार हो जायेंगे, किन्तु उनके बीच के अन्तरों का उन्मूलन वर्गों के बीच के अन्तरों के उन्मूलन की अपेक्षा कहीं अधिक दीर्घ प्रक्रिया है। कम्युनिज्म की विजय के साथ वर्ग-विभेद मिट जायेंगे, पर राष्ट्रीय और विशेषकर भाषाधार अन्तर बहुत दिनों तक बने रहेंगे।

हमारे युग में, जिसमें विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय हुआ है और वह बढ़ रही है, राष्ट्रों के ऐक्यबद्ध होने की प्रक्रिया राष्ट्रीय सीमाओं के पार तक पहुंच चुकी है तथा उसने अन्तर्राष्ट्रीय महत्व धारण कर लिया है। समाजवादी व्यवस्था के राज्यों के बीच बन्धुत्वपूर्ण एकता और सहयोग के सम्बंध कायम हुए हैं। समाजवादी व्यवस्था का विकास सिद्ध करता है कि ये सम्बंध हर देश के सर्वोच्च राष्ट्रीय हितों के सर्वथा अनुरूप हैं। आपसी सहयोग की बदौलत प्रत्येक समाजवादी राज्य साम्राज्यवादियों के दबाव का सफलतापूर्वक मुकाबला कर पाता है ...

अध्याय १७

राज्य

लेनिन ने कहा था कि पूंजीवादी समाजशास्त्रियों ने जितना घोलमट्ठा राज्य के प्रश्न को लेकर किया, उतना अन्य किसी भी प्रश्न पर नहीं, क्योंकि अन्य कोई भी प्रश्न शासक वर्गों के हितों पर उतना अधिक असर नहीं डालता जितना कि राज्य का प्रश्न। पूंजीवादी सिद्धान्तकार राज्यों को यों पेश करते हैं मानो वह प्रकृति से परे कोई अलौकिक शक्ति हो, चिर अतीत से विधाता की दी हुई कोई वस्तु हो। उनका तर्क है कि राज्य का कोई वर्ग-चरित्र नहीं होता, वह तो "व्यवस्था की स्थापना का निरीह साधन" मात्र है, एक "पंच" है जिसका काम जन-जन के बीच—वे चाहे किसी भी वर्ग के हों—उठने वाले विवादों में मध्यस्थता करना है। राज्य का यह "सिद्धान्त" पूंजीपतियों के विशेषाधिकारों तथा शोषण को और पूंजीवाद के अस्तित्व को उचित ठहराने का काम करता है।

१. राज्य की उत्पत्ति एवं स्वरूप

समाज के ऐतिहासिक विकास की उपज के रूप में राज्य

पूंजीवादी सिद्धान्तकारों के विपरीत, मार्क्सवाद ने यह दर्शाया है कि राज्य कोई ऐसी चीज नहीं है जो समाज में कहीं ऊपर से प्रविष्ट की जाती है, बल्कि वह समाज के आन्तरिक विकास की उपज है। भौतिक उत्पादन मे परिवर्तनों द्वारा राज्य का जन्म हुआ। एक उत्पादन पद्धति के स्थान पर दूसरी उत्पादन पद्धति के आगमन से राज्य-व्यवस्था में परिवर्तन होता है।

राज्य का अस्तित्व सदा से ही नही रहा है। आदिम समाज मे, जिसमें वैयक्तिक सम्पत्ति और वर्गों का अस्तित्व नही था, राज्य भी नही था। स्वभावतया कुछ सामाजिक कार्य उस समय अवश्य थे, किन्तु इन कार्यों को पूरे समाज द्वारा चुने हुए व्यक्ति अंजाम देते थे तथा समाज को इन व्यक्तियों को जब चाहे बर्खास्त कर देने और उनकी जगह दूसरे व्यक्तियों को नियुक्त करने का अधिकार होता था।

जैसा कि हम देख चुके हैं, उत्पादक शक्तियों का और अधिक विकास होने के फलस्वरूप आदिम समाज टूट गया। वैयक्तिक सम्पत्ति का आविर्भाव हुआ जिसके साथ-साथ वर्ग आये—दास और दास-स्वामी। वैयक्तिक सम्पत्ति तथा उसके स्वामियों की हिफाजत करने एवं उनके शासन की सुरक्षा की आवश्यकता उत्पन्न हुई। इसने राज्य को जन्म दिया। राज्य के जन्म और उसके विकास के साथ-साथ घनघोर वर्ग-संघर्ष चलता रहा।

राज्य वर्ग समाज की उपज है। उसका उदय वर्गों के उदय के साथ हुआ और वर्गों के मिटने के साथ उसका लोप भी हो जायेगा, वह धीरे-धीरे मुरझा जायेगा। किन्तु ऐसा कम्युनिस्ट समाज में ही होगा।

राज्य का स्वरूप

वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में राज्य एक राजनीतिक हथियार होता है। लेनिन के शब्दों में, राज्य "एक वर्ग पर दूसरे वर्ग का शासन कायम रखने की मशीन" होता है। आर्थिक रूप से प्रभुत्वशील, अर्थात उत्पादन के साधनों के स्वामी वर्ग के लिए राज्य उत्पीड़ितों और शोषितों को अपने आधिपत्य में रखने का एक शक्तिशाली हथियार है। राज्य का अपना खुला वर्ग-चरित्र है। वह समाज के आर्थिक आधार पर स्थित ऊपरी ठाठ का प्रधान अंग है, और इस आधार को मजबूत बनाने तथा उसकी हिफाजत करने के लिए वह कोई कसर उठा नहीं रखता।

राज्य की मुख्य विशेषता एक ऐसी सार्वजनिक (सामाजिक) सत्ता का अस्तित्व है जो पूरी आबादी के हितों का नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से प्रभुत्वशील वर्ग के हितों का पूरा प्रतिनिधित्व करती है। यह सत्ता सशस्त्र बल—फौज और पुलिस—पर टिकी रहती है।

आदिम समाज में सभी लोग सशस्त्र हुआ करते थे। किन्तु वैरी वर्गों में विभाजित समाज में शस्त्रसज्जित फौजें शासक वर्ग के हाथ में रहती हैं और उनका इस्तेमाल जनता को दबाने के लिए, उसे मुट्ठी भर शोषकों के अधीनस्थ रखने के लिए किया जाता है। प्रतिनिधि संस्थाएं (पार्लियामेंट), प्रशासन का विराट दफ्तरशाही यंत्र जिसमें सरकारी अहलकारों की एक पूरी फौज होती है, खुफियागीरी की संस्थाएं, अदालतें और जेलें—सबके सब यही काम करते हैं। इन सबको मिलाकर शोषक राज्य की राजनीतिक सत्ता बनती है।

जैसे-जैसे वर्ग-अन्तर्विरोध गहरे होते हैं और वर्ग संघर्ष बढ़ता है, राज्य मशीन का विस्तार होता जाता है। आज के पूंजीवादी समाज के अन्दर, जिसमें राज्य-मशीन और फौजों ने अभूतपूर्व आकार ग्रहण कर लिया है, यह प्रक्रिया खास तौर से तीव्र हो उठी है। इस विराट राज्य-मशीन एवं सैन्य शक्तियों को कायम रखना जनता के ऊपर एक भारी भार है। खास कर आज तो और भी ऐसा है, क्योंकि साम्राज्यवादी होड़ शस्त्रीकरण की घुड़दौड़ में लगे हुए हैं।

आदिम समाज में लोग रक्त-सम्बंधों के आधार पर बनी बस्तियों में रहते थे। पर राज्य में आबादी क्षेत्रीय आधार पर समूहबद्ध है, यानि जिलों, प्रदेशों, प्रान्तों, आदि में। क्षेत्रीय आधार पर बसी बस्तियां उत्पादन के विकास, बड़े श्रम-विभाजन तथा व्यापार और माल-विनिमय की वृद्धि का परिणाम हैं।

२. शोषक समाज में राज्य

शोषक राज्यों के कार्य शोषक समाज (दास, सामन्ती अथवा पूंजीवादी) का राज्य शासक वर्ग के हितों की हिफाजत के लिए बना होता है। देश के अन्दर अन्य वर्गों के खिलाफ और बाहर अन्य राज्यों के खिलाफ वह इन हितों की रक्षा करता है। अतः किसी राज्य के कार्यकलाप में दो प्रवृत्तियां अथवा प्रकार होते हैं—एक आन्तरिक और दूसरा बाह्य। आन्तरिक कार्य प्रधान होता है और वही राज्य के सभी विदेशी मामलात को निर्दिष्ट करता है।

शोषक राज्य का आन्तरिक कार्य है मेहनतकश जनता पर नियंत्रण रखना, उन्हें उत्पीडकों की छोटी-सी जमात के अधीनस्थ रखना। यह राज्य के वर्ग-स्वरूप को प्रतिबिम्बित करता है और इसकी अभिव्यक्ति उसकी आन्तरिक नीति में, उत्पीड़ित वर्गों के विरुद्ध संघर्ष में होती है। आर्थिक जबर्दस्ती का उपयोग शोषक वर्ग उत्पादन के साधनों पर अपने एकाधिपत्य के जरिये करते हैं, पर यह संघर्ष जीतने के लिए काफी नहीं है। उन्हे जोर-जबर्दस्ती के एक विशेष यन्त्र की—शोषक राज्य की आवश्यकता होती है।

प्रथम शोषक राज्य दास-राज्य था। उसके बाद सामन्ती राज्य आया। और सामन्ती राज्य का स्थान पूंजीवादी राज्य ने ग्रहण किया। विभिन्न अन्तरों के बावजूद इन तीनों मे एक कार्य समान था—जनता को काबू में रखना और मेहनतकशों की शोषण से मुक्ति पाने की चेष्टाओं को कुचल डालना।

दास-स्वामी राज्य ने स्वामियों के विरुद्ध बगावत करने वाले दासों को शस्त्रबल से कुचल डाला। सामन्ती राज्य ने किसानों को जबरन जमींदारियों का बन्धुआ बनाया और जमींदार के लिए मेहनत करने से इनकार करने वालों को बेरहमी से सजाएं दीं। किसानों के जो बहुत सारे विप्लव हुए, उन्हें खून में डुबो दिया गया। पूंजीवादी राज्य जनतंत्र का जामा ओढ़ कर चलना पसंद करता है, पर वह मेहनतकशों को दबा कर रखने का यंत्र है। उसका प्रमुख उद्देश्य वैयक्तिक पूंजीवादी सम्पत्ति की हिफाजत करना, मजदूरी की प्रथा को कायम रखना और सर्वहारा के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचल डालना है।

शोषक राज्य का बाह्य कार्य है विदेशी भूमियों पर कब्जा करना और हमले से अपनी भूमि की रक्षा करना। यह अन्य राज्यों के साथ उस राज्य के

सम्बंधों को प्रतिबिम्बित करता है और उसको वैदेशिक नीति में अभिव्यक्ति पाता है। विदेश नीति गृह नीति से निसृत होती है और उसी नीति का विस्तार है। समकालीन साम्राज्यवाद की प्रतिक्रियावादी, लुटेरू विदेश नीति मजदूर वर्ग एव अन्य सभी प्रगतिशील शक्तियों को कुचलने की उसकी गृह नीति का स्वाभाविक पूरक है।

राज्यों के प्रकार और शासन के रूप

राज्य किस वर्ग की सेवा करता है और किस आर्थिक आधार पर वह खडा हुआ है—इसी कसौटी के अनुसार राज्य-राज्य का अन्तर बनता है। इतिहास मे अभी तक चार प्रकार के राज्य हुए हैं—दास, सामन्ती, पूजीवादी और समाजवादी। प्रथम तीन प्रकार के राज्य शोषकों के हितों की रक्षा करते हैं, जबकि समाजवादी राज्य एक नये प्रकार का राज्य है, जो सही मायने मे जनता का राज्य है।

हर प्रकार के राज्य की अपनी विशिष्ट किस्म की सरकार—अर्थात प्रभुत्वशील वर्ग के शासन का सगठन—होती है। सरकार का रूप हर देश की विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्थाओ, वर्ग-शक्तियों के अन्तःसम्बध और बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सरकार के चाहे कितने ही विविध रूप हों, उसमे चाहे कितनी ही तब्दीलिया हो, पर राज्य का प्रकार—उसका वर्ग स्वरूप—विशिष्ट आर्थिक व्यवस्था के ढाचे के अन्दर अपरिवर्तित रहता है।

दास-समाज मे कई प्रकार की सरकारें थी राजतत्र—एक व्यक्ति, सम्राट या राजा का शासन, गणराज्य—निर्वाचित शासन, कुलीनतत्र—अपेक्षाकृत अल्पसख्यक जमात का शासन, जनतत्र—बहुमत का शासन। इन विभेदो के बावजूद दास युग का राज्य दास-स्वामियो का राज्य था।

सामन्ती समाज मे भी ऐसी ही तस्वीर थी। सामन्ती राज्य में सरकार का सबसे प्रचलित स्वरूप था राजतत्र। पर कभी-कभी वह दूसरे रूपो में भी प्रकट हुआ, जैसे गणराज्य के रूप मे। पर सरकार का रूप जो भी रहा हो, सामन्ती राज्य सदा भू-दासो और दस्तकारो के दमन का यत्र बना रहा।

पूजीवादी राज्य मे अनेक रूप मिलते है। अधिकतर यह गणराज्य के रूप मे ही रहता है (जैसे अमरीका, फ्रास, इटली, आदि)। पूजीवाद में राज-तत्री रूप विरले ही मिलता है और राजा का शासन सविधान या अन्य व्यवस्थापिका कानूनो द्वारा किसी न किसी रूप मे सीमित कर दिया जाता है (जैसे ब्रिटेन और बेल्जियम)। साम्राज्यवादी युग मे पूजीपति लोग फासिस्ट तानाशाही का भी उपयोग करते है (जैसे हिटलरी जर्मनी, फ्रैको का स्पेन, आदि)। पर पूजीपतियो की अबाध सत्ता पूजीवादी राज्य के हर रूप की सबसे बडी विशेषता है।

समाज के विकास के साथ राज्य के प्रकार एवं रूप बदल गये, पर इससे उसकी मुख्य विशेषता—शोषण—मे अन्तर नही पड़ा।

समकालीन पूंजीवादी राज्य का प्रतिगामी स्वरूप

सिद्धान्तकार और राजनीतिज्ञ पूजीवादी राज्य की प्रगतिशील भूमिका की खूब बातें करते है। उनके कथनानुसार पूजीवादी राज्य ही है जिसने जनता को पूरी आजादी प्रदान की है, यह कि यही जनतंत्र का सर्वोच्च स्वरूप है और यह "जनता की, जनता के लिए और जनता के द्वारा सरकार है।"

पूजीवाद के प्रारम्भकाल में पूजीवादी राज्य मे वास्तव मे कुछ प्रगतिशील विशेषताए थी। उसने पूजीवादी उत्पादन सम्बंधों को, जो सामन्ती सम्बंधो से अधिक उन्नत थे, लागू तथा विकसित करने में मदद दी। पर पूजीवादी राज्य सबके लिए जनतंत्र कभी नही बना, उस समय भी नही जबकि वह चरम शिखर पर था। वह केवल कुछ लोगो के लिए—पूजीपतियो के लिए—ही जनतत्र रहा। लेनिन ने बताया था कि पूजीवादी समाज का जनतत्र नगण्य अल्पसंख्यको का, अमीरों का जनतंत्र है।

पूजीवादी राज्य, उसका चाहे जो भी रूप हो, पूजीपतियो की तानाशाही होता है। वह मजदूर वर्ग और सभी मेहनतकशों को दबा कर रखने का यंत्र होता है। वह अपने वर्ग-शत्रुओं के विरुद्ध विभिन्न रूपो एव अंशों मे सदैव जोर-जबर्दस्ती का इस्तेमाल करता है। साम्राज्यवाद के आगमन के साथ पूजीवादी राज्य सीधे-सीधे प्रतिक्रियावाद का पथ अपना लेता है और पूजीवाद के आर्थिक आधार के, जो बहुत पहले ही ऐतिहासिक प्रगति के मार्ग का रोडा बन चुका है, रक्षक की शर्मनाक भूमिका अदा करता है।

साम्राज्यवाद हर क्षेत्र मे प्रतिक्रियावाद का प्रतिरूप है। सर्वोपरि और सर्वप्रथम वह राज्यीय नीति के क्षेत्र में प्रतिक्रियावाद का प्रतिरूप है। लेनिन ने लिखा है: "विदेश नीति और गृह नीति दोनों ही मे साम्राज्यवाद जनतंत्र की अवहेलना करने की चेष्टा करता है, प्रतिक्रियावाद की ओर प्रवृत्त होता है। इस अर्थ में साम्राज्यवाद निर्विवाद रूप से सामान्य जनतंत्र का, हर तरह के जनवाद का 'निषेध' है।"[1]

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत राज्य इजारेदार पूजीवाद का प्रचार हो जाता है। वह इजारेशाहियों की शक्ति और राज्य की शक्ति को एक यंत्र में संयुक्त करता है जिससे कि इजारेशाहियां दोनों हाथों दौलत बटोर सकें, सर्वहारा आन्दोलन तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को कुचला जा सके, पूजीवादी व्यवस्था

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड २३, पृष्ठ ४३।

को बचाया जा सके और आक्रामक युद्ध छेड़े जा सकें। राज्य उच्चतम इजारेशाहों की प्रबन्धकर्ता समिति बन जाता है। इन इजारेशाहों के हितार्थ राज्य पूंजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया में निरन्तर हस्तक्षेप करता है, तरह-तरह के नियमनकारी पग उठाता है और अर्थतंत्र की कुछ शाखाओं को अपने हाथ में ले लेता है जिससे कि इजारेशाहियों को अधिक से अधिक मुनाफा प्राप्त हो सके।

आजादी और जनतंत्र का चाहे जितना गीत गाया जाये, पूंजीवादी संविधानों या पूंजीवाद की सभ्यता प्रसारक भूमिका की चाहे जितनी बातें की जायें, पर समकालीन पूंजीवादी राज्यों की गृह और विदेश नीतियों का प्रतिक्रियावादी स्वरूप छिपाये नहीं छिप सकता। अनेक साम्राज्यवादी राज्यों के संविधानों में नागरिकों के भांति-भांति के स्वातंत्र्यों एवं अधिकारों की घोषणा करने वाली धाराओं की कमी नहीं है। उनमें बालिग मताधिकार, मुक्त निर्वाचन, बोलने और अखबारों के स्वातंत्र्य आदि के उल्लेख हैं। पर वास्तव में ये स्वातंत्र्य अक्सर नागरिकों के अत्यधिक बहुमत के लिए, मेहनतकश जनता के लिए कागजी घोषणाओं से अधिक नहीं हैं। इनका पूरा-पूरा उपभोग तो केवल पूंजीपति करते हैं जो आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व के सभी साधनों को अपने हाथ में रखे हुए हैं।

अनेक पूंजीवादी देशों ने अपने संविधानों में सार्वत्रिक, प्रत्यक्ष और समान मताधिकार की घोषणा कर रखी है। पर यह अधिकार प्रायः केवल रस्मी चीज होती है। अनेक शर्तें रख कर और पाबन्दियां लगा कर जनता की एक काफी बड़ी संख्या मतदान से वंचित रखी जाती है। चुनाव खुद भी इस तरह होते हैं कि उनका सच्चे जनवाद से कोई मेल नहीं बैठता है। पार्लियामेंट में बहुमत प्राप्त करने के लिए पूंजीपति हर तरह के हथकंडों और जालसाजियों का इस्तेमाल करते हैं। तरह-तरह से दबाव डालने, घूस देने और ब्लैकमेल करने से लेकर डराने-धमकाने और आतंक स्थापित करने तक के हथकंडों से काम लिया जाता है। पूंजीपति चुनाव-आन्दोलन के दौरान अखबार, रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य आम प्रचार के साधनों पर अपने नियंत्रण का पूरा इस्तेमाल अपनी पार्टियों और उम्मीदवारों को जनता के गले उतारने के लिए करते हैं। फलतः जो पार्लियामेंट चुनी जाती है, वह इजारेदारों के मन-मुताबिक होती है। उदाहरणार्थ, अमरीकी कांग्रेस के सभी सदस्य या तो पूंजीपति होते हैं या पूंजीपतियों के दलाल। इनमें एक भी मजदूर नहीं होता गोकि वोटरों में आधे मजदूर वर्ग के लोग हैं। अमरीकी कांग्रेस में औरतें भी केवल कुछ गिनी-चुनी हैं, यद्यपि निर्वाचकों की कुल संख्या में से आधी औरतें हैं। रस्मी तौर पर निर्वाचन का आधार समान प्रतिनिधित्व है, पर अमल में ऐसी चीज नहीं होती है।

"स्वतंत्र" पूंजीवादी जगत में बोलने की, अखबार की, अपने अन्तःकरण का अनुसरण करने की तथा अन्य आजादियों के सम्बंध में भी स्थिति कुछ भिन्न नहीं होती है।

पूंजीवाद की "आज़ाद" दुनिया में लाखों आदमी बेरोजगार हैं। पूंजीवादी शासन हर शख्स को काम का अधिकार प्रदान करने में असमर्थ है, आराम, छुट्टी और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार की तो बात ही क्या करनी।

पूंजीपति और उनके गुर्गे पूंजीवाद के स्वर्गोपम होने का भले ही ढिंढोरा पीटें, पर वास्तव में वह मुट्ठीभर शोषकों द्वारा लाखों-लाख जनता के उत्पीड़न की प्रणाली मात्र है। वह ऐसी व्यवस्था है जिसमें मेहनतकश जनता की गरीबी और आम बेरोजगारी का बोलबाला होता है। साम्राज्यवादी दुनिया में "आजादी" का अर्थ है मजदूर वर्ग और तमाम मेहनतकशों का शोषण करने की आजादी। शोषण की यह आजादी केवल अपने देश के अन्दर ही नहीं, वरन् इजारेशाहियों के बूटों तले पड़े अन्य देशों के अन्दर के लिए भी है।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत थैलीशाही का राज शासन के प्रतिगामी से प्रतिगामी तरीकों का अधिकाधिक इस्तेमाल करता है—नग्न आतंकवादी तानाशाही और फासिज्म तक का। जनता के रोष से बचने के अन्तिम साधन के रूप में वह फौज और पुलिस का अवलम्ब लेता है।

मानवजाति यूरोप में हिटलर और मुसोलिनी की फासिस्ट हुकूमतों की विभीषिका और फासिज्म द्वारा छेड़े गये द्वितीय विश्व युद्ध की भयानकता को नहीं भूली है। कुछ पूंजीवादी देशों में फासिज्म के खतरनाक आसार फिर प्रकट हुए हैं। आज के साम्राज्यवादी राज्य जिस गृह नीति का अनुसरण कर रहे हैं, उसकी अन्तर्वस्तु है: राज्य का सबसे बड़ी इजारेशाहियों के पूर्णतया अधीनस्थ होना, अर्थतंत्र का सैन्यीकरण, राज्य-मशीन का विस्तार, मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट आन्दोलन के खिलाफ निर्मम जेहाद, शान्ति-समर्थकों तथा अन्य प्रगतिशील सगठनों के सदस्यों का दमन, नस्ली भेदभाव और बचे-खुचे जनवादी अधिकारों का सफाया।

उदाहरणार्थ, पश्चिम जर्मनी ने प्रतिक्रियावाद का मार्ग अपना लिया है। यहां कम्युनिस्ट पार्टी गैर-कानूनी कर दी गयी है, जनवादी ताकतों का दमन किया जा रहा है और फासिस्ट एवं प्रतिशोधकामी संगठनों को प्रश्रय प्रदान किया जाता है। अनेक नामी नाजी नेता महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर आसीन हैं और जर्मन सेना के अधिकतर जनरल हिटलर के शासनकाल में जनरल रहे हैं।

वर्तमान साम्राज्यवादी राज्यों की विदेश नीति भी प्रतिक्रियावादी है। साम्राज्यवादी, जिनका सरगना अमरीकी इजारेशाहियां हैं, औपनिवेशिक जनगण की "आजादी" के हिमायती होने का दम भरते हैं, पर दरअसल वे

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के विरुद्ध निर्दयतापूर्ण अभियान चलाये हुए हैं और जनगण जिस उपनिवेशवाद से दिल से नफरत करते हैं, उसी उपनिवेशवाद को वे नये-नये रूपों में थोप रहे हैं। बाकायदा आजादी हासिल कर चुके देशों पर अपना शिकंजा जमाने के लिए साम्राज्यवादी उन्हें आक्रामक गुटों मे फसाते हैं, अल्पविकसित देशों को तथाकथित आर्थिक "सहायता" देने एव अन्य तरीको का इस्तेमाल करते हैं। वे प्रतिक्रियावादी हुकूमतो का (उदाहरणार्थ, ताईवान में च्यांग काई-शेक की हुकूमत का) समर्थन करते हैं, शस्त्रीकरण की होड चलाते हैं, नये युद्ध की तैयारी करते हैं और सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो के चारो ओर फौजी अड्डो का घेरा खडा करते हैं।

जैसा कि उनके लिए स्वाभाविक है, साम्राज्यवादी अपनी प्रतिक्रियावादी गृह और वैदेशिक नीतियो को चलाने के लिए सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशों से पैदा होने वाले "कम्युनिस्ट खतरे" के विरुद्ध सघर्ष का स्वाग रचते हैं, यद्यपि वास्तविकता यह है कि सोवियत सघ या अन्य समाजवादी राज्य किसी के लिए खतरा पैदा नही करते। दूसरों के लिए खतरनाक बनना तो दूर रहा, समाजवादी व्यवस्था के देश, जिनका अगुआ सोवियत सघ है, शान्ति और पूजीवादी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सहजीवन के सबसे दृढ समर्थक हैं।

हर पूजीवादी राज्य शोषको का अस्त्र है, फिर भी मजदूर वर्ग के लिए यह चीज महत्व रखती है कि पूजीवादी राज्य क्या शक्ल अख्तियार करता है। पूजीवादी जनतत्र का स्वरूप सकुचित है, पर खुली तानाशाही की अपेक्षा वह मजदूर वर्ग को पूजीपतियो के विरुद्ध तथा समाजवाद के लिए सफलतापूर्वक सघर्ष चलाने को अधिक अनुकूल अवस्थाए प्रदान करता है। इसीलिए पूजीवादी देशो का मजदूर वर्ग सभी प्रगतिशील शक्तियो का अगुआ बनता है और जनतान्त्रिक स्वातत्र्यों एव जनता के अधिकारों पर प्रतिक्रियावादियो के प्रहारों का डटकर मुकाबला करता है।

३. सर्वहारा अधिनायकत्व

कम्युनिस्ट समाज पूजीवाद से सीधे सीधे और एकबारगी प्रगट नही होता। पूजीवाद और समाजवाद—यह कम्युनिज्म की निचली मजिल है—के बीच "एक की दूसरे मे क्रातिकारी परिणति का अन्तर्काल आता है। इस अन्तर्काल के अनुरूप ही राजनीतिक सन्तरण का एक अन्तर्काल आता है जिसमें राज्य के लिए सर्वहारा के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व होने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नही रहता।"[१]

---

१. मार्क्स-एगेल्स, संकलित रचनाएं, खड २, १९५८, पृष्ठ ३२-३३।

सर्वहारा अधिनायकत्व गुणात्मक रूप से बिलकुल नये प्रकार का राज्य है

सर्वहारा-अधिनायकत्व सफल सामाजिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप तथा पूंजीवादी राज्ययंत्र के चकनाचूर हो जाने पर प्रगट होता है। यह गुणात्मक रूप से नये प्रकार का राज्य है और अपने वर्ग-चरित्र, राज्य-सगठन के रूपों तथा उस भूमिका के, जो उसे अदा करनी है, लिहाज से यह पहले के राज्यों से सर्वथा भिन्न है। राज्य की पहले की सभी किस्में शोषक वर्गों के हाथ का हथियार थी और उनका इस्तेमाल मेहनतकश जनता को अधीनस्थ बनाये रखने के लिए किया जाता था। उनका उद्देश्य शोषण प्रणाली को मजबूत करना और उत्पीडकों तथा उत्पीडितों में समाज के विभाजन को निरन्तर कायम रखना था। पर सर्वहारा अधिनायकत्व मजदूर वर्ग का शासन है जो सभी मेहनतकशों के साथ मिलकर पूंजीवाद को समाप्त करता है और एक नये समाज का निर्माण करता है, ऐसे समाज का जिसमे वैरी वर्गों और शोषण का अस्तित्व नहीं रहता।

"यदि हम लैटिन के वैज्ञानिक, ऐतिहासिक-दार्शनिक शब्द 'डिक्टेटरशिप आफ दी प्रोलेतारियत, (सर्वहारा अधिनायकत्व—अ.) का सरल भाषा मे अनुवाद करें, तो उसका सीधा-सादा अर्थ यह होता है :

"एक निश्चित वर्ग यानी शहरी मजदूर तथा सामान्य रूपेण कारखानों में काम करने वाले औद्योगिक मजदूर ही पूंजी का तख्ता उलटने के संघर्ष में, तख्ता उलटने की इस प्रक्रिया मे, विजय को कायम रखने तथा मजबूत बनाने में, नयी समाजवादी व्यवस्था का सृजन करने के काम मे, वर्गों के पूर्ण उन्मूलन के पूरे संघर्ष मे, मेहनतकश और शोषित जन-समुदाय का नेतृत्व कर सकते हैं।"[1]

सर्वहारा अधिनायकत्व मार्क्सवाद का सारतत्व है। अधिनायकत्व द्वारा ही—अर्थात सर्वहारा की अखण्ड शक्ति द्वारा ही—सर्वहारा पूंजीवाद का खात्मा तथा समाजवाद का निर्माण कर सकता है। स्वभावतया, सर्वहारा अधिनायकत्व का प्रश्न सुधारवाद और संशोधनवाद के विरुद्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धान्तिक संघर्ष की सदा धुरी रहा और अब भी है। लेनिन ने सर्वहारा अधिनायकत्व को मार्क्सवाद की सच्ची समझदारी और मान्यता को परखने की कसौटी कहा था। उन्होंने बताया था कि मार्क्सवादी होने के लिए वर्गों के संघर्ष को स्वीकार करना ही काफी नहीं है। वर्ग संघर्ष की मान्यता का सर्वहारा अधिनायकत्व की मान्यता तक यदि आप विस्तार करते है, तभी आप मार्क्सवादी हो सकते हैं।

लेनिन ने द्वितीय इन्टरनेशनल के सुधारवादी नेताओं और संशोधनवादियों के खिलाफ, जो सर्वहारा अधिनायकत्व की आवश्यकता को अस्वीकार करते थे,

---

१. लेनिन, संकलित रचनाएं, भाग ३, पृष्ठ २४७।

निर्मम संघर्ष किया। उन्होंने बारम्बार यह सिद्ध किया कि सर्वहारा अधिनायकत्व ही समाजवाद का निर्माण करने का एकमात्र साधन है। और इतिहास ने उनकी पूरी तौर से ताईद की है। सर्वहारा अधिनायकत्व की बदौलत ही समाजवाद को सोवियत संघ में पूर्ण विजय प्राप्त हुई और अन्य देश समाजवाद के रास्ते पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो रहे हैं।

सर्वहारा अधिनायकत्व के मुख्य पहलू

जैसा कि हम पिछले परिच्छेद में देख चुके हैं, सन्तरण काल में वर्ग संघर्ष समाप्त नहीं हो जाता, और किन्हीं-किन्हीं क्षणों में बहुत तीव्र हो जाता है। पूंजीपति किसी भी देश में राजनीतिक सत्ता से वंचित होने पर अपनी हार को तथा अपनी प्रभुता एवं विशेषाधिकारों की हानि को चुपके से कबूल नहीं कर लेते। अतः वे विजयी सर्वहारा का बड़ी कट्टरता से विरोध करते हैं।

इस प्रतिरोध को दबाने और वर्ग लड़ाइयों में पूंजीपतियों को परास्त करने के लिए सर्वहारा अधिनायकत्व आवश्यक है। लेनिन ने कहा था कि "सर्वहारा अधिनायकत्व नये वर्ग द्वारा अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रु, पूंजीपतियों, के विरुद्ध जिनका सत्ताहरण के बाद प्रतिरोध दस गुना बढ़ जाता है, कठोरतम और अत्यधिक निर्ममतापूर्ण संघर्ष है।"[1]...

यह सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला पहलू है, जोर-जबर्दस्ती का पहलू।

किन्तु पूंजीपतियों का दमन सर्वहारा वर्ग का अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। उसका मुख्य लक्ष्य है समाजवाद का निर्माण करना, नये समाजवादी अर्थतंत्र का सृजन करना। यह काम अत्यधिक कठिन इसलिए हो जाता है कि समाजवादी क्रान्ति ऐसे समय आरम्भ होती है जिस समय कि कोई समाजवादी आर्थिक रूप तैयार नहीं हुए रहते। यह काम सर्वहारा अधिनायकत्व का, सर्वहारा के राज्य का होता है कि समाज का आर्थिक जीवन संगठित करे, पूंजीवाद से श्रेष्ठ एक नये प्रकार का अर्थतंत्र—समाजवाद का अर्थतंत्र—निर्मित करे। लेनिन ने बताया है: "सर्वहारा अधिनायकत्व शोषकों के विरुद्ध बल प्रयोग मात्र नहीं है। वह मुख्यतया बल प्रयोग भी नहीं है। सर्वहारा श्रम के सामाजिक संगठन को पूंजीवाद के मुकाबले एक उच्चतर किस्म का इसलिए निर्मित एवं सृजन करता है। यही अन्तर्वस्तु है। यह कम्युनिज्म की अनिवार्यतया होने वाली पूर्ण विजय की गारंटी और उसकी शक्ति का स्रोत है।"[2]

यह सर्वहारा अधिनायकत्व का दूसरा पहलू है, रचनात्मक पहलू।

सर्वहारा अकेले ही नहीं, समाजवादी व्यवस्था का निर्माण नहीं करता, वह गैर-सर्वहारा मेहनतकशों के, मुख्यतया किसानों के घनिष्ट सहयोग से यह

1. लेनिन, संकलित रचनाएं, खंड ३, पृष्ठ ३७७।
2. उपर्युक्त, पृष्ठ २४९।

काम करता है। पूंजीपतियों के साथ संघर्ष के समय और समाजवादी निर्माण के दौरान मजदूर वर्ग जनता को नये सिरे से शिक्षित करता है। यह बहुत ही कठिन कार्य है। पूंजीपतियों के खिलाफ खुले संघर्ष की अपेक्षा यह कहीं ज्यादा दुष्कर काम है। सामूहिक कृषि के फायदों के बारे में किसानों को समझा लेने के लिए देर तक तथा बड़ी मेहनत और लगन के साथ शिक्षा-कार्य करने की जरूरत है। यह सर्वहारा राज्य के प्रमुखतम कामों में है। लेनिन ने लिखा था, "सर्वहारा वर्ग किसानों तथा निम्न-पूंजीवादी समूहों का सामान्यतया नेतृत्व कर सके, इसके लिए दरकार है: सर्वहारा अधिनायकत्व, एक वर्ग का राज, उसके संगठन और अनुशासन की शक्ति, पूंजीवाद की तमाम सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक उपलब्धियों पर आधारित उसकी केन्द्रीयकृत शक्ति, हर मेहनतकश की मनोवृत्ति के साथ उसकी सर्वहारा सजातीयता, देहातों अथवा छोटे उद्योगों के बिखरे हुए, कम विकसित मेहनतकशों के बीच जो राजनीति में कम दृढ़ होते हैं, उसकी प्रतिष्ठा।"[1]

यह सर्वहारा अधिनायकत्व का तीसरा पहलू है, शैक्षणिक पहलू।

इस चीज पर जोर देना जरूरी है कि सर्वहारा अधिनायकत्व के सभी रूप पहलू आंगिक रूप से परस्पर जुड़े हुए हैं। वे एक सम्पूर्ण वस्तु के अंग हैं। लेकिन सर्वहारा अधिनायकत्व का मुख्य पहलू नये समाज का निर्माण कार्य तथा लाखों छोटे मालिकों—किसानों—को समाजवाद के सक्रिय निर्माताओं के रूप में पुनः शिक्षित करना है। साथ ही हमें सर्वहारा अधिनायकत्व के जोर जबर्दस्ती वाले पहलू का महत्व घटाकर नहीं आंकना चाहिए। इस पहलू के महत्व को घटाकर आंकने, अत्यधिक कोमल-हृदय बन जाने तथा पूंजीपतियों को छूटें देने के परिणामस्वरूप सर्वहारा को कई बार अपनी गर्दनें कटानी पड़ी हैं। १८७१ में पैरिस कम्यून और १९१८ से १९१९ में हुई जर्मनी, हंगरी और फिनलैण्ड की क्रांतियां रक्त के सागर में डुबो दी गयीं। हंगेरियाई मजदूर वर्ग के हजारों सपूत अक्तूबर १९५६ में प्रतिक्रांतिवादियों के हाथों मारे गये। इस सबसे स्पष्ट है कि मेहनतकशों के लिए समाजवाद की प्राप्ति का सर्वहारा अधिनायकत्व से गुजरे बिना और कोई मार्ग नहीं है।

सर्वहारा अधिनायकत्व जनतंत्र का सर्वोच्च रूप है

पूंजीवादी सिद्धान्तकार और उनके सुधारवादी पिछलग्गू "सार्विक जनतंत्र", "सबके लिए जनतंत्र" आदि का खूब ढिंढोरा पीटते हैं जो उनके कथनानुसार पूंजीवादी जगत में विद्यमान है। सर्वहारा अधिनायकत्व के मुकाबले में, जिसे वे तानाशाही का समानार्थक समझते हैं, वे "शुद्ध" पूंजीवादी जनतंत्र को पेश करते हैं।

[1] लेनिन, संकलित रचनाएं खंड ३, पृ २११-१२।

वास्तव में बात ठीक इसकी उल्टी है। जैसा कि हम देख चुके हैं, पूंजीवादी जनतंत्र, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं, थैलीशाहों की सर्वशक्तिमानता और मेहनतकशों की अधिकारहीनता को छिपाने की एक धोखे की टट्टी मात्र है। पूंजीवादी जनतंत्र का उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था को बरकरार रखना है। वह मुट्ठी भर अमीरों द्वारा करोड़ो-करोड़ मेहनतकशों का शोषण सदा-सर्वदा के लिए कायम रखने का साधन है।

सर्वहारा राज्य ही वास्तव मे जनतांत्रिक है। सर्वहारा अधिनायकत्व गुणात्मक रूप से नवीन, उच्चतम प्रकार का जनतंत्र है। जैसा कि लेनिन ने बताया था, यह जनता के अत्यधिक बहुमत का जनतंत्र है जिसमे से शोषक और उत्पीड़क बाहर रखे गये हैं। अपने विकास के दौरान वह दिनोदिन पूरी जनता का समाजवादी जनतंत्र बनता जाता है।

सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत स्थित गुणात्मक रूप से नये प्रकार का जनतंत्र उसके अपने स्वरूप से ही, उसके लक्ष्यो और उद्देश्यो से ही उद्भुत होता है। सर्वहारा सभी मेहनतकशो और जनतांत्रिक ताकतो के दृढ सहयोग से ही, सर्वसाधारण के समर्थन से ही, शोषक वर्गों के प्रतिरोध का दमन कर सकता है, सत्ता अपने हाथ में बनाये रख सकता है, समाजवाद का निर्माण कर सकता है और इस प्रकार जनता के लिए सुखमय जीवन उपलब्ध कर सकता है। इसीलिए मजदूर वर्ग और शहरी एव देहाती गैर-सर्वहारा समुदायों का—सर्वोपरि किसानों का सहयोग सर्वहारा अधिनायकत्व का आधार है, उसका सर्वोच्च सिद्धान्त है। वह सर्वहारा राज्य के सच्चे जनतंत्र की पूर्णतम एव सर्वतोमुखी अभिव्यक्ति है।

अन्य शहरी और देहाती मेहनतकशो के साथ मजदूर वर्ग के सहयोग की बुनियाद है: उनके बुनियादी राजनीतिक और आर्थिक हितो का साम्य, शोषण मिटाने और समाजवाद कायम करने की उनकी समान आकांक्षा। केवल समाजवाद में ही मजदूरो को पूंजीवादी मजूरी की गुलामी से और अन्य गैर-सर्वहारा मेहनतकशो को तबाही और दरिद्रता से मुक्ति दिलाने की सामर्थ्य है। शोषण के विरुद्ध तथा नयी, समाजवादी व्यवस्था के लिए संयुक्त संघर्ष के दौरान ही सभी मेहनतकशो और जनतांत्रिक ताकतो के साथ मजदूर वर्ग का सहयोग कायम हुआ तथा विकसित हो रहा है। वह सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए अक्षय शक्ति का स्रोत है।

पर मजदूर वर्ग को निम्न-पूंजीवादी समुदायो के साथ केवल इस प्रकार के सहयोग की आवश्यकता होती है जिसमे वह नेतृत्व की भूमिका अदा कर सके। किसान और शहरी निम्न-पूंजीवादी ढुलमुल रहते हैं। वे मेहनतकश होने के साथ ही साथ छोटे मालिक भी होते हैं और सर्वहारा तथा

पूंजीपतियों के बीच कभी इधर और कभी उधर करते रहते हैं। सबसे उन्नत, सुदृढ़ क्रांतिकारी और संगठित वर्ग ही, सर्वहारा वर्ग ही, जिसका नेतृत्व मार्क्सवादी पार्टी करती हो, उनके ढुलमुलपन पर काबू पाने, पूंजीपतियों से उन्हें विलगाने और समाजवादी मार्ग पर आगे बढ़ाने की क्षमता रखता है।

सर्वहारा जनवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह न केवल मेहनतकश जनता के अधिकारों की घोषणा करता है, बल्कि वे अवस्थाएं भी उन्हें प्रदान करता है जिनमे वे इन अधिकारों का उपयोग कर सकें। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत मेहनतकशों को केवल रस्मी अधिकार नहीं प्राप्त होते, जैसा कि पूंजीवादी राज्य में होता है, बल्कि वे वास्तव में देश का शासन करते है और सीधे-सीधे अथवा अपने प्रतिनिधियों के जरिए उसके पूरे आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन की व्यवस्था करते हैं।

सर्वहारा राज्य तदनुकूल भौतिक सुविधाएं जुटा कर जनवादिक अधिकारों का उपयोग किये जाने को सुनिश्चित करता है। मेहनतकश जनता सभी उत्पादन साधनों की मालिक है, इसी से वह देश के अर्थतंत्र का प्रबन्ध करने और काम के अपने अधिकार का उपयोग करने में समर्थ होती है। स्कूल विश्वविद्यालय, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संस्थान, स्वास्थ्य गृह और विश्राम गृह उन्हे शिक्षा तथा छुट्टी एवं विश्राम के अपने अधिकारों का उपयोग करने का अवसर प्रदान करते हैं। मेहनतकशों को छापाखाने, कागज के स्टाक, रेडियो स्टेशन, अच्छी से अच्छी इमारतें आदि उपलब्ध है जिसकी बदौलत वे लेखन-प्रकाशन स्वातंत्र्य, भाषण स्वातंत्र्य, सभा-समिति गठित करने के स्वातंत्र्य, संगठन बनाने के स्वातंत्र्य आदि का उपभोग कर सकते हैं।

मेहनतकश जनता देश के राजनीतिक जीवन और राज्य-प्रशासन में सक्रिय भाग लेती है। यह वह सोवियतों अथवा अन्य राज्यीय संस्थाओं में, सोवियतों द्वारा गठित विभिन्न कमिटियों और कमीशनों में, और साथ ही पूरे अपने जन-संगठनों में व्यापक रूप से शिरकत करके करती है। सारांश यह कि सर्वहारा जनवाद, जैसा कि लेनिन ने बताया था, पूंजीवादी जनतंत्र के मुकाबले लाख गुना अधिक जनतांत्रिक होता है।

सर्वहारा अधिनायकत्व के विभिन्न रूप

पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण सर्वहारा अधिनायकत्व से गुजर कर ही हो सकता है। किन्तु संक्रमण काल की अनिवार्य अन्तर्वस्तु होने के नाते सर्वहारा अधिनायकत्व भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर सकता है। लेनिन ने कहा था: "सभी राष्ट्र समाजवाद को प्राप्त करेंगे—यह तो अनिवार्य है। पर सभी एक ही ढंग से इसे प्राप्त नहीं करेंगे। हर राष्ट्र जनवाद के किसी न किसी रूप में, सर्वहारा-अधिनायकत्व के किसी न किसी प्रकार में, सामाजिक जीवन के

विभिन्न पहलुओं में होनेवाले समाजवादी कायापलट की भिन्न-भिन्न गतियों में अपनी ओर से कुछ न कुछ जरूर जोड़ेगा।"[1]

सर्वहारा अधिनायकत्व का रूप सर्वोपरि देश-विशेष की विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्थाओं पर—अर्थात आर्थिक विकास के स्तर, वर्ग-शक्तियों के सन्तुलन और वर्ग संघर्ष की तीव्रता पर, वहां की जनता की राष्ट्रीय और ऐतिहासिक परम्पराओं पर तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर—निर्भर करता है।

१९१७ में रूसी मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी लड़ाई ने मजदूरों, किसानों और सैनिकों के प्रतिनिधियों की सोवियतों जैसे सर्वहारा अधिनायकत्व के रूप को जन्म दिया। अनेक यूरोपीय और एशियाई देशों में सर्वहारा अधिनायकत्व का एक और रूप—लोक जनतंत्र—प्रकट हुआ।

लोक जनतंत्र और सोवियतों में क्या अन्तर है?

पहली चीज यह कि लोक जनतंत्र में समाजवादी निर्माण की हिमायती एवं कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को स्वीकार करने वाली अनेक पार्टियों को रहने दिया जाता है। चीन, बल्गेरिया, जर्मन जनवादी जनतंत्र, पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया में बहुपार्टी व्यवस्था है। पर सोवियत संघ में एक पार्टी व्यवस्था है, क्योंकि अक्तूबर क्रान्ति के बाद रूस की निम्न-पूंजीवादी पार्टियों ने कम्युनिस्टों के साथ सहयोग करने से इनकार कर दिया और क्रान्ति-विरोधियों का साथ दिया।

दूसरे, लोक जनतंत्रों में एक लोक (राष्ट्रीय) मोर्चा होता है। यह एक जन-संगठन है जो समाजवाद के निर्माण के लिए जनता के नाना अंगों को एकत्र करता है। लोक-मोर्चा मजदूर वर्ग, किसानों, बुद्धिजीवियों और यहां तक कि निम्न-पूंजीवादियों तथा मध्यम पूंजीपतियों के एक हिस्से के सहयोग का एक विशिष्ट रूप है। पर मजदूर वर्ग एवं उसकी पार्टी उसमें अग्रणी भूमिका अदा करते हैं। *सोवियत संघ में ऐसा संगठन नहीं है और न पहले कभी रहा है।*

तीसरे, योरप के लोक जनतंत्रों में पूंजीवाद के विरुद्ध तथा समाजवाद के लिए लड़ाई में वर्तमान संसदीय रूपों और परम्पराओं का इस्तेमाल किया जाता है। एकतंत्री रूस में संसदीय व्यवस्था का व्यापक विकास नहीं हुआ था और संसदीय परम्पराएं नहीं बनी थीं।

सर्वहारा-अधिनायकत्व के विशिष्ट रूप की हैसियत से लोक जनतंत्र समाज-वादी क्रान्ति के विशिष्ट विकास को ऐसे काल में प्रतिबिम्बित करता है जब साम्राज्यवाद कमजोर पड़ गया होता है और शक्तियों का अन्तस्सम्बंध समाजवाद के पक्ष में बदल रहा होता है।

---

१ लेनिन, संगृहीत रचनाएं, खंड २३, पृष्ठ ७०।

इतिहास ने अभी तक सर्वहारा अधिनायकत्व के दो रूपों को जन्म दिया है—सोवियतें और लोक जनतंत्र। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्य रूप भी प्रकट हो सकते हैं। पर उनमें भी मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी की अग्रणी भूमिका परमावश्यक होती है। लेनिन ने बताया है: "पूंजीवाद से कम्युनिज्म में संक्रमण निश्चय ही राजनीतिक रूपों की भारी प्रचुरता एवं विविधता उत्पन्न करेगा, पर इन सभी रूपों की अन्तर्वस्तु अनिवार्यतः एक रहेगी—सर्वहारा अधिनायकत्व।"[1]

सर्वहारा अधिनायकत्व में मार्क्सवादी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका

मजदूर वर्ग के आगे बढ़े हुए, राजनीतिक रूप से चेतनायुक्त और संगठित दस्ते के रूप में मार्क्सवादी पार्टी वह नेतृत्वकारी शक्ति है जो पूंजीपतियों के राजनीतिक शासन का सफाया तथा सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करवाती है। सत्ता दखल करना कठिनाई का काम है, लेकिन उससे भी अधिक कठिनाई का काम है सत्ता को बरकरार रखना और पूंजीपतियों को, जिनका तख्त उल्टा जा चुका है, अंतिम रूप से परास्त करना करोड़ों-करोड़ किसानों एवं अन्य छोटे मालिकों की निजी सम्पत्ति-भावना को मिटाना, पूंजीपतियों से उन्हें विमुख करना और उन्हें राजनीतिक चेतना से युक्त तथा समाजवाद का निर्माता बनाना तो इतना कठिन काम है कि इसकी कठिनाई की कल्पना भी नहीं की जा सकती (जैसा कि लेनिन ने कहा था, यह हजार गुना अधिक कठिन काम है)। मजदूर वर्ग इन अत्यधिक कठिन कामों को पूरा करने और पहले समाजवाद तथा फिर कम्युनिज्म का निर्माण करने में तभी समर्थ होता है जब कि वह सख्ती से अपना संगठन और अनुशासन कायम रखता है और उसमें यह दृढ़ विश्वास होता है कि हमने सही रास्ता चुना है। केवल मार्क्सवादी पार्टी ही सर्वहारा को संगठित कर सकती है, उसकी पांतों में लौह अनुशासन कायम कर सकती है, मजदूर वर्ग को शिक्षित कर सकती है, निम्न-पूंजीवादी असर से उसे बचा सकती है, उसकी राजनीतिक सरगर्मियों का निर्देशन कर सकती है और ऐसा करके पूरी मेहनतकश जनता को प्रभावित कर सकती है। यही कारण है कि "संघर्ष में तपी हुई एक फौलादी पार्टी के बिना, अपने वर्ग के ईमानदार सभी तत्वों का विश्वास प्राप्त की हुई पार्टी के बिना, सर्वसाधारण के मनोभाव पर नजर रखने एवं उसे प्रभावित करने की क्षमता रखने वाली पार्टी के बिना, समाजवाद के निर्माण में कामयाबी हासिल करने की बात भी नहीं सोची जा सकती।"[2]

---

१. लेनिन, संग्रहीत रचनाएं, खंड २५, पृष्ठ ४१३।
२. लेनिन, संकलित रचनाएं, खंड ३, पृष्ठ ३९५।

समाजवादी क्रांति की विजय मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी शासक वर्ग की पार्टी बन जाती है। इससे उसके कंधों पर खास जिम्मेदारी का भार आ पड़ता है और मजदूर वर्ग के नेता की हैसियत से उसकी भूमिका बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों के अपने ज्ञान का उपयोग करते हुए, जनता के क्रांतिकारी अनुभव का निचोड़ निकालने तथा उसका उपयोग करते हुए, पार्टी सर्वहारा राज्य की तमाम आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सरगर्मियों का निर्देशन करती है। देश के जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए वह एक ऐक्यबद्ध राजनीतिक नीति निरूपित करती है और इस नीति का लागू किया जाना सुनिश्चित करती है।

सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत मार्क्सवादी पार्टी की एकता पहले से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। पार्टी के सभी सदस्यों मे संकल्प और कार्य की एकता होने से ही पार्टी समाज को नेतृत्व प्रदान कर सकती है। तभी वह मजदूर वर्ग की दुश्मन को कायम रख सकती है और उसे मजबूत बना सकती है। तभी ऐसी पार्टी समाजवाद एवं कम्युनिज्म के निर्माण का आयोजन कर सकती है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और सभी अन्य समाजवादी देशों की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियां ऐसे सभी गुटबाजों और विक्षुब्धों का, जो पार्टी की एकता को कमजोर करने की कोशिश करते हैं, निर्मम होकर विरोध करती हैं।

सर्वहारा अधिनायकत्व प्रणाली मे पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को संशोधनवादी अस्वीकार करते है। वे कहते हैं कि पार्टी के नेतृत्व पद पर आसीन होने से राज्य और पार्टी यंत्र एकाकार हो जाते है और इससे समाजवादी जनतंत्र के सिद्धान्तों का हनन होता है। उनके मतानुसार, समाज के आर्थिक और राजनीतिक जीवन के नेतृत्व का कार्य ट्रेड यूनियनों एवं अन्य जन-संगठनों को करना चाहिए, पार्टी को नहीं।

इतिहास से यह प्रमाणित होता है कि सर्वहारा अधिनायकत्व प्रणाली में मार्क्सवादी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका कदापि जनतंत्र के सिद्धान्तों के विपरीत नहीं है, बल्कि उसके विकास और उन्नति मे योगदान करती है।

मार्क्सवादी पार्टी अपनी नेतृत्वकारी भूमिका का निर्वाह राजकीय संस्थाओं एवं अगणित जन-संगठनों (ट्रेड यूनियनों, सहकारिताओं, तरह-तरह के [illegible], खेल-कूद, कलाकार, लेखक एवं अन्य संगठनों) की एक व्यवस्था के जरिए अदा करती है। पार्टी इन संगठनों के कार्यकलाप को एक सूत्र मे पिरोती है और इन्हें एक लक्ष्य की ओर निर्देशित करती है। पार्टी राज्य एवं अन्य निकायों के काम खुद नहीं करने लगती, बल्कि उनकी पहल को बढ़ाती है। राज्य संस्थाओं और जन-संगठनों के आलजाल के जरिए पार्टी जनता के साथ सम्बद्ध है उसे [illegible]

डालने एवं अन्य तमाम मेहनतकशों के सहयोग से समाजवाद का निर्माण करने का काम उपस्थित था। समाजवादी राज्य के कार्य इसी के अनुसार निरूपित हुए।

शोषक वर्गों को कुचल डालना सन्तरण काल में देश के अन्दर सर्वहारा राज्य के सबसे जरूरी कार्यों में होता है। सर्वहारा राज्य चाहे जिस रूप में प्रगट हो, शोषकों को कुचल डालना उसके लिए लाजिमी है। लेकिन यह कार्य किस ढंग से किया जाये, यह विद्यमान अवस्थाओं पर निर्भर करता है। सोवियत संघ ने राजनीतिक तरीके (मताधिकार से वंचित करना) और आर्थिक तरीके (सम्पत्ति की जब्ती, उच्चतर टैक्स, आदि) तो अपनाये ही, साथ ही दमन के हथियारबंद तरीकों से भी काम लिया, क्योंकि शोषकों ने हथियार लेकर जनता की सरकार का मुकाबला किया था।

सांगठनिक-आर्थिक कार्य, अर्थात समाजवादी अर्थतंत्र का निर्माण करने एवं देश के *सम्पूर्ण आर्थिक जीवन का निर्देशन करने से सम्बन्धित राज्य के* कार्यकलाप—सन्तरण काल में सोवियत राज्य का अगला अति महत्वपूर्ण कार्य है। राज्य का लक्ष्य है पूंजीवाद पर समाजवाद की आर्थिक जीत को सुनिश्चित करना, श्रम का ऐसा सामाजिक संगठन हासिल करना जो पूंजीवाद के सामाजिक संगठन से श्रेष्ठ हो। उत्पादन के बुनियादी साधनों का राष्ट्रीकरण करके सर्वहारा राज्य ने अपने जीवन के प्रथम महीनों में ही अर्थतंत्र की बुनियादी स्थितियों को अपने हाथ में कर लिया और वैज्ञानिक आधार पर अर्थतंत्र के नियोजित प्रबन्ध का संगठन किया। कम्युनिस्ट पार्टी की रहनुमाई में राज्य ने देश का समाजवादी औद्योगीकरण एवं कृषि का समूहीकरण किया तथा जनता का जीवनमान ऊपर उठाया। समाजवाद के प्रगति करने के साथ अर्थतंत्र की सभी की सभी शाखाएं समाजवाद के सांगठनिक-आर्थिक कार्य के अधीनस्थ हो गयीं।

पर समाजवाद का निर्माण समाजवादी अर्थतंत्र के सृजन तक ही सीमित नहीं है। जनता की सामाजिक चेतना एवं संस्कृति को लगातार उन्नत किये बिना, जनता के मस्तिष्क से पूंजीवाद के अवशेषों को निकाले बिना, इस काम को पूरा करने की बात सोची भी नहीं जा सकती। स्वभावतया, मेहनतकश जनता की कम्युनिस्ट शिक्षा, उसकी आम शैक्षणिक, व्यावसायिक और सांस्कृतिक प्रगति समाजवादी राज्य का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है। यह इसलिए और भी अधिक जरूरी है क्योंकि शोषकों ने मेहनतकशों को शताब्दियों से अपना आत्मिक दास बना रखा है, उन्होंने संस्कृति और ज्ञान की मेहनतकशों की आकांक्षा का गला घोंट देने की पूरी कोशिश कर रखी है। समाजवादी राज्य सांस्कृतिक क्रांति सम्पन्न करता है, जो समाजवादी क्रांति का एक महत्वपूर्ण

अग है। मेहनतकश जनता की सांस्कृतिक उन्नति और शिक्षा को संगठित करने का राज्य का काम उसका सांस्कृतिक-शैक्षणिक कार्य है।

विदेश नीति के क्षेत्र में समाजवादी राज्य का कार्य राष्ट्रों के बीच शान्ति के लिए कार्य करना और बाहरी साम्राज्यवादी आक्रमण से देश की रक्षा करना है। शांति का फरमान सोवियत सरकार का पहला फरमान था। किन्तु सर्वहारा राज्य की शांति की हार्दिक अभिलाषा का उत्तर साम्राज्यवादी डाकुओं के गिरोहों द्वारा सशस्त्र हस्तक्षेप के रूप में मिला। वे शस्त्रबल से शोषकों की सत्ता पुनर्स्थापित करना चाहते थे। मेहनतकश जनता ने हथियार उठा लिये और प्रतिक्रांतिवादियों एवं हस्तक्षेपकारियों को परास्त किया। तभी शांतिपूर्ण समाजवादी निर्माण आरम्भ हुआ।

समाजवादी राज्य अथक रूप से शांति की हिमायत करता है, पर साथ ही साथ वह अपने देश की प्रतिरक्षा शक्ति को भी बढ़ाता और सैन्यबल को मजबूत करता है।

समाजवाद से कम्युनिज्म में सन्तरण के दौरान समाजवादी राज्य के कार्य

सोवियत राज्य के विकास का दूसरा काल है समाजवाद से कम्युनिज्म में क्रमिक सन्तरण का काल। समाजवाद के निर्माण ने देश के आर्थिक जीवन का कायापलट कर दिया। उत्पादन प्रणालियों की अनेकता समाप्त कर दी गयी और शोषक वर्ग मिटा दिय गये। सामाजिक स्वामित्व पर आधारित समाजवादी आधार अर्थतंत्र की सभी शाखाओं में दृढ़ता के साथ जम गया।

आर्थिक आधार के परिवर्तनों के फलस्वरूप समाजवादी ऊपरी ठाठ में भी परिवर्तन हुए—विशेषकर समाजवादी राज्य के आन्तरिक कार्यों में। वैरी वर्गों के दमन का कार्य अब नहीं रह गया, क्योंकि शोषक वर्गों के मिटा दिये जाने के बाद ऐसा कोई नहीं रहा जिसका दमन करने की जरूरत हो। राज्य जोर-जबर्दस्ती की कार्रवाइयों का इस्तेमाल अब केवल उन व्यक्तियों के खिलाफ करता है जो समाजवादी कानून तोड़ते हैं। साथ ही राज्य जनता के अधिकारों एवं स्वातंत्र्यों की रक्षा करता है और समाजवादी अमन-कानून कायम रखता है। समाजवाद के आर्थिक आधार की, समाजवादी सम्पत्ति की सुरक्षित रखना उसकी विशेष चिन्ता का विषय है, क्योंकि उसका पूर्ण विकास एवं सुदृढ़ीकरण कम्युनिज्म के निर्माण की अनिवार्य शर्त है। समाजवादी सम्पत्ति तथा नागरिकों के अधिकारों एवं स्वातंत्र्यों की रक्षा करना और समाजवादी अमन-कानून को कायम रखना समाजवादी राज्य के महत्वपूर्ण कार्यकलाप हैं। समाजवादी राज्य के जीवन की पहली मंजिल में इनका आविर्भाव हुआ था तथा समाजवाद का निर्माण होने के साथ इनका पूर्ण विकास हुआ।

सोवियत संघ में समाजवाद की विजय के फलस्वरूप समाजवादी राज्य की मुख्य क्रियाओं का—अर्थात सांगठनिक-आर्थिक और सांस्कृतिक-शैक्षणिक क्रियाओं का—पूर्णतम विकास हुआ है।

अर्थतंत्र के तेज विकास की वजह से सांगठनिक-आर्थिक क्रिया ज्यादा जटिल और विविध बन गयी है। पूंजीवाद से समाजवाद में संतरण के काल में राज्य की सांगठनिक आर्थिक सक्रियता को देश के अन्दर पूंजीवादी ताकतों पर समाजवादी ताकतों की विजय को सुनिश्चित बनाना था। अब जब कि समाजवाद निर्मित हो चुका है, उसका लक्ष्य है कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार तैयार करना तथा समाजवादी उत्पादन सम्बंधों को कम्युनिस्ट उत्पादन सम्बंधों में परिणत करना, जीवनमान की और भी उन्नति को सुनिश्चित करना। श्रम की मात्रा और उपभोग की मात्रा पर राज्य अधिक नियंत्रण रखने लगता है।

समाजवाद का निर्माण हो जाने से राज्य की सांस्कृतिक-शैक्षणिक क्रिया में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया है। जनता की सामाजिक चेतना एवं सांस्कृतिक स्तर जितने ही ऊंचे होंगे, कम्युनिज्म में संतरण उतनी ही तेजी से होगा। कम्युनिज्म के निर्माण के काल का एक प्रमुख कार्य है नये मानव को शिक्षित करना। नया मानव ऐसा व्यक्ति होता है जिसका सर्वतोमुखी विकास हुआ है, जो अतीत के अवशेषों से मुक्त और समाज का सचेतन सदस्य है, जिसके लिए समाज के हितार्थ काम करना कर्तव्य नहीं बल्कि प्राथमिक आवश्यकता है।

समाजवाद से कम्युनिज्म में संतरण के काल में विदेश नीति के क्षेत्र में भी सोवियत राज्य के क्रियाकलाप विकसित होते जा रहे हैं। इसका सम्बंध अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तनों से है। विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ और इस व्यवस्था के देशों के बीच बन्धुत्वपूर्ण सहायता एवं सहयोग के सम्बंध कायम हुए। अन्य समाजवादी देशों के साथ बन्धुत्वपूर्ण सहयोग का सुदृढ़ीकरण और विकास करना सोवियत राज्य का एक नया कार्य है जो विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है।

इस नये कार्य के साथ ही, विश्व शान्ति के लिए कार्यशील रहने तथा सभी देशों के साथ सामान्य सम्बंध कायम रखने का पुराना कार्य भी अपनी जगह पर कायम है और उसका विस्तार हुआ है। विश्व समाजवादी व्यवस्था के उदय और सुदृढ़ीकरण तथा सोवियत संघ की बढ़ती शक्ति से तीसरे विश्व युद्ध को रोकने की सम्भावना पैदा हो गयी है। इस सम्भावना को वास्तविकता में परिणत करने के लिए सोवियत राज्य अपनी पूरी शक्ति से सचेष्ट है। साथ ही वह हर सूरत में देश की प्रतिरक्षा-क्षमता को बढ़ा रहा है, क्योंकि जब तक

साम्राज्यवाद अपनी आक्रामक युद्ध नीति के साथ कायम है, सोवियत संघ अपने को हमले से सुरक्षित नहीं समझ सकता। समाजवादी देश की रक्षा, देश की प्रतिरक्षा एवं सुरक्षा की विश्वसनीय ढंग से गारंटी करना—यह समाजवादी देश का एक बड़ा कार्य है। साथ ही सोवियत संघ, अन्य समाजवादी देशों के साथ-साथ, इसे अपना अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य मानता है कि पूरी समाजवादी व्यवस्था की विश्वसनीय ढंग से प्रतिरक्षा और सुरक्षा का पक्का प्रबन्ध रखे।

समाजवादी राज्य के आन्तरिक और बाह्य कार्यकलाप के विकास के फलस्वरूप जनता की सक्रियता में और वृद्धि होती है, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों के प्रत्यक्ष प्रबन्ध में तथा शान्ति एवं राष्ट्रों की सुरक्षा के लिए सक्रिय संघर्ष में आम लोग लाखों की संख्या में शरीक होते हैं। समाजवादी जनवाद फलफूल रहा है। सर्वहारा अधिनायकत्व के राज्य का पूरी जनता के राज्य में परिवर्तित हो जाना इस चीज को सबसे अच्छी तरह अभिव्यक्त करता है।

सर्वहारा-अधिनायकत्व के राज्य से पूरी जनता के राज्य में

जैसा कि हम देख चुके हैं, सर्वहारा अधिनायकत्व का राज्य पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के काल में रहा करता है। मजदूर वर्ग को, किसानों एवं समाज के अन्य मेहनतकशों के साथ, शोषकों के प्रतिरोध को तोड़ने के लिए, मानव द्वारा मानव के उत्पीड़न का उन्मूलन करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

सोवियत संघ में मजदूर वर्ग ने इस युगान्तरकारी कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है और वहां समाजवाद की विजय हो चुकी है। इस विजय के साथ सर्वहारा अधिनायकत्व को आवश्यक बनानेवाली अवस्थाओं का लोप हो चुका है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम के शब्दों में: "इतिहास में मजदूर वर्ग ही एकमात्र वर्ग है जो अपनी सत्ता को बरकरार रखने का लक्ष्य अपने सामने नहीं रखता।

"समाजवाद—कम्युनिज्म के प्रथम चरण—की पूर्ण एवं अन्तिम विजय स्थापित करके तथा समाज को कम्युनिज्म के भरपूर निर्माण में सन्तरित कराके, सर्वहारा अधिनायकत्व अपना इतिहास प्रदत्त कार्य पूरा कर चुका है। वह आन्तरिक विकास के कार्यों के दृष्टि-बिन्दु से सोवियत संघ के लिए अब अनिवार्य आवश्यकता नहीं रह गया है। जो राज्य सर्वहारा अधिनायकत्व के राज्य के रूप में प्रगट हुआ था, वह नयी, वर्तमान मंजिल में, समस्त जनता का राज्य बन गया है। वह सम्पूर्ण जनता के हितों और इच्छा को अभिव्यक्त करने वाली संस्था बन गया है।"

सर्वहारा अधिनायकत्व पर आधारित राज्य इतिहास का एक अस्थायी व्यापार है। यह व्यापार तब प्रकट होता है, जब किसी देश की मेहनतकश

जनता के सामने समाजवाद के निर्माण का काम दरपेश होता है। जब समाजवाद की विजय हो जाती है, तो सर्वहारा अधिनायकत्व समाप्त हो जाता है। जब समाजवाद की विजय पक्की हो जाती है, तो मजदूर वर्ग स्वेच्छा से समाज पर अपनी हुकूमत को खत्म कर देता है और अपने अधिनायकत्व को समूची जनता के राज्य में परिणत कर देता है।

कठमुल्ले लोग सोवियत संघ में सर्वहारा अधिनायकत्व के राज्य के पूरी जनता के राज्य में परिणत किये जाने की सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना पर आक्षेप करते हैं। उनका कहना है कि इस किस्म के राज्य को कम्युनिज्म के उच्चतम चरण तक कायम रखना चाहिए, क्योंकि उसे उन समाज-विरोधी तत्वों का दमन करना है जो समाजवाद में भी बने रहते हैं। पर सोवियत संघ में समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण का अनुभव निश्चित रूप से यह सिद्ध करता है कि सर्वहारा अधिनायकत्व का राज्य अपनी जोर-जबर्दस्ती का उपयोग केवल पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के काल में करता है। इसके अलावा उसका यह कार्य उन शोषक वर्गों के विरुद्ध निर्देशित होता है जो नयी सामाजिक व्यवस्था को विजयी न होने देने के लिए पूरे जोर से सचेष्ट रहते हैं। समाजवादी समाज के मैत्रीपूर्ण वर्गों के बीच बचे खुचे समाज-विरोधी तत्वों के विरुद्ध संघर्ष वर्ग संघर्ष नहीं है, और इस संघर्ष को पूरी जनता का राज्य पूरी जनता के सक्रिय समर्थन से सफलतापूर्वक चला सकता है।

स्वभावतया इसका यह मतलब नहीं होता कि मजदूर वर्ग समाज में अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को खो देता है। सोवियत समाज की सबसे उन्नत और संगठित शक्ति होने के नाते वह भरपूर कम्युनिस्ट निर्माण के काल में भी सामाजिक जीवन का निर्देशन करता है। वर्गों के लुप्त हो जाने पर ही, अर्थात कम्युनिज्म का निर्माण हो चुकने पर ही, मजदूर वर्ग की समाज के नेता की भूमिका पूर्ण होगी।

सोवियत संघ का सर्वहारा अधिनायकत्व के राज्य से पूरी जनता के राज्य में परिणत होना इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। समाजवाद के प्रकट होने से पहले सब राज्य सदा ही एक वर्ग के अथवा दूसरे का अस्त्र रहे। पहले-पहल सोवियत संघ में एक ऐसा राज्य प्रकट हुआ है जो किसी एक वर्ग का अधिनायकत्व नहीं वरन कुल समाज का, पूरी जनता का अस्त्र है।

सोवियत संघ में समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण का अनुभव बतलाता है कि सर्वहारा [illegible] के राज्य के विलुप्त होने तक कायम रखने की [illegible]
[illegible] बहुत पहले ही विलुप्त हो जायेगा,
[illegible] को कम्युनिज्म की पूर्ण विजय

कम्युनिज्म के भरपूर निर्माण के काल में सोवियत जनता को एक अति व्यापक आर्थिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम पूरा करना होगा, जीवनमान को और उन्नत करना तथा नव-मानव को शिक्षित करना होगा। समाजवादी राज्य को और भी मजबूत तथा विकसित किये बिना यह काम पूरा नहीं हो सकता।

कम्युनिज्म की दिशा में हर नये पग के साथ देश का जीवन अधिक विविधतापूर्ण होता जाता है, विभिन्न क्षेत्रों में उसके आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध विस्तृत होते है और निर्माण का पैमाना बड़ी तेजी से बढ़ता है। इस सबसे सोवियत राज्य की सांगठनिक भूमिका बढ़ती है, उसके सांगठनिक-आर्थिक और सांस्कृतिक-शैक्षणिक कार्यकलाप में निरंतर सुधार और विस्तार करने का तकाजा होता है।

दूसरी ओर, कम्युनिस्ट निर्माण के व्यापक कार्यों की सफल पूर्ति की बात भी तब तक नहीं सोची जा सकती, जब तक कि जनवाद का और विकास न हो, सभी मेहनतकश कम्युनिज्म के निर्माण में सक्रिय रूप से सम्मिलित न कर लिये जायें।

"समाजवादी जनवाद का सर्वतोमुखी विस्तार करना और सर्वांगपूर्ण बनाया जाना, राज्य के प्रशासन में, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के प्रबन्ध में सभी नागरिकों का सक्रिय रूप से भाग लेना, सरकारी यंत्र का सुधार, और उसके कार्यकलाप पर जनता का अधिक नियंत्रण—यही वह प्रधान दिशा है जिस ओर समाजवादी राज्यत्व कम्युनिज्म के निर्माण के काल में आगे बढ़ता है।" (सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम।)

जनवादी केन्द्रीयता के लेनिनवादी सिद्धान्त को हर तरह से विकसित किया गया है। इससे केन्द्रीय नेतृत्व के साथ-साथ स्थानीय क्षेत्रों में जनता की पहल के लिए प्रोत्साहन का समुचित सुयोग सुनिश्चित हुआ है, संघ जनतंत्रों, स्थानीय शासन संस्थाओं और आर्थिक कार्यवाहकों के अधिकारों का विस्तृत होना सुनिश्चित बना है। अब अधिकतर प्रतिष्ठान जो पहले केन्द्रीय मंत्रालयों के अधीनस्थ थे, संघ जनतंत्रों के मातहत आ गये है। विधि-निर्माण, क्षेत्रीय शासन और अन्य अनेक महत्वपूर्ण आर्थिक, राज्यीय और सांस्कृतिक मामले संघ जनतंत्रों के हाथों में आ गये हैं। प्रतिष्ठानों के मैनेजरों को भौतिक और वित्तीय संसाधनों के उपयोग के मामले में "अधिक अधिकार" मिले हैं और मुख्य बात तो यह है कि उन्हे फैक्टरी अथवा कारखाने, राज्य या सामूहिक फार्म के कार्य का स्थानीय रूप से नियोजन करने का अधिकार प्राप्त हुआ है।

कम्युनिस्ट पार्टी ने राज्य-यंत्र को सुधारने, उसे सरल बनाने, उसके रख-रखाव का खर्च घटाने, लाल फीताशाही दूर करने और राज्य प्रशासन में जनता को शरीक करने के सम्बंध में भी कई महत्वपूर्ण पग स्वीकृत किये हैं।

उद्योग और निर्माण के प्रबन्ध का १९५७ मे जो पुनर्गठन किया गया था, उसमे सरकारी नेतृत्व सीधे स्थानीय क्षेत्रों तक पहुच गया। इससे आर्थिक समस्याओ को हल करने मे मेहनतकश जनता के खुद के व्यावहारिक अनुभव का और अधिक उपयोग करना तथा आर्थिक विकास मे जनता की भूमिका को बढाना सभव हो गया है।

पार्टी ने खेती के प्रबन्ध को बेहतर बनाने के लिए जो पग उठाये, उनस उत्पादन का विस्तार सुनिश्चित हो गया और सामूहिक कृषको की पहल को बढ़ावा मिला।

समाजवादी समाज मे जनवाद का विकास मेहनतकश जनता के संगठनो की बढ़ती हुई भूमिका मे भी अभिव्यक्त होता है—जैसे ट्रेड यूनियनो, तरुण कम्युनिस्ट लीग, सहकारिताओं तथा सास्कृतिक और शैक्षणिक सस्थाओ की बढ़ती हुई भूमिका मे। जन-सगठन सदा से ही कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार के सच्चे सहायक रहे है। वे उनकी नीतियो के वाहक रहे हैं। कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान महत्वपूर्ण राज्यीय समस्याओ को सुलझाने मे उनकी भूमिका का निरन्तर विकास होता जायेगा।

आर्थिक और सास्कृतिक विकास के प्रमुख कार्यो की पूर्ति मे ट्रेड यूनियनों की भूमिका बढ रही है। ट्रेड यूनियनें कम्युनिस्ट शिक्षा के विद्यालय हैं। वे आर्थिक प्रबन्ध और राज्य-प्रशासन के विद्यालय हैं। वे कारखानो मे उत्पादन का नियोजन और सगठन करने मे तथा समाजवादी प्रतिस्पर्धा विकसित करने में सक्रिय भूमिका अदा करते हैं। सामाजिक सुरक्षा सम्बधी अनेक सवाल, मजदूरो को सास्कृतिक तथा अन्य सेवाए प्रदान करना, उनके श्रम और स्वास्थ्य आदि का सरक्षण, उनके ही जिम्मे रहते हैं।

ट्रेड यूनियनें मजदूरों के श्रम सम्बधी एव राजनीतिक कार्यकलाप को प्रोत्साहन देती हैं, उनकी कम्युनिस्ट चेतना को उन्नत करती हैं, कम्युनिस्ट श्रम टोली या कम्युनिस्ट श्रम खाता की उपाधि प्राप्त करने के लिए होनेवाली प्रतियोगिताए आयोजित करती हैं, मजदूरों को राज्यीय एव स्थानीय मामलों के प्रशासन की शिक्षा देती हैं, उन्हें निरन्तर प्राविधिक प्रगति करने और श्रम-उत्पादकता की वृद्धि करने के काम मे जुटाती हैं। व इस बात का ध्यान रखती हैं कि मजदूरों की रहन-सहन की अवस्थाए बेहतर बनें और उनकी आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो।

तरुण कम्युनिस्ट लीग कम्युनिज्म के निर्माण तथा तरुणों को कम्युनिस्ट शिक्षा प्रदान करने में बड़ा योग दे रही है। तरुण कम्युनिस्ट लीग सोवियत तरुणो के सृजनात्मक कार्यकलाप और कृतित्व को प्रोत्साहन देती है। वह एक

ऐसी नयी पीढ़ी को पैदा करने के लिए प्रयत्नशील है जो कम्युनिज्म के अन्तर्गत रहेगी और काम करेगी तथा कम्युनिस्ट समाज में प्रबन्धक बनेगी। वह उन्हें कम्युनिस्ट नैतिकता के महान सिद्धान्तों की भावना के अनुसार प्रशिक्षित करती है, समष्टि के कल्याणार्थ कार्य करने और अपनी सामान्य शिक्षा एवं प्राविधिक ज्ञान को बढ़ाने के लिए कार्यशील रहने की शिक्षा देती है।

सहकारिताएं (सामूहिक फार्म, उपभोक्ता सहकार तथा अन्य सहकारिता संगठन) और ज्यादा महत्व प्राप्त करेंगी। वैज्ञानिक, तकनीकी, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, खेलकूद सम्बन्धी तथा अन्य सोसायटियों और संगठनों को और भी विकसित किया जायेगा। ये सभी उन विविध रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके जरिए जनता कम्युनिस्ट निर्माण में शरीक की जाती है। ये मेहनतकश जनता को कम्युनिस्ट भावना में दीक्षित करने के विविध साधन हैं।

जैसे-जैसे समाज कम्युनिज्म के निकट पहुंचता जायेगा, वैसे-वैसे वे सामाजिक काम जो राज्य-संस्थाओं के हाथ में हैं, धीरे-धीरे जन-संगठनों को हस्तान्तरित होते जायेंगे। खेलकूद का जिम्मा जन-संगठनों के हाथ में आ भी चुका है। सार्वजनिक व्यवस्था कायम करनेवाली जन-टोलियां, साथियों की अदालतें और अन्य सामाजिक संगठन मिलीशिया (पुलिस) तथा न्याय विभाग के अधिकारियों के साथ मिलकर सोवियत कानूनों और कम्युनिस्ट नैतिकता के नियमों को तोड़नेवालों के विरुद्ध सफलतापूर्वक अभियान चला रहे हैं।

अगले कुछ वर्षों में मनोरंजन के स्थानों, पुस्तकालयों, क्लबों और अन्य सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक प्रतिष्ठानों का प्रबन्ध, जो इस समय राज्य के हाथों में है, जन-संगठनों को सौंप दिया जायेगा। सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखने के काम में उनकी सक्रियता का विस्तार किया जायेगा। ट्रेड यूनियनों, तरुण कम्युनिस्ट लीग और अन्य जन-संगठनों को कानून-निर्माण की पहल करने का अधिकार प्रदान किया जायेगा—वे सर्वोच्च सोवियत के सामने विधेयक पेश कर सकेंगे।

अलग-अलग कार्यों की राज्य-एजेंसियों के गैर-सरकारी संस्थाओं को हस्तान्तरित किये जाने से कम्युनिज्म के निर्माण में राज्य की भूमिका कमजोर नहीं होगी। बल्कि, यदि वे कार्य जो अभी राज्य के जिम्मे हैं, जन-संगठनों के जिम्मे कर दिये जायें, तो समाजवादी समाज की राजनीतिक बुनियाद चौड़ी होगी और समाजवादी जनवाद का और भी विकास सुनिश्चित होगा। सोवियत राज्य अपना समय और ध्यान अर्थतंत्र के विकास पर, कम्युनिस्ट समाज के भौतिक आधार के विकास पर केंद्रित कर सकेगा।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में समाजवादी जनवाद को और विकसित करने के सम्बन्ध में व्यापक पग उठाने की परिकल्पना की गयी

समता, पारस्परिक समझदारी और भरोसा हो, एक-दूसरे के हितों का ध्यान रखा जाये, एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाये, हर राष्ट्र के अपनी समस्याए आप निपटाने के अधिकार को मान्यता दी जाये, सभी देशो की प्रभुसत्ता और प्रादेशिक अखंडता का पूर्ण आदर किया जाये, पूर्ण समता और पारस्परिक लाभ के आधार पर आर्थिक एव सास्कृतिक सहयोग का विस्तार किया जाये।

वर्तमान अवस्थाओ मे निरस्त्रीकरण शान्तिपूर्ण सहजीवन सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण ही राष्ट्रो में स्थायी शान्ति और समाज का प्रगतिशील विकास सुनिश्चित कर सकता है।

सोवियत सघ ने १९५९ मे सयुक्त राष्ट्र महासभा के १४वें अधिवेशन मे आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण की एक विशद योजना पेश की थी।

सोवियत सघ ने केवल निरस्त्रीकरण की आवश्यकता ही नही घोषित की, वरन उसे हासिल करने के लिए व्यावहारिक पग भी उठाये। उसने अपने सैन्यबल मे एकतरफा कटौती की और अपना सैनिक व्यय कई गुना घटा दिया। सोवियत सघ की पहल पर वायुमडल मे, बाह्य अन्तरिक्ष मे और समुद्र के गर्भ में नाभिकीय हथियारों के परीक्षण पर रोक लगाने की एक सधि हुई। दुनिया भर की जनता ने इस सधि का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। सोवियत सघ ने १८-राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण समिति के सामने एक स्मृति-पत्र पेश किया जिसमे उसने हथियारबन्दी की होड को धीमा करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव मिटाने के सम्बध मे कुछ पग प्रस्तावित किये और राज्यो के बीच प्रादेशिक विवादो को शान्तिपूर्ण उपायों से निपटाने के बारे मे सुझाव दिया।

मार्क्सवादी पार्टिया शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त को अविरल रूप मे लागू करती हैं और ऐसा करते हुए इस सिद्धान्त के आधार पर कार्य करती हैं कि विश्व मे शान्ति कायम रखने तथा उसे सुदृढ बनाने की क्षमता रखने वाली प्रबल शक्तिया प्रगट हुई हैं और बढ रही हैं। निरन्तर विकसित एव शक्तिमान होती हुई विश्व समाजवादी व्यवस्था सभी शान्तिकामी शक्तियों का स्वाभाविक आकर्षण केन्द्र है।

एक विशाल शान्ति क्षेत्र प्रकट हुआ है जिसमे समाजवादी देशों के अतिरिक्त शान्तिप्रेमी, गैर-समाजवादी देशों का एक बडा समूह भी शामिल है। इस समूह के अनेक राज्य वे हैं जिन्होंने अपने कन्धे से औपनिवेशिक जुआ उतार फेंका है। अधिकाधिक देश तटस्थता की नीति अपना रहे हैं और फौजी गुटों मे शामिल होने के खतरे से अपने को बचाने की कोशिश कर रहे हैं।

युद्ध और शान्ति की समस्या को हल करने का काम जनता अधिक सरगर्मी के साथ अपने हाथो मे ले रही है। शान्ति के सघर्ष मे यह एक बडा तत्व है।

ऐसी नयी पीढ़ी को पैदा करने के लिए प्रयत्नशील है जो कम्युनिज्म के अन्तर्गत रहेगी और काम करेगी तथा कम्युनिस्ट समाज में प्रवन्धक बनेगी। वह उन्हें कम्युनिस्ट नैतिकता के महान सिद्धान्तों की भावना के अनुसार प्रशिक्षित करती है, समष्टि के कल्याणार्थ कार्य करने और अपनी सामान्य शिक्षा एवं प्राविधिक ज्ञान को बढ़ाने के लिए कार्यशील रहने की शिक्षा देती है।

सहकारिताएं (सामूहिक फार्म, उपभोक्ता सहकार तथा अन्य सहकारिता संगठन) और ज्यादा महत्व प्राप्त करेंगी। वैज्ञानिक, तकनीकी, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, खेलकूद सम्बंधी तथा अन्य सोसायटियों और संगठनों को और भी विकसित किया जायेगा। ये सभी उन विविध रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके जरिए जनता कम्युनिस्ट निर्माण में शरीक की जाती है। ये मेहनतकश जनता को कम्युनिस्ट भावना में दीक्षित करने के विविध साधन हैं।

जैसे-जैसे समाज कम्युनिज्म के निकट पहुंचता जायेगा, वैसे-वैसे वे सामाजिक काम जो राज्य-संस्थाओं के हाथ में हैं, धीरे-धीरे जन-संगठनों को हस्तान्तरित होते जायेंगे। खेलकूद का जिम्मा जन-संगठनों के हाथ में आ भी चुका है। सार्वजनिक व्यवस्था कायम करनेवाली जन-टोलियां, साथियों की अदालतें और अन्य सामाजिक संगठन मिलीशिया (पुलिस) तथा न्याय विभाग के अधिकारियों के साथ मिलकर सोवियत कानूनों और कम्युनिस्ट नैतिकता के नियमों को तोड़नेवालों के विरुद्ध सफलतापूर्वक अभियान चला रहे हैं।

अगले कुछ वर्षों में मनोरंजन के स्थानों, पुस्तकालयों, क्लबों और अन्य सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक प्रतिष्ठानों का प्रबन्ध, जो इस समय राज्य के हाथों में है, जन-संगठनों को सौंप दिया जायेगा। सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखने के काम में उनकी सक्रियता का विस्तार किया जायेगा। ट्रेड यूनियनों, तरुण कम्युनिस्ट लीग और अन्य जन-संगठनों को कानून-निर्माण की पहल करने का अधिकार प्रदान किया जायेगा—वे सर्वोच्च सोवियत के सामने विधेयक पेश कर सकेंगे।

अलग-अलग कार्यों की राज्य-एजेंसियों के गैर-सरकारी संस्थाओं को हस्तान्तरित किये जाने से कम्युनिज्म के निर्माण में राज्य की भूमिका कमजोर नहीं होगी। बल्कि, यदि वे कार्य जो अभी राज्य के जिम्मे हैं, जन-संगठनों के जिम्मे कर दिये जायें, तो समाजवादी समाज की राजनीतिक बुनियाद पोख्ता होगी और समाजवादी जनवाद का और भी विकास सुनिश्चित होगा। सोवियत राज्य अपना समय और ध्यान अर्थतंत्र के विकास पर, कम्युनिस्ट के भौतिक आधार के विकास पर केन्द्रित कर सकेगा।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम और विकसित करने के सम्बन्ध में व्यापक पग

साम्राज्यवादी प्रतिगामी क्षेत्रों ने अपने अमानवीय मंसूबे नही त्यागे हैं। इसका अर्थ यह है कि भिन्न सामाजिक व्यवस्थावाले राज्यो के शान्तिपूर्ण सहजीवन को साम्राज्यवादियों की आक्रामक योजनाओं के विरुद्ध सभी जनगण के निस्वार्थ संघर्ष द्वारा ही कायम रखा और पक्का किया जा सकता है।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियां शान्ति संघर्ष का हिरावल हैं। वे साम्राज्यवादियों के सभी कुचक्रों और आक्रामक योजनाओं का लगातार पर्दाफाश करती हैं, जनता को सतर्क रखती हैं और भिन्न सामाजिक व्यवस्था वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सहजीवन की परिस्थितियां बनाये रखने की लेनिनवादी नीति का अविचल रूप से और दृढतापूर्वक पालन करती हैं।

शान्तिपूर्ण सहजीवन वर्ग-संघर्ष का एक रूप है

संशोधनवादी और कठमुल्ले शान्तिपूर्ण सहजीवन के सारतत्व को विकृत करते हैं। उनके अनुसार शान्तिपूर्ण सहजीवन समाजवादी और पूंजीवादी व्यवस्थाओं के अन्तर्विरोध को समन्वित करता है और समाजवादी और पूंजीवादी विचारधाराओं के संघर्ष की समाप्ति का द्योतक है।

किन्तु वास्तव में शान्तिपूर्ण सहजीवन का अर्थ यह कदापि नही होता कि समाजवाद और पूंजीवाद के अंतर्विरोधों मे समन्वय किया जाय और दोनों के बीच के संघर्ष को रोक दिया जाय। शान्तिपूर्ण सहजीवन दो विरोधी विश्व व्यवस्थाओं के बीच वर्ग संघर्ष का एक विशेष रूप है। यह दो सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच—युद्ध का सहारा लिये बिना, एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के घरेलू मामले में हस्तक्षेप किये बिना—संघर्ष को जारी रखना है। यह आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक संघर्ष है, पर फौजी संघर्ष नहीं है।

शान्तिपूर्ण सहजीवन अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर समाजवाद और पूंजीवाद की आर्थिक प्रतियोगिता का आधार है। यह आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की गति और व्यापकता के लिए तथा जनता की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाजवाद और पूंजीवाद के मध्य एक अनोखा संघर्ष है। इस संघर्ष की प्रक्रिया में लोग अपने अनुभव से सीखते हैं कि कौन-सी व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं की ज्यादा अच्छी तरह से पूर्ति करने की क्षमता रखती है।

इस प्रतियोगिता का क्रम और इसके परिणाम—दोनों विरोधी व्यवस्थाओं का संघर्ष—आज के विश्व घटनाक्रम की पूरी प्रक्रिया को निर्णीत करते हैं। हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त का कदापि यह अर्थ नहीं होता कि राजनीतिक संघर्ष त्याग दिया जाय, पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वहारा के क्रान्तिकारी वर्ग-संघर्ष को छोड दिया जाय, पूंजीवादी दासता से मुक्ति के लिए मेहनतकशों की लड़ाई को तिलांजलि दे दी जाय।

साम्राज्यवादी युद्धों का सबसे निर्मम और अविचल विरोधी, अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग शान्ति आन्दोलन का अगुआ बना हुआ है।

इन प्रबल शान्ति शक्तियों के विद्यमान होने की वजह से ही सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य देशों की मार्क्सवादी पार्टियां इस निष्कर्ष पर पहुंची हैं कि हमारे युग में युद्ध अनिवार्य नहीं रह गये हैं और मानवजाति अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे के लिए होने वाले युद्धों को रोक सकती है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है : "प्रबल समाजवादी शिविर, शान्तिप्रेमी गैर-समाजवादी देशों, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और शान्ति की हिमायत करने वाली सभी ताकतों के संयुक्त प्रयास से विश्व युद्ध न छिड़ने देना सम्भव है।" यह उस पूरी अवधि में शान्तिपूर्ण सहजीवन सुनिश्चित करने की सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है जिसके दौरान दुनिया को विभक्त करने वाली सामाजिक और राजनीतिक समस्याएं हल की जायेंगी।

शान्ति और निरस्त्रीकरण के लिए संघर्ष का अर्थ यह नहीं होता कि साम्राज्यवाद के आगे घुटने टेक दिये जायें और क्रान्ति एवं क्रान्तिकारी संघर्ष को त्याग दिया जाये। पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियां राष्ट्रों के मध्य शान्ति और मित्रता की हिमायत करती हैं, किन्तु वे दुगने उत्साह के साथ क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का भी संगठन करती हैं। शान्ति के संघर्ष को मेहनतकशों के क्रान्तिकारी संघर्ष के मुकाबले में पेश नहीं किया जाना चाहिए। दोनों परस्पर सम्बंधित और ऐक्यबद्ध हैं। दोनों साम्राज्यवाद के विरुद्ध निर्देशित हैं, अतः वे अन्ततः सामाजिक प्रगति और समाजवाद की विजय का पथ प्रशस्त करेंगे।

लेकिन इस चीज का कि शान्तिप्रेमी ताकतें नया विश्व युद्ध रोकने का दम रखती हैं, यह अर्थ नहीं समझ लेना चाहिए कि युद्ध की पूरी सम्भावना ही समाप्त हो गयी है। यह सम्भावना तो तब तक बनी रहेगी जब तक पूंजीवाद का अस्तित्व है। धरती पर चिरस्थायी शान्ति की स्थापना केवल कम्युनिस्ट समाज ही कर सकता है। किन्तु आज की अवस्थाओं में आक्रमक शक्तियां संसार में शान्ति और सुरक्षा के लिए सभी समाजवादी देशों और सभी ईमानदार लोगों के अविरल और अडिग प्रयास का विरोध कर रही हैं। अमरीका का फौजी गुट्ट इन आक्रामक शक्तियों का सरगना है। ये लोग अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को बिगाडने के लिए जी-जान से जुटे रहते हैं, सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों को धमकियां देते हैं, शस्त्रीकरण की होड़ तेज करते हैं और युद्धोन्माद फैलाते हैं। नये विश्व युद्ध का खतरा सामने होने के कारण सोवियत संघ अपनी प्रतिरक्षा को मजबूत करने तथा सोवियत जनता एवं पूरे समाजवादी शिविर की जनता की रक्षा के लिए आवश्यक पग उठाता है।

साम्राज्यवादी प्रतिगामी क्षेत्रों ने अपने अमानवीय मसूबे नहीं त्यागे हैं इसका अर्थ यह है कि भिन्न सामाजिक व्यवस्थावाले राज्यों के शान्तिपूर्ण सहजीवन को साम्राज्यवादियों की आक्रामक योजनाओं के विरुद्ध सभी जनगण के निस्वार्थ संघर्ष द्वारा ही कायम रखा और पक्का किया जा सकता है।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियां शान्ति संघर्ष का हिरावल हैं। वे साम्राज्यवादियों के सभी कुचक्रों और आक्रामक योजनाओं का लगातार पर्दाफाश करती हैं, जनता को सतर्क रखती हैं और भिन्न सामाजिक व्यवस्था वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सहजीवन की परिस्थितियां बनाये रखने की लेनिनवादी नीति का अविचल रूप से और दृढतापूर्वक पालन करती हैं।

शान्तिपूर्ण सहजीवन वर्ग-संघर्ष का एक रूप है

संशोधनवादी और कठमुल्ले शान्तिपूर्ण सहजीवन के सारतत्व को विकृत करते हैं। उनके अनुसार शान्तिपूर्ण सहजीवन समाजवादी और पूंजीवादी व्यवस्थाओं के अन्तर्विरोध को समन्वित करता है और समाजवादी और पूंजीवादी विचारधाराओं के संघर्ष की समाप्ति का द्योतक है।

किन्तु वास्तव मे शान्तिपूर्ण सहजीवन का अर्थ यह कदापि नही होता कि समाजवाद और पूंजीवाद के अंतर्विरोधों मे समन्वय किया जाय और दोनों के बीच के संघर्ष को रोक दिया जाय। शान्तिपूर्ण सहजीवन दो विरोधी विश्व व्यवस्थाओं के बीच वर्ग संघर्ष का एक विशेष रूप है। यह दो सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच—युद्ध का सहारा लिये बिना, एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के घरेलू मामले में हस्तक्षेप किये बिना—संघर्ष को जारी रखना है। यह आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक संघर्ष है, पर फौजी संघर्ष नही है।

शान्तिपूर्ण सहजीवन अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर समाजवाद और पूंजीवाद की आर्थिक प्रतियोगिता का आधार है। यह आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की गति और व्यापकता के लिए तथा जनता की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाजवाद और पूंजीवाद के मध्य एक अनोखा संघर्ष है। इस संघर्ष की प्रक्रिया मे लोग अपने अनुभव से सीखते हैं कि कौन-सी व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं की ज्यादा अच्छी तरह से पूर्ति करने की क्षमता रखती है।

इस प्रतियोगिता का क्रम और इसके परिणाम—दोनों विरोधी व्यवस्थाओं का संघर्ष—आज के विश्व घटनाक्रम की पूरी प्रक्रिया को निर्णीत करते हैं। हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त का

संघर्ष त्याग दिया जाय, पूंजीपतियों

को छोड दिया जाय, पूंजीवादी

लड़ाई को तिलांजलि दे दी जाय।

बात इसकी उलटी ही है। शान्तिपूर्ण सहजीवन पूंजीवादी देशों में वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ाता है। इसका प्रमाण पूंजीपतियों के विरुद्ध मजदूर वर्ग का बढ़ता हुआ संघर्ष है जिसे आज हम अनेक पूंजीवादी देशों (जापान, इटली, फ्रांस, आदि) में देख रहे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन का बढ़ना है। दुनिया में आज चार करोड़ से अधिक कम्युनिस्ट हैं।

शान्तिपूर्ण सहजीवन राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के लिए खास और से अनुकूल अवसर उत्पन्न करता है। इसका एक प्रमाण यह है कि युद्ध के बाद के वर्षों में करीब डेढ़ अरब लोगों ने—मानव जनसंख्या के आधे भाग ने—अपने कंधों से उपनिवेशवाद का जुआ उतार फेंका है।

दोनों विरोधी व्यवस्थाओं का शान्तिपूर्ण सहजीवन अविचल बौद्धिक संघर्ष का भी द्योतक है। इसका अर्थ है समाजवादी और पूंजीवादी विचारधाराओं में जमकर टक्कर होना। समाजवादी विचारधारा मजदूर वर्ग व सभी मेहनतकशों के हितों को अभिव्यक्त करती है और पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वहारा के संघर्ष की, समाजवाद और कम्युनिज्म के लिए उसके संघर्ष की ऐतिहासिक आवश्यकता सिद्ध करती है। उसका मुकाबला उस पूंजीवादी विचारधारा से होता है जो साम्राज्यवादी प्रतिगामी शक्तियों के हितों को अभिव्यक्त करती है, साम्राज्यवाद के अस्तित्व को उचित ठहराने की चेष्टा करती है और शान्ति, जनतंत्र एवं समाजवाद के विरुद्ध लड़ाई में हथियार के रूप में काम में लायी जाती है। इस कार्य के लिए बौद्धिक प्रभाव के हर साधन का इस्तेमाल किया जाता है। इन साधनों में मुख्य है कम्युनिज्म का विरोध। इस साधन में मुख्य चीज है समाजवाद को बदनाम करना और कम्युनिस्ट पार्टियों तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद की नीतियों और लक्ष्यों की झूठी व्याख्याएं पेश करना। पूंजीवादी विचारधारा के खिलाफ निरंतर और निर्मम संघर्ष पूंजीवाद के साथ शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता में समाजवाद को विजयी बनाने की एक जरूरी शर्त है।

४. पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण—हमारे युग की मुख्य विशेषता

विश्व समाजवादी व्यवस्था का विश्व घटनाक्रम का निर्णायक तत्व बनना

इतिहास में भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं की टक्कर के अनेक प्रमाण मिलते हैं। इनमें संघर्ष का अन्त अधिक प्रगतिशील व्यवस्था की विजय में हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दो विरोधी व्यवस्थाओं का—समाजवाद और पूंजीवाद का—वर्तमान संघर्ष भी समाजवादी व्यवस्था की पूर्ण विजय में होगा।

समाजवाद की दुनिया फैल रही है और पूजीवाद की दुनिया सिकुडती जा रही है। समाजवाद अन्ततः सर्वत्र ही पूंजीवाद को स्थानच्युत करेगा, यह अवश्यम्भावी है। "हमारा युग जिसका मुख्य सारतत्व पूजीवाद से समाजवाद मे सन्तरण है, दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ के संघर्ष का युग है। यह समाजवादी और राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियो का, पूजीवाद के क्षय और औपनिवेशिक व्यवस्था के उन्मूलन का युग है। यह अधिकाधिक लोगो के समाजवादी पथ पर सन्तरण का, विश्वव्यापी पैमाने पर समाजवाद और कम्युनिज्म की विजय का युग है। वर्तमान युग का केन्द्रीय तत्व है—अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और उसकी मुख्य उत्पत्ति विश्व समाजवादी व्यवस्था।" (सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम)।

पूजीवाद के एकछत्र राज के दिन लद चुके हैं। आज मानवजाति के विकास की मुख्य अन्तर्वस्तु को, उसकी मुख्य प्रवृत्तियो को तथा मुख्य विशेषताओ को विश्व समाजवादी व्यवस्था की शक्तिया और साम्राज्यवाद के विरुद्ध समाजवाद और सामाजिक प्रगति के लिए लडनेवाली शक्तिया निर्धारित करती हैं। इतिहास के रथ को आगे बढने से रोकने की साम्राज्यवादियो की चेष्टाए व्यर्थ हैं।

आज के "वामपथी" अवसरवादी मानवजाति के विकास सम्बधी इस निर्विवाद तथ्य का लेखा नही लेना चाहते। उनका कहना है कि विश्व विकास के क्रम पर निर्णायक प्रभाव डालना तो दूर रहा, विश्व समाजवादी व्यवस्था साम्राज्यवाद के विरुद्ध मेहनतकशो के क्रान्तिकारी सघर्ष मे भी कोई स्वतत्र भूमिका अदा नही करती। उनके मतानुसार राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष हमारे युग के क्रान्तिकारी आन्दोलन का निर्णायक तत्व है। विश्व समाजवादी व्यवस्था की भूमिका को वे केवल गौण मानते हैं। उसे वे उत्पीडित जनगण और राष्ट्रो की क्रान्ति के समर्थन और विकास के लिए केवल एक "आधार" की भूमिका प्रदान करते हैं।

पर हमारे युग मे मानवजाति के विकास का पूरा क्रम यही दिखलाता है कि विश्व समाजवादी व्यवस्था दुनिया की समाजवादी ही नही, वरन् सभी प्रगतिशील शक्तियो का केन्द्रबिन्दु है। समाजवादी व्यवस्था विश्व के विकास क्रम पर प्रचण्ड क्रान्तिकारी प्रभाव डाल रही है।

समाजवादी व्यवस्था विश्व विकास पर अपना प्रभाव मुख्य रूप से आर्थिक प्रगति के जरिए डालती है। आर्थिक वृद्धि की उसकी उच्च गतियो के कारण विश्व के औद्योगिक और कृषि उत्पादन मे समाजवादी व्यवस्था का भाग निरन्तर बढता जाता है। अब वह दिन ज्यादा दूर नहीं रह गया है जब विश्व

समाजवादी व्यवस्था का उत्पादन पूंजीवादी देशों के कुल उत्पादन से अधिक हो जायेगा। इसका अर्थ होगा मानव प्रयास के सबसे निर्णायक क्षेत्र में—भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में—पूंजीवाद की पराजय।

जैसे-जैसे समाजवादी व्यवस्था आगे बढ़ती है और उसकी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को—सर्वोपरि युद्ध और शान्ति की समस्या को—हल करने में उसकी भूमिका भी बड़ी होती जाती है। समाजवाद और शान्ति की शक्तियां आज साम्राज्यवादियों के प्रतिगामी षड़यंत्रों का पर्दाफाश करने की ही नहीं, वरन् उन्हें विफल करने की भी सामर्थ्य रखती हैं।

मानवजाति के विकास में विश्व समाजवादी व्यवस्था का प्रबल महत्व आज गैर-समाजवादी देशों के अन्दर जनता के संघर्ष पर उसके बढ़ते प्रभाव में भी अभिव्यजित होता है। उदाहरण की शक्ति द्वारा समाजवादी व्यवस्था पूंजीवादी देशों के अन्दर मेहनतकशों के मानस में क्रान्ति पैदा करती है। यह उन्हें पूंजीवाद से लड़ने के लिए, शान्ति और राष्ट्रीय प्रगति के लिए, जनवाद और समाजवाद की विजय की खातिर कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। भावी क्रान्तियां यह भरोसा रख सकती हैं कि समाजवादी व्यवस्था क्रान्ति को कुचल डालने और प्रतिक्रान्ति का निर्यात करने की विश्व प्रतिक्रियावाद की चेष्टाओं को धूल में मिला देगी। समाजवादी देश नये समाज का निर्माण करने वालों को हर सहायता और समर्थन प्रदान कर सकते हैं और करते भी हैं।

समाजवादी देश उपनिवेशवाद के सबसे निर्मम शत्रु और राष्ट्रीय समता तथा राष्ट्रों की प्रभुसत्ता के अडिग समर्थक हैं। सोवियत संघ ने ही सितम्बर १९६० में संयुक्त राष्ट्र मंच के सामने वह घोषणा पेश की थी जिसमें मानव इतिहास के सबसे बड़े कलंक उपनिवेशवाद को समाप्त करने की ऐतिहासिक मांग की गयी थी। विश्व समाजवादी व्यवस्था औपनिवेशिक प्रभुत्व का विरोध करती है। वह जनगण के स्वतंत्रता के लिए संघर्ष को पूर्ण समर्थन प्रदान करती है और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की प्रगति तथा साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के विघटन का एक प्रबल तत्व है।

समाजवादी व्यवस्था का अस्तित्व और विकास विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रगति और विकास के लिए अधिकाधिक अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय अवस्थाएं तैयार कर रहा है।

आन्तरिक अवस्थाएं भी अब ज्यादा देशों के समाजवाद में सन्तरण करने के लिए अधिक अनुकूल बन गयी हैं। इसका कारण पूंजीवाद के आम संकट का गहरा होना और उसके सभी अन्त [illegible] का तीव्र हो जाना है।

पूंजीवाद के आम संकट का गहरा होना

समाजवाद की नयी दुनिया शक्ति और स्फूर्ति से ओतप्रोत है। वह विकास और उन्नति कर रही है। दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था ह्रास और विघटन की स्थायी प्रक्रिया का शिकार है। उसने अपने आम संकट की एक नयी मंजिल में—तीसरी मंजिल में—प्रवेश किया है। यह संकट पूंजीवादी समाज के जीवन के प्रत्येक पहलू पर—अर्थतंत्र पर, युद्ध और विदेश नीति पर तथा विचारधारा पर—छाया हुआ है।

आम संकट की पहली मंजिल में, जिसका सूत्रपात महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति द्वारा हुआ था, सोवियत रूस प्रथम समाजवादी देश के रूप में सामने आया जिससे दुनिया में पूंजीवाद के एकछत्र राज का खात्मा हो गया।

दूसरी मंजिल में, जिसका सूत्रपात अनेक यूरोपीय और एशियाई देशों में समाजवादी क्रान्ति की विजय से हुआ, समाजवाद एक देश की सीमा पार कर बाहर आ निकला और विश्व व्यवस्था बन गया।

पूंजीवाद के आम संकट की नयी और तीसरी मंजिल की प्रधान विशेषता यह है कि विश्व में शक्तियों का अन्तस्सम्बन्ध आमूल रूप से समाजवाद के पक्ष में परिवर्तित हो गया है। अधिकाधिक देश पूंजीवाद से टूटकर अलग होते जा रहे हैं और समाजवाद तथा सामाजिक प्रगति के लिए लड़नेवाली ताकतें दुनिया भर में तेजी के साथ बढ़ रही हैं। समाजवाद के साथ शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगिता में साम्राज्यवाद की स्थितियां दुर्निवार रूप से कमजोर पड़ती जा रही हैं। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की अभूतपूर्व प्रगति से साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था नष्ट हो रही है। महत्व की बात यह है कि पूंजीवाद के आम संकट की यह नयी मंजिल किसी विश्व युद्ध के सिलसिले में नहीं प्रकट हुई है, बल्कि शान्ति तथा विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं के शान्तिपूर्ण सह-जीवन की अवस्थाओं में सामने आयी है।

बढ़ती हुई आतंरिक अस्थिरता और पूंजीवादी अर्थतंत्र का ह्रास पूंजीवाद के आम संकट की नयी मंजिल की एक प्रमुख विशेषता है। आर्थिक प्रगति की मंद रफ्तार, उत्पादन क्षमताओं का लगातार अल्प प्रयोग और पूंजीवादी जगत को समय-समय पर झकझोर कर रख देने वाले आर्थिक संकट—यह सब उपलब्ध उत्पादक शक्तियों का पूर्ण उपयोग करने में पूंजीवाद की बढ़ती हुई अक्षमता का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

राज्य-इजारेदार पूंजीवाद के विकास और सैन्यवाद की वृद्धि से साम्राज्यवाद के सभी अन्तर्विरोध तीव्र हो गये हैं। श्रम और पूंजी का संघर्ष जोरदार होता जाता है। राष्ट्र के हित राज्य-मशीन को नियंत्रित करने वाले इजारेदार गुट की स्वार्थी आकांक्षाओं के साथ टकराते हैं। पूंजीवादी देशों के विषम

आर्थिक और राजनीतिक विकास के कारण पूंजीवादी व्यवस्था के बीच शक्तियों का अन्तस्सम्बंध तेजी से बदल रहा है, अलग-अलग पूंजीवादी देशों और उनके गुटों के अन्तर्विरोध बढ़ रहे हैं और पूंजीवादी मंडी के अन्दर प्रतियोगिता तीव्रतर होती जाती है।

साम्राज्यवाद की गृह और विदेश नीतियों का तीव्रतर संकट पूंजीवाद के आम संकट की तीसरी मंजिल की एक खासियत है। यह संकट राजनीतिक प्रतिक्रियावाद की प्रबलता, पूंजीवादी नागरिक स्वातंत्र्यों के परित्याग, अनेक देशों में फासिस्टी और जालिमाना हुकूमतों की स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में साम्राज्यवाद की निर्णायक भूमिका की समाप्ति में अभिव्यंजित होता है।

पूंजीवादी विचारधारा भी बड़े गहरे संकट में फंसी हुई है। निराशा की भावना और भविष्य का भय, रहस्यवाद में विश्वास, विज्ञान तथा मानव की सृजनात्मक शक्तियों और संभावनाओं के सम्बंध में अनास्था, प्रगति से मुंह मोड़ना और कम्युनिज्म पर कीचड़ उछालना, मजूरी-गुलामी और उत्पीड़न की व्यवस्था की हिमायत जिसे जनता अत्यन्त घृणास्पद समझती है—ये हैं इस गहरे संकट की मुख्य विशेषताएं। जनता को आकर्षित कर सकने वाले विचारों को उत्पन्न करने की क्षमता तो पूंजीवादी विचारधारा बहुत पहले ही गंवा चुकी थी। यह ऐसे वर्ग की विचारधारा है जो इतिहास के रंगमंच से विदा हो रहा है। अतः इसका पूरी तरह से दिवालिया होना अनिवार्य है।

पूंजीवादी समाज में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बंधों का टकराव अत्यन्त तीव्र हो गया है। पारमाणविक शक्ति के काबू में लाये जाने, स्वचालन (आटोमेशन), अन्तरिक्ष अन्वेषण तथा अन्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों ने एक महती वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्रान्ति का सूत्रपात किया है। पर पूंजीवादी उत्पादन सम्बंध इस क्रान्ति के लिए अत्यन्त संकुचित हैं। पूंजीवाद उत्पादक शक्तियों के विकास को रोकता है एवं मानव मस्तिष्क की उपलब्धियों के सामाजिक प्रगति के हितार्थ उपयोग में बाधा डालता है। इतना ही नहीं, वह उन्हें स्वयं मानवजाति के विरुद्ध भी खड़ा कर देता है, वह उन्हें युद्ध के दानवीय साधनों में परिवर्तित कर देता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के इस मूलभूत अन्तर्विरोध के कारण मानवजाति के सामने यह कर्तव्य आन पड़ा है कि वह पूंजीवादी सम्बंधों के संकुचित दायरे को तोड़े, मानव द्वारा उत्पन्न उत्पादक शक्तियों को बंधनमुक्त करे और उन्हें सबके लाभ के लिए उपयोग में लाये। यह काम केवल समाजवादी क्रान्ति के जरिए ही पूरा किया जा सकता है जो पूंजीवादी उत्पादन सम्बंधों की जगह पर नये समाजवादी सम्बंधों की स्थापना करेगी। जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में

कहा गया है: "सम्पूर्ण विश्व पूंजीवादी व्यवस्था सर्वहारा की सामाजिक क्रान्ति के लिए परिपक्व है।"

जनवाद के लिए संघर्ष समाजवाद के संघर्ष का अभिन्न अंग है

अधिकाधिक देशों के पूंजीवादी व्यवस्था से टूटकर बाहर निकलते जाने के साथ-साथ समाजवादी दुनिया का विस्तार और विकास जारी रहेगा। क्रान्ति के दौरान समाजवादी परिवर्तन जनवादी और साम्राज्य-विरोधी परिवर्तनों के संग गुंथे हुए चलते हैं। लेनिन ने पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के समाजवादी क्रान्ति मे परिणत हो जाने के अपने सिद्धान्त का निरूपण एवं स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि साम्राज्यवाद के युग मे कोई ऐसी "विशुद्ध" क्रान्ति नहीं हो सकती जो अति-विविध सामाजिक समूहों के जनवादी, साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन के साथ सम्बद्ध न रहे। ऐसी परिस्थितियो मे साम्राज्यवाद-विरोधी लोक आकांक्षाओ के सबसे अडिग हिमायती सर्वहारा के लिए लाजिमी है कि वह जनवादी आन्दोलन मे सबसे आगे रहे, उसमे भाग लेने वाले विभिन्न वर्गों को एकताबद्ध करे और पूंजीपतियों का तख्ता उलटने एव समाजवाद की विजय लाने मे उनका नेतृत्व करे।

यह सम्भव है कि कई देशो मे क्रान्ति दो अपेक्षाकृत स्वतंत्र मंजिलों से होकर गुजरे—एक आम जनवादी और दूसरी समाजवादी। सोवियत संघ तथा कुछ लोक जनतन्त्रों मे क्रान्ति का विकास ऐसे ही हुआ था। सोवियत संघ में महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति से पहले फरवरी की पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति हुई। कई लोक जनतन्त्रों मे क्रान्ति समाजवादी दौर मे प्रवेश करने से पहले साम्राज्य-विरोधी और जनवादी दौर से गुजरी। कुछ अन्य देशों मे, जहां पूंजीवाद का बोलबाला है, क्रान्ति का विकास इसी ढंग से हो सकता है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद शक्तिशाली जनवादी आन्दोलन विकसित हुए। मिसाल के लिए—राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता कायम रखने का संघर्ष, शान्ति और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संघर्ष और अनेक पूंजीवादी देशो मे जनवाद के लिए संघर्ष। आज के जनवादी आन्दोलनो की एक खास विशेषता है कि उनका दायरा और संगठन असाधारण रूप से विशाल है। उनके प्रहार का लक्ष्य साम्राज्यवाद है, इजारेशाहों की प्रतिगामी गृह और विदेश नीतियां हैं।

इजारेशाह निर्ममतापूर्वक मजदूरों, किसानों और दस्तकारों का शोषण करते हैं, छोटे और मझोले पूंजीपतियों को बरबाद करते हैं, बुद्धिजीवियों की सृजनात्मक क्षमताओं को कुंठित करते हैं, प्रगतिशील ताकतों का दमन करते हैं, जनवादी अधिकारों के अवशेषों को समाप्त करते हैं और नये विश्व युद्ध की तैयारी करते हैं। इसीलिए पूंजीवादी समाज के उपरोक्त सभी वर्गों एव समूहों का जीवन्त हित यह बन जाता है कि इजारेशाहियो के शासन का खात्मा

कर दिया जाये। फलतः, इन सभी शक्तियों को शान्ति, राष्ट्रीय स्वतंत्रता और जनवाद, अर्थतंत्र की बुनियादी शाखाओं के राष्ट्रीयकरण, अर्थतंत्र के शान्तिपूर्ण उपयोग तथा आमूल भूमि सुधारों के लिए, मेहनतकशों की जीवनावस्थाओं में सुधार तथा उनके अधिकारों की रक्षा के लिए एक सम्मिलित संघर्ष में एकजुट करने की सम्भावना उत्पन्न होती है।

इजारेशाहियों के खिलाफ, शान्ति और जनवादी सुधारों के लिए संघर्ष का स्वरूप स्वभावतया समाजवादी नही होता। उसका लक्ष्य निजी सम्पत्ति और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करना नही है। पर यह संघर्ष इजारेशाहियों के शासन की जड़ें कमजोर करता है और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं जनवाद की प्राप्ति को सुगम बनाता है। इससे समाजवादी क्रान्ति के लिए आवश्यक अवस्थाएं तैयार होती हैं।

मजदूर वर्ग का अन्य सभी मेहनतकशों के साथ—सर्वोपरि मुख्य सहयोगी किसानों के साथ—पूंजीवादी इजारेशाहियों के विरुद्ध संघर्ष में, जनवाद और शान्ति के लिए संघर्ष में सहयोग कायम होता है। मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी के इर्दगिर्द एकजुट होकर मेहनतकश जनता—किसान बहुत सारे सफेदपोश कमकर और बुद्धजीवियों की एक बडी संख्या—प्रतिक्रियावाद-विरोधी संघर्ष की शिक्षा प्राप्त करती है। इसके दौरान यह चीज उनके मन में अधिकाधिक बैठती जाती है कि पूंजीवाद के अन्दर वे इजारेशाही जुल्मों से छुटकारा नही पा सकते। वे इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि पूंजीवाद का उन्मूलन ही उनके लिए एकमात्र मार्ग है। इस तरह से ही दक्षिणपंथी समाजवादी तथा सुधारवादी भ्रम धीरे-धीरे टूटते हैं और समाजवादी क्रान्ति की राजनीतिक फौज खडी होती है।

इस सबसे स्पष्ट है कि आज पूजीवाद की आधारशिलाएं केवल सर्वहारा की प्रत्यक्ष सामाजिक क्रान्ति के दौरान ही नष्ट नहीं होतीं। समाजवादी क्रान्तियां साम्राज्य-विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति की क्रान्तियां, जनता की जनवादी क्रान्तियां, व्यापक किसान आन्दोलन, फासिस्टी एवं अन्य अत्याचारी शासनों के तख्ते के लिए जनता के संघर्ष तथा राष्ट्रीय उत्पीड़न के विरुद्ध आम जनतान्त्रिक आन्दोलन—ये सभी मिलकर एक विश्व क्रान्तिकारी प्रवाह का रूप धारण कर रहे हैं। यही प्रवाह पूजीवाद की जड़ें खोखली करता और उसका नाश करता है।

विभिन्न देशों के समाजवाद में संक्रमण के रूप

विभिन्न देशों में समाजवाद में संक्रमण के रूप क्या होंगे, विभिन्न देश समाजवाद में किस तरह पदार्पण करेंगे—यह प्रश्न हमारे युग में, मार्क्सवादि के समाजवाद में संक्रमण के युग में, भारी महत्व का प्रश्न बन जाता है

सृजनात्मक मार्क्सवाद इस मान्यता के आधार पर चलता है कि पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण के रूप सर्वोपरि उस देश के अन्दर वर्ग शक्तियों के अन्तर्सम्बन्ध पर निर्भर करते हैं। अगर मजदूर वर्ग और उसके मित्रों की ताकत स्पष्टतया पूंजीपतियों की ताकत से कहीं ज्यादा मजबूत है, तो पूंजीपति मुकाबला करना बेकार जानकर, लेनिन के शब्दों में, यह तय करते हैं कि चलो अपना सिर बचा लिया जाय, और वे सर्वहारा के हाथ में सत्ता समर्पित कर देते हैं। ऐसी हालत में पूंजीवाद से समाजवाद में शान्तिपूर्ण सन्तरण सम्भव है। पर यदि पूंजीपति यह "छूट" देने को तैयार नहीं होते और सशस्त्र मुकाबला शुरू करते हैं, तो मजदूर वर्ग को बलपूर्वक उनके प्रतिरोध को कुचलने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

मजदूर वर्ग बिला वजह तलवार नहीं भांजा करता। लेकिन उसे पूंजीपतियों के हथियारबन्द हमले का मुंहतोड़ जवाब देने और अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

१९१७ की फरवरी क्रान्ति के बाद बोल्शेविकों ने क्रान्ति के शान्तिपूर्ण विकास का सवाल उठाया। अगर यह नहीं हो सका, तो इसके लिए सर्वहारा वर्ग दोषी नहीं है। उस समय दुनिया भर में पूंजीपतियों का एकछत्र राज्य था और उसका ख्याल था कि वह बड़ा प्रबल है, इसलिए वहां समाजवाद में शान्तिपूर्ण सन्तरण की सम्भावनाएं कम थीं।

अब परिस्थिति भिन्न है। पिछले युद्ध के बाद से पूंजीवाद और समाजवाद की शक्तियों का जो अन्तर्सम्बन्ध प्रकट हुआ, उसने समाजवाद में शान्तिपूर्ण सन्तरण की सम्भावना बहुत बढ़ा दी है। खुद पूंजीवादी देशों में यह सम्भावना जनवादी और समाजवादी शक्तियों के विकास के कारण तथा जनता के बीच मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी के पहले से अधिक प्रभाव के कारण तेजी से बढ़ती जा रही है।

ऐसी अवस्थाओं के अन्तर्गत कुछ देशों के मजदूर वर्ग के सामने—जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता के व्यापक आन्दोलन का सहारा लेगा—बिना रक्तपात और गृहयुद्ध के सत्ता दखल करने के अधिक अवसर होंगे।

संसदीय मार्ग समाजवादी क्रान्ति के शान्तिपूर्ण विकास का एक मार्ग हो सकता है। कई पूंजीवादी देशों के अन्दर मजदूर वर्ग को यदि जनता के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो जाये और वह अवसरवादियों से दृढ़तापूर्वक संघर्ष करे, तो वह संसद में स्थायी बहुमत प्राप्त कर सकेगा, संसद को मेहनतकश जनता की सेवा करने का साधन बना सकेगा और प्रतिक्रियावादी ताकतों के विरोध को विफल करके शान्तिपूर्ण समाजवादी क्रान्ति के लिए आवश्यक अवस्थाएं तैयार कर सकेगा।

संसदीय मार्ग समाजवाद में संक्रमण का एक सम्भव मार्ग है। यह सुधारवादी रास्ता हरगिज नहीं है। यह निर्मम वर्ग-संघर्ष का एक रास्ता है जिसमें आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तनों की बदौलत नये समाजवादी समाज का निर्माण हो सकता है।

समाजवादी क्रान्ति की शान्तिपूर्ण विकास की सम्भावना का अर्थ यह नहीं होता कि सर्वहारा ने गैर-शान्तिपूर्ण रूपों का परित्याग कर दिया है। दुनिया के एक बड़े भाग पर अब भी पूंजीपतियों की हुकूमत है, उनके पास हथियार हैं जिन्हें वह मजदूर वर्ग और सभी मेहनतकशों के विरुद्ध इस्तेमाल कर सकता है और करता है। इसीलिए मजदूर वर्ग को सजग रहना चाहिए। उसे संघर्ष के सभी रूपों का इस्तेमाल करने को तैयार रहना चाहिए—शान्तिपूर्ण भी और गैर-शांतिपूर्ण भी, संसदीय और गैर-संसदीय भी। संघर्ष के सभी रूपों में पारंगत होना, उस रूप का कुशलतापूर्वक इस्तेमाल करना जो विशिष्ट परिस्थिति में सबसे अनुकूल हो, फुर्ती से तथा सहसा एक रूप को त्याग कर दूसरे को अपना लेने की क्षमता रखना—यह सभी देशों में समाजवादी क्रान्ति की विजय की जरूरी शर्त है।

अध्याय १९

सामाजिक चेतना और समाज के विकास में उसकी भूमिका

लोगों के भौतिक, आर्थिक सम्बंध ही सामाजिक विकास का आधार होते हैं। पर इस विकास को समझने के लिए केवल आर्थिक तत्वों का ज्ञान नाकाफी होता है। जनता और समाज का उत्पादक सक्रियता के अलावा अपना एक आत्मिक जीवन भी होता है। लोग निश्चित राजनीतिक और नैतिक विचारों से निर्देशित होते हैं। उनके अपने वैज्ञानिक मत होते हैं, कला के सम्बंध में अपने खास विचार होते हैं और इसी तरह अन्य चीजों पर उनकी अलग रायें होती हैं। उत्पत्ति और महत्व के लिहाज से इन सभी विचारों और मतों का अपना एक सामाजिक चरित्र होता है। ये सब सामाजिक चेतना के क्षेत्र की चीज होते हैं।

सामाजिक चेतना का ऐतिहासिक विकास में भारी महत्व है। समाज की अधिक पूर्ण धारणा प्राप्त करने के लिए हमें निश्चय करना होगा कि सामाजिक चेतना क्या है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई और समाज के जीवन में उसकी भूमिका क्या होती है।

१. सामाजिक सत्ता के प्रतिबिम्ब के रूप में सामाजिक चेतना

सामाजिक चेतना का सारतत्व और उसकी उत्पत्ति

सामाजिक चेतना भावों, सिद्धान्तों और मतों, जनता की सामाजिक भावनाओं, आदतों और रीति-रिवाजों का कुल योग है। ये सब वस्तुगत यथार्थ को—मानव समाज और प्रकृति को—प्रतिबिम्बित करते हैं। जनता की सामाजिक सत्ता वह मुख्य वस्तु है जो सामाजिक चेतना द्वारा प्रतिबिम्बित होती है। सामाजिक सत्ता नानारूपी और जटिल है, अत. सामाजिक चेतना भी नानारूपी और जटिल होती है। राजनीति और कानून सम्बंधी विचार, नैतिकता, कला, विज्ञान, दर्शन और धर्म सामाजिक चेतना के रूप हैं। इन रूपों की उत्पत्ति और विकास अलग-अलग ढंगों से हुए हैं। वे सामाजिक सत्ता के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। जो कार्य वे सम्पन्न करते हैं, वे भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

समाज के जीवन में विचारों की, सामाजिक चेतना की, भूमिका क्या है इसकी सही व्याख्या करने में भाववाद असमर्थ है। भाववादियों के मत से सामाजिक विकास का पूरा क्रम भावनाओं द्वारा निर्णीत होता है। पर यह मत वास्तविकता से कोई मेल नहीं खाता।

ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के सन्दर्भ में दर्शन के मूल प्रश्न का सही-सही हल प्रस्तुत करता है, और ऐसा करके यह सिद्ध करता है कि लोगों की सामाजिक चेतना उसकी सामाजिक सत्ता की उपज होती है। हमें सामाजिक सत्ता में, यानी लोगों की भौतिक उत्पादन सम्बंधी कार्यशीलता में, उनके विचारों, सिद्धान्तों और मतों का उद्गम स्रोत ढूंढना चाहिए।

समाज का इतिहास बतलाता है कि जैसे-जैसे लोगों की सामाजिक सत्ता बदलती है, वैसे-वैसे उनकी चेतना भी बदलती है। पुराने ख्यालात लुप्त हो जाते हैं और नये ख्यालात का आविर्भाव होता है जो नयी अवस्थाओं के, नयी सामाजिक जरूरतों के अनुरूप होते हैं। उदाहरणार्थ, समाजवाद की विजय से लोगों की सामाजिक सत्ता में आमूल परिवर्तन हो गया—पूंजीवादी निजी सम्पत्ति की जगह समाजवादी सम्पत्ति ने ले ली। तदनुसार लोगों के ख्यालात और मत भी बदल गये। व्यक्तिवाद के सिद्धान्त की जगह, जो पूंजीवादी नैतिकता की आधारशिला है, सामूहिकतावाद का सिद्धान्त पनपा, जो कम्युनिस्ट नैतिकता की बुनियाद है।

इसी तरह यदि हम सामाजिक चेतना के किसी अन्य रूप का विश्लेषण करें, तो पायेंगे कि उसका भी चरम स्रोत समाज का भौतिक जीवन है।

विचारधारा का वर्ग-स्वरूप

वर्ग-समाज में सामाजिक चेतना का रूप चाहे जो भी हो, वह लाजमी तौर पर वर्ग-स्वरूप अख्तियार कर लेती है। किसी खास वर्ग के राजनीतिक, कानून सम्बंधी, कला सम्बंधी एवं अन्य मतों और विचारों के कुल पुंज को उस वर्ग की विचारधारा कहते हैं।

विचारधारा के वर्ग-स्वरूप का कारण क्या होता है? हर वर्ग क्यों अपनी विशिष्ट विचारधारा उत्पन्न करता है? वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाज में वर्गों की स्थिति अत्यन्त असम होती है और उनके सामने भिन्न-भिन्न सामाजिक लक्ष्य एवं कार्य रहते हैं। मतों की अपनी एक निश्चित व्यवस्था के जरिए ही कोई वर्ग समाज में अपनी स्थिति को अभिव्यक्त करता एवं उसे उचित ठहराता है। उसके जरिए ही वह अपने हितों की हिफाजत करता है। उसके जरिए ही वह अपने लक्ष्यों को सिद्ध करने तथा अपने सामने उपस्थित कार्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ, पूंजीवादी समाज यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि निजी पंजीवादी सम्प[illegible] शोषण शाश्वत है। दूसरी

और, सर्वहारा के सामने पूंजीवाद का उन्मूलन करने तथा समाजवाद का और वर्ग एवं शोषण रहित समाज का—कम्युनिज्म का निर्माण करने का कार्य उपस्थित होता है। इसके लिए उसे गुणात्मक रूप से नयी समाजवादी विचारधारा की आवश्यकता होती है।

विरोधी वर्गों में बंटे समाज की अपनी एक विचारधारा नहीं हो सकती। शोषक और शोषित वर्गों की अपनी अलग-अलग विचारधाराओं की जरूरत है। किन्तु बोलबाला उसी वर्ग की विचारधारा का होता है जिसका आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व रहता है। विचारधाराओं का तीव्र संघर्ष, जो वर्ग संघर्ष का एक रूप है, वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज की सदा से एक विशेषता रही है।

जब विचारधारा का सदा एक वर्ग-स्वरूप होता है, तो क्या वह सत्य को प्रतिबिम्बित कर सकती है? क्या वह वर्ग-हितों के अनुकूल यथार्थ को विकृत नहीं करेगी? संशोधनवादियों का कहना है कि विचारधारा और सत्य का कोई मेल नहीं, विचारधारा तो इस या उस वर्ग के हितों के लिए सत्य को सूली चढ़ा देती है। किन्तु मार्क्सवाद मांग करता है कि हमें विचारधारा को ठोस और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए जिससे कि यह निश्चित हो सके कि वह किस वर्ग के—प्रगतिशील वर्ग के या प्रतिगामी वर्ग के—हितों का प्रतिनिधित्व करती है। कोई वर्ग जब तक सामाजिक विकास में प्रगतिशील भूमिका अदा करता है, जब तक उस वर्ग के हित वस्तुगत यथार्थ के विकास के साथ मेल खाते हैं, तब तक उसकी विचारधारा में सत्य का समावेश होता है। किन्तु ज्यों ही उस वर्ग की प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो जाती है और उसके हित विकास के यथार्थ क्रम से टकराने लगते हैं, त्यों ही उसकी विचारधारा में सत्य नहीं रह जाता है और वह यथार्थ को अपने वर्ग हितों के अनुरूप बनाने के लिए उसे तोड़ने-मरोड़ने लगता है।

उदाहरणार्थ, पूंजीवादी विचारधारा को ले लें। जब तक पूंजीपति वर्ग सामन्तशाही से लड़ रहा था, तब तक उसकी विचारधारा विश्व को ऐसे ढंग से प्रतिबिम्बित करती रही जो अपेक्षाकृत सत्य था। पर ज्यों ही पूंजीपति वर्ग के हाथ में सत्ता आयी, ज्यों ही उसकी प्रगतिशील क्षमताएं समाप्त हो गयी और वह सामाजिक विकास की पांव की बेड़ी बन गया, त्यों ही पूंजीवादी विचारधारा यथार्थ को सत्यतापूर्वक प्रतिबिम्बित करने की योग्यता खो बैठी। मार्क्स के शब्दों में: "निर्लिप्त जिज्ञासुओं का स्थान भाड़े पर दंगल लड़ने वाले पहलवानों ने लिया। सच्चे वैज्ञानिक अनुसंधान का स्थान एक वकील की खोट भरी अन्तरात्मा और बदनीयती ने ले ली।"[1]

---

१. मार्क्स, पूंजी, भाग १, पृष्ठ १५।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा अन्त तक वैज्ञानिक और सत्य रहती है, क्योंकि मजदूर वर्ग के वर्ग-हितों तथा इतिहास के वस्तुगत क्रम में सदा मेल रहता है और इस वजह से मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा की सत्य को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता उसके विकास की हर मंजिल में कायम रहती है।

चेतना के विकास की सापेक्ष स्वतंत्रता

हम ज्ञात कर चुके हैं कि लोगों की सामाजिक सत्ता, उनकी भौतिक, उत्पादन सम्बंधी कार्यशीलता उनकी सामाजिक चेतना को निर्धारित करती है। किन्तु चेतना को अपने विकास में एक सापेक्ष स्वतंत्रता भी प्राप्त होती है।

सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता के विकास से पीछे छूट जाती है या *उससे आगे निकल जाती है। वह विकास की निरंतरता में भी अभिव्यक्त होती* है। वह सत्ता के सम्बंध मे निष्क्रिय नही रहती, वरन् सक्रिय रूप से सत्ता को प्रभावित करती है।

सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता से इसलिए पीछे छूट जाती है कि पहले लोगों की सामाजिक सत्ता बदलती है और उसके बाद ही उनकी चेतना परिवर्तित होती है। इसके अलावा, पुराने विचारों और मतों में भारी जीवन क्षमता रहती है और यह भी इस बिलम्ब का कारण होता है। उनकी यह जीवन क्षमता आकस्मिक नही होती। इसके पीछे यह बात भी होती है कि शासक वर्ग समाज के सभी सदस्यों के बीच अपनी विचारधारा को कारगर रूप से फैलाने के लिए अपने पास के हर साधन का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए, साम्राज्यवादी पूंजीपति मेहनतकश जनता के मस्तिष्क मे विष घोलने और उसे बौद्धिक रूप से निरस्त्र करने के लिए आम प्रचार के सभी साधन (प्रेस, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, आदि) काम मे लाते हैं। इसीलिए नयी व्यवस्था की जीत के बाद भी पुरानी विचारधारा के अवशेष कुछ लोगों के मस्तिष्क में बहुत दिनों तक बने रहते हैं।

पर जनता की सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता के विकास से सदा पीछे रह जाती हो, ऐसी बात नहीं है। कुछ अवस्थाओं में वह इस विकास से आगे भी निकल जा सकती है। असाधारण पुरुष समाज के नियमों का विश्लेषण करके और ऐतिहासिक विकास की आम प्रवृत्तियों को ज्ञात करके भविष्य के पूर्वदर्शन कर सकते हैं, यानी ऐसे सिद्धान्तों का आविष्कार कर सकते हैं जो उनके समय से बहुत आगे होते हैं और आने वाले अनेक दशकों के विकास का पथ निर्देशित करते हैं। वैज्ञानिक कम्युनिज्म का मार्क्सवादी सिद्धान्त सामाजिक दशाओं को पहले से ही देख लेने का एक भव्य उदाहरण है।

विचारधारा के विकास में निरन्तरता सामाजिक चेतना की सापेक्ष स्वतंत्रता की एक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। नया वर्ग अपनी विचारधारा की

समता, पारस्परिक समझदारी और भरोसा हो, एक-दूसरे के हितों का ध्यान रखा जाये, एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप न किया जाये, हर राष्ट्र के अपनी समस्याएं स्वतः निपटाने के अधिकार को मान्यता दी जाये, सभी देशों की प्रभुसत्ता और प्रादेशिक अखडता का पूर्ण आदर किया जाये, पूर्ण समता और पारस्परिक लाभ के आधार पर आर्थिक एव सांस्कृतिक सहयोग का विस्तार किया जाये।

वर्तमान अवस्थाओं मे निरस्त्रीकरण शान्तिपूर्ण सहजीवन सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण ही राष्ट्रो में स्थायी शान्ति और समाज का प्रगतिशील विकास सुनिश्चित कर सकता है।

सोवियत सघ ने १९५९ में संयुक्त राष्ट्र महासभा के १४वें अधिवेशन मे आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण की एक विशद योजना पेश की थी।

सोवियत सघ ने केवल निरस्त्रीकरण की आवश्यकता ही नही घोषित की, वरन इसे हासिल करने के लिए व्यावहारिक पग भी उठाये। उसने अपने सैन्यदल मे एकतरफा कटौती की और अपना सैनिक व्यय कई गुना घटा दिया। सोवियत सघ की पहल पर वायुमडल मे, बाह्य अन्तरिक्ष मे और समुद्र के गर्भ में नाभिकीय हथियारों के परीक्षण पर रोक लगाने की एक सधि हुई। दुनिया भर की जनता ने इस सधि का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। सोवियत सघ ने १८-राष्ट्रीय निरस्त्रीकरण समिति के सामने एक स्मृति-पत्र पेश किया जिसमें उसने हथियारबन्दी की होड को धीमा करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव मिटाने के सम्बध मे कुछ पग प्रस्तावित किये और राज्यो के बीच प्रादेशिक विवादो को शान्तिपूर्ण उपायों से निपटाने के बारे मे सुझाव दिया।

मार्क्सवादी पार्टिया शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त को अविरल रूप से लागू करती हैं और ऐसा करते हुए इस सिद्धान्त के आधार पर कार्य करती हैं कि विश्व मे शान्ति कायम रखने तथा उसे सुदृढ़ बनाने की क्षमता रखने वाली प्रबल शक्तिया प्रगट हुई हैं और बढ रही हैं। निरन्तर विकसित एव शक्तिमान होती हुई विश्व समाजवादी व्यवस्था सभी शान्तिकामी शक्तियो का स्वाभाविक आकर्षण केन्द्र है।

एक विशाल शान्ति क्षेत्र प्रकट हुआ है जिसमे समाजवादी देशो के अतिरिक्त शान्तिप्रेमी, गैर-समाजवादी देशों का एक बडा समूह भी शामिल है। इस समूह के अनेक राज्य वे हैं जिन्होंने अपने कन्धे से औपनिवेशिक जुआ उतार फेंका है। अधिकाधिक देश तटस्थता की नीति अपना रहे हैं और फौजी गुटो मे शामिल होने के खतरे से अपने को बचाने की कोशिश कर रहे हैं।

युद्ध और शान्ति की समस्या को हल करने का काम जनता अधिक सरगर्मी के साथ अपने हाथो मे ले रही है। शान्ति के संघर्ष मे यह एक बडा तत्व है।

साम्राज्यवादी युद्धों का सबसे निर्मम और अविचल विरोधी, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग शान्ति आन्दोलन का अगुआ बना हुआ है।

इन प्रबल शान्ति शक्तियों के विद्यमान होने की वजह से ही सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य देशों की मार्क्सवादी पार्टियां इस निष्कर्ष पर पहुंची हैं कि हमारे युग में युद्ध अनिवार्य नहीं रह गये हैं और मानवजाति अब अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे के लिए होने वाले युद्धों को रोक सकती है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है: "प्रबल समाजवादी शिविर, शान्तिप्रेमी गैर-समाजवादी देशों, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और शान्ति की हिमायत करने वाली सभी ताकतों के संयुक्त प्रयास से विश्व युद्ध न छिड़ने देना सम्भव है।" यह उस पूरी अवधि में शान्तिपूर्ण सहजीवन सुनिश्चित करने की सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है जिसके दौरान दुनिया को विभक्त करने वाली सामाजिक और राजनीतिक समस्याएं हल की जायेंगी।

शान्ति और निरस्त्रीकरण के लिए संघर्ष का अर्थ यह नहीं होता कि साम्राज्यवाद के आगे घुटने टेक दिये जायें और क्रान्ति एवं क्रान्तिकारी संघर्ष को त्याग दिया जाये। पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियां राष्ट्रों के मध्य शान्ति और मित्रता की हिमायत करती हैं, किन्तु वे दुगने उत्साह के साथ क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का भी संगठन करती हैं। शान्ति के संघर्ष को मेहनतकशों के क्रान्तिकारी संघर्ष के मुकाबले में पेश नहीं किया जाना चाहिए। दोनों परस्पर सम्बंधित और ऐक्यबद्ध हैं। दोनों साम्राज्यवाद के विरुद्ध निर्देशित हैं, अतः वे अन्ततः सामाजिक प्रगति और समाजवाद की विजय का पथ प्रशस्त करेंगे।

लेकिन इस चीज का कि शान्तिप्रेमी ताकतें नया विश्व युद्ध रोकने का दम रखती हैं, यह अर्थ नहीं समझ लेना चाहिए कि युद्ध की पूरी सम्भावना ही समाप्त हो गयी है। यह सम्भावना तो तब तक बनी रहेगी जब तक पूंजीवाद का अस्तित्व है। धरती पर चिरस्थायी शान्ति की स्थापना केवल कम्युनिस्ट समाज ही कर सकता है। किन्तु आज की अवस्थाओं में आक्रमक शक्तियां संसार में शान्ति और सुरक्षा के लिए सभी समाजवादी देशों और सभी ईमानदार लोगों के अविरल और अडिग प्रयास का विरोध कर रही हैं। अमरीका का फौजी गुट्ट इन आक्रामक शक्तियों का सरगना है। ये लोग अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को बिगाड़ने के लिए जी-जान से जुटे रहते हैं, सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों को धमकियां देते हैं, शस्त्रीकरण की होड़ तेज करते हैं और युद्धोन्माद फैलाते हैं। नये विश्व युद्ध का खतरा सामने होने के कारण सोवियत संघ अपनी प्रतिरक्षा को मजबूत [illegible] विश्व जनता एवं पूरे समाजवादी शिविर की जनता की रक्षा के [illegible] उठाता है।

साम्राज्यवादी प्रतिगामी क्षेत्रों ने अपने अमानवीय मंसूबे नहीं त्यागे हैं. इसका अर्थ यह है कि भिन्न सामाजिक व्यवस्थावाले राज्यों के शान्तिपूर्ण सहजीवन को साम्राज्यवादियों की आक्रामक योजनाओं के विरुद्ध सभी जनगण के निस्वार्थ संघर्ष द्वारा ही कायम रखा और पक्का किया जा सकता है।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियां शान्ति संघर्ष का हिरावल हैं। वे साम्राज्यवादियों के सभी कुचक्रों और आक्रामक योजनाओं का लगातार पर्दाफाश करती हैं, जनता को सतर्क रखती हैं और भिन्न सामाजिक व्यवस्था वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सहजीवन की परिस्थितियां बनाये रखने की लेनिनवादी नीति का अविचल रूप से और दृढ़तापूर्वक पालन करती हैं।

शान्तिपूर्ण सहजीवन वर्ग-संघर्ष का एक रूप है

संशोधनवादी और कठमुल्ले शान्तिपूर्ण सहजीवन के सारतत्व को विकृत करते हैं। उनके अनुसार शान्तिपूर्ण सहजीवन समाजवादी और पूंजीवादी व्यवस्थाओं के अन्तर्विरोध को समन्वित करता है और समाजवादी और पूंजीवादी विचारधाराओं के संघर्ष की समाप्ति का द्योतक है।

किन्तु वास्तव में शान्तिपूर्ण सहजीवन का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि समाजवाद और पूंजीवाद के अंतर्विरोधों में समन्वय किया जाय और दोनों के बीच के संघर्ष को रोक दिया जाय। शान्तिपूर्ण सहजीवन दो विरोधी विश्व व्यवस्थाओं के बीच वर्ग संघर्ष का एक विशेष रूप है। यह दो सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच—युद्ध का सहारा लिये बिना, एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के घरेलू मामले में हस्तक्षेप किये बिना—संघर्ष को जारी रखना है। यह आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक संघर्ष है, पर फौजी संघर्ष नहीं है।

शान्तिपूर्ण सहजीवन अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर समाजवाद और पूंजीवाद की आर्थिक प्रतियोगिता का आधार है। यह आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की गति और व्यापकता के लिए तथा जनता की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाजवाद और पूंजीवाद के मध्य एक अनोखा संघर्ष है। इस संघर्ष की प्रक्रिया में लोग अपने अनुभव से सीखते हैं कि कौन-सी व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं की ज्यादा अच्छी तरह से पूर्ति करने की क्षमता रखती है।

इस प्रतियोगिता का क्रम और इसके परिणाम—दोनों विरोधी व्यवस्थाओं का संघर्ष—आज के विश्व घटनाक्रम की पूरी प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं। हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त का कदापि यह अर्थ नहीं होता कि राजनीतिक संघर्ष त्याग दिया जाय, पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वहारा के क्रान्तिकारी वर्ग-संघर्ष को छोड़ दिया जाय, पूंजीवादी दासता से मुक्ति के लिए मेहनतकशों की लड़ाई को तिलांजलि दे दी जाय।

समाजवाद की दुनिया फैल रही है और पूंजीवाद की दुनिया सिकुड़ती जा रही है। समाजवाद अन्ततः सर्वत्र ही पूंजीवाद को स्थानच्युत करेगा, यह अवश्यम्भावी है। "हमारा युग जिसका मुख्य सारतत्व पूंजीवाद से समाजवाद मे अन्तरण है, दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं के संघर्ष का युग है। यह समाजवादी और राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियों का, पूंजीवाद के क्षय और औपनिवेशिक व्यवस्था के उन्मूलन का युग है। यह अधिकाधिक लोगों के समाजवादी पथ पर अन्तरण का, विश्वव्यापी पैमाने पर समाजवाद और कम्युनिज्म की विजय का युग है। वर्तमान युग का केन्द्रीय तत्व है—अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और उसकी मुख्य उत्पत्ति विश्व समाजवादी व्यवस्था।" (सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम)।

पूंजीवाद के एकछत्र राज के दिन लद चुके हैं। आज मानवजाति के विकास की मुख्य अन्तर्वस्तु को, उसकी मुख्य प्रवृत्तियों को तथा मुख्य विशेषताओं को विश्व समाजवादी व्यवस्था की शक्तियां और साम्राज्यवाद के विरुद्ध समाजवाद और सामाजिक प्रगति के लिए लड़नेवाली शक्तियां निर्धारित करती हैं। इतिहास के रथ को आगे बढ़ने से रोकने की साम्राज्यवादियों की चेष्टाएं व्यर्थ हैं।

आज के "वामपंथी" अवसरवादी मानवजाति के विकास सम्बंधी इस निर्विवाद तथ्य का लेखा नहीं लेना चाहते। उनका कहना है कि विश्व विकास के क्रम पर निर्णायक प्रभाव डालना तो दूर रहा, विश्व समाजवादी व्यवस्था साम्राज्यवाद के विरुद्ध मेहनतकशों के क्रान्तिकारी संघर्ष में भी कोई स्वतंत्र भूमिका अदा नहीं करती। उनके मतानुसार राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष हमारे युग के क्रान्तिकारी आन्दोलन का निर्णायक तत्व है। विश्व समाजवादी व्यवस्था की भूमिका को वे केवल गौण मानते हैं। उसे वे उत्पीड़ित जनगण और राष्ट्रों की क्रान्ति के समर्थन और विकास के लिए केवल एक "आधार" की भूमिका प्रदान करते हैं।

पर हमारे युग में मानवजाति के विकास का पूरा क्रम यही दिखलाता है कि विश्व समाजवादी व्यवस्था दुनिया की समाजवादी ही नहीं, वरन् सभी प्रगतिशील शक्तियों का केन्द्रबिन्दु है। समाजवादी व्यवस्था विश्व के विकास क्रम पर प्रचण्ड क्रान्तिकारी प्रभाव डाल रही है।

समाजवादी व्यवस्था विश्व विकास पर अपना प्रभाव मुख्य रूप से आर्थिक प्रगति के जरिए डालती है। आर्थिक वृद्धि की उसकी उच्च गतियों के कारण विश्व के औद्योगिक और कृषि उत्पादन में समाजवादी व्यवस्था का भाग निरन्तर बढ़ता जाता है। अब वह दिन ज्यादा दूर नहीं रह गया है जब विश्व

पूंजीवाद के आम संकट का गहरा होना

समाजवाद की नयी दुनिया शक्ति और स्फूर्ति से ओतप्रोत है। वह विकास और उन्नति कर रही है। दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था ह्रास और विघटन की गहरी प्रक्रिया का शिकार है। उसने अपने आम संकट की एक नयी मंजिल में—तीसरी मंजिल में—प्रवेश किया है। यह संकट पूंजीवादी समाज के जीवन के प्रत्येक पहलू पर—अर्थतंत्र पर, गृह और विदेश नीति पर तथा विचारधारा पर—छाया हुआ है।

आम संकट की पहली मंजिल में, जिसका सूत्रपात महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति द्वारा हुआ था, सोवियत रूस प्रथम समाजवादी देश के रूप में सामने आया जिससे दुनिया में पूंजीवाद के एकछत्र राज का खात्मा हो गया।

दूसरी मंजिल में, जिसका सूत्रपात अनेक यूरोपीय और एशियाई देशों में समाजवादी क्रान्ति की विजय से हुआ, समाजवाद एक देश की सीमा पार कर बाहर आ निकला और विश्व व्यवस्था बन गया।

पूंजीवाद के आम संकट की नयी और तीसरी मंजिल की प्रधान विशेषता यह है कि विश्व में शक्तियों का अन्तस्सम्बंध आमूल रूप से समाजवाद के पक्ष में परिवर्तित हो गया है। अधिकाधिक देश पूंजीवाद से टूटकर अलग होते जा रहे हैं और समाजवाद तथा सामाजिक प्रगति के लिए लड़नेवाली ताकतें दुनिया भर में तेजी के साथ बढ़ रही हैं। समाजवाद के साथ शान्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगिता में साम्राज्यवाद की स्थितियां दुनिवार रूप से कमजोर पड़ती जा रही हैं। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की अभूतपूर्व प्रगति से साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था नष्ट हो रही है। महत्व की बात यह है कि पूंजीवाद के आम संकट की यह नयी मंजिल किसी विश्व युद्ध के सिलसिले में नहीं प्रकट हुई है, बल्कि शान्ति तथा विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं के शान्तिपूर्ण सह-जीवन की अवस्थाओं में सामने आयी है।

बढ़ती हुई आर्थिक अस्थिरता और पूंजीवादी अर्थतंत्र का ह्रास पूंजीवाद के आम संकट की नयी मंजिल की एक प्रमुख विशेषता है। आर्थिक प्रगति की मंद रफ्तार, उत्पादन क्षमताओं का लगातार अल्प प्रयोग और पूंजीवादी जगत को समय-समय पर झकझोर कर रख देने वाले आर्थिक संकट—यह सब उपलब्ध उत्पादक शक्तियों का पूर्ण उपयोग करने में पूंजीवाद की बढ़ती हुई अक्षमता का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

राज्य-इजारेदार पूंजीवाद के विकास और सैन्यवाद की वृद्धि से साम्राज्यवाद के सभी अन्तर्विरोध तीव्र हो गये हैं। श्रम और पूंजी का संघर्ष जोरदार होता जाता है। राष्ट्र के हित राज्य-मशीन को नियंत्रित करने वाले इजारेदार गुट की स्वार्थी आकांक्षाओं के साथ टकराते हैं। पूंजीवादी देशों के विषम

आर्थिक और राजनीतिक विकास के कारण पूंजीवादी व्यवस्था के अन्दर शक्तियों का अन्तस्सम्बंध तेजी से बदल रहा है, अलग-अलग पूंजीवादी देशों और उनके गुटों के अन्तर्विरोध बढ़ रहे हैं और पूंजीवादी मंडी के अन्दर प्रतियोगिता तीव्रतर होती जाती है।

साम्राज्यवाद की गृह और विदेश नीतियों का तीव्रतर संकट पूंजीवाद के आम संकट की तीसरी मंजिल की एक खासियत है। यह संकट राजनीतिक प्रतिक्रियावाद की प्रबलता, पूंजीवादी नागरिक स्वातंत्र्यों के परित्याग, अनेक देशों में फासिस्टी और जालिमाना हुकूमतों की स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे साम्राज्यवाद की निर्णायक भूमिका की समाप्ति में अभिव्यक्त होता है।

पूंजीवादी विचारधारा भी बड़े गहरे संकट मे फंसी हुई है। निराशा की भावना और भविष्य का भय, रहस्यवाद मे विश्वास, विज्ञान तथा मानव की सृजनात्मक शक्तियों और संभावनाओं के सम्बंध मे अनास्था, प्रगति से मुंह मोड़ना और कम्युनिज्म पर कीचड़ उछालना, मजूरी-गुलामी और उत्पीड़न की व्यवस्था की हिमायत जिसे जनता अत्यन्त घृणास्पद समझती है—ये हैं इस गहरे संकट की मुख्य विशेषताएं। जनता को आकर्षित कर सकने वाले विचारों को उत्पन्न करने की क्षमता तो पूंजीवादी विचारधारा बहुत पहले ही गंवा चुकी थी। यह ऐसे वर्ग की विचारधारा है जो इतिहास के रंगमंच से विदा हो रहा है। अतः इसका पूरी तरह से दिवालिया होना अनिवार्य है।

पूंजीवादी समाज में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बंधों का टकराव अत्यन्त तीव्र हो गया है। पारमाणविक शक्ति के काबू में लाये जाने, स्वचालन (आटोमेशन), अन्तरिक्ष अन्वेषण तथा अन्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों ने एक महती वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्रान्ति का सूत्रपात किया है। पर पूंजीवादी उत्पादन सम्बंध इस क्रान्ति के लिए अत्यन्त संकुचित हैं। पूंजीवाद उत्पादक शक्तियों के विकास को रोकता है एवं मानव मस्तिष्क की उपलब्धियों के सामाजिक प्रगति के हितार्थ उपयोग मे बाधा डालता है। इतना ही नहीं, वह उन्हें स्वयं मानवजाति के विरुद्ध भी खड़ा कर देता है, वह उन्हें युद्ध के दानवीय साधनों मे परिवर्तित कर देता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के इस मूलभूत अन्तर्विरोध के कारण मानवजाति के सामने यह कर्तव्य आ गया है कि वह पूंजीवादी सम्बंधों के संकुचित दायरे को तोड़े, मानव द्वारा उत्पन्न उत्पादक शक्तियों को बंधनमुक्त करे और उन्हें सबके लाभ के लिए उपयोग में लाये। यह काम केवल समाजवादी क्रान्ति के जरिए ही पूरा किया जा सकता है जो पूंजीवादी उत्पादन सम्बंधों को खत्म कर नये समाजवादी सम्बंधों की स्थापना करेगी। जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे

कहा गया है: "सम्पूर्ण विश्व पूंजीवादी व्यवस्था सर्वहारा की सामाजिक क्रान्ति के लिए परिपक्व है।"

जनवाद के लिए संघर्ष समाजवाद के संघर्ष का अभिन्न अंग है

अधिकाधिक देशों के पूंजीवादी व्यवस्था से टूटकर बाहर निकलते जाने के साथ-साथ समाजवादी दुनिया का विस्तार और विकास जारी रहेगा। क्रान्ति के दौरान समाजवादी परिवर्तन जनवादी और साम्राज्य-विरोधी परिवर्तनों के संग गुंथे हुए चलते हैं। लेनिन ने पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के समाजवादी क्रान्ति मे परिणत हो जाने के अपने सिद्धान्त का निरूपण एव स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि साम्राज्यवाद के युग मे कोई ऐसी "विशुद्ध" क्रान्ति नही हो सकती जो अति-विविध सामाजिक समूहो के जनवादी, साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन के साथ सम्बद्ध न रहे। ऐसी परिस्थितियो में साम्राज्यवाद-विरोधी लोक आकांक्षाओं के सबसे अडिग हिमायती सर्वहारा के लिए लाजिमी है कि वह जनवादी आन्दोलन मे सबसे आगे रहे, उसमे भाग लेने वाले विभिन्न वर्गों को एकताबद्ध करे और पूंजीपतियो का तख्ता उलटने एव समाजवाद की विजय लाने मे उनका नेतृत्व करे।

यह सम्भव है कि कई देशो में क्रान्ति दो अपेक्षाकृत स्वतन्त्र मंजिलो से होकर गुजरे—एक आम जनवादी और दूसरी समाजवादी। सोवियत सघ तथा कुछ लोक जनतन्त्रों मे क्रान्ति का विकास ऐसे ही हुआ था। सोवियत सघ मे महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति से पहले फरवरी की पूंजीवादी जनवादी क्रान्ति हुई। कई लोक जनतन्त्रों मे क्रान्ति समाजवादी दौर मे प्रवेश करने से पहले साम्राज्य-विरोधी और जनवादी दौर से गुजरी। कुछ अन्य देशों मे, जहां पूंजीवाद का बोलबाला है, क्रान्ति का विकास इसी ढग से हो सकता है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद शक्तिशाली जनवादी आन्दोलन विकसित हुए। मिसाल के लिए—राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता कायम रखने का सघर्ष, शान्ति और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सघर्ष और अनेक पूंजीवादी देशो मे जनवाद के लिए सघर्ष। आज के जनवादी आन्दोलनो की एक खास विशेषता है कि उनका दायरा और सगठन असाधारण रूप से विशाल है। उनके प्रहार का लक्ष्य साम्राज्यवाद है, इजारेशाही की प्रतिगामी देश और विदेश नीतियां है।

इजारेशाह निर्ममतापूर्वक मजदूरो, किसानो और दस्तकारों का शोषण करते है, छोटे और मझोले पूंजीपतियो को बरबाद करते है, बुद्धिजीवियों की सृजनात्मक क्षमताओ को कुंठित करते है, प्रगतिशील शक्तियो का दमन करते है, जनवादी अधिकारो के अवशेषो को समाप्त करते है और नये विश्व युद्ध की तैयारी करते है। इसीलिए पूंजीवादी समाज के उत्तरोत्तर बड़े वर्गो एव समूहो का जीवन्त हित इस बात मे है कि इजारेदारियो के प्रभुत्व का खात्मा

कर दिया जाये। फलतः, इन सभी शक्तियों को शान्ति, राष्ट्रीय स्वतंत्रता और जनवाद, अर्थतंत्र की बुनियादी शाखाओं के राष्ट्रीयकरण, अर्थतंत्र के शान्तिपूर्ण उपयोग तथा आमूल भूमि सुधारों के लिए, मेहनतकशों की जीवनावस्थाओं में सुधार तथा उनके अधिकारों की रक्षा के लिए एक सम्मिलित संघर्ष में एकजुट करने की सम्भावना उत्पन्न होती है।

इजारेशाहियों के खिलाफ, शान्ति और जनवादी सुधारों के लिए संघर्ष का स्वरूप स्वभावतया समाजवादी नहीं होता। उसका लक्ष्य निजी सम्पत्ति और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करना नहीं है। पर यह संघर्ष इजारेशाहियों के शासन की जड़ें कमजोर करता है और राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं जनवाद की प्राप्ति को सुगम बनाता है। इससे समाजवादी क्रान्ति के लिए आवश्यक अवस्थाएं तैयार होती हैं।

मजदूर वर्ग का अन्य सभी मेहनतकशों के साथ—सर्वोपरि मुख्य सहयोगी किसानों के साथ—पूंजीवादी इजारेशाहियों के विरुद्ध संघर्ष में, जनवाद और शान्ति के लिए संघर्ष मे सहयोग कायम होता है। मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी के इर्दगिर्द एकजुट होकर मेहनतकश जनता—किसान बहुत सारे सफेदपोश कमकर और बुद्धजीवियों की एक बडी सख्या—प्रतिक्रियावाद-विरोधी संघर्ष की शिक्षा प्राप्त करती है। इसके दौरान यह चीज उनके मन में अधिकाधिक बैठती जाती है कि पूंजीवाद के अन्दर वे इजारेशाही जुल्मों से छुटकारा नहीं पा सकते। वे इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि पूंजीवाद का उन्मूलन ही उनके लिए एकमात्र मार्ग है। इस तरह से ही दक्षिणपंथी समाजवादी तथा सुधारवादी भ्रम धीरे-धीरे टूटते हैं और समाजवादी क्रान्ति की राजनीतिक फौज खडी होती है।

इस सबसे स्पष्ट है कि आज पूंजीवाद की आधारशिलाएं केवल सर्वहारा की प्रत्यक्ष सामाजिक क्रान्ति के दौरान ही नष्ट नहीं होती। समाजवादी क्रान्तियां साम्राज्य-विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति की क्रान्तियां, जनता की जनवादी क्रान्तियां, व्यापक किसान आन्दोलन, फासिस्टो एवं अन्य अत्याचारी शासनों के तख्ते के लिए जनता के संघर्ष तथा राष्ट्रीय उत्पीडन के विरुद्ध आम जनतांत्रिक आन्दोलन—ये सभी मिलकर एक विश्व क्रान्तिकारी प्रवाह का रूप धारण कर लेते हैं। यही प्रवाह पूंजीवाद की जड़ें खोखली करता और उसका नाश करता है।

विभिन्न देशों के समाजवाद में सन्तरण के रूप

विभिन्न देशों में समाजवाद में सन्तरण के ठोस रूप क्या होंगे, विभिन्न देश समाजवाद में किस तरह पदार्पण करेंगे—यह प्रश्न में, मानवजाति के समाजवाद में सन्तरण के युग में, भारी महत्व का है

सृजनात्मक मार्क्सवाद इस मान्यता के आधार पर चलता है कि पूंजीवाद से समाजवाद में संतरण के रूप सर्वोपरि उस देश के अन्दर वर्ग शक्तियों के अन्तस्सम्बन्ध पर निर्भर करते हैं। अगर मजदूर वर्ग और उसके मित्रों की ताकत स्पष्टतया पूंजीपतियों की ताकत से कहीं ज्यादा मजबूत है, तो पूंजीपति मुकाबला करना बेकार जानकर, लेनिन के शब्दों में, यह तय करते हैं कि चलो अपना सिर बचा लिया जाय, और वे सर्वहारा के हाथ में सत्ता समर्पित कर देते हैं। ऐसी हालत में पूंजीवाद से समाजवाद में शान्तिपूर्ण सन्तरण सम्भव है। पर यदि पूंजीपति यह "छूट" देने को तैयार नहीं होते और सशस्त्र मुकाबला शुरू करते हैं, तो मजदूर वर्ग को बलपूर्वक उनके प्रतिरोध को कुचलने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

मजदूर वर्ग बिला वजह तलवार नहीं भांजा करता। लेकिन उसे पूंजीपतियों के हथियारबन्द हमले का मुंहतोड़ जवाब देने और अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

१९१७ की फरवरी क्रान्ति के बाद बोल्शेविकों ने क्रान्ति के शान्तिपूर्ण विकास का सवाल उठाया। अगर यह नहीं हो सका, तो इसके लिए सर्वहारा वर्ग दोषी नहीं है। उस समय दुनिया भर में पूंजीपतियों का एकछत्र राज्य था और उसका ख्याल था कि वह बड़ा प्रबल है, इसलिए वहां समाजवाद में शान्तिपूर्ण सन्तरण की सम्भावनाएं कम थीं।

अब परिस्थिति भिन्न है। पिछले युद्ध के बाद से पूंजीवाद और समाजवाद की शक्तियों का जो अन्तस्सम्बन्ध प्रकट हुआ, उसने समाजवाद में शान्तिपूर्ण सन्तरण की सम्भावना बहुत बढ़ा दी है। खुद पूंजीवादी देशों में यह सम्भावना जनवादी और समाजवादी शक्तियों के विकास के कारण तथा जनता के बीच मजदूर वर्ग और उसकी मार्क्सवादी पार्टी के पहले से अधिक प्रभाव के कारण तेजी से बढ़ती जा रही है।

ऐसी अवस्थाओं के अन्तर्गत कुछ देशों के मजदूर वर्ग के सामने—जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता के व्यापक आन्दोलन का सहारा लेगा—बिना रक्तपात और गृहयुद्ध के सत्ता दखल करने के अधिक अवसर होंगे।

संसदीय मार्ग समाजवादी क्रान्ति के शान्तिपूर्ण विकास का एक मार्ग हो सकता है। कई पूंजीवादी देशों के अन्दर मजदूर वर्ग को यदि जनता के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो जाये और वह अवसरवादियों से दृढ़तापूर्वक संघर्ष करे, तो वह संसद में स्थायी बहुमत प्राप्त कर सकेगा, संसद को मेहनतकश जनता की सेवा करने का साधन बना सकेगा और प्रतिक्रियावादी ताकतों के विरोध को विफल करके शान्तिपूर्ण समाजवादी क्रान्ति के लिए आवश्यक अवस्थाएं तैयार कर सकेगा।

अध्याय १९

सामाजिक चेतना और समाज के विकास में उसकी भूमिका

लोगों के भौतिक, आर्थिक सम्बंध ही सामाजिक विकास का आधार होते हैं। पर इस विकास को समझने के लिए केवल आर्थिक तत्वों का ज्ञान नाकाफी होता है। जनता और समाज का उत्पादक सक्रियता के अलावा अपना एक आत्मिक जीवन भी होता है। लोग निश्चित राजनीतिक और नैतिक विचारों से निर्देशित होते हैं। उनके अपने वैज्ञानिक मत होते हैं, कला के सम्बंध में अपने खास विचार होते हैं और इसी तरह अन्य चीजों पर उनकी अलग रायें होती हैं। उत्पत्ति और महत्व के लिहाज से इन सभी विचारों और मतों का अपना एक सामाजिक चरित्र होता है। ये सब सामाजिक चेतना के क्षेत्र की चीज होते हैं।

सामाजिक चेतना का ऐतिहासिक विकास में भारी महत्व है। समाज की अधिक पूर्ण धारणा प्राप्त करने के लिए हमें निश्चय करना होगा कि सामाजिक चेतना क्या है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई और समाज के जीवन मे उसकी भूमिका क्या होती है।

१. सामाजिक सत्ता के प्रतिबिम्ब के रूप में सामाजिक चेतना

सामाजिक चेतना का सारतत्व और उसकी उत्पत्ति

सामाजिक चेतना आदर्शों, सिद्धान्तों और मतों, जनता की सामाजिक भावनाओं, आदतों और रीति-रिवाजों का कुल योग है। ये सब वस्तुगत यथार्थ को—मानव समाज और प्रकृति को—प्रतिबिम्बित करते हैं। जनता की सामाजिक सत्ता वह मुख्य वस्तु है जो सामाजिक चेतना द्वारा प्रतिबिम्बित होती है। सामाजिक सत्ता नानारूपी और जटिल है, अतः सामाजिक चेतना भी नानारूपी और जटिल होती है। राजनीति और कानून सम्बंधी विचार, नैतिकता, कला, विज्ञान, दर्शन और धर्म सामाजिक चेतना के रूप हैं। इन रूपों की उत्पत्ति और विकास अलग-अलग ढंगों से हुए हैं। वे सामाजिक सत्ता के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। जो कार्य वे सम्पन्न करते हैं, वे भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

समाज के जीवन में विचारों की, सामाजिक चेतना की, भूमिका क्या है, इसकी सही व्याख्या करने में भावनावाद असमर्थ है। भावनावादियों के मत से सामाजिक विकास का पूरा क्रम भावनाओं द्वारा निर्णीत होता है। पर यह मत वास्तविकता से कोई मेल नहीं खाता।

ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के सन्दर्भ में दर्शन के मूल प्रश्न का सही-सही हल प्रस्तुत करता है, और ऐसा करके यह सिद्ध करता है कि लोगों की सामाजिक चेतना उसकी सामाजिक सत्ता की उपज होती है। हमें सामाजिक सत्ता में, यानी लोगों की भौतिक उत्पादन सम्बन्धी कार्यशीलता में, उनके विचारों, सिद्धान्तों और मतों का उद्गम स्रोत ढूंढना चाहिए।

समाज का इतिहास बतलाता है कि जैसे-जैसे लोगों की सामाजिक सत्ता बदलती है, वैसे-वैसे उनकी चेतना भी बदलती है। पुराने ख्यालात लुप्त हो जाते हैं और नये ख्यालात का आविर्भाव होता है जो नयी अवस्थाओं के, नयी सामाजिक जरूरतों के अनुरूप होते हैं। उदाहरणार्थ, समाजवाद की विजय से लोगों की सामाजिक सत्ता में आमूल परिवर्तन हो गया—पूंजीवादी निजी सम्पत्ति की जगह समाजवादी सम्पत्ति ने ले ली। तदनुसार लोगों के ख्यालात और मत भी बदल गये। व्यक्तिवाद के सिद्धान्त की जगह, जो पूंजीवादी नैतिकता की आधारशिला है, सामूहिकतावाद का सिद्धान्त पनपा, जो कम्युनिस्ट नैतिकता की बुनियाद है।

इसी तरह यदि हम सामाजिक चेतना के किसी अन्य रूप का विश्लेषण करें, तो पायेंगे कि उसका भी चरम स्रोत समाज का भौतिक जीवन है।

विचारधारा का वर्ग-स्वरूप

वर्ग-समाज में सामाजिक चेतना का रूप चाहे जो भी हो, वह लाजमी तौर पर वर्ग-स्वरूप अख्तियार कर लेती है। किसी खास वर्ग के राजनीतिक, कानून सम्बंधी, कला सम्बंधी एवं अन्य मतों और विचारों के कुल पुंज को उस वर्ग की विचारधारा कहते हैं।

विचारधारा के वर्ग-स्वरूप का कारण क्या होता है? हर वर्ग क्यों अपनी विशिष्ट विचारधारा उत्पन्न करता है? वैमनस्यपूर्ण वर्ग-समाज में वर्गों की स्थिति अत्यन्त असम होती है और उनके सामने भिन्न-भिन्न सामाजिक लक्ष्य एवं कार्य रहते हैं। मतों की अपनी एक निश्चित व्यवस्था के जरिए ही कोई वर्ग समाज में अपनी स्थिति को अभिव्यक्त करता एवं उसे उचित ठहराता है। उसके जरिए ही वह अपने हितों की हिफाजत करता है। उसके जरिए ही वह अपने लक्ष्यों को सिद्ध करने तथा अपने सामने उपस्थित कार्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ, पूंजीवादी समाज यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि निजी पूंजीवादी सम्पत्ति एवं शोषण शाश्वत ...

ार, सर्वहारा के सामने पूंजीवाद का उन्मूलन करने तथा समाजवाद का
र वर्ग एवं शोषण रहित समाज का—कम्युनिज्म का निर्माण करने का कार्य
स्थित होता है। इसके लिए उसे गुणात्मक रूप से नयी समाजवादी विचार-
ारा की आवश्यकता होती है।

विरोधी वर्गों में बंटे समाज की अपनी एक विचारधारा नहीं हो सकती।
षक और शोषित वर्गों की अपनी अलग-अलग विचारधाराओं की जरूरत
। किन्तु बोलबाला उसी वर्ग की विचारधारा का होता है जिसका आर्थिक
र राजनीतिक प्रभुत्व रहता है। विचारधाराओं का तीव्र संघर्ष, जो वर्ग संघर्ष
ा एक रूप है, वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज की सदा से एक विशेषता रही है।

जब विचारधारा का सदा एक वर्ग-स्वरूप होता है, तो क्या वह सत्य को
तिबिम्बित कर सकती है? क्या वह वर्ग-हितों के अनुकूल यथार्थ को विकृत
हीं करेगी? संशोधनवादियों का कहना है कि विचारधारा और सत्य का
ोई मेल नहीं, विचारधारा तो इस या उस वर्ग के हितों के लिए
त्य को सूली चढ़ा देती है। किन्तु मार्क्सवाद मांग करता है कि हमें विचार-
ारा को ठोस और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए जिससे कि यह
िश्चित हो सके कि वह किस वर्ग के—प्रगतिशील वर्ग के या प्रतिगामी वर्ग के
—हितों का प्रतिनिधित्व करती है। कोई वर्ग जब तक सामाजिक विकास में
गतिशील भूमिका अदा करता है, जब तक उस वर्ग के हित वस्तुगत
यथार्थ के विकास के साथ मेल खाते हैं, तब तक उसकी विचारधारा में सत्य
का समावेश होता है। किन्तु ज्यों ही उस वर्ग की प्रगतिशील भूमिका समाप्त
हो जाती है और उसके हित विकास के यथार्थ क्रम से टकराने लगते
हैं, त्यों ही उसकी विचारधारा में सत्य नहीं रह जाता है और वह यथार्थ को
अपने वर्ग हितों के अनुरूप बनाने के लिए उसे तोड़ने-मरोड़ने लगता है।

उदाहरणार्थ, पूंजीवादी विचारधारा को ले लें। जब तक पूंजीपति वर्ग
सामन्तशाही से लड़ रहा था, तब तक उसकी विचारधारा विश्व को ऐसे ढंग से
प्रतिबिम्बित करती रही जो अपेक्षाकृत सत्य था। पर ज्यों ही पूंजीपति वर्ग के
हाथ में सत्ता आयी, ज्यों ही उसकी प्रगतिशील क्षमताएं समाप्त हो गयीं और
वह सामाजिक विकास की पांव की बेड़ी बन गया, त्यों ही पूंजीवादी विचार-
धारा यथार्थ को सत्यतापूर्वक प्रतिबिम्बित करने की योग्यता खो बैठी। मार्क्स
के शब्दों में: "निर्लिप्त जिज्ञासुओं का स्थान भाड़े पर दंगल लड़ने वाले
पहलवानों ने लिया। सच्चे वैज्ञानिक अनुसंधान का स्थान एक वकील की
खोट भरी अन्तरात्मा और बदनीयती ने ले ली।"[1]

---

१. मार्क्स, पूंजी, भाग १, पृष्ठ १५।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा अन्त तक वैज्ञानिक और सत्य रहती है, क्योंकि मजदूर वर्ग के वर्ग-हितों तथा इतिहास के वस्तुगत क्रम में सदा मेल रहता है और इस वजह से मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा की सत्य को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता उसके विकास की हर मंजिल में कायम रहती है।

चेतना के विकास की सापेक्ष स्वतंत्रता

हम ज्ञात कर चुके हैं कि लोगों की सामाजिक सत्ता, उनकी भौतिक, उत्पादन सम्बधी कार्यशीलता उनकी सामाजिक चेतना को निर्धारित करती है। किन्तु चेतना को अपने विकास में एक सापेक्ष स्वतंत्रता भी प्राप्त होती है।

सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता के विकास से पीछे छूट जाती है या उससे आगे निकल जाती है। वह विकास की निरंतरता में भी अभिव्यक्त होती है। वह सत्ता के सम्बंध में निष्क्रिय नहीं रहती, वरन् सक्रिय रूप से सत्ता को प्रभावित करती है।

सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता से इसलिए पीछे छूट जाती है कि पहले लोगों की सामाजिक सत्ता बदलती है और उसके बाद ही उनकी चेतना परिवर्तित होती है। इसके अलावा, पुराने विचारों और मतों में भारी जीवन क्षमता रहती है और यह भी इस बिलम्ब का कारण होता है। उनकी यह जीवन क्षमता आकस्मिक नहीं होती। इसके पीछे यह बात भी होती है कि शासक वर्ग समाज के सभी सदस्यों के बीच अपनी विचारधारा को कारगर रूप से फैलाने के लिए अपने पास के हर साधन का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए, साम्राज्यवादी पूंजीपति मेहनतकश जनता के मस्तिष्क में विष घोलने और उसे बौद्धिक रूप से निरस्त्र करने के लिए आम प्रचार के सभी साधन (प्रेस, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, आदि) काम में लाते हैं। इसीलिए नयी व्यवस्था की जीत के बाद भी पुरानी विचारधारा के अवशेष कुछ लोगों के मस्तिष्क में बहुत दिनो तक बने रहते हैं।

पर जनता की सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता के विकास से सदा पीछे रह जाती हो, ऐसी बात नहीं है। कुछ अवस्थाओं में वह इस विकास से आगे भी निकल जा सकती है। असाधारण पुरुष समाज के नियमों का विश्लेषण करके और ऐतिहासिक विकास की आम प्रवृत्तियों को ज्ञात करके भविष्य के पूर्वदर्शन कर सकते हैं, यानी ऐसे सिद्धान्तों का आविष्कार कर सकते हैं जो उनके समय से बहुत आगे होते हैं और आने वाले अनेक दशकों के विकास का पथ निर्देशित करते हैं। वैज्ञानिक कम्युनिज्म का मार्क्सवादी सिद्धान्त सामाजिक घटनाओं को पहले से ही देख लेने का एक भव्य उदाहरण है।

विचारधारा के विकास में निरन्तरता सामाजिक चेतना की सापेक्ष [illegible] एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। नया वर्ग अपनी विचारधारा की

सृष्टि करता है, किन्तु ऐसा करते समय वह मानव चिन्तन की पिछली तमाम उपलब्धियो को तजता नही है, वरन् उन्हें आत्मसात करता है और उन्हे अपने उपयोग मे लाता है।

विचारों के विकास मे निरन्तरता का होना सामाजिक जीवन में भारी महत्व रखता है। यदि हम अतीत की संस्कृतिक उपलब्धियों का उपयोग करने में असम हों, तो हमे हर बार सब कुछ शून्य से ही आरम्भ करना होगा, जिन नियमों का बहुत पहले ज्ञान प्राप्त किया जा चुका है उनका फिर से पता लगाना पड़ेगा, आवश्यक मशीनों को बनाने की बहुत पहले ईजाद की जा चुकी तरकीबें फिर से ढूढनी होगी। और इसी तरह आम चीजों की पुनरावृत्ति करनी होगी। किन्तु विचारो के विकास मे निरन्तरता होने के कारण ऐसा नहीं होता। पूर्ववर्ती पीढ़ियो की महती उपलब्धिया हमारे पास मौजूद रहती हैं, अत हम अपने पूर्ववर्तियों के कार्य को जारी रख पाते हैं, उनकी उपलब्धियो को विकसित एव उन्नत करते हैं और उन्हें नये, उच्च स्तर पर पहुचाते हैं।

पुरानी बौद्धिक विरासत के प्रति भिन्न-भिन्न वर्ग भिन्न-भिन्न रुख अपनाते हैं। प्रतिगामी वर्ग अतीत से प्रतिगामी विचारो को लेते हैं और उन्हे नयी ऐतिहासिक अवस्थाओं के अनुसार, अपने स्वार्थ हितो के अनुसार ढालते है। *उदाहरणार्थ, साम्राज्यवाद के विचारवेत्ता मेहनतकश जनता को आत्मिक दासता* के पाश मे बांधे रखने के लिए मध्ययुगीन पण्डिताउपन और रहस्यवाद एव अनेक भाववादी तथा धार्मिक पथों का उपयोग करते हैं।

प्रगतिशील, क्रान्तिकारी वर्ग अतीत की बौद्धिक विरासत मे से उन चीजो को लेते हैं जिनका सकारात्मक महत्व समाप्त नहीं हुआ है और जो मानवजाति की प्रगति को आगे बढ़ा सकती हैं।

२. सामाजिक विकास में विचारों की सक्रिय भूमिका

ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक चेतना और लोगों के विचारो और मतो के मुकाबले म सामाजिक सत्ता की प्रधानता घोषित करता है। साथ ही वह यह भी स्वीकार करता है कि समाज के विकास में विचार सक्रिय भूमिका अदा करते हैं। सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र मे जनगण सदा सचेत एव सोद्देश्य रूप से कार्य करते हैं। इसलिए उनके विचार, मत एव सिद्धान्त जीवन के सभी पहलुओ मे प्रविष्ट होते है तथा उन पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। सामाजिक विचारो की सक्रियता इस चीज मे प्रदर्शित होती है कि वे जनता के लिए कार्य क्षेत्र मे पथदर्शक का काम करते हैं, उसे ऐक्यबद्ध करते हैं तथा कतिपय कार्यों की सिद्धि की दिशा मे उसके प्रयासो को केन्द्रित करते हैं।

विचार समाज के विकास में योगदान करते हैं अथवा उसमें बाधक बनते हैं। विचार क्या भूमिका अदा करते हैं, यह निर्भर करता है उनका पृष्ठपोषण करने वाले वर्ग पर (वह वर्ग प्रगतिशील है अथवा प्रतिगामी है)—इस बात पर कि वे समाज के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं को किस कदर ठीक-ठीक प्रतिबिम्बित करते हैं तथा इस पर कि वे किस हद तक जनगण के हितों के अनुरूप हैं।

केवल उन विचारों का सामाजिक विकास में प्रगतिशील महत्व हो सकता है जो समाज के उन्नत वर्गों के—मेहनतकश जनता के—हितों को अभिव्यक्त करते हैं, जो विकसित हो रहे भौतिक उत्पादन की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं और पुरानी सामाजिक व्यवस्था का उन्मूलन तथा नयी व्यवस्था की स्थापना करने में सहायक होते हैं।

विचार चाहे कितने ही नूतन एवं प्रगतिशील क्यों न हों, वे स्वयंमेव पुरानी सामाजिक व्यवस्था का अन्त करने तथा नयी की स्थापना करने में असमर्थ हैं। ये विचार जब जनगण के मस्तिष्क पर छा जाते हैं, तभी वे एक भौतिक शक्ति बन पाते हैं। प्रगतिशील विचारों को हृदयंगम करने वाली जनता ही उस सामाजिक शक्ति का सृजन कर सकती है जिसमें फौरी सामाजिक समस्याओं को हल करने की क्षमता होती है।

मानवजाति के सामने अनेक विचार आये हैं जिनमें वैज्ञानिक कम्युनिज्म सबसे अधिक प्रगतिशील है। उसमें जीवन शक्ति है, क्योंकि वह सामाजिक विकास को अधिशासित करने वाले वस्तुगत नियमों पर आधारित है और समाज के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं तथा करोड़ों मेहनतकश जनता के हितों की पूर्ति करता है। इसीलिए वैज्ञानिक कम्युनिज्म का विचार विश्व में कायापलटकारी शक्ति है। इस विचार ने रूसी मजदूर वर्ग को भी अनुप्राणित किया जिसने गरीब किसानों के साथ मैत्री करके, कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में, अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की। उसने सोवियत जनता की समाजवाद के लिए उनके वीरतापूर्ण संघर्ष में सेवा की और अब कम्युनिस्ट भविष्य की दिशा में उसका मार्ग आलोकित कर रहा है। यह विचार समूचे विश्व में अधिकाधिक जन-साधारण के मस्तिष्क में घर करता जा रहा है। यह पूंजीवादी देशों की मेहनतकश जनता को प्रतिगामी साम्राज्यवादी शक्तियों से लड़ने में और जहां पूंजीवाद समाप्त किया जा चुका है, वहां समाजवाद की स्थापना करने में सहायता दे रहा है।

पिछड़े हुए विचार, जो यथार्थ को विकृत करते हैं और प्र[illegible] वर्गों के हितों की पूर्ति करते हैं, समाज के विकास में बाधा डाल[illegible] प्रतिगामी पूंजीपतियों के विचार ऐसे ही विचार हैं।

इस सबसे स्पष्ट है कि सामाजिक विचार मानवजाति के जीवन में बड़े महत्वपूर्ण हैं। अतः व्यावहारिक कार्यकलाप में यह महत्वपूर्ण है कि सामाजिक सत्ता की निर्णायक भूमिका पर ध्यान रखा जाये तथा समाज के विकास में विचारों की सक्रिय भूमिका का लेखा लिया जाये।

३. राजनीतिक और कानूनी विचार

राजनीति और अर्थशास्त्र

राजनीति और राजनीतिक सम्बंध सर्वोपरि वर्गों के सम्बधों का, सत्ता के लिए समाज में प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उनके संघर्ष का नाम है। राज्यों और राष्ट्रों के सम्बन्ध भी राजनीतिक क्षेत्र में आते हैं। राजनीति का वर्गों, वर्ग संघर्ष और राज्य के साथ आविर्भाव हुआ। राजनीति राज्य का मुख्य कार्यकलाप है।

वर्गों के परस्पर सम्बध के रूप में राजनीति का आविर्भाव समाज के आर्थिक ढांचे से—उसके आधार से होता है। लेनिन ने राजनीति की उत्पत्ति और समाज के आर्थिक ढांचे के साथ उसके अटूट सम्बधों को बताते हुए कहा था कि राजनीति अर्थशास्त्र की केन्द्रीभूत अभिव्यक्ति है, उसका सारांश एवं परमगति है। राजनीति में ही वर्गों के आर्थिक हित अपनी पूर्ण सर्वतोमुखी अभिव्यजना प्राप्त करते हैं।

किन्तु अर्थशास्त्र से उद्भूत राजनीति स्वयं अर्थतंत्र पर भी भारी प्रभाव डालती है। वह सामाजिक विकास के सम्पूर्ण क्रम पर भारी प्रभाव डालती है। अर्थतंत्र का विकास सामाजिक व्यवस्था के कायापलट के लिए भूमि तैयार करता है। परन्तु अपने आप में यह कायापलट जनगण के सचेत कार्यकलाप का परिणाम होता है और ये कार्यकलाप राजनीति द्वारा निर्देशित होते हैं। समाज के जीवन तथा विकास में राजनीति की अवश्यम्भ भूमिका का लेखा लेते हुए लेनिन ने कहा था कि अर्थशास्त्र के ऊपर राजनीति का प्राधान्य होना अनिवार्य है। इसका अर्थ यह हुआ कि आर्थिक और उत्पादन कार्यों की पूर्ति के प्रति राजनीतिक दृष्टिबिन्दु, वर्ग दृष्टिबिन्दु रखना आवश्यक है। लेनिन के शब्दों में : "विषय के प्रति समुचित राजनीतिक रुख रखे बिना कोई वर्ग अपना शासन कायम नहीं रख सकता, और फलस्वरूप, अपनी उत्पादन समस्याएं हल नहीं कर सकता।"[1]

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य बिरादराना कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के कार्यकलाप को जो चीज विशिष्टता प्रदान करती है, वह है

---

१ लेनिन, संकलित रचनाएं, खंड ३, पृष्ठ ५७४।

राजनीतिक दल, वर्ग दल। किसी भी आर्थिक अथवा संगठनात्मक सवाल हल करने में कम्युनिस्ट पार्टी सदा से ही मजदूर वर्ग के हितों को, सभी मेह कशों के हितों को आधार बना कर चली है। उदाहरण के लिए, मजदूर के, पूरी सोवियत जनता के बुनियादी हितों ने ही देश के औद्योगीकरण त कृषि के सामूहीकरण जैसे समाजवादी आधार पर राष्ट्रीय अर्थतंत्र के पुनर्ग से सम्बन्धित मौलिक पगों को उठाये जाने की प्रेरणा दी।

राजनीतिक विचार और उनका महत्व

जनगण के राजनीतिक विचार एवं मत राजनीति के साथ घनिष्ठ रूप में जुड़े हुए हैं। राजनीति वर्गों, जातियों और राज्यों के सम्बधों को अभिव्यक्त करती है, और राजनीतिक विचार इन सम्बधों को प्रतिबिम्बित और प्रमाणित करते हैं। राजनीतिक विचारों के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष और क्रांति एवं राजनीतिक और राज्यीय व्यवस्था के बारे मे, राज्यों के पारस्परिक सम्बधों तथा युद्ध और शांति से सम्बंधित सवालों के बारे में वर्ग विशेष के मत आते हैं। ये मत वर्गों के प्रत्यक्ष संघर्ष में तथा राज्यों, पार्टियो और अन्य राजनीतिक संस्थाओं और संगठनों के कार्यकलाप में लागू किये जाते हैं।

राजनीतिक विचारों को राज्य संविधानो, पार्टियों और अन्य राजनीतिक संगठनो के कार्यक्रमों एवं घोषणाओं, विशेष सैद्धान्तिक विवेचनाओं और अन्य प्रलेखों में अभिव्यक्ति प्राप्त होती है।

वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज मे राजनीतिक विचारों का स्वरूप उन वर्ग हितों पर निर्भर करता है जिनको वे अभिव्यक्त करते हैं। शोषक वर्ग राजनीतिक विचारो की मदद से अपनी प्रभुत्वशील स्थिति को उचित ठहराने की और अपने आर्थिक आधार को सुदृढ़ बनाने की कोशिश करता है और यह उसके विचारो के स्वरूप को निर्धारित करता है। शोषित वर्ग अपने राजनीतिक विचारों मे शोषण व्यवस्था का अन्त करने और नया समाज—शोषणरहित समाज—बनाने की आवश्यकता सिद्ध करता है। शोषितो की राजनीतिक विचारधारा क्रान्तिकारी संघर्ष की, पुरातन के उन्मूलन तथा नूतन के सृजन की विचारधारा होती है।

इस समय दुनिया में दो विरोधी विचारधाराओं में—मजदूर वर्ग की विचारधारा एवं पूजीपति वर्ग की विचारधारा में—गुत्थमगुत्थी चल रही है। मजदूर वर्ग की राजनीतिक विचारधारा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयता, सभी देशों के मेहनतकशों की मैत्री तथा शान्ति, जनवाद और समाजवाद के समान संघर्ष में सभी प्रगतिशील शक्तियों की एकता और सहयोग की विचारधारा है। यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त मे, कम्युनिस्ट पार्टियों के कार्यक्रमों मे और समाजवादी देशों के संविधानों [illegible]

होती है। यह विचारधारा पूंजीपतियों के विरुद्ध और समाजवाद तथा कम्युनिज्म की विजय के लिए मजदूर वर्ग और तमाम मेहनतकशों के वर्ग संघर्ष की आवश्यकता सिद्ध करती है। यह मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी के लिए राजनीतिक संघर्ष में, जो सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का सर्वोच्च रूप है, मार्गदर्शक का काम करती है।

मजदूर वर्ग की नीति और उसके राजनीतिक विचार वास्तविक रूप में वैज्ञानिक होते हैं। वे सामाजिक विकास के नियमों के ज्ञान पर आधारित होते हैं और उनका जनता के हितों के साथ पूर्ण साम्य होता है। इतिहास का अनुभव *तथा विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की महती सफलताएं इन विचारों की शक्ति* एवं जीवन्तता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मजदूर वर्ग के राजनीतिक विचारों के मुकाबले में साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के राजनीतिक विचार हैं जिनका लक्ष्य पूंजीवादी मजूरी-गुलामी को सदा के लिये बरकरार रखना होता है। इन विचारों का प्रयास होता है देश के अन्दर मजदूर वर्ग और जनवादी शक्तियों के दमन की नीति को तथा जातीय उत्पीड़न और नये विश्व युद्ध की तैयारी की नीति को उचित ठहराना।

आज के पूंजीपतियों के राजनीतिक विचारों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वे सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों और जनता के हितों के विरुद्ध हैं और इसलिए उनकी असफलता अनिवार्य है। आज के साम्राज्यवादी पूंजीपतियों के तमाम प्रतिक्रियावादी कुचक्र उसी प्रकार निष्फल सिद्ध होंगे जिस तरह कि नाजियों के विश्व आधिपत्य के विचार चकनाचूर हुए और आज उपनिवेशवाद की नीति चकनाचूर हो रही है।

सामाजिक चेतना के जितने सारे रूप हैं, उनमें राजनीति और राजनीतिक विचार आर्थिक आधार के निकटतम होते हैं। राज्य तथा पार्टियों एवं अन्य राजनीतिक संगठनों के कार्यकलाप के माध्यम से राजनीति एवं राजनीतिक विचार सामाजिक विकास के आधार तथा उसके पूरे क्रम को प्रभावित करते हैं। वे सामाजिक चेतना के अन्य सभी रूपों के—कानून, नैतिकता, कला, धर्म, दर्शन और विज्ञान के—विकास पर खास तौर पर असर डालते हैं। वे सामाजिक चेतना के इन सभी रूपों में व्याप्त हो जाते हैं, उन्हें वर्ग आधार प्रदान करते हैं तथा इनको एक खास वर्ग का हथियार बना देते हैं।

कानून और कानून सम्बंधी विचार

समाज में कानूनी सम्बन्धों का भी अस्तित्व होता है जो कानून द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। कानून समाज में लोगों के आचरण के बाध्यतामूलक मानदण्डों और नियमों का कुल जोड़ है। ये नियम तदनुरूप कानूनों में अभिव्यक्त होते हैं जिन्हें राज्य तथा उसके अन्तर्निहित दमन संरक्षण प्रदान करते हैं।

राजनीति की तरह कानून का उदय भी वर्गों और राज्यों के साथ हुआ। कानून शासक वर्ग की कानूनी रूपों में अभिव्यक्त मर्जी होता है और यह शासक वर्ग के राजनीतिक और आर्थिक हितों की हिफाजत करता है।

वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज के इतिहास में दास कानून, सामन्ती कानून और पूंजीवादी कानून आये। इन सबने शोषितों के विरुद्ध संघर्ष में शोषकों का साथ दिया। एक समाजवादी कानून ही है जो मेहनतकश जनता के हितों को अभिव्यक्त करता है। वही जनता का असली कानून है।

जनता के कानूनी सम्बंधों में और उसके कानूनी विचारों और मतों में भेद करना चाहिए। जनता के कानूनी विचार और मत किसी समाज के कानून के प्रति जनता के रुख को प्रस्तुत करते हैं। वे यह भी बताते हैं कि जनता, राज्य और जातियों के सम्बंध में जनता की कानूनी और गैर-कानूनी तथा बाध्यतामूलक और अबाध्यतामूलक धारणाएं क्या हैं।

कानून सम्बंधी विचारों और मतों का एक वर्ग स्वरूप होता है और वे किसी खास वर्ग के हितों को अभिव्यक्त करते हैं। वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में शोषक वर्ग के कानूनी विचारों का बोलबाला रहता है। अन्य वर्गों पर अपनी मर्जी लादने के लिए शासक वर्ग केवल राज्य-यंत्र का ही इस्तेमाल नहीं करता, वरन् कानूनी विचारों से भी काम लेता है। इन विचारों के जरिए वह अपने द्वारा संस्थापित कानून को उचित ठहराने, उसके वर्ग-स्वरूप पर परदा डालने तथा उसे जनता के कानून के—न्याय और नेकी की उच्चतम अभिव्यक्ति के—रूप में पेश करने की कोशिश करता है।

उदाहरण के लिए, पूंजीवादी समाज को ले लें। उसकी अपनी एक विधि व्यवस्था है जो पूंजीपतियों के कानून सम्बंधी विचारों पर आधारित है। इन विचारों का उद्देश्य यह सिद्ध करना होता है कि पूंजीवादी कानून से अधिक न्यायपूर्ण कोई कानून समाज में हो ही नहीं सकता, यह कि पूंजीवादी कानून जनवाद का मूर्त रूप है और पूंजीवादी अदालत निरपेक्ष न्यायालय है, आदि। पर वास्तव में पूंजीवादी कानून पूंजीवादी सम्पत्ति की रक्षा करता है और शोषण को तथा प्रगतिशील शक्तियों के दमन को उचित ठहराता है।

समाजवादी राज्य के उदय के साथ समाजवादी कानून ने जन्म लिया। समाज के इतिहास में यह पहला कानून है जिसमें जनता की मर्जी अवमानना के लिए कोई स्थान नहीं है।

समाजवादी कानून और उसमें अन्तर्निहित कानूनी विचार वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाजों के कानून और कानूनी विचारों से सर्वथा भिन्न हैं। वे समग्र जनता के हितों को अभिव्यक्त करते हैं। वे समाजवाद के आर्थिक आधार की—समाजवादी सम्पत्ति की—हिफाजत करने तथा उसे [illegible] करने में महत्त्वपूर्ण

होते हैं। वे सोवियत जनता को यह सिखाते हैं कि वे कानून का पालन करें तथा अपने इस कर्तव्य को अच्छी तरह से अंजाम दिया करें। समाजवादी राज्यसत्ता का बलप्रयोग-तंत्र शक्ति के लिये है जिसका कोई देश नहीं है। इसीलिए सोवियत सत्ता और कम्युनिस्ट पार्टी समाजवादी कानून और सुव्यवस्था को निरन्तर सुदृढ़ बनाते रहते हैं तथा इनका उल्लंघन बर्दाश्त नहीं करते।

समाजवादी समाज के कानून व्यक्ति और जनता के हितों के साथ पूर्णतया मेल खाते हैं, इसलिए सोवियत नागरिकों का भारी बहुमत स्वेच्छा से और होशपूर्वक उनका पालन करता है। सोवियत राज्य को केवल उन लोगों के विरुद्ध ही बलप्रयोग करना पड़ता है जो दुर्भावनापूर्वक जन-सुरक्षा का हनन करते हैं, सामाजिक सम्पत्ति की चोरी करते हैं या कोई अन्य अपराध करते हैं।

समाज के कम्युनिज्म की ओर आगे बढ़ते जाने के साथ नागरिकों से जबरन कानून का पालन कराने वाली शक्ति के रूप में राज्य की भूमिका कम होती जायेगी और समाजवादी कानून-कायदे की हिफाजत करने का कार्य धीरे-धीरे जन-संगठनों को हस्तान्तरित होता जायेगा। इन संगठनों का काम केवल यही नहीं होगा कि कानून का उल्लंघन करने वालों को पकड़ें और उन्हें सजा दें, बल्कि यह भी होगा कि सोवियत नागरिकों को कानूनों का आदर करना और उन्हें अपने आप से उनका पालन करना सिखायें।

भविष्य में जैसे-जैसे भौतिक और सांस्कृतिक मानदंड ऊपर उठते जायेंगे और सामाजिक चेतना एवं संगठन बेहतर होते जायेंगे, वैसे-वैसे कानून के उल्लंघनों के पूर्ण उन्मूलन के लिए तथा न्यायालय द्वारा दंडों के स्थान पर सामाजिक प्रभाव और शिक्षा सम्बन्धी उपायों की पूर्ण स्थापना के लिए सभी समुचित अवस्थाएं पैदा होंगी। कम्युनिज्म की पूर्ण विजय के साथ कानून की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। अधिकार और कर्तव्य स्वभावतया एकाकार हो जायेंगे और कम्युनिस्ट जीवन-विधि के नियम बन जायेंगे।

४. नैतिकता

नैतिकता का सारतत्व और सामाजिक जीवन में उसका स्थान

नैतिकता अथवा आचारनीति समाज के मानदंडों या आचरण के नियमों के कुल जोड़ को कहते हैं जो जनता के न्याय-अन्याय, अच्छाई-बुराई, मान-अपमान आदि सम्बन्धी विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं। कानूनी नियम कानूनों में कलमबद्ध होते हैं, पर नैतिक मानदंड या नियम कलमबद्ध नहीं होते। इनका पोषण जनमत, रिवाजों, आदतों और शिक्षा के द्वारा होता है, मानव के विश्वास की शक्ति से होता है। वे ही समाज के साथ,

अन्य जातियों के साथ, परिवार तथा अन्य लोगों के साथ किसी मनुष्य के सम्बंधों को निर्धारित करते हैं।

मानव समाज की उत्पत्ति के साथ ही नैतिकता की उत्पत्ति हुई। अपने सदस्यों से समाज के सदा से ही कुछ तकाजे रहते आये हैं जो नैतिक मानदंडों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। ये मानदंड अपरिवर्तनीय नहीं हैं। ये उत्पादन में और सर्वोपरि उत्पादन-सम्बंधों में परिवर्तनों के प्रभाव के अंतर्गत समाज के विकास के साथ बदलते रहते हैं। आदिम समाज में नैतिक मानदंड सभी सदस्यों के लिए एक थे। वर्गों के उदय के साथ वे इस या उस वर्ग के हितों को प्रतिबिम्बित करने लगे। नैतिकता ने वर्ग-स्वरूप ग्रहण कर लिया। वैमनस्यपूर्ण वर्गों में विभाजित समाज में शोषकों और शोषितों की अलग-अलग नैतिकता होती है। पर बोलबाला शासक-वर्ग की नैतिकता का रहता है। दास समाज में दास-स्वामियों की नैतिकता का बोलबाला था। सामन्ती समाज में सामन्ती प्रभुओं की नैतिकता का और पूंजीवादी समाज में पूंजीपतियों की नैतिकता का बोल-बाला रहा। इनके विरुद्ध थे: दासों, किसानों और श्रमिकों के नैतिक मानदंड एवं सिद्धान्त।

ऊपरी ठाठ का तत्व होने की हैसियत से नैतिकता समाज के जीवन के हर पहलू पर असर डालती है। काम और सम्पत्ति के प्रति लोगों का जो रुख होता है, उसका अर्थतंत्र पर असर पड़ता है। उदाहरणार्थ, कम्युनिस्ट नैतिकता समाजवादी सम्पत्ति को पावन और अक्षुण्ण करार देती है; इस प्रकार वह समाजवाद की आर्थिक नींव की हिफाजत करती है। नैतिकता का सीधे राज-नीति पर भी असर पड़ता है। राज्य के हर राजनीतिक कार्य का समाज के सदस्य नैतिक मूल्यांकन करते हैं, वे उसे पसन्द या नापसन्द करते हैं। स्वभाव-तया किसी राजनीतिक कार्य का जनता द्वारा अनुमोदन होना उसकी सफलता के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है। सोवियत संघ की शांति नीति की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय सभी देशों की जनता और समूची प्रगतिशील मानव जाति के नैतिक समर्थन को है।

समाज में आज दो नैतिकताएं एक-दूसरे के खिलाफ खड़ी हैं—एक है कम्युनिस्ट नैतिकता और दूसरी पूंजीवादी नैतिकता। पूंजीवादी नैतिकता समाज के विकास में प्रतिगामी भूमिका अदा करती है। उसका मुख्य सामाजिक लक्ष्य होता है—निजी सम्पत्ति और शोषण को बरकरार रखना जो पूंजीवाद की आधारशिला है। कार्यतः धार्मिक नैतिकता भी इसी ध्येय की सिद्धि करती है। दुष्कर्म और हिंसा के प्रति अप्रतिरोध का उपदेश देकर धर्म पूंजीवादी देशों की मेहनतकश जनता का ध्यान शोषकों के खिलाफ संघर्ष की ओर से दूसरी ओर फेरता है। वह उन्हें धीरज धरने, संतोष [illegible] और मन को रखने

के पुरस्कार के रूप में उस पार की दुनिया में स्वर्ग का लोभ देकर भरमाता है।

पूंजीवादी नैतिकता की अनिवार्य पृष्ठभूमि होती है निजी पूंजीवादी सम्पत्ति का प्रभुत्व जो जनता में अनैक्य लाता है, लोगों को परस्पर शत्रु बनाता है। लोग मुनाफे के लिए, जो पूंजीवाद का भगवान है, आपा-धापी करते हैं। मुनाफे के चक्कर में पूंजीपति मानवीय नैतिकता के सभी मानदंडों को पैरों तले रौंद डालता है। उसे जरा भी परवाह नहीं रह जाती कि उसके चारों ओर के लोगों का क्या बनता या बिगड़ता है, देश का और पूरे समाज का क्या बनता-बिगड़ता है। अपने स्वार्थी हितों को वह दुनिया की सभी चीजों के ऊपर बैठाता है। परले दरजे का स्वार्थीपन पूंजीवादी नैतिकता का मूल सिद्धान्त है। "मत्स्य न्याय", "सब धकेली मैं अकेली"—पूंजीवादी समाज की नैतिकता के घोषित नियम हैं।

कम्युनिज्म के निर्माताओं की आचार संहिता

कम्युनिस्ट नैतिकता समाज के बहुमत के हितों को, पूरी मेहनतकश जनता के हितों और आदर्शों को व्यक्त करती है। उसमें वे सामान्य मानवीय नैतिक मानदंड भी शामिल हैं जो शोषकों के विरुद्ध तथा नैतिक दुराचार के विरुद्ध संघर्ष के दौरान जनता ने प्राप्त किये हैं। उदाहरण के लिए, मानवीय आचरण के सामान्य तकाजे—जैसे बहादुरी और ईमानदारी, बुजुर्गों का आदर, लालच, झूठ और ईर्ष्या आदि से घृणा—इसी प्रकार की नैतिकता में शामिल हैं। मजदूर वर्ग की नैतिकता का समाज के नैतिक विकास में, कम्युनिस्ट नैतिकता के मानदण्डों और आवश्यकताओं को ढालने में खास तौर से भारी महत्व है।

कम्युनिस्ट नैतिकता की उत्पत्ति पूंजीवाद के अन्तर्गत हुई जहां वह शोषण और असमता के प्रति विरोध के स्वर को अभिव्यक्त करती थी। यह मैत्री, साथियाना सहयोग और पारस्परिक सहायता पर आधारित सामूहिक जीवन के नियम लागू करने की इच्छा को अभिव्यंजित करती है। पर पूंजीवादी समाज में मजदूर वर्ग की नैतिकता का प्रभुत्व नहीं रहता। उसका प्रभुत्व पूंजीवाद के खात्मे और समाजवादी समाज की स्थापना के साथ शुरू होता है।

लेनिन ने बतलाया था कि कम्युनिस्ट नैतिकता सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के हितों के अधीनस्थ है। उसकी अन्तर्वस्तु और लक्ष्य कम्युनिज्म की रचना करना और उसे सुदृढ़ बनाना है। कम्युनिज्म के निर्माताओं की आचार संहिता में यही विचार निहित है। इसे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में निरूपित किया गया है। कम्युनिज्म के ध्येय के प्रति निष्ठा, उस समाजवादी मातृभूमि के प्रति प्यार जो मानवजाति के लिए कम्युनिस्ट भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर रही है, सभी समाजवादी देशों के प्रति प्यार—यह हर सोवियत नागरिक की आचार संहिता का पहला और बुनियादी तकाजा है।

श्रम समाज की सम्पत्ति का और समाजवादी समाज के हर सदस्य के मंगल-कल्याण का स्रोत है। श्रम हर सोवियत नागरिक का कर्त्तव्य और उसकी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। इसीलिए समाज के कल्याणार्थ ईमानदारी से श्रम करना, सार्वजनिक सम्पत्ति की हिफाजत और वृद्धि के लिए हर आदमी का सचिन्त होना—यह कम्युनिस्ट नैतिकता की प्रथम मांगें हैं। सोवियत नागरिकों का अत्यधिक बहुमत अपने जीवन में इन तकाजों की पूर्ति करता है। उनके लिए समाजवाद का यह नियम कि "जो काम नहीं करेगा, वह खायेगा भी नहीं," काफी पहले ही एक मान्य नियम बन चुका है।

कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धांत स्वयं समाजवादी व्यवस्था के स्वरूप से, उसके आर्थिक आधार से—उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व से—ही उद्भूत होते हैं। यह जनता को एकताबद्ध करता है। उन्हें बन्धुत्वपूर्ण मैत्री, पारस्परिक आदर एवं सहयोग के सिद्धांतों के अनुसार रहने और काम करने में सक्षम बनाता है। इसीलिए कम्युनिस्ट नैतिकता का सामूहिकतावाद और साथियाना पारस्परिक सहायता जैसा महत्वपूर्ण सिद्धांत इस नारे में अभिव्यक्त होता है—एक सबके लिए और सब एक के लिए।

समाजवादी समाज में समाजवादी हितों की चिन्ता व्यक्ति के हितों से नहीं टकराती। सोवियत नागरिक जो भी अच्छा काम करता है, वह उसके अपने भले के लिए और साथ ही पूरी जनता के भले के लिए होता है। अपने काम के प्रति ईमानदारी बरत कर और अच्छी तरह से अपना काम करके वह अपने साथियों के प्रति, जो खुद भी सबके भले के लिए काम करते हैं, अपनी चिन्ता का इजहार करता है। यह चीज समाजवादी समाज में सामाजिक और वैयक्तिक हितों के योग को ज्वलंत रूप से प्रतिबिम्बित करती है। समाजवादी उत्पादन का लक्ष्य सबसे पहले मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। समाज के लिए और अपनी जनता के लिए उपयोगी बनने की तमन्ना ही सोवियत नागरिकों के कार्यों के लिए प्रेरणा का बुनियादी स्रोत होता है।

कर्तव्य, ईमानदारी और प्रतिष्ठा के प्रति रुख के मूल में सामूहिकतावाद का सिद्धांत निहित है। समाज के लिए उपयोगी होना, उसकी उन्नति में योग देना और सार्वजनिक हित के लिए क्षतिकर कार्यों के प्रति असहिष्णुता दिखाना मनुष्य का कर्तव्य है, उसकी प्रतिष्ठा है। यदि मनुष्य जो भी उससे बन सकता है, समाज और जनता की भलाई के लिए करता है, तो उसका अन्तःकरण शुद्ध रहता है और उसके नागरिक कर्तव्य की भावना ऊंची बनी रहती है।

सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, समाजवादी देशभक्ति एवं मानवीयता का विकास करना सोवियत जनता के मस्तिष्क में कम्युनिस्ट नैतिकता को जमाने

के लिए अनिवार्य है। समाजवादी मानवीयता एक उच्चतर एवं गुणात्मक रूप से नये प्रकार की मानवीयता है। इसमें लोगों के बीच सच्चे मानवीय सम्बंध होते हैं और लोग एक-दूसरे का आदर करते हैं—मनुष्य मनुष्य का दोस्त, साथी और भाई होता है। समाजवादी मानवीयता मे मानव से प्यार तथा उसके भौतिक और आत्मिक कल्याण के प्रति सचिन्तता के साथ कम्युनिज्म, शांति और राष्ट्रों की स्वाधीनता के शत्रुओं के प्रति समझौताहीन रुख का योग रहता है।

सोवियत देशप्रेम भी गुणात्मक रूप से भिन्न वस्तु है। उसमें अपने देश से, पूरे समाजवादी परिवार से प्यार और उनके प्रति भक्ति के साथ सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयवाद का, सभी देशों की मेहनतकश जनता के साथ बन्धुत्वपूर्ण एकजुटता का योग रहता है। सोवियत देशभक्ति का राष्ट्रवाद के साथ, राष्ट्रीय अलगथलगपन तथा जाति-जाति मे बैर, राष्ट्रीय असमानता और मेहनतकश जनता की अनेक्यता की विचारधारा के साथ कोई मेल नही है। कम्युनिस्ट समाज की आचार-संहिता सोवियत संघ के सभी जनगण की मित्रता और बन्धुत्व की तथा जातीय और नस्ली घृणा के प्रति असहनशीलता की घोषणा करती है।

कम्युनिस्ट नैतिकता का तकाजा है कि जनता समाजवादी जीवन-विधि के नियमों का पालन करे, बड़े-बूढ़ो और महिलाओ के प्रति शिष्टाचार बरता जाये, परिवार मे पारस्परिक आदर-भावना हो और बच्चों के लालन-पालन के सम्बंध में सजगता रहे। पति-पत्नी मे प्यार, समता और पारस्परिक सहायता, मां-बाप और बच्चो में मित्रता एवं परस्पर विश्वास—यह है कम्युनिस्ट समाज में परिवार की नैतिक बुनियाद।

कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धांत मानव-चरित्र मे खास विशेषताओं की मांग करते हैं। ये हैं—ईमानदारी और सचाई, नैतिक विशुद्धता, सामाजिक और निजी जीवन मे सादगी और विनयशीलता; अन्याय, परजीवीपन, बेईमानी, धनलोलुपता और आत्मसेवीपन के प्रति निर्मम रुख।

पूंजीवाद के अवशेषों का उन्मूलन कम्युनिस्ट शिक्षा का अभिन्न अंग

समाजवादी निर्माण की सफलता और पार्टी के जबर्दस्त शैक्षणिक कार्य ने कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धातो को सोवियत जनता के जीवन और कार्य का एक अभिन्न अंग बना दिया है। पर कुछ लोगो के दिमागो में अतीत के अवशेष अब भी कायम हैं। अब भी ऐसे काहिल लोग हैं जो काम करना नही चाहते और मुफ्तखोरी की जिन्दगी बसर करना चाहते हैं। पैसो के लोभी, स्वार्थी और नौकरशाह हैं जो अपने निजी स्वार्थ को सबसे ऊपर रखते हैं। समाजवादी सम्पत्ति का गबन करनेवाले, श्रम-अनुशासन और सार्वजनिक व्यवस्था को तोड़नेवाले लोग भी मौजूद है।

कम्युनिज्म की ओर हर पग नैतिकता के कार्य क्षेत्र को विस्तृत करता है और सोवियत समाज के जीवन तथा विकास में कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धांतों की भूमिका को बढ़ाता है। दूसरी ओर, लोगों के आपसी सम्बधों के प्रशासनीय नियमन का क्षेत्र उसी अनुपात में घटता है। इसी को आधार बनाकर कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार जनगण के कार्यकलाप के उन सभी रूपों को समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करती है जो कम्युनिस्ट जीवन-विधि के बुनियादी नियमों के उदय एवं विकास को आगे बढ़ाते हैं।

५. धर्म

धर्म का सार और उसकी प्रतिगामी भूमिका

धर्म वास्तविकता का एक विकृत और अपरूप प्रतिबिम्ब है। एंगेल्स ने लिखा है:

"...हर धर्म लोगो के मस्तिष्क में उन बाह्य शक्तियों के, जो उनके दैनिक जीवन को नियंत्रित करती हैं, एक अपरूप प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त और कुछ नही है। यह ऐसा प्रतिबिम्ब है जिसमें लौकिक शक्तियां अलौकिक शक्तियों का रूप ग्रहण कर लेती हैं।"[1]

शोषक वर्गों के सिद्धांतकारों ने यह साबित करने की कोशिश की है कि धार्मिक भावनाएं मनुष्य के अन्दर प्राकृतिक रूप से अन्तर्निहित होती हैं। पर वास्तव मे धर्म का उदय समाज के विकास की एक खास मंजिल में ही हुआ है। यह कहा जा सकता है कि धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक और सामाजिक व्यापारों के सच्चे कारणों को समझ नही पाने के कारण हुई। धर्म की उत्पत्ति की जड़ मे प्रकृति की स्वतःस्फूर्त शक्तियों का और सामाजिक उत्पीड़न का आतंककारी प्रभाव है।

मूलतया धर्म की लोकातीत में आस्था है। मनुष्य जब प्राकृतिक शक्तियों पर अधिक निर्भर करता था, तो उसने उन्हें लोकातीत गुण प्रदान कर रखे थे। प्राकृतिक शक्तियों के लिए उसने देवता, दानव, शैतान-फरिश्ता आदि कल्पनाएं गढ़ ली थी। आदिम मानव अपने भोलेपन के कारण विश्वास करता था कि इन लोकातीत शक्तियों को यदि प्रसन्न नहीं रखा गया, तो वे हानि और कष्ट पहुंचाएंगी और उनकी पूजा करके उन्हें यदि संतुष्ट रखा गया, तो वे हमारी मदद करेंगी। धार्मिक उपासना का यहीं से सूत्रपात हुआ और उसने प्रार्थना, बलि तथा अन्य धार्मिक रिवाजों का रूप धारण किया। पूजा-पाठ से पुरोहितों, ओझा, फकीरों, पादरियों और अन्य मजहबी पेशों का जन्म हुआ। साथ ही इससे तरह-तरह के धार्मिक संगठनों और संस्थाओं का जन्म हुआ।

---

१. एंगेल्स, ड्यूहरिंग मत खंडन, मास्को, १९५९, पृष्ठ ४३५।

वर्गों तथा शोषण के आरम्भ होने से मनुष्य स्वत:स्फूर्त सामाजिक शक्तियों के दबाव के अधीनस्थ हो गया। वह इन शक्तियों के आगे उतना ही निस्सहाय था जितना कि बर्बर मानव प्रकृति की आदि शक्तियों के आगे असहाय था। शोषकों के विरुद्ध संघर्ष में शोषितों की बेबसी ने इस विश्वास को जन्म दिया कि उस पार की दुनिया में मनुष्य के लिए बेहतर जीवन का सामान है। यह उसी प्रकार से हुआ जिस प्रकार कि प्रकृति से लड़ने में जंगली मानव की असमर्थता ने उसमें देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों और चमत्कारों आदि में आस्था पैदा की थी। शोषक समाज ने उन पर जो दुख और कष्ट लाद रखे थे, जांगर चलाने वालों ने धर्म की शरण लेकर उनसे उद्धार पाने की कोशिश की।

धर्म प्रतिगामी है। यह मेहनतकशों के आत्मिक उत्पीडन और बौद्धिक दासत्व का हथियार है। यह शोषकों के शासन को मजबूत करने का साधन है। लेनिन ने कहा है कि "मार्क्स का यह कथन कि धर्म जनता के लिए अफीम है, धर्म सम्बन्धी पूरे मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आधारशिला है।" ऊपरी ठाट का एक अंग होने के नाते धर्म वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में उस आर्थिक आधार को सुदृढ़ करने की कोशिश करता है जिस पर वर्ग समाज का पूरा ढांचा खड़ा होता है। धर्म शोषण व्यवस्था को सुदृढ़ करता है।

सदियों तक उसने निजी सम्पत्ति और शोषण को पुनीत बना कर रखा। उसने भाग्य को गुलामी और दुष्कृत्य एवं हिंसा के प्रति अप्रतिरोध सिखाया। ऐसा करके उसने सर्वसाधारण के क्रांतिकारी उत्साह को कुंठित बनाया और उन्हें हाथ पर हाथ धरे रख कर भगवान की इच्छा का मुंह जोहना सिखाया। स्वर्ग और दूसरी दुनिया में सुखमय जीवन की कहानियां गढ़ कर धर्म मेहनतकशों का ध्यान सामने के ज्वलन्त प्रश्नों की ओर से मोड़ देता है। वह सुखी भविष्य के लिए और शोषण के विरुद्ध क्रांतिकारी संघर्ष की ओर से आम जनता को विरत करता है।

धर्म आज भी उन शोषक वर्गों की चाकरी बजा रहा है जो इतिहास के रंगमंच से धक्के देकर हटाये जा रहे हैं। इसका अर्थ यह हरगिज नहीं है कि हर धार्मिक व्यक्ति प्रतिक्रियावादी होता है। धर्म में विश्वास करने वालों में अनेक श्रमजीवी और प्रगतिशील लोग भी हैं। अतः कम्युनिस्टों के सामने एक बड़ा काम यह उपस्थित होता है कि वे लोगों के दिमाग से धार्मिक पूर्वाग्रहों को बाहर निकालें और उनमें वैज्ञानिक विश्व-दर्शन की भावना भरें।

धर्म की प्रतिगामी भूमिका इस चीज में भी प्रकट होती है कि वह विज्ञान का शत्रु रहा है। उसने वैज्ञानिक विश्व-दर्शन से सदा बैर रखा है। पोपों और पादरियों ने सदियों तक विज्ञान का निर्ममतापूर्वक विरोध और वैज्ञानिकों का निर्दयतापूर्वक दमन किया है। उन्होंने प्रगतिशील विचारों के

कम्युनिज्म की ओर हर पग नैतिकता के कार्य क्षेत्र को विस्तृत करता और सोवियत समाज के जीवन तथा विकास में कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धा की भूमिका को बढ़ाता है। दूसरी ओर, लोगों के आपसी सम्बंधों के प्रशासकी नियमन का क्षेत्र उसी अनुपात में घटता है। इसी को आधार बनाकर कम्यु निस्ट पार्टी और सोवियत सरकार जनगण के कार्यकलाप के उन सभी रूपों क समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करती है जो कम्युनिस्ट जीवन-विधि के बुनियादी नियमों के उदय एवं विकास को आगे बढ़ाते हैं।

५. धर्म

धर्म का सार और उसकी प्रतिगामी भूमिका

धर्म वास्तविकता का एक विकृत और अपरूप प्रतिबिम्ब है। एंगेल्स ने लिखा है:

"...हर धर्म लोगों के मस्तिष्क में उन बाह्य शक्तियों के, जो उनके दैनिक जीवन को नियन्त्रित करती हैं, एक अपरूप प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह ऐसा प्रतिबिम्ब है जिसमें लौकिक शक्तियां अलौकिक शक्तियों का रूप ग्रहण कर लेती हैं।"[1]

शोषक वर्गों के सिद्धांतकारों ने यह साबित करने की कोशिश की है कि धार्मिक भावनाएं मनुष्य के अन्दर प्राकृतिक रूप से अन्तर्निहित होती हैं। पर वास्तव में धर्म का उदय समाज के विकास की एक खास मंजिल में ही हुआ है। यह कहा जा सकता है कि धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक और सामाजिक व्यापारों के सच्चे कारणों को समझ नहीं पाने के कारण हुई। धर्म की उत्पत्ति की जड़ में प्रकृति की स्वतःस्फूर्त शक्तियों का और सामाजिक उत्पीड़न का आतंककारी प्रभाव है।

मूलतया धर्म की लोकातीत में आस्था है। मनुष्य जब प्राकृतिक शक्तियों पर अधिक निर्भर करता था, तो उसने उन्हें लोकातीत गुण प्रदान कर रखे थे। प्राकृतिक शक्तियों के लिए उसने देवता, दानव, शैतान-फरिश्ता आदि कल्पनाएं गढ़ ली थीं। आदिम मानव अपने भोलेपन के कारण विश्वास करता था कि इन लोकातीत शक्तियों को यदि प्रसन्न नहीं रखा गया, तो वे हानि और कष्ट पहुंचायेंगी और उनकी पूजा करके उन्हें यदि सन्तुष्ट रखा गया, तो वे हमारी मदद करेंगी। धार्मिक उपासना का यहीं से सूत्रपात हुआ और उसने प्रार्थना, बलि तथा अन्य धार्मिक रिवाजों का रूप धारण किया। पूजा-पाठ से पुरोहितों, ओझा, फकीरों, पादरियों और अन्य मजहबी पेशों का जन्म ...ओं और संस्थाओं का

का एकमात्र उपाय है। समाजवादी समाज मे समाज के कल्याणार्थ किया जाने वाला हर काम—वह चाहे शारीरिक हो या दिमागी—आदर पाता है। सामाजिक श्रम हर नागरिक का कर्तव्य है। समाज के सभी सदस्यो के साथ-साथ सुनियोजित श्रम करते हुए, राजकाज के मामलो के प्रबन्ध मे हर रोज शिरकत करते हुए मनुष्य के मस्तिष्क का धीरे-धीरे कायापलट होता है और उसके उच्च आत्मिक गुण आकार ग्रहण करते हैं। सामूहिक रूप मे काम करके मनुष्य अपनी क्षमता और प्रतिभा को पूर्णतया प्रकट करता है। वह सांस्कृतिक एवं प्राविधिक रूप से तरक्की करता है। उसमे आगे बढ़कर मार्ग प्रशस्त करने की भावना पैदा होती है, नूतन के प्रति प्रेम जगता है और वह समाज के हितों को सर्वोपरि रखना सीखता है। इसीलिए समाज के सभी सदस्यो मे काम के प्रति कम्युनिस्ट रुख पैदा करना जनता को कम्युनिस्ट नैतिकता के उच्च सिद्धांतो की भावना मे दीक्षित करने का एक प्रमुख साधन है। पार्टी का लक्ष्य है समाज के हर सदस्य के मस्तिष्क मे यह गहन आस्था भरना कि मनुष्य रचनात्मक श्रम के बिना, समाज के कल्याण में योगदान किये बिना रह नही सकता। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वी कांग्रेस के एक प्रस्ताव मे कहा गया है: "व्यक्ति को श्रम के लिए तैयार करना, उसमें जीवन की प्राथमिक आवश्यकता के रूप मे श्रम के प्रति प्रेम और आदर का भाव भरना कम्युनिस्ट शिक्षा के क्षेत्र मे हमारे सारे काम का सार और मूल तत्व है।"

अध्यवसायपूर्ण अध्ययन, आम शिक्षा और संस्कृति की निरन्तर उन्नति—इनसे जनगण के मस्तिष्क से अतीत के अवशेषो का उन्मूलन करने में मदद मिलती है। व्यक्ति जितना ही अधिक सुसंस्कृत और शिक्षित होता है, उतना ही अधिक काम में कुशल होता है। वह सामाजिक क्षेत्र में जितना ही सक्रिय होकर भाग लेता है, निजी और सामाजिक जीवन मे उतना ही अधिक विनम्र और आडम्बरहीन होता है। लगन के साथ काम करना और निरन्तर अध्ययनशील रहना—इससे अन्याय और मुफ्तखोरी, बेईमानी और पदलिप्सा के प्रति समझौताहीन रुख बनता है।

कम्युनिस्ट श्रम के उन्नयन का आन्दोलन इस बात की शानदार मिसालें पेश करता है कि लोग काम और अध्ययन करते हुए कैसे शिक्षित बनते हैं। इस आन्दोलन मे भाग लेनेवाले जिन नैतिक सिद्धातो से प्रेरित होते है, वे ये हैं देश की भलाई के लिए काम करना, नागरिक कर्तव्य-भावना, अपने काम और जीवन-विधि में डटकर नये की हिमायत करना, सौहृदयता और सामूहिकता की भावना। यह आन्दोलन लोगो को, खास कर तरुणों को, कम्युनिस्ट तरीके से रहना और काम करना सिखाता है। यही कारण है कि महत्व प्राप्त होता है।

का एकमात्र उपाय है। समाजवादी समाज में समाज के कल्याणार्थ किया जाने वाला हर काम—वह चाहे शारीरिक हो या दिमागी—आदर पाता है। सामाजिक श्रम हर नागरिक का कर्तव्य है। समाज के सभी सदस्यों के साथ-साथ सुनियोजित श्रम करते हुए, राजकाज के मामलों के प्रबन्ध में हर रोज शिरकत करते हुए मनुष्य के मस्तिष्क का धीरे-धीरे कायापलट होता है और उसके उच्च आत्मिक गुण आकार ग्रहण करते हैं। सामूहिक रूप में काम करके मनुष्य अपनी क्षमता और प्रतिभा को पूर्णतया प्रकट करता है। वह सांस्कृतिक एवं प्राविधिक रूप से तरक्की करता है। उसमें आगे बढ़कर मार्ग प्रशस्त करने की भावना पैदा होती है, नूतन के प्रति प्रेम जगता है और वह समाज के हितों को सर्वोपरि रखना सीखता है। इसीलिए समाज के सभी सदस्यों में काम के प्रति कम्युनिस्ट रुख पैदा करना जनता को कम्युनिस्ट नैतिकता के उच्च सिद्धांतों की भावना में दीक्षित करने का एक प्रमुख साधन है। पार्टी का लक्ष्य है समाज के हर सदस्य के मस्तिष्क में यह गहन आस्था भरना कि मनुष्य रचनात्मक श्रम के बिना, समाज के कल्याण में योगदान किये बिना रह नहीं सकता। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वीं कांग्रेस के एक प्रस्ताव में कहा गया है: "व्यक्ति को श्रम के लिए तैयार करना, उसमें जीवन की प्राथमिक आवश्यकता के रूप में श्रम के प्रति प्रेम और आदर का भाव भरना कम्युनिस्ट शिक्षा के क्षेत्र में हमारे सारे काम का सार और मूल तत्व है।"

अध्यवसायपूर्ण अध्ययन, आम शिक्षा और संस्कृति की निरन्तर उन्नति—इनसे जनगण के मस्तिष्क से अतीत के अवशेषों का उन्मूलन करने में मदद मिलती है। व्यक्ति जितना ही अधिक सुसंस्कृत और शिक्षित होता है, उतना ही अधिक काम में कुशल होता है। वह सामाजिक क्षेत्र में जितना ही सक्रिय होकर भाग लेता है, निजी और सामाजिक जीवन में उतना ही अधिक विनम्र और आडम्बरहीन होता है। लगन के साथ काम करना और निरन्तर अध्ययनशील रहना—इससे अन्याय और मुफ्तखोरी, बेईमानी और पदलिप्सा के प्रति समझौताहीन रुख बनता है।

कम्युनिस्ट श्रम के उन्नयन का आन्दोलन इस बात की शानदार मिसालें पेश करता है कि लोग काम और अध्ययन करते हुए कैसे शिक्षित बनते हैं। इस आन्दोलन में भाग लेनेवाले जिन नैतिक सिद्धांतों से प्रेरित होते हैं, वे ये हैं: देश की भलाई के लिए काम करना, नागरिक कर्तव्य-भावना, अपने काम और जीवन-विधि में डटकर नये की हिमायत करना, सोद्देश्यता और सामूहिकता की भावना। यह आन्दोलन लोगों को, खास कर तरुणों को, *कम्युनिस्ट तरीके से रहना और काम करना सिखाता है। यही कारण है कि उसे इतना* महत्व प्राप्त होता है।

कम्युनिज्म की ओर हर पग नैतिकता के कार्य क्षेत्र को विस्तृत करता है और सोवियत समाज के जीवन तथा विकास में कम्युनिस्ट नैतिकता के सिद्धांतों की भूमिका को बढ़ाता है। दूसरी ओर, लोगों के आपसी सम्बंधों के प्रशासकीय नियमन का क्षेत्र उसी अनुपात में घटता है। इसी को आधार बनाकर कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार जनगण के कार्यकलाप के उन सभी रूपों को समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करती है जो कम्युनिस्ट जीवन-विधि के बुनियादी नियमों के उदय एवं विकास को आगे बढ़ाते हैं।

५. धर्म

धर्म का सार और उसकी प्रतिगामी भूमिका

धर्म वास्तविकता का एक विकृत और अपरूप प्रतिबिम्ब है। एंगेल्स ने लिखा है : "...हर धर्म लोगों के मस्तिष्क में उन बाह्य शक्तियों के, जो उनके दैनिक जीवन को नियमित करती हैं, एक अपरूप प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह ऐसा प्रतिबिम्ब है जिसमें लौकिक शक्तियां अलौकिक शक्तियों का रूप ग्रहण कर लेती है।"[1]

शोषक वर्गों के सिद्धांतकारों ने यह साबित करने की कोशिश की है कि धार्मिक भावनाएं मनुष्य के अन्दर प्राकृतिक रूप से अन्तर्निहित होती हैं। पर वास्तव में धर्म का उदय समाज के विकास की एक खास मंजिल में ही हुआ है। यह कहा जा सकता है कि धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक और सामाजिक व्यापारों के सच्चे कारणों को समझ नहीं पाने के कारण हुई। धर्म की उत्पत्ति की जड़ में प्रकृति की स्वतःस्फूर्त शक्तियों का और सामाजिक उत्पीड़न का आतंककारी प्रभाव है।

मूलतया धर्म की लोकातीत में आस्था है। मनुष्य जब प्राकृतिक शक्तियों पर अधिक निर्भर करता था, तो उसने उन्हे लोकातीत गुण प्रदान कर रखे थे। प्राकृतिक शक्तियों के लिए उसने देवता, दानव, शैतान-फरिश्ता आदि कल्पनाएं गढ़ ली थी। आदिम मानव अपने भोलेपन के कारण विश्वास करता था कि इन लोकातीत शक्तियों को यदि प्रसन्न नहीं रखा गया, तो ये हानि और कष्ट पहुंचायेंगी और उनकी पूजा करके उन्हें यदि संतुष्ट रखा गया, तो वे हमारी मदद करेंगी। धार्मिक उपासना का यही से सूत्रपात हुआ और उसने प्रार्थना, बलि तथा अन्य धार्मिक रिवाजों का रूप धारण किया। पूजा-पाठ से पुरोहितों, ओझा, फकीरों, पादरियों और अन्य मजहबी पेशों का जन्म हुआ। साथ ही इससे तरह-तरह के धार्मिक संगठनों और संस्थाओं का जन्म हुआ।

---

१. एंगेल्स, ड्यूहरिंग मत-खंडन, मास्को, १९५९, पृष्ठ ४३५।

वर्गों तथा शोषण के आरम्भ होने से मनुष्य स्वत.स्फूर्त सामाजिक शक्तियों के दबाव के अधीनस्थ हो गया। वह इन शक्तियों के आगे उतना ही निस्सहाय था जितना कि बर्बर मानव प्रकृति की आदि शक्तियों के आगे असहाय था। शोषकों के विरुद्ध सघर्ष मे शोषितो की बेबसी ने इस विश्वास को जन्म दिया कि उस पार की दुनिया में मनुष्य के लिए बेहतर जीवन का सामान है। यह उसी प्रकार से हुआ जिस प्रकार कि प्रकृति से लड़ने में जगली मानव की असमर्थता ने उसमे देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों और चमत्कारों आदि में आस्था पैदा की थी। शोषक समाज ने उन पर जो दुख और कष्ट लाद रखे थे, जांगर चलाने वालो ने धर्म की शरण लेकर उनसे उद्धार पाने की कोशिश की।

धर्म प्रतिगामी है। यह मेहनतकशों के आत्मिक उत्पीड़न और बौद्धिक दासत्व का हथियार है। यह शोषकों के शासन को मजबूत करने का साधन है। लेनिन ने कहा है कि "मार्क्स का यह कथन कि धर्म जनता के लिए अफीम है, धर्म सम्बन्धी पूरे मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आधारशिला है।" ऊपरी ठाट का एक अग होने के नाते धर्म वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज मे उस आर्थिक आधार को सुदृढ़ करने की कोशिश करता है जिस पर वर्ग समाज का पूरा ढाचा खड़ा होता है। धर्म शोषण व्यवस्था को सुदृढ़ करता है।

सदियो तक उसने निजी सम्पत्ति और शोषण को पुनीत बना कर रखा। उसने भाग्य की गुलामी और दुष्कृत्य एव हिंसा के प्रति अप्रतिरोध सिखाया। ऐसा करके उसने सर्वसाधारण के क्रांतिकारी उत्साह को कुंठित बनाया और उन्हें हाथ पर हाथ धरे रख कर भगवान की इच्छा का मुह जोहना सिखाया। स्वर्ग और दूसरी दुनिया में सुखमय जीवन की कहानियां गढ़ कर धर्म मेहनतकशों का ध्यान सामने के ज्वलन्त प्रश्नो की ओर से मोड़ देता है। वह सुखी भविष्य के लिए और शोषण के विरुद्ध क्रांतिकारी सघर्ष की ओर से आम जनता को विरत करता है।

धर्म आज भी उन शोषक वर्गों की चाकरी बजा रहा है जो इतिहास के रंगमच से धक्के देकर हटाये जा रहे हैं। इसका अर्थ यह हरगिज नही है कि हर धार्मिक व्यक्ति प्रतिक्रियावादी होता है। धर्म में विश्वास करने वालों में अनेक श्रमजीवी और प्रगतिशील लोग भी हैं। अतः कम्युनिस्टों के सामने एक बड़ा काम यह उपस्थित होता है कि वे लोगो के दिमाग से धार्मिक पूर्वाग्रहों को बाहर निकालें और उनमें वैज्ञानिक विश्व-दर्शन की भावना भरें।

धर्म की प्रतिगामी भूमिका इस चीज में भी प्रकट होती है कि वह विज्ञान का कट्टर शत्रु रहा है। उसने वैज्ञानिक विश्व-दर्शन से सदा बैर रखा है। *पोपों और पादरियों ने सदियों तक विज्ञान का निर्ममतापूर्वक विरोध और* वैज्ञानिकों का निर्दयतापूर्वक दमन किया है। उन्होंने प्रगतिशील विचारों के

प्रचार पर रोक लगायी, उनका प्रसार करने वाली पुस्तकों को नष्ट किया और उनके लिखनेवालों को तहखानों में बन्द करवाया अथवा आग में जला कर स्वाहा किया। चर्च की मध्ययुगीन अदालतों ने अनेक प्रगतिशील व्यक्तियों को लकड़ी के तख्तों में बांध कर आग में जलवा दिया। इन शहीदों में गिओर्दानो ब्रूनो और लुकिलो वानिनी जैसे प्रख्यात वैज्ञानिक भी थे।

पर चर्च की ये सारी सरगर्मियां भी भौतिक उत्पादन की आवश्यकताओं से प्रेरित वैज्ञानिक प्रगति को रोकने में असमर्थ रहीं। हमारे जमाने में यह हो रहा है कि महती वैज्ञानिक उपलब्धियों का खंडन करने में असफल होकर चर्च विज्ञान और धर्म की खिचड़ी पकाने की चेष्टा करने लगा है। वह यह सिद्ध करना चाहता है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों और धर्म में विरोध नहीं है, बल्कि वे धर्म के साथ मेल खाती हैं।

ये सब बेकार की चेष्टाएं हैं। विज्ञान और धर्म में कोई मेल नहीं बैठ सकता। विज्ञान मनुष्य को दुनिया और उसके विकास के नियमों का सच्चा ज्ञान प्रदान करता है। वह मनुष्य को प्राकृतिक एवं सामाजिक शक्तियों पर काबू पाने और उत्पादन का संगठन करने में मदद देता है। इसके विपरीत, धर्म विश्व के मूल-तत्व को विकृत करता है, उसकी गलत व्याख्या प्रस्तुत करता है, मनुष्य के दिल और दिमाग को कुंठित करता है और विज्ञान और प्रगति की विजय में उसके विश्वास को नष्ट करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत धार्मिक अवशेष और उन्हें समाप्त करने के उपाय

सोवियत संघ में चर्च को राज्य से और स्कूल को चर्च से अलग कर दिया गया है। इसका यह अर्थ है कि चर्च को राज्य के मामलों में दखलन्दाजी करने का कोई अधिकार नहीं रहा और न उसे शिक्षा की विषय-वस्तु और शिक्षा के संगठन पर असर डालने का ही कोई हक रहा। दूसरी ओर राज्य भी धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता है।

जाहिर है कि चर्च और राज्य को अलग करने का मतलब यह नहीं है कि चर्च राज्य के नियंत्रण से बाहर है। मेहनतकश जनता का हित इस बात में है कि पादरी लोगों को क्रांति-विरोधी साजिशें करने से रोका जाये और वे राज्य के कानूनों की अवहेलना करने की कोशिश न करने पायें। महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति होने के फौरन बाद ही अनेक चर्च अधिकारियों ने सोवियत सरकार-विरोधी कार्रवाइयों में भाग लिया था और फलस्वरूप सोवियत सरकार को उनके विरुद्ध दमनकारी पग उठाने पड़े थे।

कम्युनिस्ट पार्टी ने धर्म को पार्टी-सदस्यों का निजी मामला कभी नहीं समझा है। लेनिन ने लिखा था कि जहां तक राज्य का सम्बन्ध है, हो क

निजी मामला है, पर जहाँ तक हमारी पार्टी का सम्बंध है, हम धर्म को निजी मामला कदापि नहीं मानते। कम्युनिस्ट पार्टी अपने सदस्यों को हर प्रकार के धार्मिक उत्पीडन से—इसमें धर्म भी शामिल है—निरन्तर लड़ने के लिए प्रेरित करती है। इसके अलावा, धर्म के विरुद्ध संघर्ष का वह समाजवाद और कम्युनिज्म के लिए सर्वहारा के संघर्ष के आम कर्तव्यों के साथ ताल-मेल बैठाती है। वह समझती है कि धर्म के उन्मूलन के लिए जो मुख्य चीज जरूरी है, वह है उसकी वर्ग जड़ों को मिटाना—दूसरे शब्दों में पूंजीवादी समाज को मिटाना जो जनता का शोषण और उत्पीडन करता है।

सोवियत संघ में समाजवाद की विजय और शोषक वर्गों के उन्मूलन से चर्च के नीचे की जमीन खिसक गयी और धर्म की सामाजिक जड़ें उखड़ गयीं। पूंजीवादी विकास का स्वतःस्फूर्त स्वरूप मेहनतकशों के हृदय में भविष्य के बारे में भय एवं अनिश्चितता का भाव जगाता था। उसकी जगह अब सुज्ञानित नियमों के आधार पर समाज के नियोजित प्रशासन ने ले ली। सोवियत जनता की संस्कृति, उसकी राजनीतिक चेतना और सक्रियता उच्चतर स्तर पर पहुंच गयी। परिणामस्वरूप सोवियत जनता के विशाल बहुमत ने धर्म से अपना पिंड छुड़ा लिया और वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण को दृढ़ता-पूर्वक अपना लिया।

पर समाजवाद में भी धार्मिक पूर्वाग्रहों से ओतप्रोत लोग मौजूद हैं। इसका कारण यह है कि जिस तरह अतीत के अन्य अवशेषों के सम्बन्ध में होता है, उसी तरह इस मामले में भी सामाजिक चेतना सामाजिक सत्ता से पिछड़ी हुई रहती है, पूंजीवादी विचारधारा का प्रभाव कायम रहता है और शैक्षणिक कार्य में त्रुटियां रह जाती हैं। परिवार एवं स्कूल में समुचित ढंग पर संगठित अनीश्वरवादी शिक्षा-दीक्षा, सुव्यवस्थित वैज्ञानिक व अनीश्वरवादी प्रचार और जनता के सांस्कृतिक स्तर, उसकी सामाजिक चेतना और कम्युनिज्म के निर्माण के सम्बंध में उसके कार्यकलाप के निरन्तर बढ़ते जाने से धर्म के अवशेष धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेंगे।

६. विज्ञान

विज्ञान का स्वरूप और समाज के विकास में उसकी भूमिका

विज्ञान प्रकृति, समाज और चिन्तन सम्बन्धी मनुष्य की ज्ञान-प्रणाली को कहते हैं। यह विश्व को ऐसी धारणाओं, परिकल्पनाओं और सिद्धांतों द्वारा प्रतिबिम्बित करता है जिनकी प्रामाणिकता और सत्यता व्यावहारिक अनुभव द्वारा परखी जाती है।

समकालीन विज्ञान अपने सम्पूर्ण रूप में भौतिक जगत के विविध क्षेत्रों का अध्ययन करने वाली विभिन्न प्रणालियों का योग है। विज्ञानों के इस संघ में हमें सामाजिक विज्ञानों (इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन, सौंदर्यशास्त्र आदि) और प्राकृतिक विज्ञानों (यांत्रिकी, गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र जीव विज्ञान, आदि) में विभेद करना चाहिए।

विज्ञान का उद्भव व्यावहारिक कार्यकलाप में हुआ और वह उसके ही आधार पर विकसित होता है। भौतिक उत्पादन की जरूरतें विज्ञान की मुख्य प्रेरणा-शक्ति हैं। एंगेल्स के शब्दों में, "समाज के सामने जब कोई तकनीकी आवश्यकता आ खड़ी होती है, तो यह आवश्यकता विज्ञान को जितना आगे बढ़ाती है, उतना दस विश्वविद्यालय भी नहीं बढ़ा पाते हैं।" आदिम समय से ही जीवन निर्वाह के साधनों को जुटाते समय मनुष्य प्रकृति की शक्तियों के सम्पर्क में आया और उसके सम्बंध में अपना सर्वप्रथम, सतही ज्ञान प्राप्त किया। इस ज्ञान की प्रकृति सर्वथा प्रयोगमूलक थी—अभी उसे विज्ञान का स्वरूप नहीं प्राप्त हुआ था। सामाजिक चेतना के एक विशेष रूप की हैसियत से विज्ञान का उद्भव आगे चलकर हुआ। यह दास समाज में हुआ, जब मानसिक श्रम शारीरिक श्रम से विलग हुआ और विद्वानों का एक ऐसा विशिष्ट समूह निर्मित हुआ जो केवल अध्ययन कार्य करता था।

वैज्ञानिक ज्ञान की निरन्तरता विज्ञान की मूल विशिष्टता है। आनेवाली नयी पीढ़ियां और उदित होनेवाले नये समाज पिछली वैज्ञानिक उपलब्धियों को छोड़ नहीं देते, बल्कि उन्हें ग्रहण करते हैं और नयी व्यावहारिक जरूरतों के अनुसार उन्हें और विकसित करते हैं।

विज्ञान के उद्भव का आधार उत्पादन है, व्यावहारिक कार्यकलाप है। साथ ही विज्ञान जनता के व्यावहारिक कार्यकलाप और उत्पादन की सेवा करता है। वह समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वह मनुष्य को वस्तुगत नियमों के ज्ञान से लैस करता है, प्राकृतिक शक्तियों पर उसकी शक्ति को बढ़ाता है, बेहतर जीवन का मार्ग इंगित करता है और उसके दैहिक श्रम को हल्का करता है। विज्ञान मानव के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करता है, उसे अंधविश्वासों और पूर्वाग्रहों से मुक्त करता है और भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण के निर्माण में सहायक होता है।

नष्ट करने में सहायक होता है। दूसरी ओर, प्राकृतिक विज्ञान का उत्पादन से प्रत्यक्ष सम्बंध होता है।

विज्ञान का विकास अधिकांशत: सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करता है, समाज में प्रचलित आर्थिक सम्बंधों पर निर्भर करता है। आर्थिक सम्बंधों पर ही वैज्ञानिक प्रगति की दिशा और गतियां निर्भर करती हैं। इन पर ही वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रयोग में लाया जाना भी निर्भर करता है। उस युग में जब पूंजीवाद उत्कर्ष पर था, पूंजीवादी उत्पादन सम्बंध ने विज्ञान के विकास में एक शक्तिशाली उपकरण का काम अंजाम दिया, क्योंकि तेजी से फैलता पूंजीवादी उत्पादन अधिकाधिक वैज्ञानिक ज्ञान का तकाजा कर रहा था। पर जब साम्राज्यवाद का आगमन हुआ, तो पूंजीवादी उत्पादन सम्बंध वैज्ञानिक प्रगति में अवरोध डालने लगा।

पूंजीपति के लिए विज्ञान प्रतिद्वन्द्वियों से लड़ने का साधन है। वह अधिकतम मुनाफा अर्जित करने का औजार है। इसीलिए वह प्रथमतया विज्ञान के उन क्षेत्रों को विकसित करना चाहता है जिनसे ज्यादा मुनाफे की उम्मीद होती है। युद्ध उद्योग के उत्पादन की सबसे लाभदायक शाखा बन जाने की वजह से इजारेदार शस्त्रास्त्रों से सम्बद्ध विज्ञानों की उन्नति पर, युद्ध के पारमाणविक, रासायनिक, कीटाणु तथा अन्य साधनों के उत्पादन पर अत्यधिक ध्यान देते हैं।

आज का साम्राज्यवादी पूंजीपति चाहता है कि भाववादी और धार्मिक विश्व दृष्टिकोण बना रहे और फले-फूले। इसलिए वह भाववाद और अति-भौतिकी की पद्धतियों को थोपना चाहता है और ज्ञान को धार्मिक आस्था के अधीनस्थ रखना चाहता है। वह प्राकृतिक विज्ञान और वैज्ञानिकों को उनके अनिवार्य सहज भौतिकवाद की दिशा से विमुख करने और उन्हें भाववाद और मजहब के मिथ्या मार्ग पर लगाने के लिए हर सम्भव उपाय काम में लाता है। जब प्राकृतिक वैज्ञानिक किसी क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल करते हैं, तो पूंजीपति वर्ग अपने दार्शनिकों और प्रतिक्रियावादी विद्वानों की सहायता से उनकी इन उपलब्धियों को गलत रोशनी में पेश करने और उनकी भाववादी व्याख्या प्रस्तुत करवाने की कोशिश करता है।

पूंजीवादी सामाजिक विज्ञान तो सीधे-सीधे पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा में संलग्न है। वह पूंजीवाद के [illegible] का [illegible] हुआ है और कम्युनिज्म एवं प्रगति पर कुठाराघात करता है।

पूंजीवादी समाज में ऐसे अनेक वैज्ञानिक मौजूद हैं जो [illegible] की सराहना करते हैं और भौतिकवादी [illegible] एवं [illegible]

समकालीन विज्ञान अपने सम्पूर्ण रूप मे भौतिक जगत के निश्चित क्षेत्रों का अध्ययन करने वाली विभिन्न प्रणालियो का योग है। विज्ञानो के इस वैविध्य में हमें सामाजिक विज्ञानो (इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन, सौंदर्यशास्त्र आदि) और प्राकृतिक विज्ञानो (यान्त्रिकी, गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र जीव विज्ञान, आदि) मे विभेद करना चाहिए।

विज्ञान का उद्भव व्यावहारिक कार्यकलाप से हुआ और वह उसके ही आधार पर विकसित होता है। भौतिक उत्पादन की जरूरतें विज्ञान की मुख्य प्रेरणा-शक्ति हैं। एंगेल्स के शब्दो मे, "समाज के सामने जब कोई तकनीकी आवश्यकता आ खड़ी होती है, तो यह आवश्यकता विज्ञान को जितना आगे बढ़ाती है, उतना दस विश्वविद्यालय भी नही बढ़ा पाते हैं।" आदिम समाज से ही जीवन निर्वाह के साधनों को जुटाते समय मनुष्य प्रकृति की शक्ति के सम्पर्क में आया और उसके सम्बंध में अपना सर्वप्रथम, सतही ज्ञान प्राप्त किया। इस ज्ञान की प्रकृति सर्वथा प्रयोगमूलक थी—अभी उसे विज्ञान का स्वरूप नही प्राप्त हुआ था। सामाजिक चेतना के एक विशेष रूप की हैसियत से विज्ञान का उद्भव आगे चलकर हुआ। यह दास समाज में हुआ, जब मानसिक श्रम शारीरिक श्रम से विलग हुआ और विद्वानों का एक ऐसा विशिष्ट समूह निर्मित हुआ जो केवल अध्ययन कार्य करता था।

वैज्ञानिक ज्ञान की निरन्तरता विज्ञान की मूल विशिष्टता है। आनेवाली नयी पीढ़िया और उदित होनेवाले नये समाज पिछली वैज्ञानिक उपलब्धियों को छोड़ नही देते, बल्कि उन्हें ग्रहण करते हैं और नयी व्यावहारिक जरूरतों के [illegible] उन्हें और विकसित करते हैं।

ने पारमाणविक ऊर्जा प्राप्त करने की विधियों में पारदर्शिता प्राप्त की है, कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़े हैं, प्रथम अन्तरिक्ष राकेटों और अन्तरिक्ष-यानों का निर्माण किया है और विज्ञान के एक नये युग का—अन्तरिक्ष-अनुसंधान के युग का—सूत्रपात किया है। विज्ञान के अन्य विविध क्षेत्रों—भौतिकी, इलेक्ट्रोनिक्स, रसायन, रेडियो इंजीनियरी, गणित आदि—की भारी प्रगति के बिना ये उपलब्धियां असम्भव होतीं।

प्राविधिक विज्ञान कम्युनिज्म के निर्माण के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। प्राकृतिक विज्ञान तकनीकी प्रगति में प्रविधि के विकास और सुधार में तथा जनता के प्राविधिक एवं सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाने में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रयोग समाजवादी उत्पादन की वृद्धि की रफ्तार को तेज करने में एक निर्णायक तत्व बन गया है। विज्ञान एक प्रत्यक्ष उत्पादन शक्ति बनता जा रहा है।

सामाजिक विज्ञान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे सोवियत जनता को सामाजिक नियमों के ज्ञान से लैस करते हैं और इस तरह समाज के विकास को निर्देशित करने का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं तथा कम्युनिस्ट शिक्षा एवं जन-मानस में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण की जड़ों को गहराई से जमाने में बड़ी भूमिका अदा करते हैं।

७. कला

कला की मुख्य विशेषताएं और समाज के जीवन में उसकी भूमिका

मनुष्य के मस्तिष्क में वास्तविकता कलापूर्ण प्रतिरूपों में प्रतिबिम्बित होती है। कला इसी क्रिया का एक रूप है। कला मनुष्य के चारों ओर की दुनिया को प्रतिबिम्बित करती है। ऐसा करके वह हमें इस दुनिया का बोध प्राप्त करने में सहायता देती है और राजनीतिक, नैतिक एवं कलात्मक शिक्षा के शक्तिशाली यंत्र का काम करती है।

विश्व में नाना प्रकार के व्यापार चलते रहते हैं, घटनाएं घटती रहती हैं और ये नाना ढंगों से कला-कृतियों में प्रतिबिम्बित होते हैं। इससे ही कविता, कथा-साहित्य, नाटक, संगीत, सिनेमा, स्थापत्य कला, चित्रकारी और मूर्तिकारी जैसे कला के रूप उदित हुए।

कला की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि यह (विज्ञान के विपरीत) यथार्थ को धारणाओं में नहीं, वरन् इन्द्रियगोचर मूर्त रूप में, विशिष्ट कलात्मक प्रतिकृतियों के रूप में, परिलक्षित करती है। कलाकार कलात्मक प्रतिरूप पैदा करता है, *यथार्थ की सामान्य, सारभूत विशेषताओं के दर्शन कराता है और इन* विशेषताओं को प्यारे एवं प्रायः अनुकरणीय चरित्रों के जरिए, प्रकृति और

सामाजिक जीवन के विशिष्ट व्यापारों के जरिए प्रेषित करता है। किसी कलात्मक प्रतिरूप की जानी खासियतें जितनी ही सुस्पष्ट और बोधगम्य होती हैं, वह उतना ही अधिक आकर्षक और प्रभावकारी होता है।

मानव समाज के आरम्भ काल में ही कला का उदय हुआ था। वह श्रम की प्रक्रिया में पैदा हुई थी। आरम्भ में कला श्रम के साथ एक तानेबाने में जुड़ी हुई थी। इस रिश्ते को उसने आज तक कायम रखा है, भले ही यह आज अधिक माध्यम रूप में होता है। सत्यतापूर्ण कला सदा ही जीवन और कार्य में जनता की सच्ची सहायक रही है। उसने प्रकृति की शक्तियों से लड़ने में जनता की सहायता की है। उसने मनुष्य को आनन्द प्रदान किया है और श्रम के क्षेत्र में अथवा लड़ाई के मैदान में शौर्यपूर्ण कार्य सम्पन्न करने की प्रेरणा से उसे अभिभूत किया है।

श्रम की प्रक्रिया में सौन्दर्यात्मक रुचियां और आवश्यकताएं उत्पन्न हुईं। मनुष्य ने जीवन और कला मे सुन्दरता की सराहना करना सीखा। कला की एक मौलिक विशेषता और उसका एक प्राथमिक कर्तव्य है जीवन में सौन्दर्य की तलाश। वह जीवन में सुन्दरता को ढूढ़ निकालती है, उसका सामान्यीकरण करती है, उसके प्रतिरूप खड़े करती है, कलापूर्ण प्रतीकों में उसे प्रतिबिम्बित करके मनुष्य के सामने पेश करती है। ऐसा करके वह मानव की सौन्दर्यबोधात्मक आवश्यकताओं की तुष्टि करती और उसके सौन्दर्यबोधक भावावेगों को विकसित करती है।

वर्ग समाज में कला का वर्गीय स्वरूप होता है। वह पक्षधर होती है। "विशुद्ध कला" अथवा "कला के लिए कला" जैसी कोई चीज नहीं है और न हो सकती है। कला की अभिगम्यता, प्रबल प्रतीतिकारी शक्ति और भावात्मक प्रभाव उसे वर्ग संघर्ष का महत्वपूर्ण हथियार बनाते हैं। इसीलिए विभिन्न वर्ग कला का अपने राजनीतिक, नैतिक तथा अन्य विचारों के वाहन के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

कला ऊपरी ठाट का अंग है। इसलिए वह उस आधार की सेवा करती है जिसने उसे उत्पन्न किया और जिसके ऊपर वह विकसित होती है। मिसाल के लिए, आज की पूंजीवादी कला पूंजीवादी आधार की सेवा करती है। वह निजी सम्पत्ति और शोषण पर आधारित समाज के अस्तित्व को उचित ठहराने तथा इस समाज को उन शक्तियों से बचाने का प्रयास करती है जो अनिवार्यतः उसे हटा कर नये समाजवादी समाज की स्थापना करेंगी।

स्वभावतया पूंजीवादी कला का स्वर समरूप नहीं है। उसमें उन कलाकारों को प्रमुख स्थान प्राप्त होता है जो साम्राज्यवादी शक्तियों की खुल कर सेवकाई करते हैं और पूंजीवादी व्यवस्था को सलामत कर देने की कोशिश

ते हैं; जो जनता का ध्यान कोरी सामाजिक समस्याओं की ओर से, शान्ति
र सामाजिक प्रगति के लिए संघर्ष की ओर से दूसरी दिशा में फेरने की
टा करते हैं। साथ ही वे नयी समाजवादी व्यवस्था को, जो पूंजीवाद का
ान ग्रहण करने जा रही है, निन्दनीय बतलाते हैं और कम्युनिज्म के उच्च
दर्शों पर कीचड़ उछालते हैं। उनकी कृतियों में निराशावाद, भविष्य में
ास्था, और जीवन के सत्य में अर्थहीन विषादवाद के दलदल में भागने की इच्छा
्याप्त रहती है।

पूंजीवादी समाज में ऐसे कलाकार भी होते हैं जो यथार्थ के प्रभाव एव
तहास के वस्तुगत आदेशों से प्रतिक्रियावादी शक्तियों की सेवा करने से
कार करते हैं। वे जनवादी एव प्रगतिशील शक्तियों के हितों को अभिव्यक्त
ते हैं। उनकी कृतियां सत्यनिष्ठा, जीवन की गहन अन्तर्वेधी दृष्टि और न्याय
विवेक की विजय में विश्वास से ओत-प्रोत होती हैं। पूंजीवादी जगत में
तिशील कलाकारों की संख्या काफी बड़ी है, किन्तु समकालीन पूंजीवादी
त में कला के दृष्टिकोण को वे नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी शक्तियों के सेवक
िष्ट करते हैं।

प्रत्येक वर्ग ऐसी कला पैदा करता है जो उसके वर्ग-हितों एव सौन्दर्यबोध
आवश्यकताओं के अनुरूप होती है। किन्तु कला-कृतियों में अनेक ऐसी हैं जो
ने वर्ग एव युग की समाप्ति के बाद भी जीवित रहती हैं। वे ऐसी कृतियां
जो अनेक एव भिन्न युगों के जनगण में अन्तर्निहित भनिट एव सामान्य
ो को स्पष्टता एवं सत्यता के साथ प्रतिबिम्बित करती हैं। ये वे कृतियां
हैं जिनसे किसी युग अथवा वर्ग के सारतत्व को समझना सम्भव होता है।
चीन यूनानी कला महारथियों की बनायी सर्वश्रेष्ठ मूर्तियां, पुनरुज्जीवन काल
चित्रकारी, मोजार्ट, बीथोवेन, ग्लीका, चाइकोव्स्की, शेक्सपियर, गेटे, बाल्ज़
क, पुश्किन, तोलस्तोय, रोम्यां रोलां, मैक्सिम गोर्की विरचित साहित्य एव
ेक अन्य कला-कृतियां इन्हीं में हैं जो अपने में समूची मानवजाति की
पदा बनी हुई हैं। इससे कला की एक और विशेषता प्रकट होती है—उसके
कास की निरन्तरता प्रकट होती है। प्रत्येक नये युग की कला पूर्ववर्ती युगों
कला के प्रगतिशील और उत्कृष्ट अंश को सुरक्षित रखती है।

ाजवादी कला और म्युनिज्म के निर्माण में उसकी भूमिका

मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष और कम्युनिज्म की ओर उसकी प्रगति के आधार पर एक गुणात्मक-रूप से नयी, समाजवादी कला का जन्म हुआ। समाजवादी कला अतीत की प्रगतिशील कला में
सर्वोत्तम है, उसे आत्मसात करती है। वह नयी परिस्थितियों के अनुरूप
ला के विकास की एक नयी मंजिल है।

समाजवादी यथार्थवाद इस कला की सृजनात्मक विधि है। इसमें हमारे युग की मुख्य अन्तर्वस्तु को—कम्युनिज्म की ओर समाज की प्रगति को—सत्यता के साथ, इतिहास की दृष्टि से मूर्त एवं कला की दृष्टि से अति उच्चस्तरीय ढंग से प्रतिबिम्बित होना चाहिए। समाजवादी यथार्थवाद की कला स्थिर नहीं रहती, वह निरन्तर विकसित और समृद्ध होती रहती है।

समाजवादी यथार्थवाद की कला के मूल सिद्धांत हैं: यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने में सत्यनिष्ठता और गहनता, जनता के साथ समस्वाभाविकता, पक्षधरता और जीवन को कलापूर्ण ढंग से चित्रित करने में साहसपूर्ण अग्रसरता, और इन सबके साथ विश्व संस्कृति की सभी प्रगतिशील परम्पराओं का उपयोग करना और उन्हें विकसित करना। समाजवादी यथार्थवाद की प्रमुख विशेषता है उसका गहन समाजवादी तत्व एवं उसका विविधतापूर्ण सुस्पष्ट राष्ट्रीय रूप। समाजवादी यथार्थवाद की विधि लेखकों, चित्रकारों और अन्य कलाकारों को अपनी सृजनात्मक पहल और उत्कृष्ट निपुणता प्रदर्शित करने, अनेकानेक सृजनात्मक विधाएं, शैलियां और प्रकार विकसित करने का व्यापक अवसर प्रदान करती है।

वास्तविक यथार्थवादी कला सदा से ही जनता के साथ सम्बद्ध रही है। पर जनता के साथ, उसके जीवन एवं कार्य के साथ समाजवादी कला का आनुषंगिक सम्बंध एक सर्वथा अभूतपूर्व चीज है। समाजवादी कला के लोक स्वरूप के सम्बंध में लेनिन ने कहा था "कला जनता की चीज है। उसकी जड़ें मेहनतकश जनता के बीच गहराई के साथ जमी होनी चाहिए। कला ऐसी होनी चाहिए जिसे आम जनता समझे और चाहे। कला को आम जनता की संवेदनाओं, विचारों एवं इच्छा को जोड़ना और उद्वेलित करना चाहिए, उसे जनता के अन्दर की कलात्मक सहजवृत्तियों को उद्वेलित तथा विकसित करना चाहिए।"[1]

जनता के साथ लगाव जो समाजवादी कला में अन्तर्निहित होता है, उसकी पक्षधरता के साथ आनुषंगिक रूप से जुड़ा हुआ है। सोवियत कला—मजदूर वर्ग एवं सभी मेहनतकशों की खुलेआम एवं सीधे-सीधे रूप से सेवा करती है। उसने अपना प्रारब्ध कम्युनिस्ट पार्टी के साथ, मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्व दृष्टिकोण के साथ जोड़ दिया है।

संशोधनवादी लोग कला में पक्षधरता के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। वे कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा कला का निर्देशन किये जाने का विरोध करते हैं। उनका तर्क यह है कि इससे कलाकार की सृजनात्मक

---

१. क्लारा जेटकिन, लेनिन सम्बंधी संस्मरण, मास्को—पृष्ठ १९-२०।

स्वाधीनता कुंठित होती है, उसके कलात्मक व्यक्तित्व का दमन होता है आदि। पर दरअसल पक्षधरता का सिद्धान्त समाजवादी कला में उदात्त भावनाओं, विषयवस्तु और उत्कृष्ट कलात्मकता को सुनिश्चित करता है। वह कला को सबसे जरूरी सामाजिक समस्याओं के समाधान की ओर अभिमुख करता है। वह कलात्मक प्रयास की वास्तविक स्वतंत्रता की एक अनिवार्य पूर्वापेक्षा है। "हम में से प्रत्येक अपने हृदय के आदेशों पर साहित्य का सृजन करता है, और हमारे हृदय हमारी पार्टी तथा जनता के हैं जिसकी हम अपनी कला द्वारा सेवा करते हैं।" इन शब्दों में मिखाइल शोलोखोव ने सोवियत कलाकारों के विचारों और आवेगों को, जनता और कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति उनकी निष्ठा को अभिव्यक्त किया है।

कम्युनिस्ट पार्टी समाजवादी कला को विकसित करने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील रहती है। वह ऊंचे विचारों तथा विषयतत्व एवं उच्च कोटि की कलात्मकता से परिपूरित सत्यनिष्ठ कृतियों के सृजन को बढ़ावा देती है। वह कलाकारों में जनता और कम्युनिज्म के प्रति एकनिष्ठता की भावना बढ़ाने का सतत प्रयास करती है। कला में त्रुटियों, राजनीतिक चेतना के अभाव और विचारों एवं विषयवस्तु की दरिद्रता के प्रति कट्टर शत्रुता का रुख पनपाने की कोशिश करती है।

पूर्ण कम्युनिज्म के निर्माण के काल में सोवियत कला का यह कार्य करता है—जनता में उदात्त राजनीतिक, नैतिक एवं सौंदर्यबोधात्मक गुण भरना, लोगों के मस्तिष्क से अतीत के अवशेषों का उन्मूलन करने में सहायता देना, जनता के गौरवपूर्ण प्रयासों को गहनता और सत्यनिष्ठा के साथ चित्रित करना, समकालीन मानव के समृद्ध जगत का, उसके विचारों, आवेगों और आकांक्षाओं का उद्घाटन करना, सोवियत समाज की अग्रगति को रोकने वाली हर चीज का निर्ममता से पर्दाफाश करना, कम्युनिज्म के निर्माण के दौर में नये-नये करिश्मे कर दिखाने के लिए सोवियत जनता को अनुप्राणित करना। जनता की सौन्दर्यबोधात्मक शिक्षा में कला खास तौर से बड़ी भूमिका अदा करती है। यह कम्युनिस्ट शिक्षा का महत्वपूर्ण संघटक तत्व है। कला को सुन्दरता की परख तथा सौन्दर्यबोधात्मक भावावेग विकसित करना चाहिए। उसे जनता की कलात्मक क्षमताओं और अभिरुचियों को जगाना और विकसित करना चाहिए।

* * *

पिछले अध्यायों में मार्क्सवादी दर्शन के मूलभूतों की विवेचना करते हुए हम यह देख चुके हैं कि विश्व में प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होती रहती है,

विकसित होती रहती है, निम्नतर से उच्चतर की दिशा में, पुरातन से नूतन की दिशा में अनिवार्य गति से बढ़ती रहती है। हमने ज्ञात किया है कि नयी कम्युनिस्ट व्यवस्था दिवास्वप्न नहीं, वरन् एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है। हमने यह भी देखा है कि कम्युनिज्म की दिशा में जानेवाला मार्ग समाजवादी क्रान्ति और सर्वहारा अधिनायकत्व से होकर गुजरता है।

लेनिन ने एक बार कहा था कि मार्क्स की शिक्षा सर्वशक्तिमान है, क्योंकि वह सत्य पर आधारित है। मार्क्सवाद की गहन सत्यता आज इतिहास द्वारा प्रमाणित हो चुकी है। सोवियत संघ में समाजवाद की पूर्ण एवं चरम विजय हुई है, विश्व समाजवादी व्यवस्था उदित और विकसित हुई है और मानव-जाति उज्ज्वल कम्युनिस्ट भविष्य की ओर अदम्य गति से आगे बढ़ रही है— ये सारी चीजें मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विचारों की विजय के चमत्कारी और अकाट्य प्रमाण हैं।

पर यह संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है। पूंजीवाद आज भी विद्यमान है और अनेक देशों में छाया हुआ है। समकालीन पूंजीपतियों की प्रतिक्रियावादी विचारधारा उसके हितों के प्रहरी का काम कर रही है। समाजवाद बराबर शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता और विचारधारा के संघर्ष में पूंजीवाद को पछाड़ता है।

आज पूंजीवादी और समाजवादी विचारधाराओं में जो घनघोर संघर्ष चल रहा है, उसमें समाजवादी विचारधारा विजयी होगी। कम्युनिज्म के विचार दुनिया के सभी ईमानदार लोगों के मस्तिष्क और हृदय पर अधिकाधिक हावी होते जा रहे हैं। कारण यह है कि ये सत्य पर आधारित विचार हैं और सत्य सदा अजेय होता है। पूंजीवादी जगत के जीवन के दिन गिने-चुने रह गये हैं। मरणोन्मुख पूंजीवाद के स्थान पर कम्युनिज्म का आगमन हो रहा है। उस कम्युनिज्म का जो नया है और सम्पूर्ण मानव इतिहास में सबसे न्यायपूर्ण समाज है। यही है सामाजिक विकास की अनिवार्य कार्यदिशा और ऐसी ही है इतिहास की वस्तुगत द्वन्द्वात्मकता।

नाम-अनुक्रमणिका